सचित्र

श्रीमद्वाल्मीकि-रामायण

[हिन्दीभाषानुवाद सहित]

सुन्दरकाण्ड—६

अनुवादक

चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा, एम० आर० ए० एस०

Doctor of Oriental Culture. (Kashi)

प्रकाशक

रामनारायण लाल

पब्लिशर और बुकसेलर

इलाहाबाद

१९४६

[द्वितीय संस्करण १,०००] [मूल्य ३)]

Printed by
RAMZAN ALI SHAH at the National Press,
Allahabad.

सुन्दरकाण्ड

की

विषयानुक्रमणिका

किया जाना। उधर हनुमान जी का अपने शरीर को सकोड़ कर, बंधनों से मुक्त होना, अपने पीछे लगे हुए राक्षसों का नगरद्वार के एक परिघ को फिर निकाल, उससे वध करना।

चौवनवाँ सर्ग ५४०—५५

हनुमान जी का अपनी पूँछ की आग से विभीषण का घर छोड़ और प्रहस्त के घर से आरम्भ कर, रावण के राजप्रासाद तक, सब घरों में आग लगा कर, उनको भस्म करना। लङ्का में इस अग्निकाण्ड से घर घर हाहाकार का मचना और देवताओं का प्रसन्न होना।

पचपनवाँ सर्ग ५५३—५६१

लङ्का में अग्निकाण्ड देख, हनुमान जी के मन में सीता के भस्म हो जाने का विचार उत्पन्न होने पर, उनका अपनी करनी पर बार बार पछताना। इतने में चारणों के मुख से सीता का कुशलसंवाद सुन, हनुमान जी का हर्षित हो, सीता जी के पास उनको देखने के लिए गमन और वहाँ से समुद्र के इस पार आने का सङ्कल्प करना।

छप्पनवाँ सर्ग ५६१—५

शिंशपामूल के निकट बैठी जानकी जी को प्रणाम कर, हनुमान जी का लङ्का से प्रस्थान।

सत्तावनवाँ सर्ग ५७०—

हनुमान जी का समुद्र के इस पार महेन्द्राचल पर कूदना और सीता जी का पता लगाना, यह बात सु वानरों का हनुमान जी को फलफूलों की भेंट देना उनसे लङ्का का वृत्तान्त पूँछना।

॥ इति ॥

श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम्

—:०:—

सुन्दरकाण्डः

ततो रावणनीतायाः सीतायाः शत्रुकर्शनः ।
इयेष पदमन्वेष्टुं चारणाचरिते पथि ॥ १ ॥

तदनन्तर शत्रुदमनकर्त्ता हनुमान जी, सीता जी का पता लगाने के लिए, आकाश के उस मार्ग से, जिस पर चारण लोग चला करते हैं, जाने को तैयार हुए ॥ १ ॥

दुष्करं निष्प्रतिद्वन्द्वं चिकीर्षन्कर्म वानरः ।
समुदग्रशिरोग्रीवो गवां पतिरिवाऽऽबभौ ॥ २ ॥

इस प्रकार के दुष्कर कर्म करने की इच्छा कर, सिर और गर्दन उठा कर, वृषभ की तरह, प्रतिद्वन्द्वीरहित अथवा विघ्न-बाधा-रहित, हनुमान जी शोभायमान हुए ॥ २ ॥

अथ वैडूर्यवर्णेषु शाद्वलेषु महाबलः ।
धीरः [1]सलिलकल्पेषु विचचार यथासुखम् ॥ ३ ॥

धीर वीर हनुमान जी, समुद्रजलघन अथवा पन्ने की तरह हरी रंग की दूब के ऊपर, सुख से विचरने लगे ॥ ३ ॥

---

१ सलिलकल्पेषु—समुद्रजलवत् । (रा०)

द्विजान्वित्रासयन्धीमानुरसा पादपान्हरन् ।
मृगांश्च सुबहून्निघ्नन्प्रवृद्ध इव केसरी ॥ ४ ॥

उस समय बुद्धिमान् हनुमान जी, पक्षियों को त्रस्त करते, अपनी छाती की टक्कर से अनेक वृक्षों को उखाड़ते और बहुत से मृगों को मारते हुए ऐसे जान पड़ते थे, मानों बड़ा भयङ्कर सिंह हो ॥ ४ ॥

नीललोहितमाञ्जिष्ठपत्रवर्णैः सितासितैः ।
स्वभावविहितैश्चित्रैर्धातुभिः समलङ्कृतम् ॥ ५ ॥
कामरूपिभिराविष्टमभीक्ष्णं सपरिच्छदैः ।
यक्षकिन्नरगन्धर्वैर्देवकल्पैश्च पन्नगैः ॥ ६ ॥
स तस्य गिरिवर्यस्य तले नागवरायुते ।
तिष्ठन्कपिवरस्तत्र ह्रदे नाग इवाबभौ ॥ ७ ॥

नीली, लाल, मजीठी और कमल के रंग की तथा सफेद एवं काले रंग की रंग विरंगी स्वभावसिद्ध धातुओं से भूषित, विविध भांति के आभूषणों और वस्त्रों को पहिने हुए और अपने अपने परिवारों सहित देवताओं की तरह कामरूपी यक्ष, गन्धर्व, किन्नर और सर्पों से सेवित तथा उत्तम जाति के हाथियों से व्याप्त, उस महेन्द्र पर्वत की तलैटी में, वानरश्रेष्ठ हनुमान जी, सरोवरस्थित हाथी की तरह शोभायमान हुए ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

स सूर्याय महेन्द्राय पवनाय [1]स्वयंभुवे ।
[2]भूतेभ्यश्चाञ्जलिं कृत्वा चकार गमने मतिम् ॥८॥

---

[1] स्वयम्भुवे—चतुर्मुखाय । (गो॰) [2] भूतेभ्यः—देवयोनिभ्यः । (गो॰)

हनुमान जी ने सूर्य, इन्द्र, वायु, ब्रह्मा तथा अन्यान्य देवताओं को नमस्कार कर के वहाँ से प्रस्थान करना चाहा ॥ ८ ॥

अञ्जलिं प्राङ्मुखः कुर्वन्पवनायात्मयोनये[1] ।
ततोऽभिववृधे गन्तुं दक्षिणो दक्षिणां दिशम् ॥९॥

तदनन्तर वे पूर्वमुख हो, हाथ जोड़ अपने पिता पवनदेव को प्रणाम कर, दक्षिण दिशा की ओर जाने को अग्रसर हुए ॥९॥

प्लवङ्गप्रवरैर्दृष्टः प्लवने कृतनिश्चयः ।
ववृधे रामवृद्ध्यर्थं समुद्र इव पर्वसु ॥१०॥

वानरश्रेष्ठों ने देखा कि, श्रीरामचन्द्र जी के कार्य की सिद्धि के लिए, समुद्र नांघने का निश्चय किए हुए हनुमान जी का शरीर, ऐसे बढ़ने लगा जैसे पूर्णमासी के दिन समुद्र बढ़ता है ॥ १० ॥

[2]निष्प्रमाणशरीरः सँल्लिलङ्घयिषुरर्णवम् ।
बाहुभ्यां पीडयामास चरणाभ्यां च पर्वतम् ॥११॥

हनुमान् जी ने समुद्र फांदने के समय अपना शरीर अंधाधुन्ध बढ़ाया और अपनी दोनों भुजाओं और चरणों से पर्वत को ऐसा दबाया कि ॥ ११ ॥

स चचालाचलश्चापि मुहूर्तं कपिपीडितः ।
तरूणां पुष्पिताग्राणां सर्वं पुष्पमशातयत् ॥१२॥

दबाने से एक मुहूर्त तक वह अचल पर्वत चलायमान हो गया और उसके ऊपर जो पुष्पित वृक्ष थे, उन वृक्षों के सब फूल झड़ कर गिर पड़े ॥ १२ ॥

---

१ आत्मयोनये स्वकारणभूताय । (गो०) २ निष्प्रमाणशरीरः—निर्मर्यादशरीरः । (गो०)

तेन पादपमुक्तेन पुष्पौघेण सुगन्धिना ।
सर्वतः संवृतः शैलो बभौ पुष्पमयो यथा ॥१३॥

वृक्षों से झड़े हुए सुगन्धयुक्त फूलों के ढेरों से वह पर्वत ढक गया और ऐसा जान पड़ने लगा, मानों वह समस्त पहाड़ फूलों ही का है ॥ १३ ॥

तेन चोत्तमवीर्येण पीड्यमानः स पर्वतः ।
सलिलं सम्प्रसुस्राव मदमत्त इव द्विपः ॥१४॥

जब वीर्यवान् कपिप्रवर हनुमान जी ने उस पर्वत को दबाया, तब उससे अनेक जल की धाराएँ निकल पड़ीं । वे धाराएँ ऐसी जान पड़ती थीं, मानों किसी मतवाले हाथी के मस्तक से मद बहता हो ॥ १४ ॥

पीड्यमानस्तु बलिना महेन्द्रस्तेन पर्वतः ।
[1]रीतीर्निर्वर्तयामास काञ्चनाञ्जनराजतीः ॥१५॥

बलवान् हनुमान जी के दबाने से उस महेन्द्राचल पर्वत के चारों ओर धातुओं के बह निकलने से ऐसा जान पड़ता था, मानों पिघलाए हुए सोने और चाँदी की रेखाएँ खिंची हों ॥१५॥

मुमोच च शिलाः शैलो विशालाः समनःशिलाः ।
मध्यमेनार्चिषा जुष्टो धूमराजीरिवानलः ॥१६॥

वह पर्वत मनसिलयुक्त बड़ी बड़ी शिलाएँ गिराने लगा । उस समय ऐसा जान पड़ा, मानों बीच में तो आग जल रही हो और चारों ओर धुआँ निकल रहा हो ॥ १६ ॥

---

१ रीतीः—रेखाः । (गो०)

गिरिणा पीड्यमानेन पीड्यमानानि सर्वतः ।
गुहाविष्टानि भूतानि विनेदुर्विकृतैः स्वरैः ॥१७॥

हनुमान जी के द्वारा उस पर्वत के दबाए जाने पर उस पर्वत की गुफाओं में रहने वाले समस्त जीवजन्तु दब गए और विकराल शब्द करने लगे ॥ १७ ॥

स महान्सत्त्वसन्नादः शैलपीडानिमित्तजः ।
पृथिवीं पूरयामास दिशश्चोपवनानि च ॥१८॥

पर्वत के दबने के कारण उन जीवजन्तुओं ने ऐसा घोर शब्द किया कि, उससे संपूर्ण पृथिवी, दिशा और जंगल भर गए ॥१८॥

शिरोभिः पृथुभिः सर्पा व्यक्तस्वस्तिकलक्षणैः ।
वमन्तः पावकं घोरं ददंशुर्दशनैः शिलाः ॥ १९ ॥

स्वस्तिक (शुभ) चिह्नों से चिह्नित फनधारी बड़े बड़े सर्प, जो उस पर्वत में रहा करते थे क्रुद्ध हो और मुख से भयङ्कर आग उगलते हुए, शिलाओं को अपने दांतों से काटने लगे ॥ १९ ॥

तांस्तदा सविषैर्दष्टाः कुपितैस्तैर्महाशिलाः ।
जज्वलुः पावकोद्दीप्ता बिभिदुश्च सहस्रधा ॥ २० ॥

क्रुद्ध हो कर विषधरों द्वारा दांतों से काटी गई वे बड़ी बड़ी शिलाएँ जलने लगीं और उनके हज़ारों टुकड़े हो गए ॥ २० ॥

यानि चौषधजालानि तस्मिञ्जातानि पर्वते ।
विषघ्नान्यपि नागानां न शेकुः शमितुं विषम् ॥२१॥

यद्यपि उस पर्वत पर सर्पविषनाशक अनेक जड़ी बूटियां थीं, तथापि वे भी उन नागों के विष को शमन न कर सकीं ॥ २१ ॥

भिद्यतेऽयं गिरिर्भूतै[1]रिति मत्वा तपस्विनः।
त्रस्ताविद्याधरास्तस्मादुत्पेतुः स्त्रीगणैः सह ॥ २२ ॥

जब हनुमानजी ने पर्वत को दबाया, तब उस पर्वत पर बसने वाले तपस्वी और विद्याधर लोग घबड़ा कर अपनी अपनी स्त्रियों को साथ ले वहाँ से चल दिए ॥ २२ ॥

पानभूमिगतं हित्वा हैममासवभाजनम्।
पात्राणि च महार्हाणि करकांश्च हिरण्मयान् ॥ २३ ॥

और शराब पीने की जगह पर जो सोने की बैठकी और बड़े बड़े मूल्यवान सुवर्णपात्र और सुवर्ण के करवे थे, उन्हें वे वहीं छोड़ कर, चल दिए ॥ २३ ॥

लेह्यानुच्चावचान्भक्ष्यान्मांसानि विविधानि च।
आर्षभाणि च चर्माणि खड्गांश्च कनकत्सरून् ॥२४॥

चटनी आदि विविध पदार्थ और तरह तरह के मांस, साँवर के चमड़े की बनी ढालें तथा सोने की मूंठ की तलवारें जहाँ की तहाँ छोड़, (वे लोग जान लेकर, आकाशमार्ग से चल दिए) ॥२४॥

कृतकण्ठगुणाः क्षीबा रक्तमाल्यानुलेपनाः।
रक्ताक्षाः पुष्कराक्षाश्च गगनं प्रतिपेदिरे ॥ २५ ॥

गलों में सुन्दर पुष्पहारों को पहिने तथा शरीरों में अच्छे अंगराग लगाए अरुण एवं कमल जैसे नेत्रों वाले विद्याधरों ने आकाश में जा कर दम ली ॥ २५ ॥

---

१ भूतैः ब्रह्मरक्षः प्रभृतिमहाभूतैः। (रा०)

हारनूपुरकेयूरपारिहार्यधराः स्त्रियः।
विस्मिताः सस्मितास्तस्थुराकाशे रमणैः सह ॥ २६ ॥

इनकी स्त्रियाँ, जो हार, नूपुर (बिछुवा) बिजायठ और ककनों से अपना शरीर सजाए हुए थीं, अत्यन्त आश्चर्यचकित हो अपने अपने पतियों के पास जा कर, आकाश में खड़ी हो गईं ॥ २६ ॥

दर्शयन्तो [1]महाविद्यां विद्याधरमहर्षयः।
*विस्मितास्तस्थुराकाशे वीक्षांचक्रुश्च पर्वतम् ॥२७॥

वे विद्याधर और महर्षिगण अणिमादि अष्ट महाविद्याओं को दिखलाते, आकाश में खड़े होकर उस पर्वत की ओर देखने लगे ॥२७॥

शुश्रुवुश्च तदा शब्दमृषीणा भावितात्मनाम्।
चारणानां च सिद्धानां स्थितानां विमलेऽम्बरे ॥२८॥
एष पर्वतसङ्काशो हनूमान्मारुतात्मजः।
तितीर्षति महावेगः सागरं मकरालयम् ॥ २९ ॥

वे निर्मल आकाशस्थित विशुद्धमना महात्मा, ऋषियों को यह कहते हुए सुन रहे थे कि, देखो यह पर्वताकार शरीर वाले हनुमान बड़ी तेज़ी से समुद्र के पार जाना चाहते हैं ॥ २८ ॥

रामार्थं वानरार्थं च चिकीर्षन्कर्म दुष्करम्।
समुद्रस्य परं पारं दुष्प्राप प्राप्तुमिच्छति ॥ ३० ॥

ये वीर वानर हनुमान जी, श्रीरामचन्द्र का कार्यसिद्ध करने और इन वानरों के प्राण बचाने के लिए, दुर्लङ्घ्य समुद्र के उस पार जाने की इच्छा कर, एक दुष्कर कार्य करना चाहते हैं ॥३०॥

---

१ महाविद्यां— अणिमाद्यष्टमहाविद्यां। (गो०) * पाठान्तरे—"सहिता स्तस्थुराकाशे"।

इति विद्याधराः श्रुत्वा वचस्तेषां तपस्विनाम्* ।
तमप्रमेयं ददृशुः पर्वते वानरर्षभम् ॥ ३१ ॥

उन तपस्वियों की कही हुई इन बातों को सुन, विद्याधर लोग उस पर्वत पर खड़े अप्रमेय बलशाली हनुमान जी को देखने लगे ॥ ३१ ॥

दुधुवे च स रोमाणि चकम्पे चाचलोपमः ।
ननाद सुमहानादं स महानिव तोयदः ॥ ३२ ॥

उस समय पवननन्दन हनुमान जी ने अपने शरीर के रोमों को फुला, पर्वताकार अपने शरीर को हिलाया और महामेघ की तरह महानाद कर, वे गर्जे ॥ ३२ ॥

आनुपूर्व्येण वृत्तं च लाङ्गूलं लोमभिश्चितम् ।
उत्पतिष्यन्विचिक्षेप पक्षिराज इवोरगम् ॥ ३३ ॥

और चढ़ावउतारदार एवं गोल और रुएंदार अपनी पूंछ को हनुमान जी ने वैसे ही फटकारा जैसे गरुड़ सांप को फटकारता है ॥३३॥

तस्य लाङ्गूलमाविद्धमतिवेगस्य पृष्ठतः ।
ददृशे गरुडेनेव ह्रियमाणो महोरगः ॥ ३४ ॥

इनकी पीठ पर बड़े वेग से हिलती हुई इनकी पूंछ, गरुड़ द्वारा पकड़े हुए अजगर सांप की तरह हिलती हुई, देख पड़ती थी ॥३४॥

बाहू संस्तम्भयामास महापरिघसन्निभौ ।
ससाद च कपिः कट्यां चरणौ सञ्चुकोच च ॥ ३५ ॥

*पाठान्तरे—" महात्मनाम् " ।

हनुमान जी ने (कूदने के समय) अपने परिघ जैसे आकार वाली दोनों भुजाओं को जमा कर, कमर पर दोनों पैरों का बल दिया और उनको (पैरों को) सकोड़ लिया ॥ ३५ ॥

संहृत्य च भुजौ श्रीमांस्तथैव च शिरोधराम् ।
तेजः सत्त्वं तथा वीर्यमाविवेश स वीर्यवान् ॥ ३६ ॥

उन्होंने अपने हाथों, सिर और होठों को भी सकोड़ा। तदनन्तर अपने तेज, बल और पराक्रम के सहारे ॥ ३६ ॥

मार्गमालोकयन्दूरादूर्ध्वं प्रणिहितेक्षणः ।
रुरोध हृदये प्राणानाकाशमवलोकयन् ॥ ३७ ॥
पद्भ्यां दृढमवस्थानं कृत्वा स कपिकुञ्जरः ।
निकुञ्च्य कर्णौ हनुमानुत्पतिष्यन्महाबलः ॥ ३८ ॥

जाने के मार्ग को दूर से देखा। उछलने के समय हनुमान जी ने ऊपर की ओर आकाश को देख, दम साधी और भूमि अपने पैर पर दृढ़ता पूर्वक जमा, दोनों कानों को सिकोड़ा ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

वानरान्वानरश्रेष्ठ इदं वचनमब्रवीत् ।
यथा राघवनिर्मुक्तः शरः श्वसनविक्रमः ॥ ३९ ॥
गच्छेत्तद्वद्गमिष्यामि लङ्कां रावणपालिताम् ।
न हि द्रक्ष्यामि यदि तां लङ्कायां जनकात्मजाम् ॥ ४० ॥
अनेनैव हि वेगेन गमिष्यामि सुरालयम् ।
यदि वा त्रिदिवे सीतां न *द्रक्ष्यामि कृतश्रमः ॥ ४१ ॥

---

* पाठान्तरे—" द्रक्ष्याम्यकृतश्रमः "।

बद्ध्वा राक्षसराजानमानयिष्यामि रावणम् ।
सर्वथा कृतकार्योऽहमेष्यामि सह सीतया ॥ ४२ ॥
आनयिष्यामि वा लङ्कां समुत्पाट्य सरावणाम् ।
एवमुक्त्वा तु हनुमान्वानरान्वानरोत्तमः ॥ ४३ ॥

वे कपियों में उत्तम हनुमान वानरों से बोले कि, जिस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी के छोड़े हुए बाण हवा की तरह जाते हैं, उसी प्रकार मैं रावणपालित लङ्का में चला जाऊँगा। यदि जनकनन्दिनी मुझे वहाँ न देख पड़ी, तो इसी वेग से मैं स्वर्ग को चला जाऊँगा। यदि वहाँ भी प्रयत्न करने पर सीता न देख पड़ी, तो मैं राक्षसराज रावण को बाँध कर यहाँ लेआऊँगा। या तो मैं इस प्रकार सफलमनोरथ हो सीतासहित ही लौटूँगा नहीं तो रावणसहित लङ्का को उखाड़ कर ही ले आऊँगा। कपिश्रेष्ठ हनुमान जी ने वानरों से इस प्रकार कहा ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ॥४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

उत्पपाताथ वेगेन वेगवानविचारयन् ।
सुपर्णमिव चात्मानं मेने स कपिकुञ्जरः ॥ ४४ ॥

मार्ग के विघ्नों की कुछ भी परवाह न कर, वेगवान् हनुमान् जी अत्यन्त वेग से कूदे और उस समय अपने को गरुड़ के तुल्य समझा ॥ ४४ ॥

समुत्पतति तस्मिंस्तु वेगात्ते नगरोहिणः ।
संहृत्य विटपान्सर्वान्समुत्पेतुः समन्ततः ४५ ॥

उस समय हनुमान जी के छलांग भरते ही, उस पहाड़ के पेड़ मय पत्तों और डालियों के चारों ओर से इनके पीछे बड़े वेग से चले ॥ ४५ ॥

स मत्तकोयष्टि*भकान्पादपान्पुष्पशालिनः ।
उद्वहन्नूरुवेगेन जगाम विमलेऽम्बरे ॥ ४६ ॥

हनुमान जी पक्षियों से युक्त और पुष्पित वृक्षों को अपनी जाँघों के वेग से अपने साथ लिये हुए विमल आकाश में गये ॥ ४६ ॥

ऊरुवेगाद्धता वृक्षा मुहूर्तं कपिमन्वयुः ।
प्रस्थितं दीर्घमध्वानं स्वबन्धुमिव बान्धवाः ॥ ४७ ॥

जाँघों के वेग से उड़े हुए वे पेड़ कुछ ही देर तक हनुमान जी के पीछे पीछे गए। तदनन्तर जिस प्रकार दूर देश की यात्रा करने वाले बन्धु के पीछे उसके भाईबंद कुछ दूर तक जाकर लौट आते हैं, उसी प्रकार वे वृक्ष भी हनुमान जी को थोड़ी दूर पहुँचा कर लौटे ॥ ४७ ॥

तदूरुवेगोन्मथिताः सालाश्चान्ये नगोत्तमाः ।
अनुजग्मुर्हनूमन्तं सैन्या इव महीपतिम् ॥ ४८ ॥

हनुमान जी की जाँघों के वेग से उखड़े हुए साल आदि के बड़े बड़े पेड़ उनके पीछे वैसे ही चले जाते थे, जैसे राजा के पीछे पीछे सेना चलती हो ॥ ४८ ॥

सुपुष्पिताग्रैर्बहुभिः पादपैरन्वितः कपिः ।
हनूमान्पर्वताकारो बभूवाद्भुतदर्शनः ॥ ४९ ॥

उस समय अनेक फूले हुए वृक्षों से घिरे हुए एवं पर्वताकार हनुमान जी का अद्भुत रूप देख पड़ा ॥ ४९ ॥

सारवन्तोऽथये वृक्षा न्यमज्जँल्लवणाम्भसि ।
भयादिव महेन्द्रस्य पर्वता वरुणालये ॥ ५० ॥

* पाठान्तरे—"भ"। † पाठान्तरे—"तसूरु"।

हनुमान जी के पीछे उड़ने वाले वृक्षों में जो भारी पेड़ थे, वे समुद्र में गिर कर वैसे ही डूब गए जैसे इन्द्र के भय से पहाड़ समुद्र में डूबे थे ॥ ५० ॥

स नानाकुसुमैः कीर्णः कपि साङ्कुरकोरकैः ।
शुशुभे मेघसङ्काशः खद्योतैरिव पर्वतः ॥ ५१ ॥

उन पेड़ों के फूलों, अङ्कुरों और कलियों से मेघ के समान कपिश्रेष्ठ हनुमान जी वैसे शोभायमान हो रहे थे, जैसे की जुगनुओं से कोई पर्वत शोभायमान हो रहा हो ॥ ५१ ॥

विमुक्तास्तस्य वेगेन मुक्त्वा पुष्पाणि ते द्रुमाः ।
अवशीर्यन्त सलिले निवृत्ताः सुहृदो यथा ॥ ५२ ॥

हनुमान जी के गमनवेग से छूट कर, वे वृक्ष अपने फूलों को गिरा कर और तितर बितर हो समुद्र के जल में उसी प्रकार गिरे, जिस प्रकार किसी अपने बंधुजन को पहुँचा कर, सुहृद् लोग तितर बितर हो जाते हैं ॥ ५२ ॥

लघुत्वेनोपपन्नं तद्विचित्रं सागरेऽपतत् ।
द्रुमाणां विविधं पुष्पं कपिवायुसमीरितम् ॥ ५३ ॥

हनुमान् जी के गमनवेग से उत्पन्न पवन द्वारा प्रेरित वृक्षों के विविध प्रकार के पुष्प, हलके होने के कारण समुद्र के जल पर उतरा कर बड़े शोभायमान हो रहे थे। ॥ ५३ ॥

*ताराशतमिवाकाशं प्रबभौ स महार्णवः ।
†पुष्पौघेणानुविद्धेन नानावर्णेन वानरः ॥ ५४ ॥

---

* पाठान्तरे—"ताराचित" † पाठान्तरे—"अनुबद्धेन", "सुगन्धेन"।

बभौ मेघ इवाकाशे विद्युद्गणविभूषितः ।
तस्य वेगसमुद्भूतैः *पुष्पैस्तोयमदृश्यत ॥ ५५ ॥
ताराभिरभिरामाभिरुदिताभिरिवाम्बरम् ।
तस्याम्बरगतौ बाहू ददृशाते प्रसारितौ ॥ ५६ ॥

उन फूलों के गिरने से समुद्र, सहस्रों ताराओं से शोभित आकाश की तरह जान पड़ता था। सुगन्धयुक्त और रंग बिरंगे पुष्पों से कपिश्रेष्ठ हनुमान जी ऐसे शोभित हुए जैसे बिजली की रेखाओं से मण्डित आकाशस्थित मेघ शोभित होता है। जिस प्रकार आकाशमण्डल उदय हुए सुन्दर ताराओं से सज जाता है; उसी प्रकार समुद्र का जल हनुमान जी के गमनवेग से उड़ कर गिरे हुए पुष्पों से शोभित होने लगा। उस समय हनुमान जी के पसारे हुए हाथ आकाश में ऐसे जान पड़े ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६

पर्वताग्राद्विनिष्क्रान्तौ पञ्चास्यावित्र पन्नगौ ।
पिबन्निव बभौ श्रीमान्सोर्मिमालं† महार्णवम् ॥ ५७ ॥

मानों पर्वत के शिखर से पाँच सिरों वाले दो साँप निकल रहे हों। आकाश में जाते समय हनुमान जी जब नीचे को मुख करते थे, तब ऐसा जान पड़ता था कि, मानों तरङ्गों से युक्त समुद्र को पी डालना चाहते हैं ॥ ५७ ॥

पिपासुरिव चाकाशं ददृशे स महाकपिः ।
तस्य विद्युत्प्रभाकारे वायुमार्गानुसारिणः ॥ ५८ ॥

---

* पाठान्तरे—" वेगसमाधूतैः "। † पाठान्तरे—' चापि सोर्मिजालं "।

और जब वे ऊपर को मुख उठा कर चलते तब ऐसा जान पड़ता, मानों वे आकाश को पी जाना चाहते हैं। वायुमार्ग से जाते हुए हनुमान जी के बिजली की तरह चमकते हुए ॥५८॥

नयने सम्प्रकाशेते पर्वतस्थाविवानलौ ।
पिङ्गे पिङ्गाक्षमुख्यस्य बृहती परिमण्डले ॥ ५९ ॥

दोनों नेत्र ऐसे देख पड़ते थे जैसे पर्वत पर दो ओर दावानल हो। उनकी पीली पीली और बड़ी बड़ी ॥ ५६ ॥

चक्षुषी सम्प्रकाशेते *चन्द्रसूर्याविवाम्बरे ।
मुखं नासिकया तस्य ताम्रया ताम्रमाबभौ ॥ ६० ॥

आँखें आकाश में चन्द्रमा और सूर्य की तरह चमक रही थीं। हनुमान जी की लाल नाक और लाल मुखमण्डल ॥६०॥

सन्ध्यया समभिस्पृष्टं यथा †सूर्यस्य मण्डलम् ।
लाङ्गूलं च समाविद्धं प्लवमानस्य शोभते ॥ ६१ ॥
अम्बरे वायुपुत्रस्य शक्रध्वज इवोच्छ्रितः ।
लाङ्गूलचक्रेण महाञ्शुक्लदंष्ट्रोऽनिलात्मजः ॥ ६२ ॥

सन्ध्याकालीन सूर्यमण्डल की तरह शोभायमान हो रहा था। आकाशमार्ग से जाते समय हनुमान जी की हिलती हुई पूँछ ऐसी शोभायमान हो रही थी, जैसे आकाश में इन्द्रध्वज। फिर जब कभी वे अपनी पूँछ को मण्डलाकार कर लेते थे, तब मुख के सफेद दाँतों के साथ उनकी छबि ऐसी जान पड़ती थी; ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

---

* पाठान्तरे—" चन्द्रसूर्याविवोदितौ "। † पाठान्तरे—" तत्सूर्यमण्डलम् "।

व्यरोचत महाप्राज्ञः परिवेषीव भास्करः ।
स्फिग्देशेनातिताम्रेण रराज स महाकपिः ॥६३॥
महता दारितेनेव गिरिर्गैरिकधातुना ।
तस्य वानरसिंहस्य प्लवमानस्य सागरम् ॥ ६४ ॥

जैसी कि, सूर्य में मण्डल पड़ने पर सूर्य की छवि, उनकी कमर का पिछला भाग अत्यधिक लाल होने के कारण ऐसा जान पड़ता था, मानों पर्वत में गेरू की खान खुली पड़ी हो। कपिसिंह हनुमान जी के समुद्र लाँघने के समय ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

कक्षान्तरगतो वायुर्जीमूत इव गर्जति ।
खे यथा निपतत्युल्का ह्युत्तरान्ताद्विनिःसृता ॥६५॥

उनकी दोनों बगलों में से वायु के निकलने का ऐसा शब्द होता था जैसा कि, मेघ के गर्जने से होता है। उस समय वेगवान कपि ऐसे देख पड़े, जैसे उत्तर दिशा से एक बड़ा अग्नि का लुका दक्षिण की ओर चला जाता हो ॥ ६५ ॥

दृश्यते [1]सानुबन्धा च तथा स कपिकुञ्जरः ।
पतत्पतङ्गसङ्काशो व्यायतः शुशुभे कपिः ॥६६॥
प्रवृद्ध इव मातङ्गः कक्ष्यया बध्यमानया ।
उपरिष्टाच्छरीरेण च्छायया चावगाढया ॥६७॥
सागरे मारुताविष्टा नौरिवासीत्तदा कपिः ।
यं यं देशं समुद्रस्य जगाम स महाकपिः ॥६८॥

---

१ सानुबन्धा—सपुच्छा ।

तब जाते हुए सूर्य की तरह बड़े आकार वाले कपिश्रेष्ठ हनुमान जी अपनी पूँछ के कारण कमर में रस्सा बंधे हुए महागज की तरह शोभायमान होने लगे। आकाश में उड़ते हुए हनुमान जी के बड़े शरीर और समुद्र के जल में पड़ी हुई उसकी छाया, दोनों मिलकर ऐसी शोभा दे रहे थे, जैसे वायु के झोंकों से काँपती हुई नौका शोभा देती है। हनुमान जी समुद्र के जिस भाग में पहुँचते ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

*स स तस्योरुवेगेन सोन्माद इव लक्ष्यते।
सागरस्योर्मिजालानि उरसा शैलवर्ष्मणा ॥६९॥

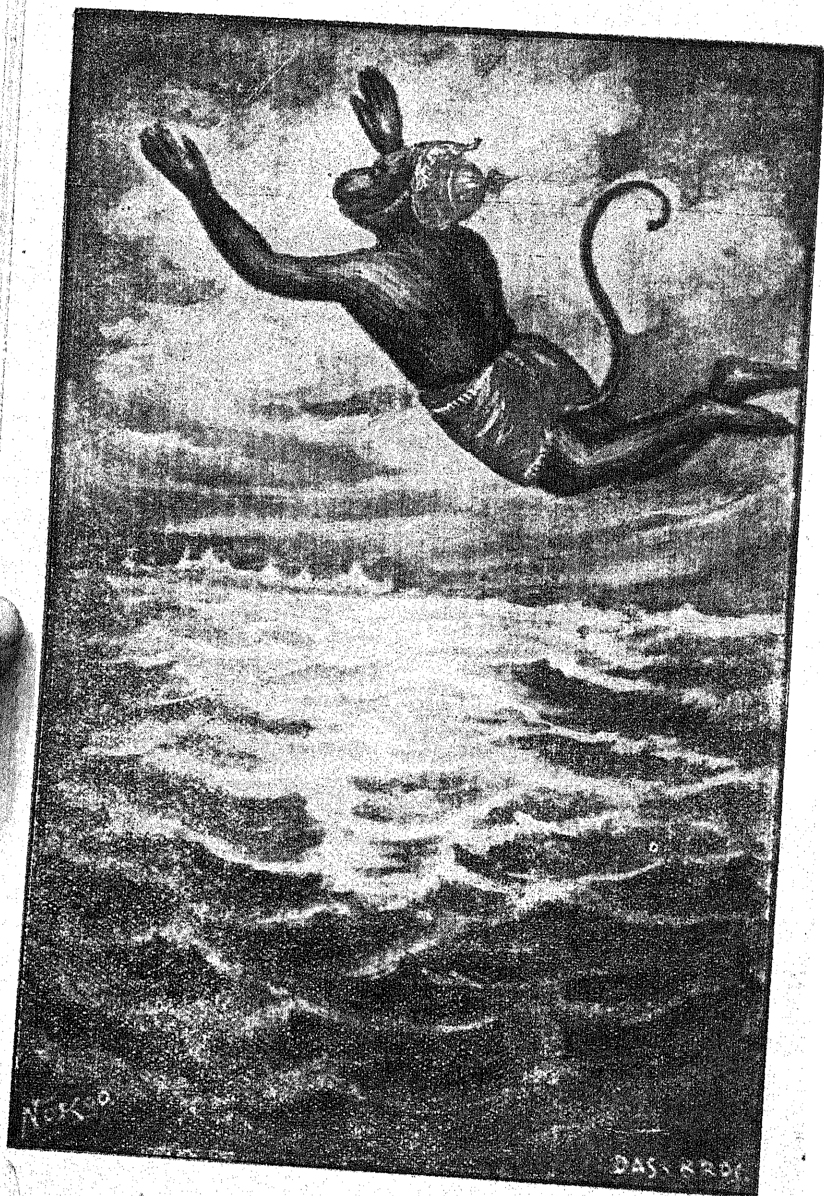
वहाँ वहाँ का समुद्र का भाग खलबलाता हुआ सा जान पड़ता था। वे पर्वत के समान अपने वक्षस्थल से समुद्र की लहरों को ढकेलते हुए चले जाते थे ॥६९ ॥

[नोट—इस वर्णन से जान पड़ता है कि, हनुमान जी समुद्र के जल की सतह से बहुत ऊँचे नहीं उड़े थे।]

अपिद्मंस्तु महावेगः पुप्लुवे स महाकपिः।
कपिवातश्च बलवा मेघवातश्च निःसृतः ॥७०॥
सागरं भीमनिर्घोषं कम्पयामासतुर्भृशम्।
विकर्षन्नूर्मिजालानि बृहन्ति लवणाम्भसि ॥७१॥
पुप्लुवे कपिशार्दूलो विकिरन्निव रोदसी।
मेरुमन्दरसङ्काशानुद्गतान्स महार्णवे ॥७२॥

---

* पाठान्तरे—"सागरस्योर्मिजालानामुरसा"।



समुद्रोल्लङ्घन

*अतिक्रामन्महावेगस्तरङ्गान्गणयन्निव ।
तस्य वेगसमुद्धूतं जलं सजलदं तदा ॥ ७३ ॥

एक तो हनुमान जी के वेग से जाने के कारण उत्पन्न वायु और दूसरा मेघों से उत्पन्न हुआ वायु—दोनों ही उस महागर्जन करते हुए समुद्र को क्षुब्ध कर रहे थे। इस प्रकार वे खार समुद्र की लहरों को चीरते हनुमान जी मानों आकाश और भूमि को अलगाते हुये चले जाते थे। इसी प्रकार मेरु और मन्दराचल पर्वत की तरह ऊँची ऊँची समुद्र की लहरों को नाँघते हुए वे ऐसे उड़े चले जाते थे, मानों वे तरङ्गों को गिनते हुए जाते हों। उस समय कपि के तेज़ी के साथ जाने के कारण उड़ा हुआ समुद्र का जल और मेघ—॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

अम्बरस्थं विबभ्राज शारदाभ्रमिवाततम् ।
तिमिनक्रझषाः कूर्मा दृश्यन्ते विवृतास्तदा ॥ ७४ ॥

(दोनों) आकाश में ऐसे शोभायमान जान पड़ते थे जैसे शरत्कालीन मेघ शोभायमान होते हैं। समुद्र में रहने वाले तिमि जाति के मत्स्य, मगर अन्य प्रकार के मत्स्य तथा कछुवे जल के ऊपर देख पड़ते थे अर्थात् जल के ऊपर निकल आए थे ॥ ७४ ॥

वस्त्रापकर्षणेनेव शरीराणि शरीरिणाम् ।
प्लवमानं समीक्ष्याथ भुजङ्गाः सागरालयाः ॥ ७५ ॥
व्योम्नि तं कपिशार्दूलं सुपर्ण इति मेनिरे ।
दशयोजनविस्तीर्णा त्रिंशद्योजनमायता ॥ ७६ ॥

---

* पाठान्तरे—"अत्यक्रामन् ।"

वे जल-जन्तु ऐसे जान पड़ते थे जैसे मनुष्य का शरीर कपड़ा उतार लेने पर देख पड़ता है। समुद्र में रहने वाले सर्पों ने हनुमान जी को आकाश में उड़ते देख जाना कि, गरुड़ जी उड़े हुए चले जाते हैं। दस योजन चौड़ी और तीस योजन लंबी ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

छाया वानरसिंहस्य जले चारुतराऽभवत् ।
श्वेताभ्रघनराजीव वायुपुत्रानुगामिनी ॥ ७७ ॥

तस्य सा शुशुभे छाया वितता लवणाम्भसि ।
शुशुभे स महातेजा महाकायो महाकपिः ॥ ७८ ॥

हनुमान जी के शरीर की छाया समुद्र जल में अत्यन्त शोभायमान जान पड़ती थी। पवननन्दन हनुमान जी के शरीर की अनुगामिनी छाया, समुद्र के जल में पड़ने से सफेद रंग के बड़े बादल की तरह सुन्दर जान पड़ती थी। वे महातेजस्वी और विशालकाय महाकपि बड़े शोभायमान जान पड़ते थे ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

वायुमार्गे निरालम्बे पक्षवानिव पर्वतः ।
येनासौ याति बलवान्वेगेन कपिकुञ्जरः ॥ ७९ ॥

आकाश में निरालम्ब और पंख वाले पर्वत की तरह वे सुशोभित हुए। वानरोत्तम बलवान् हनुमान जी जिस मार्ग से बड़े वेग से गमन कर रहे थे, ॥ ७६ ॥

तेन मार्गेण सहसा द्रोणीकृत इवार्णवः ।
आपाते पक्षिसङ्घानां पक्षिराज इवाबभौ* ॥ ८० ॥

---

* पाठान्तरे—" इव व्रजन् । "

वह समुद्र का मार्ग मानों होना ऐसा मालूम पड़ता था। आकाश में गमन करते हुए हनुमान जी, पक्षियों के समूह में गरुड़ की तरह जान पड़ते थे ॥ ८० ॥

हनूमान्मेघजालानि प्रकर्षन्मारुतो यथा।
प्रविशन्नभ्रजालानि निष्पतंश्च पुनः पुनः ॥ ८१ ॥

हनुमान जी वायु की तरह मेघ समूह को चीरते फाड़ते चले जाते थे। वे बारंबार बादल के भीतर छिप जाते और बादल के बाहिर प्रकट हो जाते थे ॥ ८१ ॥

प्रच्छन्नश्च प्रकाशश्च चन्द्रमा इव लक्ष्यते।
पाण्डुरारुणवर्णानि नीलमाञ्जिष्ठकानि च ॥ ८२ ॥

जब वे बादल के बाहिर आते तब वे घटा से निकले हुए चन्द्रमा की तरह जान पड़ते थे। सफ़ेद, नीले, लाल और मंजीठ रंग के ॥ ८२ ॥

कपिनाकृष्यमाणानि महाभ्राणि चकाशिरे।
प्लवमान तु तं दृष्ट्वा प्लवगं त्वरितं तदा ॥८३ ॥

बड़े बड़े बादल, कपिप्रवर हनुमान जी से खींचे जाकर, ऐसे जान पड़ते थे, मानों वे पवन के द्वारा चालित हो रहे हों। हनुमान जी को बड़ी तेज़ी से समुद्र लाँघते देख ॥ ८३ ॥

ववृषुः पुष्पवर्षाणि देवगन्धर्वचारणाः*।
तताप न हि सूर्यः प्लवन्तं वानरेश्वरम् ॥ ८४ ॥

देवताओं, गन्धर्वों, और चारणों ने उन पर फूलों की वर्षा की। सूर्यनारायण ने भी समुद्र लाँघते समय हनुमान जी को अपनी किरणों से सन्तप्त नहीं किया ॥ ८४ ॥

---

* पाठान्तरे—"दानवाः।"

सिषेवे च तदा वायू रामकार्यार्थसिद्धये ।
ऋषयस्तुष्टुवुश्चैनं प्लवमानं विहायसा ॥ ८५ ॥

और पवनदेव ने भी, श्रीरामचन्द्र जी के कार्य की सिद्धि के लिए, (जाते हुए) हनुमान जी का श्रम हरने के हेतु शीतल हो, मन्द गति से सञ्चार किया । आकाश मार्ग से जाते हुए हनुमान जी की ऋषियों ने स्तुति की ॥ ८५ ॥

[नोट—जो लोग लङ्का में हनुमान जी का जाना समुद्र तैर कर बतलाते हैं उनको इस श्लोक में प्रयुक्त "विहायसा" (आकाशमार्ग से) शब्द पर ध्यान देना चाहिए ।]

जगुश्च देवगन्धर्वाः प्रशंसन्तो महौजसम् ।
नागाश्च तुष्टुवुर्यक्षा रक्षांसि विविधानि च* ॥ ८६ ॥

महाबली हनुमान जी की देवता और गन्धर्व भी प्रशंसा कर रहे थे । विविध यक्ष, राक्षस और नाग सन्तुष्ट हो ॥ ८६ ॥

†प्रेक्ष्याकाशे कपिवरं सहसाविगतक्लमम् ।
तस्मिन्प्लवगशार्दूले प्लवमाने हनूमति ॥ ८७ ॥

आकाश में कपिश्रेष्ठ हनुमान को सहसा श्रमरहित जाते देख, प्रशंसा कर रहे थे । जिस समय प्लवगशार्दूल हनुमान जी समुद्र के पार जाने लगे ॥ ८७ ॥

इक्ष्वाकुकुलमानार्थी चिन्तयामास सागरः ।
साहाय्यं वानरेन्द्रस्य यदि नाहं हनूमतः ॥ ८८ ॥

---

* पाठान्तरे—"विबुधाः खगाः । " † पाठान्तरे—"प्रेक्ष्य सर्वे । "

तब समुद्र इक्ष्वाकुकुलोद्भव श्रीरघुनाथ जी को सम्मान प्रदर्शन करने की कामना से सोचने लगा कि, यदि इस समय मैं वानरश्रेष्ठ हनुमान जी की सहायता न ॥ ८८ ॥

करिष्यामि भविष्यामि [1]सर्ववाच्यो विवक्षताम् ।
अहमिक्ष्वाकुनाथेन सगरेण विवर्धितः ॥ ८९ ॥

करूँगा तो मैं सब प्रकार से निन्द्य समझा जाऊँगा। क्योंकि मेरी उन्नति के करने वाले तो इक्ष्वाकुकुल के नाथ महाराज सगर ही थे ॥ ८९ ॥

इक्ष्वाकुसचिवश्चायं नावसीदितुमर्हति ।
तथा मया विधातव्यं विश्रमेत यथा कपिः ॥ ९० ॥

यह हनुमान जी इक्ष्वाकुकुलोद्भव श्रीरामचन्द्र जी के मंत्री हैं। इनको किसी प्रकार का कष्ट न होना चाहिए। अतः मुझे ऐसा प्रयत्न करना चाहिए, जिससे हनुमान जी को विश्राम मिले ॥ ९० ॥

शेषं च मयि विश्रान्तः सुखेनातिपतिष्यति ।
इति कृत्वा मतिं साध्वीं समुद्रश्छन्नमम्भसि ॥ ९१ ॥

मेरे द्वारा, विश्राम कर यह समुद्र का शेष भाग सुखपूर्वक कूद जायँगे। इस प्रकार अपने मन में साधु सङ्कल्प कर समुद्र जल से ढके हुए ॥ ९१ ॥

[2]हिरण्यनाभं मैनाकमुवाच गिरिसत्तमम् ।
त्वमिहासुरसङ्घानां पातालतलवासिनाम् ॥ ९२ ॥

---

१ सर्ववाच्यः—सर्वप्रकारेण निन्द्यः। (गो) २ हिरण्यनाभ—हिरण्यशृङ्ग। (गो)

और सुवर्ण की चोटी वाले गिरिवर मैनाकपर्वत से बोले—हे मैनाक! पातालवासी असुरों को ॥ ९२ ॥

देवराज्ञा गिरिश्रेष्ठ परिघः सन्निवेशितः ।
त्वमेषां *ज्ञातवीर्याणां पुनरेवोत्पतिष्यताम् ॥ ९३ ॥

रोकने के लिए, इन्द्र ने तुमको यहाँ एक परिघ (अर्गल बेंड़ा) की तरह स्थापित कर रक्खा है; इससे वे पुनः ऊपर न निकल सकेंगे इन्द्र को इन दैत्यों का पराक्रम मालूम है ॥ ९३ ॥

पातालस्याप्रमेयस्य द्वारमावृत्य तिष्ठसि ।
तिर्यगूर्ध्वमधश्चैव शक्तिस्ते शैल वर्धितुम् ॥ ९४ ॥

इसीसे तुम असीम पाताल का द्वार रोके रहते हो । हे मैनाक! तुम सीधे तिरछे, ऊपर नीचे जैसे चाहो वैसे बढ़ सकते हो ॥९४॥

तस्मात्सञ्चोदयामि त्वामुत्तिष्ठ नगसत्तम ।
स एव कपिशार्दूलस्त्वामुपैष्यति †वीर्यवान् ॥ ९५ ॥

अतएव हे पर्वतोत्तम! मैं तुमसे कहता हूँ कि, तुम उठो । देखो ये बलवान हनुमान तुम्हारे ऊपर पहुँचना ही चाहते हैं ॥ ९५ ॥

हनूमान्रामकार्यार्थं भीमकर्मा खमाप्लुतः ।
अस्य साह्यं मया कार्यमिक्ष्वाकुहितवार्तिनः ॥ ९६ ॥

श्रीरामचन्द्र जी का काम करने के लिए, भयङ्कर कर्म करने वाले, हनुमान जी आकाशमार्ग से जा रहे हैं । मैं इक्ष्वाकुवंशियों का हितैषी हूँ । अतएव मेरा यह कर्त्तव्य है कि, मैं इनकी (हनुमान जी की) कुछ सहायता करूँ ॥ ९६ ॥

---

* पाठान्तरे—"जातवीर्याणां ।" † पाठान्तरे—"त्वामुपर्येति ।"

श्रमं च प्लवगेन्द्रस्य समीक्ष्योत्थातुमर्हसि ।
हिरण्यनाभो मैनाको निशम्य लवणाम्भसः ॥ ९७ ॥

तुम हनुमान जी के श्रम की ओर देख कर जल के ऊपर उठो। खारसमुद्र के ये वचन सुन हिरण्यश्रृङ्ग मैनाक ॥ ९७ ॥

उत्पपात जलात्तूर्णं महाद्रुमलतायुतः ।
स सागरजलं भित्त्वा बभूवात्युत्थितस्तदा ॥ ९८ ॥

बड़े बड़े वृक्षों और लताओं से युक्त, जल के ऊपर तुरन्त निकल आया। उस समय वह सागर के जल को चीर कर वैसे ही ऊपर को उठा ॥ ९८ ॥

यथा जलधरं भित्त्वा दीप्तरश्मिर्दिवाकरः ।
स महात्मा मुहूर्तेन पर्वतः सलिलावृतः ॥ ९९ ॥
दर्शयामास श्रृङ्गाणि सागरेण नियोजितः ।
शातकुम्भमयैः श्रृङ्गैः सकिन्नरमहोरगैः ॥ १०० ॥

जैसे मेघ को चीर कर चमकते हुये सूर्यदेव उदय होते हैं उसी प्रकार समुद्रजल से ढके हुए उस महात्मा मैनाक पर्वत ने, समुद्र का कहना मान, एक मुहूर्त में, अपने वे शिखर पानी के ऊपर निकाल दिए जो सुवर्णमय थे और किन्नरों तथा बड़े बड़े उरगों द्वारा सेवित थे ॥ ९९ ॥ १०० ॥

आदित्योदयसङ्काशैरालिखद्भिरिवाम्बरम् ।
तप्तजाम्बूनदैः श्रृङ्गैः पर्वतस्य समुत्थितैः ॥ १०१ ॥

वे शिखर उदयकालीन प्रकाशमान सूर्य की तरह थे और आकाश स्पर्शी थे। उस पर्वत के तप्तसुवर्ण जैसी आभा वाले शिखरों के जल के ऊपर निकलने से ॥ १०१ ॥

आकाशं १शस्त्रसङ्काशमभवत्काञ्चनप्रभम् ।
जातरूपमयैः शृङ्गैर्भ्राजमानैः स्वयम्प्रभैः ॥ १० ॥
आदित्यशतसङ्काशः सोऽभवद्गिरिसत्तमः ।
तमुत्थितमसङ्गेन२ हनूमानग्रतः स्थितम् ॥ १०३ ॥
मध्ये लवणतोयस्य विघ्नोऽयमिति निश्चितः ।
स तमुच्छ्रितमत्यर्थं महावेगो महाकपिः ॥ १०४ ॥

नीला आकाश सुवर्णमय देख पड़ने लगा। उस समय वह अपनी अत्यन्त प्रकाशयुक्त सुनहले शिखरों की प्रभा से शोभायमान हुआ। उस समय सौ सूर्य की तरह उस पर्वतश्रेष्ठ मैनाक की शोभा हुई। विना विलंब किए समुद्र से निकल, आगे खड़े हुए तथा खारी समुद्र के बीच स्थित मैनाक पर्वत को देख, हनुमान जी ने अपने मन में यह निश्चित किया कि, यह एक विघ्न आ उपस्थित हुआ है। तब उस अत्यन्त ऊँचे उठे हुए मैनाक को हनुमान जी ने बड़े ज़ोर से ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

उरसा पातयामास जीमूतमिव मारुतः ।
स *तथा पातितस्तेन कपिना पर्वतोत्तमः ॥ १०५ ॥

अपनी छाती की ठोकर से वैसे ही हटा दिया जैसे पवनदेव, बादलों को हटा देते हैं। जब हनुमान जी ने उस गिरिश्रेष्ठ को हटा दिया या नीचे बैठा दिया ॥ १०५ ॥

बुद्ध्वा तस्य कपेर्वेगं जहर्ष च ननाद च ।
तमाकाशगतं वीरमाकाशे समवस्थितः ॥ १०६ ॥

---

१ शस्त्रसङ्काशं—नीलमित्यर्थः। (गो०) २ असंगेन—विलंबराहित्येन । (शि०) * पाठान्तरे—"तदा।"

प्रीतो हृष्टमना वाक्यमब्रवीत्पर्वतः कपिम् ।
मानुषं धारयन्रूपमात्मनः शिखरे स्थितः ॥ १०७ ॥

तब मैनाक, हनुमान जी के वेग का अनुभव कर, प्रसन्न हुआ और गर्जा। मैनाक पर्वत फिर आकाश की ओर उठा और आकाशस्थित वीर हनुमान जी से, प्रसन्न हो बड़ी प्रीति के साथ मनुष्य का रूप धारण कर तथा अपने शिखर पर खड़े हो कर बोला ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

दुष्करं कृतवान्कर्म त्वमिदं वानरोत्तम ।
निपत्य मम शृङ्गेषु विश्रमस्व यथासुखम् ॥ १०८ ॥

हे वानरोत्तम ! यह तुमने बड़ा ही दुष्कर काम किया है अतः तुम मेरे शृङ्ग पर कुछ देर ठहर कर विश्राम कर लो। तदनन्तर तुम सुखपूर्वक आगे चले जाना ॥ १०८ ॥

राघवस्य कुले जातैरुदधिः परिवर्धितः ।
स त्वां रामहिते युक्तं प्रत्यर्चयति सागरः ॥ १०९ ॥

इस समुद्र की वृद्धि श्रीरामचन्द्र जी के पूर्वपुरुषों द्वारा हुई है और तुम श्रीरामचन्द्र जी के हितसाधन में तत्पर हो, अतएव यह समुद्र आपका आतिथ्यसत्कार करना चाहता है १०९ ॥

कृते च प्रतिकर्तव्यमेष धर्मः सनातनः ।
सोऽयं तत्प्रतिकारार्थी त्वत्तः सम्मानमर्हति ॥ ११० ॥

क्योंकि उपकार करने वाले का उपकार करना यह सनातन धर्म है। सो यह श्रीरामचन्द्र जी का प्रत्युपकार करना चाहता है। अतः तुमको समुद्र के सम्मान की रक्षा करनी चाहिए अथवा, समुद्र की बात मान लेनी चाहिए ॥ ११० ॥

त्वन्निमित्तमनेनाहं बहुमानात्प्रचोदितः ।
योजनानां शतं चापि कपिरेष खमाप्लुतः ॥ १११ ॥

तुम्हारा सत्कार करने के लिए समुद्र ने मेरा बड़ा सम्मान कर, मुझे यहाँ भेजा है। उन्होंने मुझसे कहा है कि, देखो यह कपि सौ योजन जाने के लिए आकाश में उड़े हैं ॥ १११ ॥

तव सानुषु विश्रान्तः शेषं प्रक्रमतामिति ।
तिष्ठ त्वं हरिशार्दूल मयि विश्रम्य गम्यताम् ॥ ११२ ॥

अतः हनुमान जी तुम्हारे शिखर पर विश्राम कर शेष मार्ग को पूरा करें। सो हे कपिशार्दूल ! तुम यहाँ ठहर कर विश्राम करो। तदनन्तर आगे चले जाना ॥ ११२ ॥

तदिदं गन्धवत्स्वादु कन्दमूलफलं बहु ।
तदास्वाद्य हरिश्रेष्ठ विश्रम्य श्वो गमिष्यसि ॥ ११३ ॥

हे कपिश्रेष्ठ ! मेरे स्वादिष्ट और सुगन्ध युक्त बहुत से कन्दमूलफलों को खा कर विश्राम करो। कल सबेरे तुम चले जाना ॥ ११३ ॥

अस्माकमपि सम्बन्धः कपिमुख्य त्वयास्ति वै ।
प्रख्यातस्त्रिषु लोकेषु महागुणपरिग्रहः ॥ ११४ ॥

हे कपियों में प्रधान ! मेरा भी तुम्हारे साथ कुछ सम्बन्ध है। और तुम तीनों लोकों में महागुण ग्राही प्रसिद्ध हो ॥ ११४ ॥

वेगवन्तः प्लवन्तो ये प्लवगा मारुतात्मज ।
तेषां मुख्यतमं मन्ये त्वामहं कपिकुञ्जर ॥ ११५ ॥

हे पवननन्दन ! इस लोक में जितने कूदने वाले वेगवान् वानर हैं, हे कपीश्वर ! उन सब में, मैं तुमको मुख्य समझता हूँ ॥ ११५ ॥

अतिथिः किल पूजार्हः प्राकृतोऽपि विजानता ।
धर्मं जिज्ञासमानेन किं * पुनर्यादृशो भवान् ॥ ११६ ॥

धर्मजिज्ञासुओं के लिए तो एक साधारण अतिथि भी पूज्य है, फिर आपके समान गुणी अतिथि का सत्कार करना तो मुझे सर्वथा उचित ही है ॥ ११६ ॥

त्वं हि देववरिष्ठस्य मारुतस्य महात्मनः ।
पुत्रस्तयस्यैव वेगेन सदृशः कपिकुञ्जर ॥ ११७ ॥

फिर तुम देवताओं में श्रेष्ठ महात्मा पवनदेव के पुत्र हो । हे कपिकुञ्जर ! वेग में भी तुम अपने पिता के समान ही हो ॥११७॥

पूजिते त्वयि धर्मज्ञ पूजां प्राप्नोति मारुतः ॥
तस्मात्त्वं पूजनीयो मे शृणु चाप्यत्र कारणम् ॥ ११८ ॥

हे धर्मज्ञ ! तुम्हारी पूजा करने से पवनदेव का पूजन होगा । अतः तुम मेरे पूज्य हो । इसके अतिरिक्त और भी एक कारण तुम्हारे पूज्य होने का है । उसे भी तुम सुन लो ॥ ११८ ॥

पूर्वं कृतयुगे तात पर्वताः पक्षिणोऽभवन् ।
†तेऽभिजग्मुर्दिशः सर्वा गरुडानिलवेगिनः ॥ ११९ ॥

---

* पाठान्तरे—पुनस्त्वादृशो महान् । ” † पाठान्तरे—“ ते हि । ’

हे तात ! प्राचीन काल में सत्ययुग में सब पहाड़ों के पंख हुआ करते थे। वे पंखधारी पहाड़ गरुड़ जी की तरह बड़े वेग से चारों ओर उड़ा करते थे ॥ ११९ ॥

ततस्तेषु प्रयातेषु देवसङ्घाः सहर्षिभिः ।
भूतानि च भयं जग्मुस्तेषां पतनशङ्कया ॥ १२० ॥

पर्वतों को उड़ते देख, देवता, ऋषि तथा अन्य समस्त प्राणी उनके अपने ऊपर गिरने की शङ्का से डर गए थे ॥ १२० ॥

ततः क्रुद्धः सहस्राक्षः पर्वतानां शतक्रतुः ।
पक्षांश्चिच्छेद वज्रेण तत्र तत्र सहस्रशः ॥ १२१ ॥

तब हज़ार नेत्रों वाले इन्द्र ने कुपित हो, अपने वज्र से इधर उधर घूमने वाले हज़ारों पहाड़ों के पंख काट डाले ॥ १२१ ॥

स मामुपगतः क्रुद्धो वज्रमुद्यम्य देवराट् ।
ततोऽहं सहसाक्षिप्तः श्वसनेन महात्मना ॥ १२२ ॥

जब देवराज इन्द्र वज्र उठा कर मेरी ओर आए, तब महात्मा पवनदेव ने मुझको सहसा उठा कर फेंक दिया ॥ १२२ ॥

अस्मिँल्लवणतोये च प्रक्षिप्तः प्लवगोत्तम ।
गुप्तपक्षः समग्रश्च तव पित्राऽभिरक्षितः ॥ १२३ ॥

हे वानरोत्तम ! मुझे उन्होंने इस खारी समुद्र में उठा कर फेंक दिया। इस प्रकार तुम्हारे पिता पवनदेव ने मेरे समस्त पंखों की रक्षा की ॥ १२३ ॥

ततोऽहं मानयामि त्वां मान्यो हि मम मारुतः ।
त्वया मे ह्येष सम्बन्धः कपिमुख्य महागुणः ॥ १२४ ॥

हे पवननन्दन ! इसो से तुम मेरे साथ हो और मैं तुम्हें तो मेरे पूज्य पवनदेव के पुत्र हो दूसरे कपियों में मुख्य और बड़े गुणवान होने के कारण मेरे मान्य हो, अतः मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ ॥ १२४ ॥

*अस्मिन्नेवंविधे कार्ये सागरस्य ममैव च ।
प्रीतिं प्रीतमनाः कर्तुं त्वमर्हसि महाकपे ॥ १२५ ॥

हे महाकपे ! तुम्हारे ऐसा करने पर मेरी और सागर की प्रीति और भी बढ़ेगी अथवा तुम्हारे ऐसा करने पर मैं और समुद्र बहुत प्रसन्न होंगे, अतः हे महाकपे ! तुम मेरा आतिथ्य ग्रहण कर मुझे प्रसन्न करो ॥ १२५ ॥

श्रमं †मोचय पूजां च गृहाण कपिसत्तम ।
प्रीतिं च बहुमन्यस्व प्रीतोऽस्मि तव दर्शनात् ॥ १२६ ॥

हे कपिसत्तम ! तुम अपना श्रम दूर कर, मेरा आतिथ्य ग्रहण कर मुझे प्रसन्न करो । तुम्हें देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है ॥ १२६ ॥

एवमुक्तः कपिश्रेष्ठस्तं नगोत्तममब्रवीत् ।
प्रीतोऽस्मि कृतमातिथ्यं मन्युरेषोऽपनीयताम् ॥ १२७ ॥

जब मैनाक ने इस प्रकार कहा तब कपिश्रेष्ठ हनुमान जी ने गिरिश्रेष्ठ मैनाक से कहा—मैं आपके आतिथ्य से प्रसन्न हूँ । आपने मेरा सत्कार किया, अब आप अपने मन में किसी प्रकार का खेद न करें ॥ १२७ ॥

---

*पाठान्तरे—"तस्मिन् ।" †पाठान्तरे—"मोक्षय"

त्वरते कार्यकालो मे अहश्चाप्यतिवर्तते ।
प्रतिज्ञा च मया दत्ता न स्थातव्यमिहान्तरा ॥१२८॥

एक तो मुझे कार्य करने की त्वरा है । दूसरे समय भी बहुत हो चुका है । तीसरे मैंने वानरों के सामने यह प्रतिज्ञा भी की है कि, मैं बीच में कहीं न ठहरूँगा ॥ १२८ ॥

इत्युक्त्वा पाणिना शैलमालभ्य हरिपुङ्गवः ।
जगामाकाशमाविश्य वीर्यवान्प्रहसन्निव ॥ १२९ ॥

यह कह कर कपिश्रेष्ठ हनुमान जी ने मैनाक को हाथ से छुआ । तदनन्तर पराक्रमी हनुमान हँसते हुए आकाश में उड़ चले ॥ १२९ ॥

स पर्वतसमुद्राभ्यां बहुमानादवेक्षितः ।
पूजितश्चोपपन्नाभिराशीर्भिरनिलात्मजः ॥ १३० ॥

तब तो समुद्र और मैनाक पर्वत ने हनुमान जी को बड़ी प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा, उनको आशीर्वाद दिया और उनका अभिनन्दन किया ॥ १३० ॥

अथोर्ध्वं दूरमुत्पत्य हित्वा शैलमहार्णवौ ।
पितुः पन्थानमास्थाय जगाम विमलेऽम्बरे ॥ १३१ ॥

तदनन्तर हनुमान जी, मैनाक तथा समुद्र को छोड़, बहुत ऊँचे विमल आकाश में जा, पवन के मार्ग से उड़ कर जाने लगे ॥ १३१ ॥

*ततश्चोर्ध्वगतिं प्राप्य गिरिं तमवलोकयन् ।
वायुसूनुर्निरालम्बे जगाम विमलेऽम्बरे ॥ १३२ ॥

---

* पाठान्तरे " भूयश्चोर्ध्वगतिं । "

हनुमान जी ने आकाश में पहुँच मैनाक की ओर देखा और फिर वे पवननन्दन निरालम्ब (विना सहारे) विमल आकाश में उड़ चले ॥ १३२ ॥

[नोट—हनुमान जी का आकाश मार्ग से जानापूर्व श्लोकों से स्पष्ट है ।]

*द्वितीयं हनुमत्कर्म दृष्ट्वा तत्र सुदुष्करम् ।
प्रशशंसुः सुराः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ १३३ ॥

हनुमान जी का यह दूसरा दुष्कर कार्य देख, सब देवता, सिद्ध और महर्षि गण उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ १३३ ॥

देवताश्चाभवन्हृष्टास्तत्रस्थास्तस्य कर्मणा ।
काञ्चनस्य सुनाभस्य सहस्राक्षश्च वासवः १३४ ॥

उस समय वहाँ जो देवता उपस्थित थे वे तथा सहस्र नेत्र इन्द्र सुवर्णश्रृङ्ग वाले मैनाक के इस कार्य से उनके ऊपर बहुत प्रसन्न हुए ॥ १३४ ॥

†उवाच वचनं धीमान्परितोषात्सगद्गदम् ।
सुनाभं पर्वतश्रेष्ठं स्वयमेव शचीपतिः ॥ १३५ ॥

शचीपति देवराज इन्द्र स्वयं सुवर्ण श्रृङ्गवाले पर्वतश्रेष्ठ मैनाक से प्रसन्न हो, गद्गद वाणी से बोले ॥ १३५ ॥

हिरण्यनाभ शैलेन्द्र परितुष्टोऽस्मि ते भृशम् ।
अभयं ते प्रयच्छामि तिष्ठ सौम्य यथासुखम् ॥ १३६ ॥

हे सुवर्ण शिखरों वाले शैलेन्द्र! मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हुआ । मैं तुझको अभयवर देता हूँ । हे सौम्य !तू अब जहाँ चाहे वहाँ सुख- पूर्वक रह सकता है । ३६ ॥

---

* पाठान्तरे—" तद्द्वितीयं हनुमतो दृष्ट्वा कर्म सुदुष्करम् । "

† पाठान्तरे—"श्रीमान् । "

साह्यं कृतं त्वया सौम्य विक्रान्तस्य हनूमतः ।
क्रमतो योजनशतं निर्भयस्य भये सति ॥ १३७ ॥

हे सौम्य ! भय रहते पराक्रमी हनुमान जी को निर्भीक हो सौ योजन समुद्र के पार जाते देख तथा उनको बीच में विश्राम करने का अवसर दे, तूने उसकी बड़ी सहायता की है ॥ १३७ ॥

रामस्यैष हि दौत्येन याति दाशरथेर्हरिः ।
सत्क्रियां कुर्वता तस्य तोषितोऽस्मि भृशं त्वया ॥ १३८ ॥

ये हनुमान जी, श्रीरामचन्द्र जी के दूत बन कर जा रहे हैं। इनका तूने जो सत्कार किया, इससे मैं तेरे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ ॥ १३८ ॥

ततः प्रहर्षमगमद्विपुलं पर्वतोत्तमः ।
देवतानां पतिं दृष्ट्वा परितुष्टं शतक्रतुम् ॥ १३९ ॥

तब तो गिरिश्रेष्ठ मैनाक, देवराज इन्द्र का अपने ऊपर प्रसन्न देख, बहुत प्रसन्न हुआ ॥ १३९ ॥

स वै दत्तवरः शैलो बभूवावस्थितस्तदा ।
हनूमांश्च मुहूर्तेन व्यतिचक्राम सागरम् ॥ १४० ॥

इन्द्र से अभयदान प्राप्त कर, मैनाक सुस्थिर हुआ। उधर हनुमान जी भी मैनाक अधिकृत समुद्र के भाग को मुहूर्त मात्र में पार कर गए ॥ १४० ॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
अब्रुवन्सूर्यसङ्काशां सुरसां नागमातरम् ॥ १४१ ॥

तब तो देवताओं, गन्धर्वों, सिद्धों और महर्षियों ने सूर्य के समान प्रकाश वाली नागों की माता सुरसा से कहा ॥१४१॥

अयं वातात्मजः श्रीमान्प्लवते सागरोपरि ।
हनूमान्नाम तस्य त्वं मुहूर्तं विघ्नमाचर ॥ १४२ ॥

पवननन्दन हनुमान जी समुद्र के पार जाने के लिए आकाश मार्ग से चले जा रहे हैं। अतः तू उनके गमन में एक मुहूर्त्त के लिए विघ्न डालो ॥ १४२ ॥

राक्षसं रूपमास्थाय सुघोरं पर्वतोपमम् ।
दंष्ट्राकरालं पिङ्गाक्षं वक्त्रं कृत्वा नभःसमम् ॥ १४३ ॥

अतः तू पर्वत के समान बड़ा और राक्षस के समान अति भयङ्कर रूप धर कर, पीले नेत्रों सहित भयङ्कर दाँतों से युक्त अपना मुख बना कर इतनी बढ़ कि आकाश छू ले ॥ १४३ ॥

बलमिच्छामहे ज्ञातुं भूयश्चास्य पराक्रमम् ।
त्वां विजेष्यत्युपायेन विषादं वा गमिष्यति ॥ १४४ ॥

क्योंकि हम सब हनुमान जी के बल और पराक्रम की परीक्षा लेना चाहते हैं। या तो हनुमान जी तुझको किसी उपाय से जीत लेंगे अथवा दुःखी हो कर चले जायँगे ॥ १४४ ॥

एवमुक्ता तु सा देवी दैवतैरभिसत्कृता ।
समुद्रमध्ये सुरसा बिभ्रती राक्षसं वपुः ॥ १४५ ॥

जब देवताओं ने सुरसा से आदर पूर्वक इस प्रकार कहा, तब सुरसा, राक्षसी का रूप धर, समुद्र के बीच जा खड़ी हुई ॥१४५॥

विकृतं च विरूपं च सर्वस्य च भयावहम् ।
प्लवमानं हनूमन्तमावृत्येदमुवाच ह ॥ १४६ ॥

उस समय का सुरसा का रूप ऐसा विकट और भयङ्कर था कि, जिसे देख सब को डर लगता था। सुरसा, समुद्र के पार जाते हुए हनुमान जी का रास्ता छेंक कर, उनसे कहने लगी ॥ १४६ ॥

मम भक्ष्यः प्रदिष्टस्त्वमीश्वरैर्वानरर्षभ ।
अहं त्वां भक्षयिष्यामि प्रविशेदं ममाननम् ॥ १४७ ॥

हे वानरश्रेष्ठ! ईश्वर ने तुझको मेरा भक्ष्य बनाया है। इसलिए मैं तुझको खा जाऊँगी। आ तू अब मेरे मुख में घुस ॥१४७॥

एवमुक्तः सुरसया प्राञ्जलिर्वानरर्षभः ।
प्रहृष्टवदनः *श्रीमान्सुरसां वाक्यमब्रवीत् ॥ १४८ ॥

सुरसा के इस प्रकार कहने पर हनुमान जी ने हाथ जोड़ और प्रसन्न हो कर सुरसा से कहा ॥ १४८ ॥

रामो दाशरथिः श्रीमान्प्रविष्टो दण्डकावनम् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या चापि भार्यया ॥ १४९ ॥

दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र जी अपने भाई लक्ष्मण और भार्या सीता के साथ दण्डकारण्य में आए ॥ १४९ ॥

[1]अन्यकार्यविषक्तस्य बद्धवैरस्य राक्षसैः ।
तस्य सीता हृता भार्या रावणेन तपस्विनी ॥ १५० ॥

---

१ अन्यकार्यविषक्तस्य—मारीचमृगग्रहण व्यासक्तस्य । (गो०)
* पाठान्तरे—"श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ।" † पाठान्तरे—"दाशरथिर्नाम ।"

और कारणान्तर से उनसे और राक्षसों से परस्पर शत्रुता हो गई। इससे रावण उनकी तपस्विनी भार्या सीता को हर कर ले गया ॥ १५० ॥

तस्याः सकाशं दूतोऽहं गमिष्ये रामशासनात् ।
कर्तुमर्हसि रामस्य साह्यं विषयवासिनी ॥ १५१ ॥

श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा से मैं सीता जी के पास दूत बन कर जा रहा हूँ। तू श्रीरामचन्द्र जी के राज्य में बसने वाली है, अतः तुझे तो मेरी सहायता करनी चाहिए ॥ १५१ ॥

अथवा मैथिलीं दृष्ट्वा रामं चाक्लिष्टकारिणम् ।
आगमिष्यामि ते वक्त्रं सत्यं प्रतिशृणोमि ते ॥ १५२ ॥

अथवा जब मैं सीता को देख, अक्लिष्टकर्मा श्रीरामचन्द्र जी को उनका समाचार दे आऊँ, तब मैं तेरे मुख में आकर प्रवेश करूँगा। मैं यह तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ ॥ १५२ ॥

एवमुक्ता हनुमता सुरसा कामरूपिणी ।
तं प्रयान्तं समुद्वीक्ष्य सुरसा वाक्यमब्रवीत् ॥ १५३ ॥

जब हनुमान जी ने इस प्रकार उससे कहा, तब वह कामरूपिणी सुरसा हनुमान जी को जाते देख, उनसे बोली ॥ १५३ ॥

बलं जिज्ञासमाना वै नागमाता हनूमतः ।
हनूमान्नातिवर्तेन्मां कश्चिदेष वरो मम ॥ १५४ ॥

हनुमान जी के बल की परीक्षा लेती हुई नागमाता बोली कि, हे हनुमान ! मुझको ब्रह्मा जी ने यह वर दे रखा है कि, मेरे आगे से कोई जीता जागता नहीं जा सकता ॥ १५४ ॥

प्रविश्य वदनं मेऽद्य गन्तव्यं वानरोत्तम ।
वर एष पुरा दत्तो मम धात्रेति सत्वरा ॥ १५५ ॥

हे वानरोत्तम ! पहिले तुम मेरे मुख में प्रवेश करो, फिर तुरंत चले जाना। विधाता ने मुझे पूर्वकाल में यही वरदान दिया था ॥ १५५ ॥

व्यादाय वक्त्रं विपुलं स्थिता सा मारुतेः पुरः ।
एवमुक्तः सुरसया क्रुद्धो वानरपुङ्गवः ॥ १५६ ॥

यह कह कर नागमाता सुरसा, अपना बड़ा भारी मुख फैला, हनुमान जी के सामने खड़ी हो गई। सुरसा के ऐसे वचन सुन कपिश्रेष्ठ हनुमान जी क्रुद्ध हुए ॥ १५६ ॥

अब्रवीत्कुरु वै वक्त्रं येन मां विषहिष्यसे ।
इत्युक्त्वा सुरसां क्रुद्धा दशयोजनमायता* ॥ १५७ ॥

हनुमान जी ने उससे कहा कि, तू अपना मुख उतना बड़ा फैला जिसमें कि मैं समा सकूँ। यह सुन सुरसा ने क्रुद्ध हो अपना मुख दस योजन फैलाया ॥ १५७ ॥

दशयोजनविस्तारो बभूव हनुमांस्तदा ।
तं दृष्ट्वा मेघसङ्काशं दशयोजनमायतम् ॥ १५८ ॥

तब हनुमान जी ने भी अपना शरीर दस योजन का कर लिया। तब हनुमान जी के शरीर को मेघ के समान दस योजन लंबा देख ॥ १५८ ॥

---

* पाठान्तरे—"इत्युक्त्वा सुरसां क्रुद्धो दशयोजनमायताम् ।

चकार *सुरसाप्यास्यं विंशद्योजनमायतम् ।
ततः परं हनूमांस्तु त्रिंशद्योजनमायतः ॥ १५९ ॥

सुरसा ने अपना मुख बीस योजन का कर लिया तब हनुमान जी ने अपना शरीर तीस योजन लंबा किया ॥१५९॥

चकार सुरसा वक्त्रं चत्वारिंशत्तथायतम् ।
बभूव हनूमान्वीरः पञ्चाशद्योजनोच्छ्रितः ॥ १६० ॥

तब सुरसा ने अपना मुख चालीस योजन चौड़ा किया इस पर हनुमान जी ने अपना शरीर पचास योजन ऊँचा कर लिया ॥ १६० ॥

चकार सुरसा वक्त्रं षष्टियोजनमायतम् ।
तथैव हनुमान्वीरः सप्ततीयोजनोच्छ्रितः ॥ १६१ ॥

इस पर जब सुरसा ने अपना मुख साठ योजन चौड़ा किया, तब हनुमान जी सत्तर योजन लंबे हो गए ॥ १६१ ॥

चकार सुरसा वक्त्रमशीतीयोजनायतम् ।
हनूमानचलप्रख्यो नवतीयोजनोच्छ्रितः ॥ १६२ ॥

इस पर जब सुरसा ने अपना मुख अस्सी योजन का किया तब हनुमान जी बृहदाकार पर्वत की तरह, नब्बे योजन लम्बे हो गए ॥ १६२ ॥

चकार सुरसा वक्त्रं शतयोजनमायतम् ।
तद्दृष्ट्वा व्यादितं †चास्यं वायुपुत्रः सुबुद्धिमान् ॥१६३॥

---

* पाठान्तरे—"सुरसा चाप्यं।" † पाठान्तरे—"त्वास्य।"

दीर्घजिह्वं सुरसया सुघोरं नरकोपमम् ।
स संक्षिप्यात्मनः कायं जीमूत इव मारुतिः ॥ १६४ ॥
तन्मुहूर्ते हनुमान्बभूवाङ्गुष्ठमात्रकः ।
सोऽभिपत्याशु तद्वक्त्रं निष्पत्य च महाबलः* ॥१६५॥

इस पर जब सुरसा ने अपना मुख सौ योजन फैलाया ; तब बुद्धिमान् वायुनन्दन हनुमान जी ने उसके उस सौ योजन फैले हुए बड़ी जिह्वा से युक्त, भयङ्कर और नरक जैसे मुख को देख, मेघ जैसे अपने विशाल शरीर को समेटा और वे तत्क्षण अंगूठे के बराबर छोटे शरीर वाले हो गए। तदनन्तर वे महाबली उसके मुख में प्रवेश कर, तुरन्त उसके बाहिर निकल आए ॥ १६३ ॥ १६४ ॥ ॥ १६५ ॥

अन्तरिक्षे स्थितिः श्रीमान्प्रहसन्निदमब्रवीत् ।
प्रविष्टोऽस्मि हि ते वक्त्रं दाक्षायणि नमोस्तु ते ॥१६६॥

और आकाश में खड़े हो, हँसते हुए यह बोले—हे दाक्षायणि ! तुझको नमस्कार है । मैं तेरे मुख में प्रवेश कर चुका ॥ १६६ ॥

गमिष्ये यत्र वैदेही सत्यश्चास्तु वरस्तव ।
तं दृष्ट्वा वदनान्मुक्तं चन्द्रं राहुमुखादिव ॥ १६७ ॥

तेरा वरदान सत्य हो गया । अब मैं वहाँ जाता हूँ, जहाँ सीता जी हैं । राहु के मुख से चन्द्रमा के समान, हनुमान जी को अपने मुख से निकला हुआ देख, ॥ १६७ ॥

अब्रवीत्सुरसा देवी स्वेन रूपेण वानरम् ।
अर्थसिद्ध्यै हरिश्रेष्ठ गच्छ सौम्य यथासुखम् ॥ १६८ ॥

---

* पाठान्तरे—"महार्णवः ।"

सुरसा अपना रूप धारण कर हनुमान जी से बोली—हे कपि-श्रेष्ठ! तुम अपना कार्य सिद्ध करने के लिए जहाँ चाहो वहाँ जाओ ॥ १६८ ॥

समानय त्वं वैदेहीं राघवेण महात्मना।
तत्तृतीयं हनुमतो दृष्ट्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ १६९ ॥

और महात्मा श्रीरामचन्द्र जी से सीता को लाकर मिला दो। हनुमान जी का यह तीसरा दुष्कर कर्म देख, ॥ १६९ ॥

साधु साध्विति भूतानि प्रशशंसुस्तदा हरिम्।
स सागरमनाधृष्यमभ्येत्य वरुणालयम् ॥ १७० ॥
जगामाकाशमाविश्य वेगेन गरुडोपमः।
सेविते वारिधाराभिः पन्नगैश्च निषेविते ॥ १७१ ॥

"साधु साधु" कह कर सब लोग हनुमान जी की प्रशंसा करने लगे। तदनन्तर हनुमान जी वरुणालय समुद्र के ऊपर, आकाशमार्ग से गरुड़ की तरह बड़े वेग से जाने लगे। वह आकाशमार्ग बादलों से युक्त और पक्षियों से सेवित था ॥ १७० ॥ ॥ १७१ ॥

चरिते [1]कैशिकाचार्यैरैरावतनिषेविते।
सिंहकुञ्जरशार्दूलपतगोरगवाहनैः ॥ १७२ ॥
विमानैः सम्पतद्भिश्च विमलैः समलङ्कृते।
वज्राशनिसमाघातैः पावकैरुपशोभिते ॥ १७३ ॥

---

१ कैशिकाचार्यैः—कैशिकेरागविशेषे आचार्यैः विद्याधरविशेषैरित्यर्थः। (गो०)

तुम्बुरु आदि विद्याधरों से सेवित, ऐरावत सहित, सिंह, गजेन्द्र, शार्दूल, पक्षी और सर्प आदि वाहनों से युक्त निर्मल विमानों से भूषित; वज्र के तुल्य स्पर्श वाले, अग्नि तुल्य ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

कृतपुण्यैर्महाभागैः स्वर्गजिद्भिरलङ्कृते ।
वहता हव्यमत्यर्थं सेविते [1]चित्रभानुना ॥ १७४ ॥
ग्रहनक्षत्रचन्द्रार्कतारागणविभूषिते ।
महर्षिगणगन्धर्वनागयक्षसमाकुले ॥ १७५ ॥
विविक्ते विमले विश्वे विश्वावसुनिषेविते ।
देवराजगजाक्रान्ते चन्द्रसूर्यपथे शिवे ॥ १७६ ॥

पुण्यात्मा महाभाग स्वर्ग को जीतने वालों से शोभित, सदा ही हव्य को लिये हुए अग्नि, ग्रह, सूर्य और तारागण से सेवित; महर्षि, गंधर्व, नाग और यक्षों से पूर्ण, एकान्त, विमल, विशाल और विश्वावसु गन्धर्व से सेवित, इन्द्र के ऐरावत गज से रोंदा हुआ; चन्द्रमा और सूर्य का सुन्दर मार्ग ॥ १७४ ॥ १७५ ॥ १७६ ॥

विताने जीवलोकस्य विमले ब्रह्मनिर्मिते ।
बहुशः सेविते वीरैर्विद्याधरगणैर्वरैः ॥ १७७ ॥

जीवलोक का चँदोवा रूपी इस स्वच्छ मार्ग को ब्रह्मा जी ने बनाया है। इस मार्ग का सेवन अनेक वीर और श्रेष्ठ विद्याधर गण किया करते हैं॥ १७७ ॥

जगाम वायुमार्गे च गरुत्मानिव मारुतिः ।
हनूमान्मेघजालानि प्रकर्षन्मारुतो यथा ॥ १७८ ॥

---

१ चित्रभानुना—वह्निना । (गो०)

ऐसे वायुमार्ग से पवनकुमार हनुमान जी गरुड़ जी की तरह बड़ी तेज़ी के साथ, उड़े चले जाते थे। जाते हुए वे मेघों को चीरते जाते थे ॥ १७८ ॥

कालागुरुसवर्णानि रक्तपीतसितानि च।
कपिनाऽऽकृष्यमाणानि महाभ्राणि चकाशिरे ॥ १७९ ॥

काले, अगर की तरह लाल, पीले और सफेद रंग के बड़े बड़े बादल, कपिश्रेष्ठ हनुमान जी द्वारा खींचे जाकर, अत्यन्त शोभा को प्राप्त होते थे ॥ १७९ ॥

प्रविशन्नभ्रजालानि निष्पतंश्च पुनः पुनः।
प्रावृषीन्दुरिवाभाति निष्पतन्प्रविशंस्तदा ॥ १८० ॥
प्रदृश्यमानः सर्वत्र हनुमान्मारुतात्मजः।
भेजेऽम्बरं निरालम्बं लम्बपक्ष इवाद्रिराट् ॥ १८१ ॥

हनुमान जी कभी तो मेघों के पीछे छिप जाते और कभी बाहिर निकल आते थे। उनके बारंबार मेघों में छिपने और निकलने से वे वर्षा कालीन चन्द्रमा की तरह सर्वत्र सब को देख पड़ते थे। हनुमान जी पंख लटकाये पर्वतश्रेष्ठ की तरह निराधार, मार्ग में देख पड़ते थे ॥ १८० ॥ १८१ ॥

प्लवमानं तु तं दृष्ट्वा सिंहिका नाम राक्षसी।
मनसा चिन्तयामास प्रवृद्धा कामरूपिणी ॥ १८२ ॥

इनको आकाश-मार्ग से जाते देख, सिंहिका नाम राक्षसी, जो समुद्र में रहती थी और जो बहुत बूढ़ी हो चुकी थी तथा जो इच्छानुसार तरह तरह के रूप धारण कर सकती थी, अपने मन में विचारने लगी कि, ॥ १८२ ॥

अद्य दीर्घस्य कालस्य भविष्याम्यहमाशिता ।
इदं हि मे महत्सत्त्वं चिरस्य वशमागतम् ॥ १८३ ॥

आहा आज मुझे बहुत दिनों बाद भोजन मिलेगा। क्योंकि आज यह विशालकाय जीव बहुत दिनों बाद मेरे हाथ लगा है ॥ १८३ ॥

इति संचिन्त्य मनसा छायामस्य समाक्षिपत् ।
छायायां संगृहीतायां* चिन्तयामास वानरः ॥ १८४ ॥

इस प्रकार विचार, सिंहिका ने हनुमान जी की परछाईं पकड़ी। परछाईं पकड़ जाने पर हनुमान जी विचारने लगे ॥१८४॥

समाक्षिप्तोऽस्मि सहसा पङ्गूकृतपराक्रमः ।
प्रतिलोमेन वातेन महानौरिव सागरे ॥ १८५ ॥

अचानक पकड़ जाने से मेरा पराक्रम शिथिल हो गया। इस समय मेरी दशा तो समुद्र में पड़ी और प्रतिकूल वायु से रुकी हुई बड़ी नाव की तरह हो रही है ॥ १८५ ॥

तिर्यगूर्ध्वमधश्चैव वीक्षमाणः समन्ततः† ।
ददर्श स महासत्त्वमुत्थितं लवणाम्भसि ॥ १८६ ॥

इस प्रकार सोच, हनुमान जी अगल बगल, ऊपर नीचे देखने लगे। तब उन्होंने देखा कि, खारी समुद्र में कोई एक बड़ा भारी जन्तु उतरा रहा है ॥ १८६ ॥

---

* पाठान्तरे—"गृह्यमाणायां।" † पाठान्तरे—"ततः कपिः।"

तां दृष्ट्वा चिन्तयामास मारुतिर्विकृताननाम् ।
कपिराज्ञा यदाख्यातं सत्त्वमद्भुतदर्शनम् ॥ १८७ ॥
छायाग्राहि महावीर्यं तदिदं नात्र संशयः ।
स तां बुद्ध्वाऽर्थतत्त्वेन सिंहिकां मतिमान्कपिः ॥१८८॥
व्यवर्धत महाकायः प्रावृषीव बलाहकः ।
तस्य सा कायमुद्वीक्ष्य वर्धमानं महाकपेः ॥ १८९ ॥

उस बिकराल मुख वाले जन्तु को देख जब हनुमानजी ने अपने मन में विचार किया, तब इन्हें कपिराज सुग्रीव की बात याद पड़ी और उन्होंने निश्चय किया कि, अद्भुत सूरत वाला और छाया पकड़ने वाला महाबली जीव निस्सन्देह यही है। इस प्रकार उसके कर्म को देख, बुद्धिमान् हनुमान जी उस सिंहिका को पहचान कर वर्षाकाल के बादल की तरह बढ़े। जब सिंहिका ने हनुमान के शरीर को बढ़ता हुआ देखा ॥ १८७ ॥ १८८ ॥ १८९ ॥

वक्त्रं प्रसारयामास पातालतलसन्निभम् ।
घनराजीव गर्जन्ती वानरं समभिद्रवत् ॥ १९० ॥

तब उसने पाताल की तरह अपना मुख फैलाया और वह बादल की तरह गर्जती हुई हनुमान जी की ओर दौड़ी ॥ १९० ॥

स ददर्श ततस्तस्या विवृतं सुमहन्मुखम् ।
[1]कायमात्रं च मेधावी मर्माणि च महाकपिः ॥ १९१ ॥

तब हनुमान जी ने उसके भयङ्कर और विशाल मुख को और उसके शरीर की लंबाई चौड़ाई तथा शरीर के मर्मस्थलों को भली-भाँति देखा भाला ॥ १९१ ॥

१ कायमात्रं—देहप्रमाणं। (गो०)

स तस्या विवृते वक्त्रे वज्रसंहननः कपि ।
संक्षिप्य मुहुरात्मानं निष्पपात महाबलः ॥ १९२ ॥

महाबली और वज्र के समान दृढ़ शरीर वाले हनुमान जी ने, अपना शरीर अत्यन्त छोटा कर लिया और वे उसके बड़े मुख में घुस गए ॥ १९२ ॥

आस्ये तस्या निमज्जन्तं ददृशुः सिद्धचारणः ।
ग्रस्यमानं यथा चन्द्रं पूर्णं पर्वणि राहुणा ॥ १९३ ॥

उस समय सिद्धों और चारणों ने हनुमान जी को सिंहिका के मुख में गिरते हुए देखा । जिस प्रकार पूर्णिमा का चन्द्रमा, राहु से ग्रसा जाता है, उसी प्रकार हनुमान जी भी सिंहिका द्वारा ग्रसे गए ॥ १९३ ॥

ततस्तस्या नखैस्तीक्ष्णैर्मर्माण्युत्कृत्य वानरः ।
उत्पपाताथ वेगेन [1]मनःसम्पातविक्रमः ॥ १९४ ॥

हनुमान जी ने सिंहिका के मुख में जा, अपने पैने नखों से उसके मर्मस्थल चीर फाड़ डाले और मन के समान शीघ्र वेग से वे वहाँ से निकल कर, फिर ऊपर चले गए ॥ १९४ ॥

तां तु [2]दृष्ट्या च धृत्या च दाक्षिण्येन निपात्य हि ।
स कपिप्रवरो वेगाद्‌वृधे पुनरात्मवान् ॥ १९५ ॥

इस प्रकार से हनुमान जी ने उसे दूर ही से देख कर, धैर्य और चतुराई से उसे मार गिराया । तदनन्तर उन्होंने पुनः अपना शरीर पूर्ववत् बड़ा कर लिया ॥ १९५ ॥

---

१ मनःसम्पातविक्रमः—मनोवेगतुल्यगतिः । (गो०) २ दृष्टया—दूरादेव दर्शनेन । (गो०)

हृतहृत्सा हनुमता पपात [1]विधुराम्भसि ।
तां हतां वानरेणाशु पतितां वीक्ष्य सिंहिकाम् ॥१९६॥

वह राक्षसी हृदय के फट जाने से आर्त्त हो, समुद्र के जल में डूब गई। हनुमान जी द्वारा बात की बात में मार कर गिराई गई सिंहिका को देख ॥ १९६ ॥

भूतान्याकाशचारीणि तमूचुः प्लवगर्षभम् ।
भीममद्य कृतं कर्म महत्सत्त्वं त्वया हतम् ॥ १९७ ॥

आकाशचारी प्राणियों ने हनुमान जी से कहा, तुमने जो इस बड़े जन्तु को मारा सो आज तुमने बड़ा भयङ्कर काम कर डाला ॥ १९७ ॥

साधयार्थमभिप्रेतमरिष्टं गच्छ मारुते ।
यस्य त्वेतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव ॥ १९८ ॥
धृतिर्दृष्टिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मसु न सीदति ।
स तैः सम्भावितः पूज्यैः प्रतिपन्नप्रयोजनः ॥ १९९ ॥

अब तुम निर्विघ्न हो अपना कार्य सिद्ध करो। हे वानरेन्द्र ! तुम्हारी तरह जिसमें, धीरता, सूक्ष्मदृष्टि, बुद्धि और चतुराई, ये चार गुण होते हैं, वह कभी किसी काम के करने में नहीं घबड़ाता। ये चारों गुण तुममें मौजूद हैं। पूज्य हनुमान जी उन प्राणियों से पूजित और अपने कार्य की सिद्धि के विषय में निश्चित से हो ॥ १९८ ॥ १९९ ॥

जगामाकाशमाविश्य पन्नगाशनवत्कपिः ।
प्राप्तभूयिष्ठपारस्तु सर्वतः प्रतिलोकयन् ॥ २०० ॥

---

१ विधुरा—आर्ता (गो०)

गरुड़ की तरह बड़े वेग से आकाश में उड़ने लगे और समुद्र के दूसरे तट के निकट पहुँच चारों ओर देखने लगे ॥ २०० ॥

योजनानां शतस्यान्ते वनराजिं ददर्श सः ।
ददर्श च पतन्नेव विविधद्रुमभूषितम् ॥ २०१ ॥

तब उन्हें वहां से सौ योजन के फासले पर बड़ा भारी एक जंगल देख पड़ा । जाते जाते उन्होंने विविध वृक्षों से भूषित ॥ २०१ ॥

द्वीपं शाखामृगश्रेष्ठो मलयोपवनानि च ।
सागरं सागरानूपं सागरानूपजान्द्रुमान् ॥ २०२ ॥

द्वीप (टापू), और मलयागिरि के उपवनों को देखा । उन्होंने सागर और सागर का तट और सागरतट पर लगे हुए पेड़ों को ॥ २०२ ॥

सागरस्य च पत्नीनां मुखान्यपि विलोकयन् ।
स महामेघसङ्काशं समीक्ष्यात्मानमात्मवान् ॥ २०३ ॥
निरुन्धन्तमिवाकाशं चकार मतिमान्मतिम् ।
कायवृद्धिं प्रवेगं च मम दृष्ट्वैव राक्षसाः ॥ २०४ ॥

तथा सागर की पत्नी अर्थात् नदियों को और नदियों के और समुद्र के संगमस्थानों को (भी) देखा । बुद्धिमान् हनुमान जी ने महामेघ के समान अपने शरीर का जो आकाश को ढके हुए था, देख कर अपने मन में विचारा कि, मेरा यह बड़ा शरीर और मेरा वेग देख कर राक्षस लोग ॥ २०३ ॥ २०४ ॥

मयि कौतूहलं कुर्युरिति मेने महाकपिः ।
ततः शरीरं संक्षिप्य तन्महीधरसन्निभम् ॥ २०५ ॥

पुनः [1]प्रकृतिमापेदे वीतमोह [2]इवात्मवान् ।
तद्रूपमतिसंक्षिप्य[3] हनुमान्प्रकृतौ स्थितः ।
त्रीन्क्रमानिव विक्रम्य बलिवीर्यहरो हरिः ।। ५०६ ।।

मुझे एक खेल की वस्तु समझेंगे । यह विचार उन्होंने अपने पर्वताकार शरीर को अति छोटा कर लिया । उन्होंने काम मोहादिविहीन जीवन्मुक्त योगी की तरह पुनः अपना लघुरूप जो सदा का था, वैसे ही धारण कर लिया ; जैसे भगवान् वामन ने बलि को छलने के समय अपने शरीर को बढ़ा कर, पुनः छोटा कर लिया था ।। २०५ ।। २०६ ।।

स चारुनानाविधरूपधारी
परं समासाद्य समुद्रतीरम् ।
परैरशक्यः प्रतिपन्नरूपः
समीक्षितात्मा समवेक्षितार्थः ।। २०७ ।।

विविध मनोहर रूप धारण करने वाले हनुमान जी ने दूसरे द्वारा न पार जाने योग्य समुद्र के पार पहुँच कर, और आगे के कर्त्तव्य का भली भाँति विचार कर, अपना कार्य सिद्ध करने के लिए अत्यन्त छोटा रूप धारण किया ।। २०७ ।।

ततः स लम्बस्य गिरेः समृद्धे
विचित्रकूटे निपपात कूटे ।
सकेतकोद्दालकनारिकेले
महाद्रिकूटप्रतिमो महात्मा ।। २०८ ।।

---

१ प्रकृति —नित्यानन्दस्वभावमिव । (शि०) २ आत्मवान्—योगीशरीरं (शि०) ३ संक्षिप्य—तिरष्कृत्य । (शि०)

तदनन्तर समुद्रतट से हनुमान जी लम्ब नामक पर्वत के ऊपर गए। उस लम्बपर्वत पर केतकी, उद्दालक, नारियल आदि के अनेक फले फूले वृक्ष लगे हुए थे। उस पर्वत के शिखर भी बड़े सुन्दर थे। उन्हीं सुन्दर शिखरों में से एक शिखर पर हनुमान जी जा कर ठहरे ॥ २०८ ॥

ततस्तु सम्प्राप्य समुद्रतीरं
समीक्ष्य लङ्कां गिरिराजमूर्ध्नि ।
कपिस्तु तस्मिन्निपपात पर्वते
विधूय रूपं व्यथयन्मृगद्विजान् ॥ २०९ ॥

हनुमान जी, समुद्र तीरवर्ती त्रिकूटपर्वत के शिखर पर बसी हुई लङ्का को देख और अपने पूर्वरूप को त्याग तथा वहाँ के पशुपक्षियों को डराते हुए, लम्ब गिरि नामक पर्वत पर उतरे ॥ २०९ ॥

स सागरं दानवपन्नगायुतं
बलेन विक्रम्य महोर्मिमालिनम् ।
निपत्य तीरे च महोदधेस्तदा
ददर्श लङ्काममरावतीमिव ॥ २१० ॥

॥ इति प्रथमः सर्गः ॥

दानवों और सर्पों से व्याप्त और महातरङ्गों से युक्त महासागर को अपने बल पराक्रम से नांघ कर और उसके तट पर पहुँच कर, अमरावती के समान लङ्कापुरी को हनुमान जी ने देखा ॥ २१० ॥

सुन्दरकाण्ड का प्रथम सर्ग पूरा हुआ।

———*———

द्वितीयः सर्गः

—❀—

स सागरमनाधृष्यमतिक्रम्य महाबलः ।

त्रिकूटशिखरेलङ्कां स्थितां स्वस्थो ददर्श ह ॥ १ ॥

अपने बल पराक्रम से महाबली हनुमान जी ने अपार समुद्र को नांघ कर और सावधान होकर, त्रिकूटपर्वत पर बसी हुई लङ्कापुरी को देखा ॥ १ ॥

ततः पादपमुक्तेन पुष्पवर्षेण वीर्यवान्

अभिवृष्टः स्थितस्तत्र बभौ पुष्पमयो यथा ॥ २ ॥

उस पर्वत पर जो फूले हुए वृक्ष थे, वे पवन के वेग से हिलने लगे। उनके हिलने से फूल टूट टूट कर गिरने लगे, उन वृक्षों की पुष्प वर्षा से महाबली हनुमान जी मानों पुष्पमय हो गए ॥ २ ॥

योजनानां शतं श्रीमांस्तीर्त्वाप्यमितविक्रमः ।

अनिःश्वसन्कपिस्तत्र न ग्लानिमधिगच्छति ॥ ३ ॥

शोभावान् एवं अमित विक्रमशाली हनुमान जी इतने चौड़े अर्थात् १०० योजन के समुद्र को फाँद आए, किन्तु न तो उन्होंने बीच में कहीं दम ली और न उनके मन में ग्लानि ही उपजी ॥३॥

[नोट—एक इतिहास में लिखा है कि हनुमान जी तैर कर लङ्का में पहुँचे थे और बीच बीच में टापुओं पर ठहर दम लेते थे। इन लोगों को इस श्लोक के "अनिःश्वसन्" शब्द पर ध्यान देना चाहिये।]

शतान्यहं योजनानां क्रमेयं सुबहून्यपि ।

किं पुनः सागरस्यान्तं संख्यातं शतयोजनम् ॥ ४ ॥

हनुमान जी मन ही मन कहने लगे कि, इस शत योजन मर्यादा वाले समुद्र की तो बात ही क्या है; मैं तो बहुत से और सैकड़ों योजन मर्यादा वाले समुद्रों को फाँद सकता हूँ ॥ ४ ॥

स तु वीर्यवतां श्रेष्ठः प्लवतामपि चोत्तमः ।
जगाम वेगवाँल्लङ्कां लङ्घयित्वा महोदधिम् ॥ ५ ॥

इस प्रकार मन ही मन सोचते विचारते बलवानों में श्रेष्ठ कपियों में मुख्य, महावेगवान् हनुमान जी समुद्र को फाँद कर, लङ्का में गए ॥ ५ ॥

शाद्वलानि च नीलानि गन्धवन्ति वनानि च ।
*पुष्पवन्ति च मध्येन जगाम नगवन्ति च ॥ ६ ॥
शैलांश्च †तरुभिश्छन्नान्वनराजीश्च पुष्पिताः ।
अभिचक्राम तेजस्वी हनुमान्प्लवगर्षभः ॥ ७ ॥

वानरोत्तम तेजस्वी हनुमान जी, रास्ते में हरी हरी घासों और सुगन्ध युक्त मधु से भरे और सुन्दर वृक्षों से शोभित वनों और वृक्षों से आच्छादित पर्वतों और पुष्पित वृक्षों से वनों में हो कर जा रहे थे ॥ ६ ॥ ७ ॥

स तस्मिन्नचले तिष्ठन्वनान्युपवनानि च ।
स नगाग्रे च तां लङ्कां ददर्श पवनात्मजः ॥ ८ ॥

जब पवननन्दन हनुमान जी ने उस पहाड़ पर खड़े होकर देखा, तब उन्हें वन, उपवन तथा पर्वतशिखर पर बसी हुई लङ्का देख पड़ी ॥ ८ ॥

सरलान्कर्णिकारांश्च खर्जूरांश्च सुपुष्पितान् ।
प्रियालान्मुचुलिन्दांश्च कुटजान्केतकानपि ॥ ९ ॥

वनों में उन्हें देवदारु, कर्णिकार भली भाँति पुष्पित खजूर, चिरौंजी, खिन्नी, महुआ केतकी, ॥ ९ ॥

---

*पाठान्तरे—"गण्डवन्ति ।" †पाठान्तरे—"तरुसञ्छन्नान् ॥"

प्रियङ्गून्गन्धपूर्णांश्च नीपान्सप्तच्छदांस्तथा ।
असनान्कोविदारांश्च करवीरांश्च पुष्पितान् ॥ १० ॥

सुगन्धित प्रियंगु, कदंब, शतावरी, असन, कोविदार और फूले हुए करवीर के वृक्ष देख पड़े ॥ १० ॥

पुष्पभारनिबद्धांश्च तथा मुकुलितानपि ।
पादपान्विहगाकीर्णान्पवनाधूतमस्तकान् ॥ ११ ॥

इन वृक्षों में से बहुत से तो फूलों से लदे हुए थे और बहुत ऐसे भी थे जिनमें कलियाँ लगी हुई थीं। उन पर झुंड के झुंड पक्षी बैठे हुए थे। उन वृक्षों की फुनगियाँ पवन के चलने से हिल रही थीं ॥ ११ ॥

हंसकारण्डवाकीर्णा वापीः पद्मोत्पलायुताः ।
आक्रीडान्विविधान्रम्यान्विविधांश्च जलाशयान् ॥ १२ ॥

वहाँ बावलियाँ भी थीं, जिनमें हंस और जलमुर्ग खेल रहे थे और कमल तथा कुई फूल रहे थे। वहाँ पर विहार करने योग्य तरह तरह की रमणीक वाटिकाएँ थीं, जिनके भीतर विविध आकार प्रकार के जलकुण्ड बने हुए थे ॥ १२ ॥

सन्ततान्विविधैर्वृक्षैः सर्वर्तुफलपुष्पितैः
उद्यानानि च रम्याणि ददर्श कपिकुञ्जरः ॥ १३ ॥

सब ऋतुओं में फलने फूलने वाले अनेक प्रकार के वृक्षों से युक्त, वहाँ रमणीक वाटिकाएँ भी हनुमान जी ने देखीं ॥ १३ ॥

समासाद्य च लक्ष्मीवाँल्लङ्कां रावणपालिताम् ।
परिखाभिः सपद्माभिः सोत्पलाभिरलङ्कृताम् ॥ १४ ॥

शोभायुक्त हनुमान जी अब रावणपालित लङ्का के समीप पहुँचे। लङ्कापुरी फूले कमलों तथा कुई से युक्त, परिखा से घिरी हुई थी ॥ १४ ॥

सीतापहरणार्थेन रावणेन सुरक्षिताम् ।
समन्ताद्विचरद्भिश्च राक्षसैः *कामरूपिभिः ॥ १५ ॥

जब से रावण सीता को हर कर लाया था, तब से लङ्का की विशेष रूप से निगरानी करने के लिए कामरूपी राक्षस लङ्का के चारों ओर घूम कर पहरा दिया करते थे। (हनुमान जी ने इन पहरुए राक्षसों को भी देखा) ॥ १५ ॥

काञ्चनेनावृतां रम्यां प्रकारेण महापुरीम् ।
गृहैश्च गिरिसङ्काशैः शारदाम्बुदसन्निभैः ॥ १६ ॥

लङ्कापुरी के चारों ओर बड़ा सुन्दर सोने का परकोटा खिंचा हुआ था। उसके भीतर शरत्कालीन मेघों के समान सफेद और पहाड़ों की तरह ऊँचे ऊँचे अनेक मकान बने हुए थे ॥ १६ ॥

पाण्डुराभिः[१]प्रतोलीभिः †शिष्टाभिरभिसंवृताम् ।
अट्टालकशताकीर्णां पताकाध्वजमालिनीम् ॥ १७ ॥

लङ्का में सफेद गच की हुई पक्की और साफ सुथरी गलियाँ थीं। सैकड़ों अटारियोंदार मकान थे और जगह जगह ध्वजा पताकाएँ फ[illegible] ॥ १७ ॥

तोरणैः ‡काञ्चनैर्दीप्तां [२]लतापङ्क्तिविचित्रितैः ।
ददर्श हनुमाँल्लङ्कां दिवि देवपुरीमिव ॥ १८ ॥

---

१ प्रतोलीभिः—वीथीभिः। (गो०) २ लतापङ्क्तयः—लताकार रेखा। (गो०) * पाठान्तरे—" उग्रधन्विभिः। " † पाठान्तरे—" उच्चाभिः।" ‡ पाठान्तरे—" काञ्चनैर्दिव्यैः। "

वहाँ चमचमाती हुई सोने की लताकार रेखा जैसी रंग बिरंगी बंदनवारें देख पड़ती थीं। हनुमान जी ने देवताओं की अमरावतीपुरी की तरह सुन्दर सजी हुई लङ्का की शोभा देखी ॥ १८ ॥

गिरिमूर्ध्नि स्थितां लङ्कां पाण्डुरैर्भवनैः *शुभाम् ।
†स ददर्श कपिः श्रीमान्पुरमाकाशगं यथा ॥ १९ ॥

शोभायमान हनुमान जी ने त्रिकुटाचल पर बसी हुई असंख्य सफेद रंग के सुन्दर मनोहर भवनों से युक्त, आकाशस्पर्शी लङ्कापुरी को देखा (अथवा लङ्का ऐसी जान पड़ती थी मानों अन्तरिक्ष में बसी हो) ॥ १९ ॥

पालितां राक्षसेन्द्रेण निर्मितां विश्वकर्मणा ।
प्लवमानामिवाकाशे ददर्श हनुमान्पुरीम् ॥ २० ॥

लङ्कापुरी का शासन रावण के हाथ में था और विश्वकर्मा ने इस पुरी को बनाया था। हनुमान जी ने देखा कि, उसके भीतर जो ऊँचे ऊँचे भवन खड़े थे, उनको देखने से ऐसा जान पड़ता था मानों वह पुरी आकाश में उड़ी जा रही हो ॥ २० ॥

वप्रप्राकारजघनां विपुलाम्बुनवाम्बराम् ।
शतघ्नीशूलकेशान्तामट्टालकवतंसकाम् ॥ २१ ॥

लङ्का की परकोटे की दीवालें तो लङ्कारूपिणी स्त्री की मानो जाँघें हैं, उसके चारों ओर जो वन और समुद्र था, वह मानों उसके पहिनने के वस्त्र थे। शतघ्नी (तोपें) और त्रिशूल मानों उसके मस्तक के केश थे और उसकी जो अटारियाँ थीं, वे मानों उसके कानों के कर्णफूल थे ॥ २१॥

---

* पाठान्तरे—"शुभैः।" † पाठान्तरे—"ददर्श स कपिश्रेष्ठः पुरमाकाशगं यथा।"

मनसेव कृतां लङ्कां निर्मितां विश्वकर्मणा ।
द्वारमुत्तरमासाद्य चिन्तयामास वानरः ॥ २२ ॥

इस प्रकार की लङ्कापुरी को विश्वकर्मा ने बड़े मन से अर्थात् जी लगा कर बनाया था। जब हनुमान जी लङ्का के उत्तर दिशा वाले फाटक पर पहुँचे, तब वे मन ही मन कहने लगे ॥ २२ ॥

कैलासशिखर*प्रख्यैरालिखन्तीमिवाम्बरम् ।
†ध्रियमाणामिवाकाशमुच्छ्रितैर्भवनोत्तमैः ॥२३॥

लङ्का की उत्तर दिशा का फाटक भी कैलाश के सदृश आकाश-स्पर्शी था। ऐसा जान पड़ता था, मानों उसके ऊँचे ऊँचे मकान आकाश को सहारा देने वाले खंभे हैं। अथवा वे ऊँचे मकान को धारण किए हुए हैं ॥ २३ ॥

सम्पूर्णां राक्षसैर्घोरैर्नागैर्भोगवतीमिव ॥ २४ ॥

हनुमान जी कहने लगे कि, जिस प्रकार भोगवतीपुरी भयङ्कर नागों से भरी है, उसी प्रकार यह लङ्का भी घोर राक्षसों से भरी हुई है ॥ २४ ॥

तस्याश्च महतीं गुप्तिं सागरं च समीक्ष्य सः ।
रावणं च रिपुं घोरं चिन्तयामास वानरः ॥ २५ ॥

हनुमान जी ने देखा कि, लङ्का की भली भाँति रक्षा तो समुद्र ही कर रहा है। साथ ही हनुमान जी ने यह भी सोचा कि, रावण भी एक महा भयङ्कर शत्रु है ॥ २५ ॥

आगत्यापीह हरयो भविष्यन्ति निरर्थकाः ।
न हि युद्धेन वै लङ्का शक्या जेतुं ‡सुरासुरैः ॥ २६ ॥

---

* पाठान्तरे—"प्रख्यामालिखन्ति।" † पाठान्तरे—"ह्रीयमानाम्।"
‡ पाठान्तरे—"सुरैरपि।"

यदि वानर गण यहाँ किसी प्रकार आ भी पहुँचे, तो भी उनका यहाँ आना व्यर्थ होगा। क्योंकि इस लङ्का को जीतने की शक्ति तो देवताओं और दैत्यों में भी नहीं है ॥ २६ ॥

इमां तु विषमां दुर्गां लङ्कां रावणपालिताम्।
प्राप्यापि स महाबाहुः किं करिष्यति राघवः ॥ २७ ॥

रावणपालित इस विकट दुर्गम लङ्का में श्रीरामचन्द्र जी यदि आ भी गए तो, वे कर ही क्या सकेंगे? ॥ २७ ॥

अवकाशो न सान्त्वस्य राक्षसेष्वभिगम्यते।
न दानस्य न भेदस्य नैव युद्धस्य दृश्यते ॥ २८ ॥

मेरी समझ में तो राक्षस लोग, खुशामद से काबू में आने वाले नहीं। इन लोगों को लालच दिखला कर या इनमें फूट डाल कर अथवा इनसे युद्ध करके भी, इनसे पार नहीं पाया जा सकता ॥ २८ ॥

चतुर्णामेव हि गतिर्वानराणां महात्मनाम्।
वालिपुत्रस्य नीलस्य मम राज्ञश्च धीमतः ॥ २९ ॥

हमारी सेना में चार ही ऐसे जन हैं जो यहाँ आ सकते हैं। एक तो अंगद, दूसरे नील, तीसरा मैं और चौथे बुद्धिमान वानरराज सुग्रीव ॥ २९ ॥

यावज्जानामि वैदेहीं यदि जीवति वा न वा।
तत्रैव चिन्तयिष्यामि दृष्ट्वा तां जनकात्मजाम् ॥ ३० ॥

अस्तु, अब सब से प्रथम तो यह जान लेना है कि, जानकी जी जीवित भी हैं कि नहीं। मैं प्रथम जानकी जी को देख लेने पर पीछे और बातों पर विचार करूँगा ॥ ३० ॥

ततः स चिन्तयामास मुहूर्तं कपिकुञ्जरः।
गिरिशृङ्गे स्थितस्तस्मिन्रामस्याभ्युदये रतः ॥ ३१ ॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी के हित में रत, कपिश्रेष्ठ हनुमान जी पर्वत के शिखर पर बैठे हुए मुहूर्त भर तक मन ही मन कुछ सोचते रहे ॥ ३१ ॥

अनेन रूपेण मया न शक्या रक्षसां पुरी।
प्रवेष्टुं राक्षसैर्गुप्ता क्रूरैर्बलसमन्वितैः ॥ ३२ ॥

उन्होंने सोचा कि, बलवान तथा क्रूर स्वभाव वाले राक्षसों द्वारा रक्षित लङ्का में मैं अपने इस रूप से प्रवेश नहीं कर सकता ॥ ३२ ॥

उग्रौजसो महावीर्या बलवन्तश्च राक्षसाः।
वञ्चनीया मया सर्वे जानकीं परिमार्गता ॥ ३३ ॥

तब मुझे, जानकी जी का पता लगाने के लिए, इन सब महाबली और महापराक्रमी राक्षसों को धोखा देना होगा ॥३३॥

लक्ष्यालक्ष्येण रूपेण रात्रौ लङ्कापुरी मया।
प्रवेष्टुं प्राप्तकालं मे कृत्यं साधयितुं महत् ॥ ३४ ॥

अतः मुझे रात के समय ऐसे रूप से जिसे कोई देखे और कोई न देखे, लङ्का में घुसना उचित है। क्योंकि इतना बड़ा कार्य बिना ऐसा किए पूरा नहीं होगा ॥ ३४ ॥

तां पुरीं तादृशीं दृष्ट्वा दुराधर्षां सुरासुरैः।
हनुमांश्चिन्तयामास विनिःश्वस्य मुहुर्मुहुः ॥ ३५ ॥
केनोपायेन पश्येयं मैथिलीं जनकात्मजाम्।
अदृष्टो राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना ॥ ३६ ॥

इस प्रकार हनुमान जी सुरों और असुरों से दुराधर्ष उस लङ्कापुरी को बराबर देखने लगे और बार बार लंबी साँसें ले यह सोचते थे कि, किस उपाय से जनकनन्दिनी जानकी को मैं देख लूँ और उस दुरात्मा राक्षसराज रावण की दृष्टि से बचा रहूँ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

न विनश्येत्कथं कार्यं रामस्य विदितात्मनः ।
*एकामेकस्तु पश्येयं रहिते जनकात्मजाम् ॥ ३७ ॥

तीनों लोकों में प्रसिद्ध श्रीरामचन्द्र जी का कार्य किस प्रकार करूँ जिससे कार्य बिगड़ने न पावे। मैं तो अकेला एकान्त में जानकी को देखना चाहता हूँ ॥ ३७ ॥

भूताश्चार्था विपद्यन्ते देशकालविरोधिताः ।
विक्लवं दूतमासाद्य तमः सूर्योदये यथा ॥ ३८ ॥

देश और काल के प्रतिकूल कार्य करने वाला और कादर दूत, बने बनाए कार्य को उसी प्रकार नष्ट कर डालता है, जिस प्रकार सूर्य अन्धकार को ॥ ३८ ॥

अर्थानर्थान्तरे बुद्धिर्निश्चिताऽपि न शोभते ।
घातयन्ति हि कार्याणि दूताः पण्डितमानिनः ॥३९॥

कर्त्तव्याकर्त्तव्य के विषय में निश्चित कर लेने पर भी, ऐसे दूतों के कारण कार्य की सिद्धि नहीं होती। क्योंकि वे अपनी बुद्धि-मानी के अभिमान में चूर हो, कार्यों को न बना कर, उन्हें बिगाड़ डालते हैं ॥ ३९ ॥

न विनश्येत्कथं कार्यं वैक्लव्यं न कथं भवेत् ।
लङ्घनं च समुद्रस्य †कथं नु न भवेद्यथा ॥४०॥

पाठान्तरे—"एकामेकश्च ।" †पाठान्तरे—"कथं नु न वृथा भवेत् ।"

अतः अब किस उपाय से मैं काम लूँ जिससे न तो कार्य ही बिगड़े, और न मुझमें कादरता आवे। साथ ही मेरा समुद्र फाँदना वृथा भी न हो॥ ४०॥

मयि दृष्टे तु रक्षोभी रामस्य विदितात्मनः* ।
भवेद्व्यर्थमिदं कार्यं रावणानर्थमिच्छतः ॥ ४१ ॥

त्रिभुवन-विख्यात श्रीरामचन्द्र जी रावण को दण्ड देना चाहते हैं, अतः यदि राक्षसों ने मुझे देख लिया तो श्रीरामचन्द्र जी का यह कार्य बिगड़ जायगा ॥ ४१ ॥

न हि शक्यं क्वचित्स्थातुमविज्ञातेन राक्षसैः ।
अपि राक्षसरूपेण किमुतान्येन केनचित् ॥ ४२ ॥

राक्षसों से छिप कर यहाँ कोई भी नहीं रह सकता। यहाँ तक कि राक्षसों का अथवा अन्य किसी का रूप धारण करने से भी राक्षसों से छुटकारा नहीं मिल सकता ॥ ४२ ॥

वायुरप्यत्र ना ज्ञातश्चरेदिति मतिर्मम ।
न ह्यस्त्यविदितं किञ्चिद्राक्षसानां बलीयसाम् ॥४३ ॥

मैं तो समझता हूँ कि, वायु भी यहाँ पर गुप्त रूप से नहीं बह सकता। क्योंकि बलवान राक्षसों से कोई बात छिप नहीं सकती ॥ ४३ ॥

इहाहं यदि तिष्ठामि स्वेन रूपेण संवृतः ।
विनाशमुपयास्यामि भर्तुरर्थश्च †हास्यते ॥४४॥

यदि मैं अपने असली रूप में यहाँ ठहरा रहूँ तो केवल स्वामी का कार्य ही नष्ट न होगा, बल्कि मैं भी मारा जाऊँगा ॥ ४४ ॥

---

*विदितात्मा का अर्थ किसी किसी ने आत्मदर्शी युञ्जान योगी भी किया है। † पाठान्तरे—"हीयते।"

तदहं स्वेन रूपेण रजन्यां ह्रस्वतां गतः।
*लङ्कामभिगमिष्यामि राघवस्यार्थसिद्धये ॥ ४५ ॥

अतः मैं अपने शरीर को बहुत ही छोटा बना कर, श्रीरामचन्द्र जी के काम के लिए रात के समय लङ्का में जाऊँगा ॥४५॥

रावणस्य पुरीं रात्रौ प्रविश्य सुदुरासदाम्।
विचिन्वन्भवनं सर्वं द्रक्ष्यामि जनकात्मजाम् ॥ ४६ ॥

रावण की इस अत्यन्त दुर्धर्ष राजधानी लङ्कापुरी में रात के समय घुस कर, सब घरों में जा कर, सीता को खोजूँगा ॥ ४६ ॥

इति †निश्चित्य हनुमान्सूर्यस्यास्तमयं कपिः।
आचकाङ्क्षे तदा वीरो वैदेह्या दर्शनोत्सुकः ॥ ४७ ॥

इस प्रकार अपने मन में निश्चय कर जानकी जी को देखने के लिए उत्सुक वीर हनुमान जी, सूर्यास्त की प्रतीक्षा करने लगे ॥ ४७ ॥

सूर्ये चास्तं गते रात्रौ देहं संक्षिप्य मारुतिः।
[1]वृषदंशकमात्रः सन्बभूवाद्भुतदर्शनः ॥ ४८ ॥

जब सूर्य अस्ताचलगामी हुए, तब रात में हनुमान जी ने अपने शरीर को बिल्ली के समान छोटा और देखने में विस्मयोत्पादक बनाया ॥ ४८ ॥

प्रदोषकाले हनुमांस्तूर्णमुत्प्लुत्य वीर्यवान्।
प्रविवेश पुरीं रम्यां सुविभक्तमहापथाम् ॥ ४९ ॥

---

१ वृषदंशकमात्रः—विडाल प्रमाणः। (गो०) *पाठान्तरे—" लङ्कामभिपतिष्यामि।" † पाठान्तरे—" सञ्चिन्त्य।"

वीर्यवान हनुमान जी तुरन्त परकोटा फाँद कर, उस रमणीय और सुन्दर राजमार्गों से युक्त, लङ्कापुरी में घुस गए ॥ ४६ ॥

प्रासादमालावितता स्तम्भैः काञ्चनराजतैः ।
शातकुम्भमयैर्जालैर्गन्धर्वनगरोपमाम् ॥ ५० ॥

हनुमान जी ने लङ्का के भीतर जाकर देखा कि, बड़े बड़े भवनों की श्रेणियों से और अनेक सुवर्णमय खंभों से तथा सोने के झरोखों से लङ्कापुरी गन्धर्वनगरी की तरह सजी हुई है ॥५०॥

सप्तभौमाष्टभौमैश्च स ददर्श महापुरीम् ।
तलैः स्फटिकसङ्कीर्णैः कार्तस्वरविभूषितैः ॥ ५१ ॥

सत-अठ-खने-भवनों से और स्फटिक खचित तथा सुवर्ण भूषित अनेक स्थानों से वह राक्षसों की निवासस्थली लङ्कापुरी अत्यन्त शोभायुक्त देख पड़ती थी ॥ ५१ ॥

वैडूर्यमणिचित्रैश्च *मुक्ताजालविराजितैः ।
तलैः शुशुभिरे तानि भवनान्यत्र रक्षसाम् ॥ ५२ ॥

राक्षसों के घरों के फर्श वैडूर्य मणियों की जड़ावों और मोतियों की झालरों से शोभित थे ॥ ५२ ॥

काञ्चनानि विचित्राणि तोरणानि च रक्षसाम् ।
लङ्कामुद्योतयामासुः सर्वतः समलंकृताम् ॥ ५३ ॥

राक्षसों के घर के तोरणद्वार, जो सुवर्णनिर्मित और रंग बिरंगे बने हुए थे, चारों ओर से विभूषित थे और लङ्कापुरी की शोभा बढ़ा रहे थे ॥ ५३ ॥

---

* पाठान्तरे—"मुक्ताजालविभूषितैः ।"

अचिन्त्यामद्भुताकारां दृष्ट्वा लङ्कां महाकपिः ।
आसीद्विषण्णो हृष्टश्च वैदेह्या दर्शनोत्सुकः ॥ ५४ ॥

जानकी जी के दर्शन के लिए उत्सुक, महाकपि हनुमान जी इस प्रकार की अचिन्त्य और आश्चर्यजनक बनावट की लङ्कापुरी को देख, पहिले तो हर्षित हुए, फिर पीछे उदास हो गए ॥ ५४ ॥

स *पाण्डुरोऽन्नद्धविमानमालिनीं
महार्हजाम्बूनदजालतोरणाम् ।
यशस्विनीं रावणबाहुपालितां
क्षपाचरैर्भीमबलैः समावृताम् ॥ ५५ ॥

हनुमान जी ने देखा कि, रावण द्वारा रक्षित, प्रसिद्ध लङ्का-नगरी, श्रेणीबद्ध सफेद अट्टालिकाओं से, महामूल्यवान् सुवर्णमय झरोखों और तोरणद्वारों से अलङ्कृत है और अत्यन्त बलिष्ठ राक्षसों की सेना चारों ओर से उसकी रखवाली कर रही है ॥ ५५ ॥

चन्द्रोऽपि साचिव्यमिवास्य कुर्वं-
स्तारागणैर्मध्यगतो विराजन् ।
ज्योत्स्नावितानेन वितत्य लोकमु-
त्तिष्ठते नैकसहस्ररश्मिः ॥ ५६ ॥

उस समय मानों वायुपुत्र की सहायता करने के लिए सहस्रों किरणों वाला चन्द्रमा, ताराओं के साथ, चाँदनी छिटकाता हुआ, आकाश में आ बिराजा ॥ ५६ ॥

---

* पाठान्तरे—“ पाण्डुरोद्विद्ध । ”

शङ्खप्रभं क्षीरमृणालवर्णम्-
उद्गच्छमानं व्यवभासमानम् ।
ददर्श चन्द्रं स *कपिप्रवीरः
पोप्लूयमानं सरसीव हंसम् ॥ ५७ ॥

इति द्वितीयः सर्गः ॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान जी ने देखा कि, सरोवर में जिस प्रकार हंस उछल कूद मचाते हैं, उसी प्रकार दूध अथवा मृणाल वर्ण शङ्ख की तरह चन्द्रमा भी आकाश में उदय होकर ऊपर को उठ रहा है ॥ ५७ ॥

सुन्दरकाण्ड का दूसरा सर्ग पूरा हुआ ।

—❀—

तृतीयः सर्गः

—❀—

स लम्बशिखरे लम्बे लम्बतोयदसन्निभे ।
[1]सत्त्वमास्थाय मेधावी हनुमान्मारुतात्मजः ॥ १ ॥
निशि लङ्कां महासत्त्वो विवेश कपिकुञ्जरः ।
रम्यकाननतोयाढ्यां पुरीं रावणपालिताम् ॥ २ ॥

बुद्धिमान् तथा महाबलवान् कपिश्रेष्ठ पवननन्दन हनुमान जी ने धैर्य धारण पूर्वक महामेघ की तरह लम्ब नामक पर्वत के उच्च

---

१ सत्त्वं—व्यवसायं । धैर्यमिति यावत् । (गो०) * पाठान्तरे—
" हरिप्रवीरः ।"

शिखर पर स्थित लङ्कापुरी में रात के समय प्रवेश किया। वह रावण की लङ्कापुरी उपवनों तथा स्वादिष्ट जल वाले कूप तड़ाग बावली से पूर्ण थी ॥ १ ॥ २ ॥

शारदाम्बुधरप्रख्यैर्भवनैरुपशोभिताम् ।
सागरोपमनिर्घोषां सागरानिलसेविताम् ॥ ३ ॥

वह शरत्कालीन बादलों की तरह सफेद भवनों से सुशोभित थी। उसमें सदा समुद्र जैसा गर्जन सुन पड़ता था और वहाँ समुद्री पवन सदा बहा करता था ॥ ३ ॥

*सुपुष्टबलसंगुप्तां यथैव विटपावतीम् ।
चारुतोरणनिर्यूहां पाण्डुरद्वारतोरणाम् ॥ ४ ॥

विटपावती नगरी की तरह लङ्कापुरी की भी रखवाली के लिए परम हृष्टपुष्ट राक्षसी सेना पुरी के चारों ओर नियत थी। उसके तोरणद्वारों पर मदमत्त हाथी झूमा करते थे। उसके तोरणद्वार सफेद रंग के थे ॥ ४ ॥

भुजगाचरितां गुप्तां शुभां भोगवतीमिव ।
तां सविद्युद्घनाकीर्णां ज्योतिर्मार्गनिषेविताम् ॥ ५ ॥

वह सब ओर से सर्पों द्वारा सुरक्षित, सर्पों की भोगवतीपुरी की तरह सुरक्षित थी। वह दामिनी युक्त बादलों से घिरी थी अथवा उसकी सड़कों पर पर्याप्त प्रकाश था ॥ ५ ॥

† चण्डमारुतनिर्ह्रादां यथा चाप्यमरावतीम् ।
शातकुम्भेन महता प्राकारेणाभिसंवृताम् ॥ ६ ॥

---

* पाठान्तरे—"सुपुष्टबलसंघुष्टां।" † पाठान्तरे—"मन्दमारुतसञ्चारां यथेन्द्रस्यामरावतीम्।"

इन्द्र की अमरावतीपुरी की तरह लङ्कापुरी में भी प्रचण्ड वायु सन् सन् करता चला करता था। उसके चारों ओर बड़ा ऊँचा और लंबा चौड़ा सोने की दीवारों का परकोटा खिंचा हुआ था॥ ६॥

किङ्किणीजालघोषाभिः पताकाभिरलंकृताम्।
आसाद्य सहसा हृष्टः प्राकारमभिपेदिवान्॥ ७॥

उसमें छोटी छोटी घंटियों के जाल जगह जगह बने हुए थे, जिनकी घंटियाँ सदा बजा करती थीं। जगह जगह पताकाएँ फहरा रही थीं। उस लङ्कापुरी के परकोटे की दीवाल पर हनुमान जी प्रसन्नता पूर्वक सहसा कूद कर चढ़ गए॥ ७॥

विस्मयाविष्टहृदयः पुरीमालोक्य सर्वतः।
जाम्बूनदमयैर्द्वारैर्वैडूर्यकृतवेदिकैः॥ ८॥

उस परकोटे पर से उन्होंने उस पुरी को चारों ओर से देखा और देख कर वे विस्मित हुए। क्योंकि उन्होंने देखा कि, उस पुरी के भवनों के दरवाज़े सोने से और चबूतरे पन्ने से बने हुए थे॥ ८॥

वज्रस्फटिकमुक्ताभिर्मणिकुट्टिमभूषितैः।
तप्तहाटकनिर्यूहै राजतामलपाण्डुरैः॥ ९॥

उस पुरी के भवनों की दीवालें हीरा स्फटिक मोती तथा अन्य मणियों की बनी हुई थीं। उनका ऊपरी भाग सुवर्ण और चाँदी का बना हुआ था॥ ९॥

वैडूर्यतलसोपानैः स्फाटिकान्तरपांसुभिः।
चारुसञ्जवनोपेतैः खमिवोत्पतितैः शुभैः॥ १०॥

भवनों में जाने के लिए जो सीढ़ियाँ थीं, वे पन्नों से बनाई गई थीं और द्वारों के भीतर का समस्त फर्श भी पन्नों से जड़ कर बनाया गया था। उन द्वारों के ऊपर जो बैठके (कमरे) बने थे, वे बहुत ही मनोहर थे। वे इतने ऊँचे थे कि, जान पड़ता था वे आकाश से बातें कर रहे हैं ॥ १० ॥

क्रौञ्चबर्हिणसंघुष्टै राजहंसनिषेवितैः ।
तूर्याभरणनिर्घोषैः सर्वतः प्रतिनादिताम् ॥ ११ ॥

भवनों के द्वारों पर क्रौंच, मोर आदि पक्षी सुहावनी बोलि बोल रहे थे। राजहंस अलग ही वहाँ की शोभा बढ़ा रहे थे। सर्वत्र नगाड़ों और आभूषणों के शब्द सुनाई पड़ते थे ॥ ११ ॥

वस्वोकसाराप्रतिमां *समीक्ष्य नगरीं ततः ।
†खमिवोत्पतितां लङ्कां जहर्ष हनुमान्कपिः ॥ १२ ॥

इस प्रकार समृद्धशालिनी और आकाशस्पर्शिनी अलका-पुरी की तरह उस लङ्कापुरी को देख, हनुमान जी बहुत प्रसन्न हुए ॥ १२ ॥

तां समीक्ष्य पुरीं‡ लङ्कां राक्षसाधिपतेः शुभाम् ।
अनुत्तमामृद्धिमतीं§ चिन्तयामास वीर्यवान् १३ ॥

रावण की उस सुन्दर ऋद्धमती लंकापुरी को देख, बलवान हनुमान जी अपने मन में कहने लगे ॥ १३ ॥

नेयमन्येन नगरी शक्या धर्षयितु बलात् ।
रक्षिता रावणबलैरुद्यतायुधधारिभिः ॥ १४ ॥

---

* पाठान्तरे—"तां वीक्ष्य नगरीं ततः।" † पाठान्तरे—"खमिवोत्पतितुं कामां।" ‡ पाठान्तरे—"रम्यां।" § पाठान्तरे—,'युतां।"

दूसरे किसी की तो सामर्थ्य नहीं, जो इस लंका को जीत सके। क्योंकि रावण के सैनिक हाथों में आयुधों को ले, इस नगरी की रक्षा करने में तत्पर रहते हैं ॥ १४ ॥

कुमुदाङ्गदयोर्वापि सुषेणस्य महाकपेः ।
प्रसिद्धेयं भवद्भूमिर्मैन्दद्विविदयोरपि ॥ १५ ॥
विवस्वतस्तनूजस्य हरेश्च कुशपर्वणः ।
ऋक्षस्य केतुमालस्य मम चैव गतिर्भवेत् ॥ १६ ॥

परन्तु कुमुद, अंगद, महाकपि सुषेण, मैन्द, द्विविद, सूर्यपुत्र सुग्रीव और कुश जैसे लोमधारी रीछों में श्रेष्ठ जाम्बवान और मैं—बस ये ही लोग यहां आ सकते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

समीक्ष्य च महाबाहू राघवस्य पराक्रमम् ।
लक्ष्मणस्य च विक्रान्तमभवत्प्रीतिमान्कपिः ॥ १७ ॥

इस प्रकार सोच विचार कर, जब हनुमान जी ने श्रीरामचन्द्र के पराक्रम और लक्ष्मण के विक्रम की ओर दृष्टि डाली, तब तो वे प्रसन्न हो गए ॥ १७ ॥

तां रत्नवसनोपेतां [1]गोष्ठागारावतंसकाम् ।
यन्त्रागारस्तनीमृद्धां प्रमदामिव भूषिताम् ॥ १८ ॥

लङ्का, मणि रूपी वस्त्रों से और गोशाला अथवा हयशाला रूपी कर्णभूषणों से और आयुधों के गृह रूपी स्तनों से अलंकृत-स्त्री की तरह, जान पड़ती थी ॥ १८ ॥

तां नष्टतिमिरां दीपैर्भास्वरैश्च महागृहैः ।
नगरीं राक्षसेन्द्रस्य ददर्श स महाकपिः ॥ १९ ॥

---

१ गोष्ठागार—गोष्ठं गोशाला । इदं वाजिशालादेरप्युपलक्षणम् । (रा०)

अनेक प्रकार के रत्नों से प्रकाशित भवनों में जो दीपक जल रहे थे, उनसे वहाँ पर अन्धकार नाम मात्र को भी नहीं था। ऐसी राक्षसराज रावण की लङ्कापुरी को, महाकपि हनुमान जी ने देखा ॥ १९ ॥

अथ सा हरिशार्दूलं प्रविशन्तं महाबलम् ।
नगरी [1]स्वेन रूपेण ददर्श पवनात्मजम् ॥ २० ॥

इतने में कपिश्रेष्ठ महाबली हनुमान जी को लङ्कापुरी में प्रवेश करते समय, उस पुरी की अधिष्ठात्री देवी ने देख लिया ॥ २० ॥

सा तं हरिवरं दृष्ट्वा लङ्का वै कामरूपिणी* ।
स्वयमेवोत्थिता तत्र विकृताननदर्शना ॥ २१ ॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान जी को देख, वह महाविकराल मुखवाली एवं कामरूपिणी लङ्का की अधिष्ठात्री देवी, स्वयं ही उठ धाई ॥ २१ ॥

†पुरस्तात्तस्य वीरस्य वायुसूनोरतिष्ठत ।
मुञ्चमाना महानादमब्रवीत्पवनात्मजम् ॥ २२ ॥

वह देवी, हनुमान जी की राह रोक उनके सामने जा खड़ी और भयङ्कर नाद कर, पवननन्दन से बोली ॥ २२ ॥

कस्त्वं केन च कार्येण इह प्राप्तो वनालय ।
कथयस्वेह यत्तत्त्वं यावत्प्राणान्धरिष्यसि‡ ॥ २३ ॥

अरे वनवासी बंदर! तू कौन है? और यहाँ क्यों आया है यदि तुझे अपने प्राण प्यारे हों तो ठीक ठीक बतला ॥ २३ ॥

---

१ स्वेन रूपेण—अधिदेवतारूपेण। (रा०) * पाठान्तरे—"रावण पालिता।" † पाठान्तरे—"पुरस्तात्कपिवर्यस्य।" ‡पाठान्तरे—"यावत्प्राणा धरन्ति ते।"

*न शक्या खल्वियं लङ्का प्रवेष्टुं वानर त्वया ।
रक्षिता रावणबलैरभिगुप्ता समन्ततः ॥ २४ ॥

हे वानर ! निश्चय ही तुझमें यह सामर्थ्य नहीं कि, तू लङ्का में घुस सके । क्योंकि रावण की सेना इसकी चारों ओर से रखवाली किया करती है ॥ २४ ॥

अथ तामब्रवीद्वीरो हनुमानग्रतः स्थिताम् ।
कथयिष्यामि ते तत्त्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ २५ ॥

सामने खड़ी हुई उस लङ्का से वीर हनुमान जी ने कहा—तू मुझसे जो कुछ पूँछ रही है, सो मैं सब ठीक ठीक बतलाऊँगा ॥२५॥

का त्वं विरूपनयना पुरद्वारेऽवतिष्ठसि ।
किमर्थं चापि मां रुद्ध्वा निर्भर्त्सयसि दारुणा ॥ २६ ॥

हे निष्ठुरा ! (परन्तु पहिले तू तो यह बतला कि) तू कौन है, जो इस नगरद्वार पर विकराल नेत्र किए खड़ी है और क्यों मेरा मार्ग रोक कर मुझे दपट रही है ॥ २६ ॥

हनुमद्वचनं श्रुत्वा लङ्का सा कामरूपिणी ।
उवाच वचनं क्रुद्धा परुषं पवनात्मजम् ॥ २७ ॥

हनुमान जी के ये वचन सुन, वह कामरूपिणी लङ्का की अधिष्ठात्री देवी, क्रुद्ध हो, हनुमान जी से कठोर वचन बोली ॥ २७ ॥

अहं राक्षसराजस्य रावणस्य महात्मनः ।
आज्ञाप्रतीक्षा दुर्धर्षा रक्षामि नगरीमिमाम् ॥ २८ ॥

---

*पाठान्तरे—" न शक्या । "

मैं महाबलवान राक्षसराज रावण की आज्ञानुवर्तिनी दुर्धर्षा लङ्का नगरी की अधिष्ठात्री देवी हूँ और इस पुरी की मैं रक्षा किया करती हूँ ॥ २८ ॥

न शक्यं मामवज्ञाय प्रवेष्टुं नगरी त्वया ।
अद्य प्राणैः परित्यक्तः स्वप्स्यसे निहतो मया ॥ २९ ॥

मेरी अवहेलना कर तू इस नगरी के भीतर नहीं घुस सकता। यदि मेरी अवहेलना की, तो याद रखना, तू मुझसे मारा जाकर, अभी भूमि पर पड़ा हुआ दिखलाई पड़ेगा ॥ २९ ॥

अहं हि नगरी लङ्का स्वयमेव प्लवङ्गम ।
सर्वतः परिरक्षामि ह्येतत्ते कथितं मया ॥ ३० ॥

हे वानर ! मैं स्वयं लङ्का हूँ और मैं चारों ओर से इसकी रखवाली किया करती हूँ। इसीसे मैंने तुझको रोका है ॥ ३० ॥

लङ्काया वचनं श्रुत्वा हनूमान्मारुतात्मजः ।
यत्नवान्स हरिश्रेष्ठः स्थितः शैल इवापरः ॥ ३१ ॥

उद्योगी एवं कपिश्रेष्ठ पवननन्दन हनुमान जी लङ्का की ये बातें सुना, उसे परास्त करने के लिए उसके सामने एक दूसरे पर्वत की तरह अचल भाव से खड़े हो गए ॥ ३१ ॥

स तां स्त्रीरूपविकृतां दृष्ट्वा वानरपुङ्गवः ।
आबभाषेऽथ मेधावी सत्त्ववान्प्लवगर्षभः ॥ ३२ ॥

वानरश्रेष्ठ, बुद्धिमान एवं बलवान् हनुमान जी, उस रूपधारिणी लङ्का देवी से बोले ॥ ३२ ॥

द्रक्ष्यामि नगरीं लङ्कां साट्टप्राकारतोरणाम् ।
तदर्थमिह सम्प्राप्तः परं कौतूहलं हि मे ॥ ३३ ॥
वनान्युपवनानीह लङ्कायाः काननानि च ।
सर्वतो गृहमुख्यानि द्रष्टुमागमनं हि मे ॥ ३४ ॥

हे लंके ! मैं इस नगरी की अटारियाँ, प्राकार, तोरण, वन, उपवन तथा प्रधान प्रधान भवनों को देखना चाहता हूँ और इसीलिए मैं यहाँ आया भी हूँ। मुझे लङ्कापुरी को देखने का बड़ा कुतूहल है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लङ्का सा कामरूपिणी ।
भूय एव पुनर्वाक्यं बभाषे परुषाक्षरम् ॥ ३५ ॥

उस कामरूपिणी लङ्कादेवी ने हनुमान जी के ये वचन सुन, फिर हनुमान जी से कठोर वचन कहे ॥ ३५ ॥

मामनिर्जित्य दुर्बुद्धे राक्षसेश्वरपालिताम् ।
न शक्यमद्य ते द्रष्टुं पुरीयं वानराधम ॥ ३६ ॥

हे दुर्बुद्धे ! हे वानराधम ! राक्षसेश्वर रावण द्वारा रक्षित इस लङ्कापुरी को, मुझे हराए बिना अब तू नहीं देख सकता ॥ ३६ ॥

ततः स हरिशार्दूलस्तामुवाच निशाचरीम् ।
दृष्ट्वा पुरीमिमां भद्रे पुनर्यास्ये यथागतम् ॥ ३७ ॥

तदनन्तर कपिश्रेष्ठ हनुमान जी ने उस निशाचरी से कहा—हे भद्रे ! मैं एक बार इस लङ्कापुरी को देख, जहाँ से आया हूँ, वहीं लौट कर चला जाऊँगा ॥ ३७ ॥

ततः कृत्वा महानादं सा वै लङ्का* भयानकम् ।
तलेन वानरश्रेष्ठं ताडयामास वेगिता ॥ ३८ ॥

तब उस लङ्कादेवी ने बड़ी ज़ोर से भयङ्कर नाद कर, हनुमान जी के कसकर एक थप्पड़ मारा ॥ ३८ ॥

ततः स कपिशार्दूलो लङ्कया ताडितो भृशम् ।
ननाद सुमहानादं वीर्यवान्पवनात्मजः ॥ ३९ ॥

लंकादेवी के हाथ से ज़ोर का थप्पड़ खा, बलवान पवननन्दन ने महानाद किया ।

ततः संवर्तयामास वामहस्तस्य सोऽङ्गुलीः ।
मुष्टिनाऽभिजघानैनां हनूमान्क्रोधमूर्छितः ॥ ४० ॥

और बाँये हाथ की अँगुलियाँ मोड़ और मुट्ठी बाँध हनुमान जी ने क्रुद्ध हो, लङ्का के एक घूंसा मारा ॥ ४० ॥

स्त्री चेति मन्यमानेन नातिक्रोधः स्वयं कृतः ।
सा तु तेन प्रहारेण विह्वलाङ्गी निशाचरी ॥ ४१ ॥
पपात सहसा भूमौ विकृताननदर्शना ।
ततस्तु हनुमान्प्राज्ञस्तां दृष्ट्वा विनिपातिताम् ॥ ४२ ॥

तिस पर भी लङ्का को स्त्री समझ हनुमान जी ने बहुत क्रोध नहीं किया था, किन्तु वह राक्षसी लङ्का उतने ही प्रहार से विकल और लोटपोट हो पृथिवी पर गिर पड़ी और उसका मुख और भी अधिक विकराल हो गया। उसको भूमि पर छटपटाते देख, बुद्धिमान एवं तेजस्वी हनुमान जी को ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

---

* पाठान्तरे—"भयावहम् ।"

कृपां चकार तेजस्वी मन्यमानः स्त्रियं तु ताम् ।
ततो वै भृशमुद्विग्ना लंका सा गद्गदाक्षरम् ॥ ४३ ॥
उवाच गर्वितं वाक्यं हनुमन्तं प्लवङ्गमम् ।
प्रसीद सुमहाबाहो त्रायस्व हरिसत्तम ॥ ४४ ॥

उसे स्त्री समझ उस पर बड़ी दया आई । तदनन्तर अत्यन्त विकल वह लंकादेवी, गद्गद् वाणी से अभिमान रहित हो कपिवर हनुमान जी से बोली । हे कपिश्रेष्ठ ! हे महाबाहो ! तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो और मुझे बचाओ ॥ ४४ ॥

[1]समये सौम्य तिष्ठन्ति सत्त्ववन्तो महाबलाः ।
अहं तु नगरी लंका स्वयमेव प्लवङ्गम ॥ ४५ ॥

क्योंकि जो धैर्यवान और महाबली पुरुष होते हैं, वे स्त्री का वध नहीं करते । हे वानर ! मैं ही लंका नगरी की अधिष्ठात्री देवी हूँ ॥ ४५ ॥

निर्जिताहं त्वया वीर विक्रमेण महाबल ।
इदं च तथ्यं शृणु वै ब्रुवन्त्या मे हरीश्वर ॥ ४६ ॥

सो हे महाबली ! तुमने मुझे अपने पराक्रम से जीत लिया । महाकपीश्वर ! मैं जो अब यथार्थ वृत्तान्त कहती हूँ, उसे तुम सुनो ॥ ४६ ॥

स्वयंभुवा पुरा दत्तं वरदानं यथा मम ।
यदा त्वां वानरः कश्चिद्विक्रमाद्वशमानयेत् ॥ ४७ ॥

---

१ समये—स्त्रीवधवर्जनव्यवस्थायां । (गो०)

ब्रह्मा जी ने प्राचीनकाल में मुझको यह वरदान दिया था कि, जब तुझको कोई वानर परास्त करे॥ ४७॥

तदा त्वया हि विज्ञेयं रक्षसां भयमागतम्।
स हि मे समयः सौम्य प्राप्तोऽद्य तव दर्शनात्॥ ४८॥

तब तू जान लेना कि, अब राक्षसों के ऊपर विपत्ति आ पहुँची। सो हे सौम्य! तुम्हारे दर्शन से आज मेरा वह समय आ गया॥ ४८॥

स्वयंभूविहितः सत्यो न तस्यास्ति व्यतिक्रमः।
सीतानिमित्तं राज्ञस्तु रावणस्य दुरात्मनः।
रक्षसां चैव सर्वेषां विनाशः समुपस्थितः॥ ४९॥

क्योंकि ब्रह्मा की कही बात सत्य है—उसमें तिल भर भी अंतर नहीं पड़ सकता। देखो, सीता के कारण इस दुष्ट रावण का तथा अन्य समस्त राक्षसों का विनाशकाल आ पहुँचा॥ ४९॥

तत्प्रविश्य हरिश्रेष्ठ पुरीं रावणपालिताम्।
विधत्स्व सर्वकार्याणि यानि यानीह वाञ्छसि॥ ५०॥

सो हे कपिश्रेष्ठ! तुम अब रावण द्वारा पालित इस पुरी में प्रवेश कर, जो कुछ करना चाहते हो, करो॥ ५०॥

प्रविश्य शापोपहतां हरीश्वरः।
पुरीं शुभां राक्षसमुख्यपालिताम्।
यदृच्छया त्वं जनकात्मजां सतीं
विमार्ग सर्वत्र गतो यथासुखम्॥ ५१॥

इति तृतीयः सर्गः॥

हे कपीश्वर ! शापोपहत, रावणपालित एवं सुन्दर इस लंकापुरी में मनमाना प्रवेश कर, तुम सर्वत्र ढूढ़ कर, सती सीता का पता लगाओ ॥ ५१ ॥

सुन्दरकाण्ड का तीसरा सर्ग पूरा हुआ ।

—:o:—

चतुर्थः सर्गः

—:※:—

स निर्जित्य पुरीं श्रेष्ठां लङ्कां तां कामरूपिणीम् ।
विक्रमेण महातेजा हनूमान्कपिसत्तमः ॥ १ ॥
अद्वारेण महाबाहुः प्राकारमभिपुप्लुवे ।
निशि लंका महासत्त्वो विवेश कपिकुञ्जरः ॥ २ ॥

महाबली, महाबाहु, महातेजस्वी, वानरश्रेष्ठ हनुमानजी ने, लंकापुरी की कामरूपिणी अधिष्ठात्री देवी को अपने पराक्रम से जीत कर, द्वार से न जा कर किन्तु कूद कर, परकोटे की दीवाल फाँदी और लंका में प्रवेश किया ॥ १ ॥ २ ॥

[नोट—द्वार से अर्थात् फाटक से हनुमान जी नहीं गए । इसका एक कारण तो यह था कि, उन्होंने पहरुए राक्षसों की निगाह बचाई दूसरे शास्त्र की आज्ञा भी है—कि विशेष समयों पर दूसरे राजा के ग्रामक अथवा नगर में फाटक से प्रवेश न करे । यथा:—

ग्रामं वा नगरं वापि पत्तनं वा परस्य हि ।
विशेषात्समये सौम्य न द्वारेणविशेन्नृप ॥]

प्रविश्य नगरीं लङ्कां कपिराजहितङ्करः ।
चक्रेऽथ पादं सव्यं च शत्रूणां स तु मूर्धनि ॥ ३ ॥

कपिराज सुग्रीव के हितैषी हनुमान जी ने लंकापुरी में प्रवेश करते ही शत्रु के सिर पर अपना बाँया पैर रखा ॥ ३ ॥

नोट—कहाँ कहाँ प्रथम वाम पैर रखना चाहिए ? यह बात बृहस्पति जी ने बतलाई है। यथा—

[प्रयाणकाले च गृहप्रवेशे विवाहकालेपि च दक्षिणाङ्घ्रिम्।
कृत्वाऽतः शत्रुपुरप्रवेशे वामं निदध्याच्चरणं नृपालः॥

अर्थात् राजा को उचित है कि यात्रा के समय, गृह-प्रवेश करते समय, विवाह-काल में तो दाहिने पैर से आगे बढ़े ; किन्तु शत्रु के नगर में प्रवेश करते समय प्रथम वाम चरण आगे रखे।]

प्रविष्टः सत्वसम्पन्नो निशायां मारुतात्मजः।
स महापथमास्थाय मुक्तापुष्पविराजितम्॥ ४॥

इस प्रकार महापराक्रमी पवननन्दन हनुमान जी रात के समय पुरी में प्रवेश कर, खिले हुए पुष्पों से सुशोभित राजमार्ग पर गमन करने लगे॥ ४॥

ततस्तु तां पुरीं लङ्कां रम्यामभिययौ कपिः।
हसितोद्घुष्टनिनदैस्तूर्यघोषपुरःसरैः॥ ५॥

रमणीक लंकापुरी में जाते समय, हनुमान जी ने लोगों के हँसने का तथा नगाड़ों के बजने का शब्द सुना॥ ५॥

वज्राकुशनिकाशैश्च वज्रजालविभूषितैः।
गृहमुख्यैः पुरी रम्या बभासे द्यौरिवाम्बुदैः॥ ६॥

हनुमान जी ने लंका में अनेक प्रकार के घर देखे। उन घरों में कोई तो वज्र के आकार का, कोई अङ्कुश के आकार का बना हुआ था। उनमें हीरे के जड़ाव के झरोखे बने हुए थे। उन प्रधान प्रधान घरों से उस रमणीकपुरी की ऐसी शोभा हो रही थी, जैसी शोभा मेघों से आकाश की हुआ करती है॥ ६॥

प्रजज्वाल तदा लङ्का रक्षोगणगृहैः शुभैः ।
सिताभ्रसदृशैश्चित्रैः पद्मस्वस्तिकसंस्थितैः ॥ ७ ॥

राक्षसों के सुन्दर गृहों से उस काल लंकापुरी खूब दमक रही थी। उन श्वेत एवं विशाल भवनों में से किसी की बनावट कमलाकार, किसी की स्वस्तिकाकार थी ॥ ७ ॥

[नोट—वराहमिहिर संहिता में पद्माकार स्वस्तिकाकार आदि गृहों के लक्षण दिए हुए हैं । विस्तारभय से उनका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया ।]

वर्धमानगृहैश्चापि सर्वतः सुविभूषिता ।
तां चित्रमाल्याभरणां कपिराजहितङ्करः ॥ ८ ॥

लंकापुरी सब ओर से वर्द्धमान संज्ञक गृहों से भी शोभायमान थी। उन घरों में जगह जगह फूलों की मालाएँ शोभा के लिए लटकाई गई थीं। सुग्रीव के हितैषी हनुमान इन घरों की सजावट देखते हुए चले जाते थे ॥ ८ ॥

राघवार्थं चरन्धीमान्ददर्श च ननन्द च ।
भवनाद्भवनं गच्छन्ददर्श पवनात्मजः ॥ ९ ॥
विविधाकृतिरूपाणि भवनानि ततस्ततः ।
शुश्राव मधुरं गीतं त्रिस्थानस्वरभूषितम् ॥ १० ॥

श्रीरामचन्द्र का कार्य पूरा करने के लिए, हनुमान जी लंकापुरी को देख प्रसन्न होते थे और जानकी जी को खोजने के लिए एक घर से दूसरे घर में जाते हुए, विविध आकार के घरों को देखते थे। उन भवनों में सुन्दर गाने का शब्द सुन पड़ता था। वह गान वक्षःस्थल, कंठ और मस्तक से निकलते हुए मन्द्र, मध्य और तार नामक स्वरों से युक्त था ॥ ९ ॥ १० ॥

स्त्रीणां *मदनविद्धानां दिवि चाप्सरसामिव ।
शुश्राव काञ्चीनिनदं नूपुराणां च निःस्वनम् ॥ ११ ॥
सोपाननिनदांश्चैव भवनेषु महात्मनाम् ।
आस्फोटितनिनादांश्च क्ष्वेडितांश्च ततस्ततः ॥ १२ ॥

स्वर्गवासिनी अप्सराओं की तरह काम से उन्मत्त हुई स्त्रियों के बिछुवे और करधनी की झनकार, जो स्त्रियों के सीढ़ियों पर चढ़ने उतने से होती थी—हनुमान जी वहाँ के बलवान् राक्षसों के घरों में सुनते जाते थे। कहीं कहीं तालियाँ बजाने और सिंहतुल्य दहाड़ने के शब्द भी सुन पड़ते थे ॥ ११ ॥ १२ ॥

शुश्राव जपतां तत्र मन्त्रान्रक्षोगृहेषु वै ।
[1]स्वाध्यायनिरतांश्चैव यातुधानान्ददर्श सः ॥ १३ ॥

हनुमान जी ने राक्षसों के भवनों में जप करने वाले राक्षसों द्वारा उच्चारित मन्त्रों को सुना और स्वाध्यायनिरत राक्षसों को देखा ॥ १३ ॥

रावणस्तवसंयुक्तान्गर्जतो राक्षसानपि ।
राजमार्गं समावृत्य स्थितं रक्षोबलं महत् ॥ १४ ॥

अनेक राक्षसों को रावण की प्रशंसा करते और गर्जते हुए देखा। राजमार्ग को घेरे हुए राक्षसों का एक बड़ा दल खड़ा हुआ था ॥१४॥

ददर्श मध्यमे गुल्मे[2] राक्षसस्य चराबन्हून् ।
दीक्षिताञ्जटिलान्मुण्डान्गोजिनाम्बरवाससः† ॥१५॥

१ स्वाध्यायनिरतान्—ब्रह्मभागपाठ निरतान् । (गो०) २ मध्यमेगुल्मे—नगरमध्यस्थितसैन्यसमाजे । (गो०) * पाठान्तरे—"मदसमृद्धानां ।"
† पाठान्तरे—"गोजिनाम्बरधारिणः ।"

नगर के बीच में सैनिकों की जो छावनी थी, उसमें हनुमान जी ने अनेक जासूसों को देखा। इनके अतिरिक्त वहाँ पर बहुत से गृहस्थ जटाधारी, मुडिया, बैल का चमड़ा वस्त्र की तरह ओढ़े हुए ॥ १५ ॥

दर्भमुष्टिप्रहरणानग्निकुण्डायुधांस्तथा ।
कूटमुद्गरपाणींश्च दण्डायुधधरानपि ॥ १६ ॥

कुश के मूठे से प्रहार करने वाले, मन्त्रों द्वारा अग्नि से कृत्या उत्पन्न करने वाले, कटीले मुगदर धारण करने वाले, डंडाधारी ॥ १६ ॥

एकाक्षानेककर्णांश्च चललम्बपयोधरान् ।
करालान्भुग्नवक्त्रांश्च विकटान्वामनांस्तथा ॥ १७ ॥

एक आँख वाले, अनेक कानों वाले, छाती पर लम्बे लटकते हुए स्तनों वाले, देखने में भयंकर, टेढ़े मुख वाले, विकट रूप धारी, बौने ॥ १७ ॥

धन्विनः खड्गिनश्चैव शतघ्नीमुसलायुधान् ।
परिघोत्तमहस्तांश्च विचित्रकवचोज्ज्वलान् ॥ १८ ॥

धनुषधारी, खड्गधारी शतघ्नी और मूसलधारी, परिघ को हाथ में लिये हुए और विचित्र चमकते हुए कवच पहिने हुए राक्षसों को हनुमान जी ने देखा ॥ १८ ॥

नातिस्थूलान्नातिकृशान्नातिदीर्घातिह्रस्वकान् ।
नातिगौरान्नातिकृष्णान्नातिकुब्जान्नवामनान् ॥ १९ ॥

वहाँ ऐसे भी सैनिक राक्षस थे, जो न तो मोटे और न दुबले थे ; न लंबे और ठिगने ही थे। न बहुत गोरे और न बहुत काले थे, न कुबड़े और न बौने ही थे ॥ १९ ॥

विरूपान्बहुरूपांश्च सुरूपांश्च सुवर्चसः ।
ध्वजिनःपताकिनश्चैव ददर्श विविधायुधान् ॥२०॥

बदसूरत भी थे, अनेक रूपधारी थे, खूबसूरत थे और तेजस्वी भी थे। कहीं कहीं ध्वजाधारी, पताकाधारी और अनेक आयुधों को धारण करने वाले सैनिक राक्षस भी थे ॥ २० ॥

शक्तिवृक्षायुधांश्चैव पट्टसाशनिधारिणः ।
क्षेपणीपाशहस्तांश्च ददर्श स महाकपिः ॥ २१ ॥

उनमें अनेक ऐसे राक्षसों को हनुमान जी ने देखा जो शक्ति, वृक्ष, पटा, वज्र, गुलेल और पाश धारण किए हुए थे ॥ २१ ॥

स्रग्विणः स्वनुलिप्तांश्च वराभरणभूषितान् ।
नानावेष[1] समायुक्तान्यथास्वैरगतान्बहून् ॥ २२ ॥

सब राक्षस माला धारण किए हुए, चंदन लगाए हुए और बढ़िया गहने और वस्त्र पहिने हुए थे। अनेक प्रकार के अलंकारों को धारण किए हुए अथ फैशन धारी राक्षसों को स्वतन्त्र विहार करते हुए (हनुमान जी ने देखा) ॥ २२ ॥

तीक्ष्णशूलधरांश्चैव वज्रिणश्च महाबलान् ।
शतसाहस्रमव्यग्रमारक्षं मध्यमं कपिः ॥ २३ ॥

लंका के मध्य भाग में एक लाख बलवान और सावधान राक्षस सैनिकों को, हाथों में पैने शूल और वज्र लिए हुए, हनुमान जी ने देखा ॥ २३ ॥

---

१ वेषः—अलंकारः । (गो०)

रक्षोधिपतिनिर्दिष्टं ददर्शान्तःपुराग्रतः ।
स तदा तद्गृहं दृष्ट्वा महाहाटकतोरणम् ॥ २४ ॥

राक्षसेन्द्रस्य विख्यातमद्रिमूर्ध्नि प्रतिष्ठितम् ।
पुण्डरीकावतंसाभिः परिखाभिः समावृतम् ॥ २५ ॥

फिर जब हनुमान जी रावण के रनवास में पहुँचे, तब वहाँ देखा कि, रावण की आज्ञा से, रनवास के सामने भी राक्षस सैनिकों का पहरा है । तदनन्तर हनुमान जी ने पर्वत के शिखर पर स्थित रावण का प्रसिद्ध भवन देखा । इस भवन का तोरण द्वार सुवर्ण का बना हुआ था और इस भवन के चारों ओर जल से भरी और कमलों से शोभित खाई थी ॥ २४ ॥ २५ ॥

प्राकारावृतमत्यन्तं ददर्श स महाकपिः ।
त्रिविष्टपनिभं दिव्यं दिव्यनादविनादितम् ॥ २६ ॥

खाई के बाद एक बड़ा ऊँचा परकोटा था । हनुमान जी ने रावण के भवन को स्वर्ग की तरह सुन्दर पाया । उस भवन में स्वर्गीय गाना बजाना हो रहा था ॥ २६ ॥

वाजिहेषितसंघुष्टं नादितं भूषणैस्तथा ।
रथैर्यानैर्विमानैश्च तथा गजहयैः शुभैः ॥ २७ ॥

भवन के द्वार पर घोड़े हिन हिना रहे थे, और वे जो आभूषण धारण किए हुए थे, उनकी झनकार भी हो रही थी । इनके अतिरिक्त विविध प्रकार के रथ आदि सवारियाँ, विमान और अच्छी नस्ल के हाथी और घोड़े भी मौजूद थे ॥ २७ ॥

वारणैश्च चतुर्दन्तैः श्वेताभ्रनिचयोपमैः ।
भूषितं रुचिरद्वारं मत्तैश्च मृगपक्षिभिः ॥ २८ ॥

भवन के द्वार की शोभा बढ़ाने के लिए सफेद बादल जैसे चार दाँतों वाले बड़े डीलडौल के सफेद हाथी और अनेक प्रकार के मत्त मृग और पक्षी भी थे ॥२८॥

रक्षितं सुमहावीर्यैर्यातुधानैः सहस्रशः ।
राक्षसाधिपतेर्गुप्तमाविवेश *गृहं कपिः ॥ २९ ॥

जिस राजभवन की रखवाली के लिए हज़ारों महाबली और पराक्रमी राक्षस नियुक्त थे, उसके भीतर हनुमानजी ने प्रवेश किया ॥२९॥

सहेमजाम्बूनदचक्रवालं[1]
महार्हमुक्तामणिभूषितान्तम् ।
परार्ध्यकालागुरुचन्दनाक्तं
स रावणान्तःपुरमाविवेश ॥ ३० ॥

इति चतुर्थः सर्गः ॥

रावण के भवन का परकोटा विशुद्ध उत्तम सुवर्ण का बना हुआ था और उसमें यथास्थान बड़े-बड़े मूल्यवान मोती और मणियों के नग जड़े हुए थे। रावण का अन्तःपुर सदा चन्दन, गुग्गुल आदि सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित रहता था। ऐसे राजभवन में हनुमानजी ने प्रवेश किया ॥३०॥

सुन्दरकाण्ड का चौथा सर्ग पूरा हुआ

---

१ चक्रवालं—प्राकारमण्डलं। (गो०) *पाठान्तरे—"महाकपि।"

पञ्चमः सर्गः

—:※:—

ततः स मध्यं गतमंशुमन्तं
ज्योत्स्नावितानं महदुद्वमन्तम् ।
ददर्श धीमान्दिवि भानुमन्तं
गोष्ठे वृषं मत्तमिव भ्रमन्तम् ॥ १ ॥

हरिगीतिका

नभमधि प्रकाशित तेज-धर ससि चन्द्रिकहिं फैलावतो ।
अति दिपत जिमि वृष मत्त घूमत गोठ मैं छबि छावतो ॥१॥

लोकस्य पापानि[1] विनाशयन्तं
महोदधिं चापि समेधयन्तम् ।
भूतानि सर्वाणि विराजयन्तं[2]
ददर्श शीतांशुमथाभियान्तम् ॥ २ ॥

नासत जगत-दुख और पारावार परम बढ़ावतो ।
जीवन प्रकासित करत हिमकर लख्यो नभ मधि आवतो ॥२॥

या भाति लक्ष्मीर्भुवि मन्दरस्था
तथा प्रदोषेषु च सागरस्था ।
तथैव तोयेषु च पुष्करस्था
रराज सा चारुनिशाकरस्था ॥ ३ ॥

---

१ पापनि—दुःखानि । (गो०) २ विराजयन्तं—प्रकाशयन्तं । (शि०)

छबि लसत मन्दर भूमि जो परदोस में सागर लसै ।
जो नीर मथि नीरजन में सो सुछबि हिमकर में बसै ॥३॥

हंसो यथा राजतपञ्जरस्थः
सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः ।
वीरो यथा गर्वितकुञ्जरस्थ-
श्चन्द्रोऽपि बभ्राज तथाऽम्बरस्थः ॥ ४ ॥

जिमि रजत पिंजर हंस केहरि बसत मन्दर माहिं ज्यों ।
जिमि वीर कुंजर बैठि हिमकर लसत अम्बर माहिँ त्यों ॥४॥

स्थितः ककुद्मानिव तीक्ष्णशृङ्गो
महाचलः श्वेत इवोच्चशृङ्गः ।
हस्तीव जाम्बूनदबद्धशृङ्गो[१]
विभाति चन्द्रः परिपूर्णशृङ्गः ॥ ५॥

जिमि वृषभ तीछन-सृङ्ग गिरिवर सेतसृङ्गन सोहई ।
गज हेमभूषित तथा पूरन कला सों ससि छबि भई ॥५॥

विनष्टशीताम्बुतुषारपङ्को
महाग्रहग्राहविनष्टपङ्कः ।
प्रकाशलक्ष्म्याश्रयनिर्मलाङ्को
रराज चन्द्रो भगवाञ्शशाङ्कः ॥ ६ ॥

तम सीत जल अरु तुहिन को रवि किरन कीनो नास है ।
निरमल कलंकहु तेज सों अति ससि करत परकास है ॥६॥

---

१ जाम्बूनदबद्धशृङ्गो—सुवर्णबद्धदन्तः । (शि०)

शिलातलं प्राप्य यथा मृगेन्द्रो
महारणं प्राप्य यथा गजेन्द्रः ।
राज्यं समासाद्य यथा नरेन्द्रः-
तथा प्रकाशो विरराज चन्द्रः ॥ ७ ॥

जिमि पाइ केहरि सिलातल कों महारन कौं गज जथा ।
जिमि राज लहि राजा लसत परकास-मय हिमकर तथा ॥७॥

प्रकाशचन्द्रोदयनष्टदोषः
प्रवृद्धरक्षःपिशिताशदोषः ।
रामाभिरामेरितचित्तदोषः
स्वर्गप्रकाशो भगवान्प्रदोषः ॥ ८ ॥

ससि तेज तम दुरि बढ्यो आमिढ-भाखन रजनीचरन को ।
रमनी-प्रनय-कलहहिँ दुराइ प्रदोस है सुखकरन को॥८॥

तन्त्रीस्वनाः कर्णसुखाः प्रवृत्ताः
स्वपन्ति नार्यः पतिभिः सुवृत्ताः ।
नक्तंचराश्चापि तथा प्रवृत्ता
विहर्तुमत्यद्भुतरौद्रवृत्ताः ॥ ९ ॥

सोईँ लपटि तिय पियन कानहुँ बीन-सुर-सुख सों पगे ।
अति क्रूर अद्भुत चरित निसिचर-गन सबै बिहरन लगे ॥९॥

मत्तप्रमत्तानि समाकुलानि
रथाश्वभद्रासनसङ्कुलानि ।

वीरश्रिया चापि समाकुलानि
दर्दश धीमान्स कपिः कुलानि ॥१०॥

मदमत्त रजनीचर सुरथ हय हेम आसन सों भर्‌यो ।
बर बीर-सोभाजुत निसाचर-कुलहिं अवलोकन कर्‌यो ॥१०॥

परस्परं चाधिकमाक्षिपन्ति
भुजांश्च पीनानधिविक्षिपन्ति ।
मत्तप्रलापानधिविक्षिपन्ति*
मत्तानि चान्योन्यमधिक्षिपन्ति ॥११॥

कोऊ बिवादहिँ करत आपुस माहिँ भुजहिँ लड़ावते ।
ह्वै मत्त करत प्रलाप इक कों एक डपटि डरावते ॥११॥

रक्षांसि वक्षांसि च विक्षिपन्ति
गात्राणि कान्तासु च विक्षिपन्ति ।
रूपाणि चित्राणि च विक्षिपन्ति
दृढानि चापानि च विक्षिपन्ति ॥१२॥

उर सों मिलावत उर बदन कोउ तियन सों लपटावते ।
कोउ सँवारत अंग निज कोउ धनुष टनकावते ॥१२॥

दर्दश कान्ताश्च †समालपन्त्य-
स्तथापरास्तत्र पुनः स्वपन्त्यः ।
सुरूपवक्त्राश्च तथा हसन्त्यः
क्रुद्धाः पराश्चापि विनिःश्वसन्त्यः ॥१३॥

* पाठान्तरे—"मत्तप्रलापानधिकं क्षिपन्ति ।" †पाठान्तरे—"समालभन्त्यः ।"

ता ठाम कोउ सोए कोऊ प्यारिन सिँगारहिं चोप सों ।
सुन्दर-बदन कोउ हँसत लेत उसाँस कोऊ कोप सों ॥१३॥

महागजैश्चापि तथा नदद्भिः
सुपूजितैश्चापि तथा सुसद्भिः ।
रराज वीरैश्च विनिःश्वसद्भि-
र्ह्रदो भुजङ्गैरिव निश्वसद्भिः ॥१४॥

गज नदत कहुँ सज्जन सुपूजित बसत सोभा धारते ।
कहुँ बीर लेत उसाँस मनु सर में सरप फुँफकारते ॥१४॥

बुद्धिप्रधानान्रुचिराभिधाना-
न्संश्रद्दधानाञ्जगतः प्रधानान् ।
नानाविधानान्रुचिराभिधानान्-
ददर्श तस्यां पुरि यातुधानान ॥१५॥

बोलत मधुर श्रद्धालु बुद्धि-प्रधान जगत-प्रधान ते ।
नाना बिधिन के जातुधान बने रुचिर-अभिधान ते ॥१५॥

ननन्द दृष्ट्वा च स तान्सुरूपान-
नानागुणानात्मगुणानुरूपान् ।
विद्योतमानान्स तदानुरूपा-
न्ददर्श कांश्चिच्च पुनर्विरूपान् ॥१६॥

हरष्यो निरखि अनुरूप गुन के वपु बिबिध सोहने ।
कोऊ कुरूपहु निज तेज सों लखि परैं जनु सुन्दर बने ॥१६॥

ततो वरार्हाः सुविशुद्धभावा-
स्तेषां स्त्रियस्तत्र महानुभावाः ।

प्रियेषु पानेषु च सक्तभावा
दद‌र्श तारा इव सुप्रभावाः ॥१७॥

भूषन धरे कल-भाव की तिन नारि परम प्रभाव की ।
आसक्त प्रिय अरु पान में तारा सरिस सुप्रभाव की ॥१७॥

श्रिया ज्वलन्तीस्त्रपयोपगूढा
निशीथकाले रमणोपगूढाः ।
ददर्श काश्चित्प्रमदोपगूढा
यथा विहङ्गाः कुसुमोपगूढाः ॥१८॥

छबि सों दिपत कोउ लजत आधी रात रमत उमङ्ग सों ।
सुन्दरिन निरख्यो मनहुँ बिहँगी लपटि रहीं बिहङ्ग सों ॥१८॥

अन्याः पुनर्हर्म्यतलोपविष्टाः
तत्र प्रियाङ्केषु सुखोपविष्टाः ।
भर्तुः प्रिया धर्मपरा निविष्टा
ददर्श धीमान्मदनाभिविष्टाः ॥१९॥

कोऊ महल के छतन बैठीं अंक में निज पियन के ।
पतिव्रता धर्मव्रता मदन-बेधित हृदय कोउ तियन के ॥१९॥

अप्रावृताः काञ्चनराजिवर्णाः
काश्चित्परार्ध्यास्तपनीयवर्णाः ।
पुनश्च काश्चिच्छशलक्ष्मवर्णाः
कान्तप्रहीणा रुचिराङ्गवर्णाः ॥२०॥

कञ्चनच्छदनि बिनु ओढ़ने कोउ तप्त-सुबरन बरन की।
प्रिय सों मिलत कोउ सुन्दरी तहँ चन्द्रमा सम-बदन की ॥२०॥

ततः प्रियान्प्राप्य मनोभिरामान्
सुप्रीतियुक्ताः सुमनोभिरामाः।
गृहेषु हृष्टाः परमाभिरामा
हरिप्रवीरः स ददर्श रामाः ॥२१॥

निज पियन पाइ सनेह बस अभिराम कुसुमन सों बनी।
गृह मैं मुदित छबि धाम नारिन लखेउ कपि सोभा-सनी ॥२१॥

चन्द्रप्रकाशाश्च हि वक्त्रमालाः
वक्राक्षिपक्ष्माश्च सुनेत्रमालाः।
विभूषणानां च ददर्श मालाः
शतहृदानामिव चारुमालाः ॥२२॥

कल-नयन टेढ़ी-भौंहँ जुत तिन बदन ससि सम सोहते।
भूषन सजे-बिजुरीन की अवली सरिस मन मोहते ॥२२॥

न त्वेव सीतां परमाभिजातां
पथि स्थिते राजकुले प्रजाताम्।
लतां प्रफुल्लामिव साधु जातां
ददर्श तन्वीं मनसाऽभिजाताम् ॥२३॥

मन सों विधाता ने सृजी फूली लता सम सुन्दरी।
जनमी सनातन-राज-कुल सीता न पै तहँ लखि परी ॥२३॥

सनातने वर्त्मनि सन्निविष्टां
रामेक्षणां तां मदनाभिविष्टाम्।

भर्तुर्मनः श्रीमदनुप्रविष्टां
स्त्रीभ्यो वराभ्यश्च सदा विशिष्टाम् ॥ २४ ॥

तापित मदन सों थित सनातन धरम ध्यावत राम कों ।
निज स्वामि मन पैठी मनहुँ उत्कृष्ट सब स्त्री बाम सों ॥२४॥

तृष्णार्दितां सानुसृतास्रकण्ठीं
पुरा वरार्होत्तमनिष्ककण्ठीम् ।
सुजातपक्ष्मामभिरक्तकण्ठीं
वने प्रनृत्तामिव नीलकण्ठीम् ॥ २५ ॥

बर-कण्ठ भूषन जोग आँसुन सिँच्यो तापित बिरहिनी ।
कल-भौंह कोमल-कण्ठ की बन माहिं मनहुँ मयूरिनी ॥२५॥

अव्यक्तरेखामिव चन्द्ररेखां
पांसुप्रदिग्धामिव हेमरेखाम् ।
क्षतप्ररूढामिव बाणरेखां
वायुप्रभिन्नामिव मेघरेखाम् ॥ २६ ॥

रज धूसरित जिमि हेमरेखा ससिकला धूमिल भई ।
कृत बान के आघात को घन-अवलि बायु बिखरि गई ॥२६॥

सीतामपश्यन्मनुजेश्वरस्य
रामस्य पत्नीं वदतां वरस्य ।
बभूव दुःखाभिहतश्चिरस्य
प्लवङ्गमो मन्द इवाचिरस्य ॥ २७ ॥

इति पञ्चमः सर्गः ॥

दोहा

तिमि मनुजाधिप राम की तिय सिय निरख्यो नाहिँ ।
भयो मन्दमति सम दुखित कपिवर निज मन माहिँ ॥२७॥

[नोट—यह कविता काशीवासी बा० कृष्णचन्द्र कृत "वाल्मीकीय सुन्दरकाण्ड के पद्यानुवाद" से उद्धृत की गयी है ।]

सुन्दरकाण्ड का पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—:❋:—

षष्ठः सर्गः

—:o:—

स निकामं विमानेषु विषण्णः कामरूपधृत् ।
विचचार *कपिर्लङ्कां लाघवेन समन्वितः ॥ १ ॥

अपनी इच्छानुसार रूप धारण किए कपिश्रेष्ठ हनुमान, विषादित हो, जल्दी जल्दी अटारियों पर चढ़ चढ़ कर, लंकापुरी में विचरने लगे ॥१॥

आससादाथ लक्ष्मीवान्राक्षसेन्द्रनिवेशनम् ।
प्राकारेणार्कवर्णेन भास्वरेणाभिसंवृतम् ॥ २ ॥

वे राक्षसराज रावण के भवन के समीप पहुँचे । वह राजभवन सूर्य सदृश चमकीले परकोटे से घिरा हुआ था ॥२॥

*पाठान्तरे—"पुनर्लङ्कां ।"

रक्षितं* राक्षसैर्भीमैः सिंहैरिव महद्वनम् ।
समीक्षमाणो भवनं [1]चकाशे कपिकुञ्जरः ॥ ३ ॥

जिस प्रकार सिंहों से कोई महावन रक्षित होता है, उसी प्रकार वह राजभवन बड़े बड़े राक्षसों से रक्षित था । उस राजभवन की बनावट और सजावट देख हनुमान जी प्रसन्न हो गए ॥३॥

रूप्यकोपहितैश्चित्रैस्तोरणैर्हेमभूषितैः ।
विचित्राभिश्च कक्ष्याभिर्द्वारैश्च रुचिरैर्वृतम् ॥ ४ ॥

उस राजभवन का तोरणद्वार चांदी का था और चांदी के ऊपर सोने का काम किया गया था । उस भवन की ड्योढ़ियाँ तरह तरह की बनी हुई थीं । वहाँ की भूमि और दरवाज़े विविध प्रकार के बने थे । वे देखने में सुन्दर और भवन की शोभा बढ़ा रहे थे ॥४॥

गजास्थितैर्महामात्रैः[2] शूरैश्च विगतश्रमैः ।
उपस्थितमसंहार्यैर्हयैः[3] स्यन्दनयायिभिः ॥ ५ ॥

वहाँ पर श्रमरहित (अथवा शीघ्र न थकने वाले) शूरवीर और हाथियों पर चढ़े हुये महावत, मौजूद थे । ऐसे वेगवान कि, जिनका वेग कोई रोक न सके, रथों में जोते जाने वाले ऐसे घोड़े भी वहाँ उपस्थित थे ॥५॥

सिंहव्याघ्रतनुत्राणैर्दान्तकाञ्चनराजतैः ।
घोषवद्भिर्विचित्रैश्च सदा विचरितं रथैः ॥ ६ ॥

---

१ चकाशे—जहर्षेत्यर्थः । (गो०) २ महामात्रैर्हस्तिपकैः । (रा०)
३ असंहार्यैः—प्रतिहतवेगैः (रा०) *पाठान्तरे—'राक्षसैर्घोरैः ।'

सिंह और व्याघ्र के चर्म को धारण किए हुए; सोने, चाँदी और हाथीदाँत के खिलौने से सुसज्जित तथा गम्भीर शब्द करने वाले विचित्र रथ, भवन के चारों ओर (रक्षा के लिए) घूमा करते थे ॥६॥

बहुरत्नसमाकीर्णं परार्ध्यासनभाजनम् ।
*महारथसमावापं महारथमहास्वनम् ॥ ७ ॥

वहाँ पर विविध प्रकार के श्रेष्ठ अनेक रत्नजटित मूढ़े, कुर्सी आदि रखे हुए शोभा दे रहे थे। वहाँ पर बड़े बड़े महारथियों के रहने के मकान (बारकें) बने हुए थे और वहाँ सदा महारथियों का सिंहनाद हुआ करता था। अर्थात् राजभवन के पहरे पर बड़े बड़े महारथी नियुक्त थे ॥७॥

[नोट—महारथी का लक्षण यह बतलाया गया है:—

एकादश सहस्राणि योधयेद्यस्तु धन्विनाम् ।
अस्त्रशस्त्रप्रवीणश्च स महारथ उच्यते ॥

अर्थात् महारथी उसे कहते हैं जो ११ हज़ार अस्त्र-शस्त्र चलाने में पटु धनुर्धर योद्धाओं से युद्ध करे।]

दृश्यैश्च १परमोदारैस्तैस्तैश्च मृगपक्षिभिः ।
विविधैर्बहुसाहस्रैः परिपूर्णं समन्ततः ॥ ८ ॥

वह राजभवन बड़े डीलडौल के और देखने योग्य सहस्रों पक्षियों और मृगों से भरा हुआ था ॥८॥

विनीतैरन्तपालैश्च२ रक्षाभिश्च सुरक्षितम् ।
मुख्याभिश्च वरस्त्रीभिः परिपूर्णं समन्ततः ॥ ९ ॥

---

१ परमोदारैः—अतिमहद्भिः। (शि०) २ अन्तपालैः—बाह्यरक्षिभिः (गो०) *पाठान्तरे—"महारथसमावास।"

विनीत और बाहिर की रक्षा करने वाले राक्षसों द्वारा, उस राजभवन की रखवाली की जाती थी और अत्यन्त सुन्दर स्त्रियों से वह राजभवन ही भरा पुरा था ॥९॥

मुदितप्रमदारत्नं राक्षसेन्द्रनिवेशनम् ।
वराभरणसंह्रादैः समुद्रस्वननिःस्वनम् ॥ १० ॥

प्रसन्नवदना स्त्रीरत्नों के सुन्दर आभूषणों की मधुर झनकार से रावण का राजभवन समुद्र की तरह (सदा) प्रतिध्वनित हुआ करता था ॥१०॥

तद्राजगुणसम्पन्नं[1] मुख्यैश्चागुरचन्दनैः ।
महाजनैः समाकीर्णं सिंहैरिव महद्वनम् ॥ ११ ॥

वह सुगन्धित धूपादि मुख्य मुख्य राजोपचारोपयुक्त सामग्रियों से परिपूर्ण था । जिस प्रकार महावन में सिंह हैं, उसी प्रकार उस भवन में मुख्य मुख्य राक्षस रहा करते थे ॥११॥

भेरीमृदङ्गाभिरुतं शङ्खघोषविनादितम् ।
नित्यार्चितं पर्वहुतं पूजितं राक्षसैः सदा ॥ १२ ॥

वह भेरी, मृदंग और शङ्ख के शब्दों से प्रतिध्वनित हुआ करता था । तथा उस भवन में नित्य अर्चन हुआ करता था और पर्व-दिवसों के अवसर पर राक्षसों द्वारा हवनादि भी हुआ करते थे ॥१२॥

समुद्रमिव गम्भीरं समुद्रमिव निःस्वनम् ।
महात्मनो महद्वेश्म महारत्नपरिच्छदम् ॥ १३ ॥

---

१ राजगुणसम्पन्नः—राजोपचारैर्धूपादिभिः सम्पन्नं ।(गो॰)

महारत्नसमाकीर्णं ददर्श स महाकपिः ।
विराजमानं वपुषा गजाश्वरथसङ्कुलम् ॥ १४ ॥

(कभी कभी) रावण के डर के मारे राजभवन समुद्र की तरह गम्भीर और निःशब्द भी हो जाया करता था। अर्थात् वहाँ कोलाहल नहीं होने पाता था। उत्तम उत्तम सामग्री से तथा भरे हुए उत्तम रत्नों से रावण के विशाल राजभवन को हनुमान जी ने देखा। उस भवन में जहाँ तहाँ गज, अश्व और रथ मौजूद थे ॥१३॥१४॥

लङ्काभरणमित्येव सोऽमन्यत महाकपिः ।
चचार हनुमांस्तत्र रावणस्य समीपतः ॥ १५ ॥

हनुमान जी ने उस राजभवन को लंकापुरी का भूषण समझा। वे अब उस स्थान पर गए, जहाँ रावण सो रहा था ॥१५॥

गृहाद्गृहं राक्षसानामुद्यानानि च वानरः ।
वीक्षमाणो ह्यसंत्रस्तः प्रासादांश्च चचार सः ॥ १६ ॥

हनुमान जी राक्षसों के एक घर से दूसरे घर में तथा उनके उद्यानों में जा जा कर, सीता को ढूढ़ रहे थे। भवनों में निर्भय हो घूम फिर रहे थे ॥१६॥

अवप्लुत्य महावेगः प्रहस्तस्य निवेशनम् ।
ततोऽन्यत्पुप्लुवे वेश्म महापार्श्वस्य वीर्यवान् ॥ १७ ॥

महावेगवान् हनुमान जी कूद कर प्रहस्त के भवन में घुसे। वहाँ से कूद कर, महाबली महापार्श्व के घर में गए ॥१७॥

अथ मेघप्रतीकाशं कुम्भकर्णनिवेशनम् ।
विभीषणस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः ॥ १८ ॥

तदनन्तर वे कुम्भकर्ण के मेघ सदृश विशाल भवन में गए। वहाँ से छलांग मार वे विभीषण के घर पर पहुँचे ॥१८॥

महोदरस्य च गृहं विरूपाक्षस्य चैव हि ।
विद्युज्जिह्वस्य भवनं विद्युन्मालेस्तथैव च ॥ १९ ॥
वज्रदंष्ट्रस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः ।
शुकस्य च *महावेगः सारणस्य च धीमतः ॥२०॥

तदनन्तर क्रमशः उन्होंने महोदर, विरूपाक्ष, विद्युज्जिह्व, विद्युन्माली, वज्रदंष्ट्र, महावेगवान शुक और बुद्धिमान् सारण के घरों की तलाशी ली ॥१९॥२०॥

तथा चेन्द्रजितो वेश्म जगाम हरियूथपः ।
जम्बुमालेः सुमालेश्च जगाम †भवनं ततः ॥ २१ ॥

तदनन्तर वे वानरयूथपति हनुमान जी इन्द्रजीत—मेघनाद के घर में गए। वहाँ से वे जम्बुमाली, सुमाली के भवनों में गए ॥२१॥

रश्मिकेतोश्च भवनं सूर्यशत्रोस्तथैव च ।
वज्रकायस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः ॥२२ ॥

हनुमान जी कूदकर रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु और वज्रकाय के घरों में गये ॥२२॥

---

*पाठान्तरे—"महातेजाः।" †पाठान्तरे—"हरिसत्तमः।"

धूम्राक्षस्याथ सम्पातेर्भवनं मारुतात्मजः ।
विद्युद्रूपस्य भीमस्य घनस्य विघनस्य च ॥ २३ ॥

पवननन्दन हनुमान जी ने धूम्राक्ष, सम्पाति, विद्युद्रूप, भीम, घन और विघन के घरों को ढूँढ़ा ॥२३॥

शुकनासस्य वक्रस्य शठस्य विकटस्य च ।
ह्रस्वकर्णस्यदंष्ट्रस्य रोमशस्य च रक्षसः ॥ २४ ॥

फिर शुकनास, वक्र, शठ, विकट, ह्रस्वकर्ण, दंष्ट्र, रोमस राक्षस के घरों को देखा ॥२४॥

युद्धोन्मत्तस्य मत्तस्य ध्वजग्रीवस्य *रक्षसः ।
विद्युज्जिह्वेन्द्रजिह्वानां तथा हस्तिमुखस्य च ॥ २५ ॥

फिर वे युद्धोन्मत्त, मत, ध्वजग्रीव, विद्युज्जिह्व, इन्द्रजिह्व और हस्तिमुख नामक राक्षसों के घरों में गये ॥२५॥

करालस्य पिशाचस्य शोणिताक्षस्य चैव हि ।
क्रममाणः क्रमेणैव हनुमान्मारुतात्मजः ॥ २६ ॥

फिर पवननन्दन हनुमान जी क्रमशः कराल, पिशाच,, शोणिताक्ष के घरों में गये ॥२६॥

तेषु तेषु महार्हेषु भवनेषु महायशाः ।
तेषामृद्धिमतामृद्धिं ददर्श स महाकपिः ॥ २७ ॥

इन सब बड़े भवनों में जाकर, ऋद्धिशाली राक्षसों की समृद्धिशालीनता हनुमान जी ने देखी ॥२७॥

पाठान्तरे—"नादिनः" "वा सादिनः"

सर्वेषां समतिक्रम्य भवनानि महायशाः* ।
आससादाथ लक्ष्मीवान्राक्षसेन्द्रनिवेशनम् ॥ २८ ॥

इन सब भवनों में होते हुए बड़े यशस्वी हनुमान जी, प्रतापी राक्षसराज रावण के भवन में पहुँचे ॥ २८ ॥

रावणस्योपशायिन्यो ददर्श हरिसत्तमः ।
विचरन्हरिशार्दूलो राक्षसीर्विकृतेक्षणाः ॥ २९ ॥

हनुमान जी ने वहाँ जा कर देखा कि, रावण पड़ा सो रहा है। राजभवन में घूमते हुए हनुमान जी ने बड़ी भयङ्कर सूरत वाली राक्षसियों को रावण के शयनगृह की रक्षा करते हुए देखा ॥ २९ ॥

शूलमुद्गरहस्ताश्च शक्तितोमरधारिणीः ।
ददर्श विविधान्गुल्मांस्तस्य रक्षःपतेर्गृहे ॥ ३० ॥

वे हाथों में त्रिशूल, मुग्दर, शक्ति, तोमर लिये हुए थीं। हनुमान जी ने रावण के घर में विविध सूरत शक्क की और विविध प्रकार के आयुधों को लिए राक्षसियों के दलों को देखा ॥ ३० ॥

[नोट—" गुल्म " का अर्थ दल अथवा टोली है । इसे दस्ता भी कह सकते हैं। ऐसे प्रत्येक दल या दस्ते में ९ हाथी, ९ रथ, २७ घोड़े और ४५ पैदल हुआ करते थे ।]

राक्षसांश्च महाकायान्नानाप्रहरणोद्यतान् ।
रक्ताञ्श्वेतान्सि[1]तांश्चापि हरींश्चापि महाजवान् ॥ ३१ ॥
कुलीनान्रूपसम्पन्नान्गजान्परगजारुजान् ।
निष्ठितान्गजशिक्षायामैरावतसमान्युधि ॥ ३२ ॥

१ सितान्—बद्धान् । (गो०) * पाठान्तरे—" समन्ततः " ।

निहन्तॄन्परसैन्यानां गृहे तस्मिन्ददर्श सः ।
क्षरतश्च यथा मेघान्स्रवतश्च यथा गिरीन् ॥ ३३ ॥
मेघस्तनितनिर्घोषान्दुर्धर्षान्समरे परैः ।
सहस्रं* वाजिनां तत्र जाम्बूनदपरिष्कृतम्† ॥ ३४ ॥
ददर्श राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य निवेशने ।
शिबिका विविधाकाराः स कपिर्मारुतात्मजः ॥ ३५ ॥

इन पहरेवालियों के अतिरिक्त वहाँ पर विशालकाय और शस्त्रधारण किए हुए राक्षस भी थे और लाल और सफेद रंग के घोड़े भी बँधे हुए थे। कुलीन और सुन्दर हाथियों को, जो शत्रु के हाथियों को मारने वाले, शिक्षित, रण में ऐरावत के तुल्य शत्रु-सैन्य का नाश करने वाले, मेघों की तरह मद को चुआने वाले अथवा झरने की तरह मद की धारा को बहाने वाले, मेघों की तरह चिंघारने वाले थे और युद्ध में शत्रु से दुर्धर्ष थे, देखे। हनुमान जी ने कलाबत्तू के सामान से सजी हुई घुड़सवार सेना भी राक्षसराज रावण के घर में देखी। पवननन्दन हनुमान जी ने विविध प्रकार की पालकियाँ भी देखीं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

हेमजालपरिच्छन्नांस्तरुणादित्यवर्चसः ।
लतागृहाणि चित्राणि चित्रशालागृहाणि च ॥ ३६ ॥
क्रीडागृहाणि चान्यानि दारुपर्वतकानपि ।
कामस्य गृहकं रम्यं दिवागृहकमेव च ॥ ३७ ॥

---

* पाठान्तरे—" वाहिनीस्तत्र । " † पाठान्तरे—" परिष्कृताः । "

ददर्श राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य निवेशने ।
स मन्दरगिरिप्रख्यं मयूरस्थानसङ्कुलम् ॥ ३८ ॥

ये पालकियाँ सुवर्ण की जालियों से भूषित, मध्याह्न के सूर्य की तरह चमचमाती थीं। हनुमान जी ने राक्षसेन्द्र रावण के भवन में अनेक चित्र विचित्र लतागृह, चित्रशालाएँ, क्रीडागृह, काठ के पहाड़, रतिगृह और दिन में विहार करने के गृह देखे। उस भवन में एक स्थान मन्दराचल की तरह विशाल था, जिस पर मोरों के रहने के स्थान बने हुए थे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

ध्वजयष्टिभिराकीर्णं ददर्श भवनोत्तमम् ।
अनन्तरत्नसङ्कीर्णं निधिजालसमावृतम् ॥ ३९ ॥

और वहाँ ध्वजाएँ फहरा रही थीं। कहीं पर रत्नों के ढेर लगे हुए थे और कहीं पर विविध प्रकार का द्रव्य एकत्र था, (ऐसा सर्वश्रेष्ठ भवन हनुमान जी ने देखा) ॥ ३६ ॥

धीरनिष्ठितकर्मान्तं गृहं[1] भूतपतेरिव ।
अर्चिर्भिश्चापि रत्नानां तेजसा रावणस्य च ॥ ४० ॥
विरराजाथ तद्वेश्म रश्मिमानिव रश्मिभिः ।
जाम्बूनदमयान्येव शयनान्यासनानि च ॥ ४१ ॥
भाजनानि च* शुभ्राणि ददर्श हरियूथपः ।
मध्वासवकृतक्लेदं मणिभाजनसङ्कुलम् ॥ ४२ ॥

वहाँ पर निर्भीक, स्थिरचित्त या एकाग्र मन राक्षस उन निधियों की रक्षा कर रहे थे। उस घर की शोभा ऐसी हो रही

---

१ भूतपतेर्यक्षेश्वरस्य वा (रा०), ब्रह्मणः । (शि०) * पाठन्तरे— "मुख्यानि ।"

थी, जैसी कि, यक्षराज कुबेर के घर की होती है। रत्नों के प्रकाश और रावण के तेज से वह भवन ऐसा शोभित हो रहा था, जैसे सूर्य अपनी किरणों से शोभित होते हैं। वहाँ पर हनुमान जी ने ज़रदोजी के काम के उत्तमोत्तम विस्तरे तथा आसन और चाँदी के स्वच्छ बरतन देखे। मद्य और आसव से वह घर परिपूर्ण था अर्थात् उस घर में मदिरा और आसवों का कीचड़ हो रहा था और जगह जगह मणियों के बने (शराब पीने के) पात्र ढेर के ढेर इकट्ठे किए हुये थे ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

मनोरममसम्बाधं कुबेरभवनं यथा ।
नूपुराणां च घोषेण काञ्चीनां निनदेन च ।
मृदङ्गतलघोषैश्च घोषवद्भिर्विनादितम् ॥ ४३ ॥

उस घर में सब वस्तुएँ मनोहर और यथास्थान नियम से रखी हुई थीं। वह घर कुबेरभवन की तरह रमणीक था। कहीं नूपुरों की छम छम, कहीं करधनियों की झनकार, कहीं मृदङ्ग की गमक और कहीं ताल सुन पड़ता था। इस प्रकार के विविध शब्दों से वह घर नादित था ॥ ४३ ॥

प्रासादसङ्घातयुतं स्त्रीरत्नशतसङ्कुलम् ॥ ४४ ॥
सुव्यूढकक्ष्यं हनुमान्प्रविवेश महागृहम् ।

इति षष्ठः सर्गः ॥

भवन में अनेक अटारियाँ बनी हुई थीं, जिनमें सैकड़ों सुन्दरी स्त्रियाँ भरी पड़ी थीं। उस भवन की ड्योढ़ियाँ बड़ी मज़बूत बनी हुई थीं। ऐसे उस विशाल भवन में हनुमान जी गए ॥ ४४ ॥

सुन्दरकाण्ड का छठवाँ सर्ग पूर्ण हुआ।

सप्तमः सर्गः



[पुष्पक-विमान-वर्णन]

स वेश्मजालं बलवान्ददर्श
व्यासक्तवैडूर्यसुवर्णजालम् ।
यथा महत्प्रावृषि मेघजालं
विद्युत्पिनद्धं सविहङ्गजालम् ॥ १ ॥

बलवान हनुमान जी उन घरों के समूहों को देखते चले जाते थे, जिनमें पन्नों के और सोने के झरोखे बने हुए थे। उन घरों की वैसी ही शोभा हो रही थी, जैसी शोभा वर्षाकालीन मेघों की बिजुली और वकपंक्ति से होती है ॥ १ ॥

निवेशनानां विविधाश्च शालाः
प्रधानशङ्खायुधचापशालाः ।
मनोहराश्चापि पुनर्विशाला
ददर्श वेश्माद्रिषु चन्द्रशालाः ॥ २ ॥

उस विशाल भवन के भीतर रहने, बैठने, सोने आदि के लिए विविध दालान कोठे बने हुए थे। उनमें शङ्खों, शस्त्रों और धनुषों के रहने के कमरे बने हुए थे। उन पर्वताकार भवनसमूह के ऊपर बनी हुई अटारियों को, (जिनको चन्द्रशाला भी कहते हैं।) हनुमान जी ने देखा ॥ २ ॥

गृहाणि नानावसुराजितानि
देवासुरैश्चापि सुपूजितानि ।

सर्वैश्च दोषैः परिवर्जितानि
कपिर्ददर्श स्वबलार्जितानि ॥ ३ ॥

विविध प्रकार के द्रव्यों से परिपूर्ण, क्या देवता, क्या असुर सब से पूजित (अर्थात् क्या देवता और क्या असुर सभी इनमें रहने को लालायित रहते थे), समस्त दोषों से रहित और रावण के निज भुजबल से सम्पादित, इन भवनों को हनुमान जी ने देखा ॥ ३ ॥

तानि प्रयत्नाभिसमाहितानि
मयेन साक्षादिव निर्मितानि ।
महीतले सर्वगुणोत्तराणि
ददर्श लङ्काधिपतेर्गृहाणि ॥ ४ ॥

बड़े प्रयत्न और सावधानी से मानों साक्षात् मय नाम के दैत्य द्वारा निर्मित और इस भूमण्डल पर सब प्रकार से श्रेष्ठ, रावण के इन भवनों को हनुमान जी ने देखा ॥ ४ ॥

ततो ददर्शोच्छ्रितमेघरूपं
मनोहरं काञ्चनचारुरूपम् ।
रक्षोधिपस्यात्मबलानुरूपं
गृहोत्तमं ह्यप्रतिरूपरूपम् ॥ ५ ॥

ये अत्यन्त ऊँचे मेघाकार, मनोहर, सोने के बने राक्षसराज रावण के बल के अनुरूप और अनुपम उत्तम भवन थे ॥ ५ ॥

महीतले स्वर्गमिव प्रकीर्णं
श्रिया ज्वलन्तं बहुरत्नकीर्णम् ।

नानातरूणां कुसुमावकीर्णं
गिरेरिवाग्रं रजसावकीर्णम् ॥ ६ ॥

ये भवन मानों पृथिवी पर उतरे हुए स्वर्ग के समान कान्तिमान् और विविध प्रकार के बहुत से रत्नों से भरे हुए थे। इन विविध प्रकार के रत्नों से भरे होने के कारण, वे घर पुष्पों और पुष्पपराग से पूर्ण पर्वतशिखर जैसे जान पड़ते थे। ६ ॥

नारीप्रवेकैरिव[1] दीप्यमानं
तडिद्भिरम्भोदवदर्च्यमानम् ।
हंसप्रवेकैरिव वाह्यमानं
श्रिया युतं खे* सुकृतं विमानम् ॥ ७ ॥

राक्षसराज रावण का वह राजभवन श्रेष्ठ सुन्दरियों से वैसे ही जगमगा रहा था, जैसे बिजली से मेघघटा चमकती है अथवा पुण्यवान् जन का हंसयुक्त आकाशचारी विमान शोभयमान होता है ॥ ७ ॥

यथा नगाग्रं बहुधातुचित्रं
यथा नभश्च ग्रहचन्द्रचित्रम् ।
ददर्श युक्तीकृतमेघचित्रं
विमानरत्नं[2] बहुरत्नचित्रम् ॥ ८ ॥

जैसे अनेक रंग विरंगे धातुओं से पर्वतशिखर की शोभा होती है अथवा जैसे चन्द्रमा और ग्रहों से भूषित आकाश और

१—नारीप्रवेकैः—नारीश्रेष्ठैः। (गो० २ विमानरत्नं—पुष्पकं। गो०)

* पाठान्तरे—" सुकृतां।"

जैसे नाना रंगों से युक्त मेघों की घटा शोभित ज्ञान पड़ती है, वैसे ही रत्नजटित रावण का विचित्र पुष्पक नामक विमान हनुमान जी ने देखा ॥ ८ ॥

महीं[1] कृता[2] पर्वतराजिपूर्णा
शैलाः कृता वृक्षवितानपूर्णाः ।
वृक्षाः कृताः पुष्पवितानपूर्णाः
पुष्पं कृतं केसरपत्रपूर्णम् ॥ ९ ॥

इस विमान में अनेक जनों के बैठने की जो जगह (डेक) थी वह चित्र विचित्र चित्रकारी से चित्रित थी। उनमें नकली बैठकें, पर्वतों पर बनाई गयी थीं। उन पर्वतों के ऊपर नकली वृक्षों की छाया की हुई थी। वे वृक्ष खिले हुए फूलों से लदे हुए थे और उन पुष्पों से पराग झरा करता था ॥ ९ ॥

कृतानि वेश्मानि च पाण्डुराणि
तथा सुपुष्पाण्यपि पुष्कराणि ।
पुनश्च पद्मानि सकेसराणि
धन्यानि चित्राणि तथा वनानि ॥ १० ॥

उस विमान में सफेद रंग के बहुत से घर भी बने हुए थे। उन घरों में सुन्दर पुष्पयुक्त पुष्करिणी भी थीं। उन पुष्करिणियों में पराग सहित कमल के फूल खिल रहे थे। उन घरों में ऐसी चित्रकारियाँ की गई थीं जो सराहने योग्य थीं तथा जो उपवन बनाए गए थे वे भी देखते ही बन आते थे ॥ १० ॥

---

१ मही—यत्र पुष्पके मही अनेकजनानामाधारस्थानं (रा०)
२ पर्वतराजिपूर्णा—चित्ररूपेणलिखिता। (गो०)

पुष्पाह्वयं नाम विराजमानं
रत्नप्रभाभिश्च विवर्धमानम् ।
वेश्मोत्तमानामपि चोच्चमानं
महाकपिस्तत्र महाविमानम् ॥ ११ ॥

हनुमान जी ने वहाँ उस बड़े पुष्पक नामक विमान को देखा, जो रत्नों की प्रभा से दमक रहा था और ऊँचे से ऊँचे भवनों से भी बढ़ कर ऊँचा था ॥ ११ ॥

कृताश्च वैडूर्यमया विहङ्गा
रूप्यप्रवालैश्च तथा विहङ्गाः ।
चित्राश्च नानावसुभिर्भुजङ्गा
जात्यानुरूपास्तुरगाः शुभाङ्गाः ॥ १२ ॥

उस विमान में पन्नों के, चाँदी के और मूंगों के पक्षी और रंग बिरंगी धातुओं के बने हुए सर्प तथा उत्तम जाति के उत्तम अंगों वाले घोड़े भी बनाए गए थे ॥ १२ ॥

प्रवालजाम्बूनदपुष्पपक्षाः
सलीलमावर्जितजिह्मपक्षाः ।
कामस्य साक्षादिव भान्ति पक्षाः
कृता विहङ्गाः सुमुखाः सुपक्षाः ॥ १३ ॥

पक्षियों के परों पर मूंगे और सोने के फूल बने हुए थे। ये पक्षी अपने आप अपने पंखों को समेटते और पसारते थे। उन पक्षियों के पर व चोंचें बड़ी सुन्दर थीं। पंख तो उनके कामदेव के पंखों की तरह सुन्दर थे ॥ १३ ॥

नियुज्यमानास्तु गजाः सुहस्ताः
सकेसराश्चोत्पलपत्रहस्ताः ।
बभूव देवी च कृता सुहस्ता
लक्ष्मीस्तथा पद्मिनि पद्महस्ता ॥ १४ ॥

इनके अतिरिक्त कमलयुक्त तालाब में, कमल के फूल को हाथ में लिये लक्ष्मी जी और उनका अभिषेक करने में नियुक्त सुन्दर सूंड वाले हाथी, जिनकी सूंडों में केसर सहित कमल के पुष्प थे, बने हुए थे ॥ १४ ॥

इतीव तद्गृहमभिगम्य शोभनं
सविस्मयो नगमिव चारुशोभनम् ।
पुनश्च तत्परमसुगन्धि सुन्दरं
हिमात्यये नगमिव चारुकन्दरम् ॥ १५ ॥

हनुमान जी विस्मययुक्त हो सुन्दर कन्दरा की तरह शोभित स्थानों से युक्त उस भवन में गए। फिर यह भवन वसन्त ऋतु होने के कारण सुगंधित खोड़र युक्त वृक्ष की तरह सुवासित हो रहा था॥ १५ ॥

ततः स तां कपिरभिपत्य पूजितां
चरन्पुरीं दशमुखबाहुपालिताम् ।
अदृश्य तां जनकसुतां सुपूजितां
सुदुःखितः पतिगुणवेगनिर्जिताम् ॥ १६ ॥

हनुमान जी उस दसमुख रावण की भुजाओं से रक्षित, लङ्कापुरी में घूमे फिरे। किन्तु सुपूजिता एवं पति के गुणों पर मुग्धा

जानकी जी उनको दिखलाई न पड़ी। अतः वे अत्यन्त दुःखी हुए॥ १६॥

ततस्तदा[1] बहुविधभावितात्मनः
कृतात्मनो[2] जनकसुतां सुवर्त्मनः[3]।
अपश्यतोऽभवदतिदुःखितं मनः
सुचक्षुषः[4] प्रविचरतो महात्मनः॥ १७॥

इति सप्तमः सर्गः

तब अनेक चिन्ताओं से युक्त, सुन्दर नीति-मार्ग-वर्ती, एक बार देखने से ही वस्तु का बीजा वकुला तक जान लेने वाले, धैर्यवान् हनुमान जी, अनेक प्रयत्न करने पर भी और बहुत खोजने पर भी, जब सीता को न देख सके, तब वे दुःखी हुए॥ १७॥

सुन्दरकाण्ड का सातवाँ सर्ग पूरा हुआ।



१ बहुविधभावितात्मनः—बहुचिन्तान्वितस्य। (रा०) २ कृतात्मनो—कृतप्रयत्नस्य। (रा०) ३ सुवर्त्मनः—शोभननीतिमार्गवर्तिन इत्यर्थः। (रा०) ४ सुचक्षुः—सकृदालोकनेन द्रष्टव्यं सर्वं करतलामलकवत्साक्षात्कर्तुं क्षमस्य। (रा०)

अष्टमः सर्गः



[पुनः पुष्पक-विमान-वर्णन]

स तस्य मध्ये भवनस्य संस्थितं
महद्विमानं* बहुरत्नचित्रितम् ।
प्रतप्तजाम्बूनदजालकृत्रिमं
ददर्श वीरः पवनात्मजः कपिः ॥ १ ॥

रावण के राजभवन में रखे हुए पुष्पक विमान को, जिसमें बढ़िया सुवर्ण के बने झरोखे थे और जिसमें जगह जगह रंगबिरंगे बहुत से रत्न जड़े हुए थे, पवननन्दन वीर हनुमान ने देखा ॥१॥

तदप्रमेयाप्रतिकारकृत्रिमं
कृतं स्वयं साध्विति विश्वकर्मणा ।
दिवं गतं वायुपथे प्रतिष्ठितं
व्यराजतादित्यपथस्य लक्ष्मवत् ॥ २ ॥

वह अनुपम सुन्दरता युक्त था। उसमें कृत्रिम प्रतिमाएँ बनाई गई थीं। उसे विश्वकर्मा ने स्वयं ही अनेक प्रकार से सजाया था। वह आकाश में चलने में प्रसिद्ध था और सूर्य के पथ का एक प्रसिद्ध चिह्न सा था ॥ २ ॥

न तत्र किञ्चिन्न कृतं प्रयत्नतो
न तत्र किञ्चिन्न महार्हरत्नवत् ।

---

* पाठान्तरे—"मणिवज्रचित्रितम्" वा "मणिरत्नचित्रितम् ।"

रेष्वपि

न ते विशेषा नियताः सुविशेषवत् ॥ ३ ॥

न तत्र किञ्चिन्न महास्तु न थी जो परिश्रम पूर्वक न

उस विमान में ऐसी कोई व भाग ऐसा न था जो मूल्यवान्
बनाई गई थी। और उसका कोईका एक भी भाग ऐसा न था
रत्नों से न बनाया गया हो। उसकारीगरी न हो। पुष्पक में जैसी
जिसमें कुछ न कुछ विशेष देवताओं के विमानों में भी देखने
कारीगरी थीं, वैसी कारीगरी दे
में नहीं आती थी ॥ ३ ॥ त

तपःसमाधानपराक्रमार्जिवारिणम् ।

मनःसमाधानविचारतं

अनेकसंस्थानविशेषनिर्म्दर्शनम् ॥ ४ ॥

ततस्ततस्तुल्यविशेषप करके जो बल प्राप्त किया था

रावण ने एकाग्रचित्त हो त विमान सम्पादन किया था। वह
उसीके सहारे उसने यह पुष्पकयथेच्छ स्थान में पहुँचा देता था।
विमान सङ्कल्प मात्र ही से य की बनाई गई थीं। इसीसे वे
इसमें बहुत सी बैठकें विशेष रूप्रकार की भी थीं ॥ ४ ॥
उस विमान के अनुरूप विशेष गामिनं

मनः समाधाय तु शीघ्रगामिनम् ।

दुरावरं मारुततुल्यगमनस्विनां

महात्मनां पुण्यकृतां* मिवालयम् ॥ ५ ॥

यशस्विनामग्र्यमुदा

“ महर्षिणां । ”

* पाठान्तरे—“ महर्द्धिनां ”

वह अपने स्वामी की इच्छा के अनुसार अभीष्ट स्थान पर तुरन्त पहुँच जाता था। उसकी चाल वायु की तरह बड़ी तेज़ थी। चलते समय इसको कोई रोक नहीं सकता था। महात्मा, पुण्यात्मा बड़े समृद्धशाली और यशस्वी लोगों के लिए तो यह मानों आनन्द का घर ही था ॥ ५ ॥

विशेषमालम्ब्य विशेषसंस्थितं
विचित्रकूटं बहुकूटमण्डितम् ।
मनोभिरामं शरदिन्दुनिर्मलं
विचित्रकूटं शिखरं गिरेर्यथा ॥ ६ ॥

यह विमान विशेष विशेष चालों के अनुसार, आकाश में घूमता था। उसमें विविध प्रकार की अनेक वस्तुएँ भरी थीं। उसमें बहुत से कमरे थे। अतिशय मनोरम, शरद्कालीन चन्द्रमा की तरह निर्मल, विचित्र शिखरों से भूषित, तथा विचित्र शिखर से युक्त पर्वत की तरह वह जान पड़ता था ॥ ६ ॥

वहन्ति यं कुण्डलशोभितानना
महाशना व्योमचराः निशाचराः ।
विवृत्तविध्वस्तविशाललोचना[1]
महाजवा भूतगणाः सहस्रशः ॥ ७ ॥

इस विमान को चलाने वाले विशालकाय आकाशचारी निशाचर थे। उनके मुख कुण्डलों से सुशोभित थे। गोल, टेढ़े और विशाल नेत्रों वाले तथा महावेगवान हज़ारों भूतगण थे ॥ ७ ॥

---

१ विवृत्तानि—वर्तुलानि। (गो०) रविध्वस्तानि—भुग्नानि। (गो०)

वसन्तपुष्पोत्करचारुदर्शनं
वसन्तमासादपि कान्तदर्शनम् ।
स पुष्पकं तत्र विमानमुत्तम
ददर्श तद्वानरवीरसत्तमः ॥ ८ ॥

इति अष्टमः सर्गः ॥

वानरश्रेष्ठ हनुमान जी ने वसन्त कालीन पुष्पों के ढेर से युक्त और वसन्तऋतु से भी अधिक सुन्दर एवं देखने योग्य वह श्रेष्ठ पुष्पक विमान देखा ॥ ८ ॥

सुन्दरकाण्ड का आठवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—:*:—

नवमः सर्गः

—:o:—

तस्यालयवरिष्ठस्य मध्ये विपुलमायतम् ।
ददर्श भवनश्रेष्ठं हनुमान्मारुतात्मजः ॥ १ ॥

उस उत्तम राजभवन के भीतर एक स्वच्छ साफ और लंबा चौड़ा एक भवन पवननन्दन हनुमान जी ने देखा ॥ १ ॥

अर्धयोजनविस्तीर्णमायतं योजनं हि तत् ।
भवनं राक्षसेन्द्रस्य बहुप्रासादसङ्कुलम् ॥ २ ॥

रावण के भवन की चौड़ाई आधे योजन की और लंबाई एक योजन की थी। उसमें बहुत सी अटारियाँ थीं ॥ २ ॥

मार्गमाणस्तु वैदेहीं सीतामायतलोचनाम् ।
सर्वतः परिचक्राम हनुमानरिसूदनः ॥ ३ ॥

शत्रुहन्ता हनुमान जी विशाल नेत्र वाली सीता को ढूढ़ते हुए उस भवन में सर्वत्र घूमे ॥ ३ ॥

उत्तमं राक्षसावासं हनुमानवलोकयन् ।
आससादाथ लक्ष्मीवान्राक्षसेन्द्रनिवेशनम् ॥ ४ ॥

हनुमान जी राक्षसों के उत्तम गृहों को देखते हुए, रावण के राजभवन में पहुँचे ॥ ४ ॥

चतुर्विषाणैर्द्विरदैस्त्रिविषाणैस्तथैव च ।
परिक्षिप्तमसंबाधं रक्ष्यमाणमुदायुधैः ॥ ५ ॥

वह राजभवन चार और तीन दाँतों वाले हाथियों से व्याप्त था। हथियार हाथ में लिये राक्षस सदा इसकी रखवाली किया करते थे ॥ ५ ॥

राक्षसीभिश्च पत्नीभी रावणस्य निवेशनम् ।
आहृताभिश्च विक्रम्य राजकन्याभिरावृतम् ॥ ६ ॥

वहाँ अनेक सुन्दरी राक्षसी जो रावण की पत्नी थीं तथा अनेक राजकन्याएँ जिनको रावण बरजोरी छीन लाया था, उस भवन में, ॥ ६ ॥

तन्नक्रमकराकीर्णं तिमिङ्गिलझषाकुलम् ।
वायुवेगसमाधूतं पन्नगैरिव सागरम् ॥ ७ ॥

वह भवन मानों नाकों, तिमिङ्गल-मत्स्यों के समूह और सर्पों से परिपूर्ण, वायु के वेग से उफनाते हुए समुद्र की तरह, जान पड़ता था ॥ ७ ॥

या हि वैश्रवणे लक्ष्मीर्या चेन्द्रे हरिवाहने ।
सा रावणगृहे रम्या नित्यमेवानपायिनी ॥ ८ ॥

कुवेर, चन्द्रमा व इन्द्र के भवन में जैसी शोभा देख पड़ती है, वैसी ही नाशरहित अथवा सदैव बनी रहने वाली शोभा, रावण के भवन की भी सदा बनी रहती थी ॥ ८ ॥

या च राज्ञः कुबेरस्य यमस्य वरुणस्य च ।
तादृशी तद्विशिष्टा वा ऋद्धी रक्षोगृहेष्विह ॥ ९ ॥

राजा कुबेर, यम और वरुण के घर में जितना धन रहता है, रावण के घर में उतना ही अथवा उससे भी अधिक था ॥ ९ ॥

तस्य हर्म्यस्य मध्यस्थं वेश्म चान्यत्सुनिर्मितम् ।
बहुनिर्यूहसङ्कीर्णं ददर्श पवनात्मजः ॥ १० ॥

उस भवन के बीच में एक और सुन्दर भवन बना हुआ था, जिसमें मतवाले हाथी के आकार के अनेक स्थान बने हुए थे, उसे हनुमान जी ने देखा ॥ १० ॥

ब्रह्मणोऽर्थे कृतं दिव्यं दिवि यद्विश्वकर्मणा ।
विमानं पुष्पकं नाम सर्वरत्नविभूषितम् ॥ ११ ॥
परेण तपसा लेभे यत्कुबेरः पितामहात् ।
कुबेरमोजसा जित्वा लेभे तद्राक्षसेश्वरः ॥ १२ ॥

स्वर्ग में विश्वकर्मा ने जिस दिव्य एवं सर्वरत्नविभूषित पुष्पक विमान को बनाया और जो कुवेर को बड़ी तपस्या करने के बाद ब्रह्मा जी से प्राप्त हुआ था, उस विमान को अपने बाहुबल से कुवेर को जीत, रावण ने उनसे छीन लिया था ॥ ११ ॥ १२ ॥

ईहामृगसमायुक्तैः कार्तस्वरहिरण्मयैः ।
सुकृतैराचितं स्तम्भैः प्रदीप्तमिव च श्रिया ॥ १३ ॥

सोने चाँदी के काम से युक्त, मृगों (वनजन्तुओं) के आकार के खिलौनों से भरा हुआ, सुडौल खंभों से और अपनी शोभा से वह चमचमा रहा था ॥ १३ ॥

मेरुमन्दरसङ्काशैरालिखद्भिरिवाम्बरम् ।
कूटागारैः शुभाकारैः सर्वतः समलङ्कृतम् ॥ १४ ॥

वह सुमेरु और मन्दराचल पर्वत की तरह आकाशस्पर्शी था तथा सुन्दर बने हुए तहखानों से भूषित था ॥ १४ ॥

ज्वलनार्कप्रतीकाशं सुकृतं विश्वकर्मणा ।
हेमसोपानसंयुक्तं चारुप्रवरवेदिकम् ॥ १५ ॥

वह अग्नि और सूर्य के सदृश चमकीला था तथा विश्वकर्मा ने उसे बहुत अच्छी तरह बनाया था। उसमें सोने की सीढ़ियाँ और मनोहर चबूतरे बने हुए थे ॥ १५ ॥

जालवातायनैर्युक्तं काञ्चनैः स्फाटिकैरपि ।
इन्द्रनीलमहानीलमणिप्रवरवेदिकम् ॥ १६ ॥
विद्रुमेण विचित्रेण मणिभिश्च महाधनैः ।
निस्तुलाभिश्च मुक्ताभिस्तलेनाभिविराजितम् ॥ १७ ॥

हवा व रोशनी के लिए उसमें सोने और स्फटिक के झरोखे अथवा खिड़कियाँ थीं। उसका कोई कोई भाग इन्द्रनील और महानील मणियों के मंचों या चबूतरों से सुशोभित था और कहीं कहीं उसमें नाना प्रकार के मूंगे, महामूल्य मणि और गोल मोती जड़े थे। उसका फर्श अति उत्तम सफेद अस्तरकारी जैसा जान पड़ता था॥ १६॥ १७॥

चन्दनेन च रक्तेन तपनीयनिभेन च।
सुपुण्यगन्धिना युक्तमादित्यतरुणोपमम्॥ १८॥

उसका कोई कोई भाग सफेद चन्दन से और कोई भाग लाल चन्दन से और कोई कोई सोने के समान अत्यन्त पवित्र गन्धयुक्त काष्ठ से बना था। उसकी चमक मध्याह्न के सूर्य की तरह थी॥ १८॥

कूटागारैर्वराकारैर्विविधैः समलङ्कृतम्।
विमानं पुष्पकं दिव्यमारुरोह महाकपिः॥ १९॥

वह पुष्पक विमान उत्तम आकार के विविध गुप्तगृहों से भूषित था। हनुमान जी उस उत्तम पुष्पक विमान पर चढ़ गए॥ १९॥

तत्रस्थः स तदा गन्धं पानभक्ष्यान्नसंभवम्।
दिव्यं संमूर्छितं जिघ्रद्रूपवन्तमिवानिलम्॥ २०॥

वहाँ चारों ओर से पेय और भक्ष्य पदार्थों की दिव्य सुगन्धि आने लगी। उसे उन्होंने सूँघा। वह सुगन्धि बड़ी उत्तम थी। वहाँ के सर्वत्रव्याप्त वायु ने मानों साक्षात् गन्ध का रूप ही धारण कर लिया था॥ २०॥

स गन्धस्तं महासत्त्वं बन्धुर्बन्धुमिवोत्तमम् ।
इत एहीत्युवाचेव तत्र यत्र स रावणः ॥ २१ ॥

एक भाई जिस प्रकार अपने दूसरे भाई को बुलावे ; उसी प्रकार वह गन्ध मानों हनुमान को वहाँ बुलाने लगा, जहाँ रावण था ॥२१॥

ततस्तां प्रस्थितः शालां ददर्श महतीं शुभाम् ।
रावणस्य मनःकान्तां कान्तामिव वरस्त्रियम् ॥ २२ ॥

वहाँ जाते हुए हनुमान जी ने वह विशाल शाला देखी, जो रावण को उत्तम स्त्री की तरह प्यारी थी ॥ २२ ॥

मणिसोपानविकृतां हेमजालविराजिताम्* ।
स्फाटिकैरावृततलां दन्तान्तरितरूपिकाम् ॥ २३ ॥
मुक्ताभिश्च प्रवालैश्च रूप्यचामीकरैरपि ।
विभूषितां मणिस्तम्भैः सुबहुस्तम्भभूषिताम् ॥ २४ ॥

वह शाला अत्यन्त रमणीक थी, अत्यन्त स्वच्छ मणियों की सीढ़ियों से सुशोभित थी और सोने की बनी जालियों से युक्त थी। स्फटिक मणियाँ उसके फर्श में जड़ी थीं, उस पर हाथीदाँत की कारीगरी हो रही थी उसमें जहाँ तहाँ चित्र सजाये गए थे और मोती, हीरा, मूंगा, रूपा, सुवर्ण से युक्त थी । वह अनेक मणि के खम्भों से विभूषित थी ॥ २३ ॥ २४ ॥

समैर्ऋजुभिरत्युच्चैः समन्तात्सुविभूषितैः ।
स्तम्भैः पक्षैरिवात्युच्चैर्दिवं संप्रस्थितामिव ॥ २५ ॥

---

* पाठान्तरे—"विभूषितां ।"

इन खंभों में प्रायः सभी खंभे समान, सीधे और ऊँचे थे। ऐसे खंभे उस शाला के चारों ओर बने हुए थे। इन पंख जैसे अत्यन्त ऊँचे खम्भों से मानों वह भवन आकाश को उड़ा सा जाता था ॥ २५ ॥

महत्या कुथयाऽऽस्तीर्णां पृथिवीलक्षणाङ्कया ।
पृथिवीमिव विस्तीर्णां सराष्ट्रगृहमालिनीम् ॥ २६ ॥

उसमें भूमि की तरह चौरस चौकोना विचित्र फर्श, जिसमें हीरा आदि मणियाँ जड़ी हुई थीं—बिछा था। यह रावण की केवल शयन-शाला ही नहीं थी, बल्कि राज्यों और घरों सहित दूसरी लंबी चौड़ी पृथिवी ही के समान थी ॥ २६ ॥

नादितां मत्तविहगैर्दिव्यगन्धाधिवासिताम् ।
परार्ध्यास्तरणोपेतां रक्षोधिपनिषेविताम् ॥ २७ ॥

वह मतवाले पक्षियों की कूज से कूजित और दिव्य सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित थी। वहाँ मूल्यवान बिछौने पर रावण सो रहा था ॥ २७ ॥

धूम्रामगुरुधूपेन विमलां हंसपाण्डुराम् ।
चित्रां पुष्पोपहारेण [1]कल्माषीमिव सुप्रभाम् ॥ २८ ॥

वह शयनशाला अगर के धौले वर्ण के धुएँ से धौले रंग के हंस की तरह सफेद रंग जैसी जान पड़ती थी। वह पुष्पों और पत्रों की सजावट से सब मनोरथों को पूरा करने वाली वसिष्ठ की शबला गौ की तरह सुन्दर प्रभायुक्त, ॥ २८ ॥

---

१ कल्माषी—शबलवर्णां, वसिष्ठधेनु मिव। (रा)

मनःसंह्लादजननीं वर्णस्यापि प्रसादिनीम्* ।
तां शोकनाशिनीं दिव्यां श्रियः सञ्जननीमिव ॥ २९ ॥

हृदय को आनन्दित करने वाली, शरीर के रंग को सुन्दर बनाने वाली, समस्त शोकों को दूर भगाने वाली और दिव्य शोभा को उत्पन्न करने वाली थी ॥ २९ ॥

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थैश्च पञ्च पञ्चभिरुत्तमैः ।
तर्पयामास मातेव तदा रावणपालिता ॥ ३० ॥

उस समय हनुमान जी की आंख, कान, नाक आदि पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को, रूपादि पाँचों उत्तम विषयों से, माता की तरह रावण की शयनशाला ने तृप्त किया ॥ ३० ॥

स्वर्गोऽयं देवलोकोऽयमिन्द्रस्येयं पुरी भवेत् ।
सिद्धिर्वेयं परा हि स्यादित्यमन्यत मारुतिः ॥३१॥

उस समय हनुमान जी ने मन में समझा कि, यह शयनशाला नहीं, किन्तु यह साक्षात् स्वर्ग है, देवलोक है, इन्द्र की अमरावतीपुरी है अथवा कोई उत्कृष्ट सिद्धि है ॥ ३१ ॥

प्रध्यायत इवापश्यत्प्रदीपांस्तत्र काञ्चनान् ।
धूर्तानिव महाधूर्तैर्देवनेन पराजितान् ॥ ३२ ॥

वहाँ पर सोने के दीवे ऐसे स्थिर जल रहे थे, मानों महा प्रवञ्चकों से जुए में हारे हुए धूर्त लोग बैठे शोक मना रहे हों ॥ ३२ ॥

दीपानां च प्रकाशेन तेजसा रावणस्य च ।
अर्चिभिर्भूषणानां च प्रदीप्तेत्यभ्यमन्यत ॥ ३३ ॥

---

* पाठान्तरे—" प्रसाधिनाम् । "

उस समय दीपों के उजियाले से, रावण के तेज से और भूषणों की चमक से, वह घर दमक रहा था ॥ ३३ ॥

ततोऽपश्यत्कुथासीनं नानावर्णाम्बरस्रजम् ।
सहस्रं वरनारीणां नानावेषविभूषितम् ॥ ३४ ॥

फिर हनुमान जी ने देखा कि, रात हो जाने से विविध प्रकार के वस्त्रों और फूलमालाओं से सजी, हज़ारों सुन्दरी स्त्रियाँ तरह तरह के श्रृङ्गार किए हुए उत्तम बिछौनों पर पड़ी (बेहोश सो रही) हैं ॥ ३४ ॥

परिवृत्तेऽर्धरात्रे तु पाननिद्रावशं गतम् ।
क्रीडित्वोपरतं रात्रौ सुष्वाप बलवत्तदा ॥ ३५ ॥

आधी रात ढल जाने पर वे सब सुन्दरियाँ शराब पीने के कारण, नींद के वश हो और विहार से निवृत्त हो, सो रही थीं ॥ ३५ ॥

तत्प्रसुप्तं विरुरुचे निःशब्दान्तरभूषणम् ।
निःशब्दहंसभ्रमरं यथा पद्मवनं महत् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार सब के सो जाने से और बिछुवे पायजेब आदि की झनकार का शब्द बंद हो जाने से रावण की वह शयनशाला भ्रमरों के गुंजार और हंसों की ध्वनि से रहित, बड़े भारी कमलवन की तरह शोभायमान हो रही थी ॥ ३६ ॥

तासां संवृतदन्तानि मीलिताक्षीणि मारुतिः ।
अपश्यत्पद्मगन्धीनि वदनानि सुयोषिताम् ॥ ३७ ॥

तदनन्तर हनुमान जी ने परम सुन्दरी ललनाओं की मुंदी बत्तीसी और मुंदी आंखें और कमल की सुगन्धि से युक्त वदनमण्डल देखे ॥ ३७ ॥

प्रबुद्धानीव पद्मानि तासां भूत्वा क्षपाक्षये ।
पुनः संवृतपत्राणि रात्राविव बभुस्तदा ॥ ३८ ॥

उन स्त्रियों के ऐसे मुखमण्डल रात व्यतीत होने पर कमल के फूलों की तरह प्रफुल्लित हो कर, फिर रात होने पर मुकुलित कमल की तरह, बड़े सुन्दर जान पड़ते थे। अथवा हनुमान जी ने विचारा कि, उन स्त्रियों के मुख और कमल समान हैं। क्योंकि जिस प्रकार दिन में कमल खिल जाते हैं वैसे ही ये मुख भी खिल रहे हैं और रात्रि में जैसे वे कली के रूप में हो जाते हैं वैसे ही ये भी मुंद रहे हैं। गन्ध में भी ये दोनों समान ही हैं। अतः इन स्त्रियों के मुखमण्डल और कमल में कुछ भी अन्तर नहीं है ॥ ३८ ॥

इमानि मुखपद्मानि नियतं मत्तषट्पदाः ।
अम्बुजानीव फुल्लानि प्रार्थयन्ति पुनः पुनः ॥ ३९ ॥

फिर मतवाले भौंरे खिले हुए कमल की तरह ही, इन मुखकमलों की बार बार अभिलाषा किया करते हैं ॥ ३९ ॥

इति चामन्यत श्रीमानुपपत्त्या महाकपिः ।
मेने हि गुणतस्तानि समानि सलिलोद्भवैः ॥ ४० ॥

इस प्रकार सोच विचार कर हनुमान जी ने उन सुन्दरियों के मुखकमलों का और जलोत्पन्न कमलपुष्प का सादृश्य माना ॥४०॥

सा तस्य शुशुभे शाला ताभिः स्त्रीभिर्विराजिता ।
शारदीव प्रसन्ना द्यौस्ताराभिरभिशोभिता ॥ ४१ ॥

अस्तु रावण की शयनशाला, इन सब ललनाओं से शरद्काल के ताराओं से मण्डित निर्मल आकाश की तरह शोभायमान हो रही थी ॥ ४१ ॥

स च ताभिः परिवृतः शुशुभे राक्षसाधिपः ।
यथा ह्युडुपतिः श्रीमांस्ताराभिरभिसंवृतः ॥४२॥

उसी प्रकार रावण स्वयं भी उन स्त्रियों के बीच रहने से तारागण युक्त चन्द्रमा की तरह सुशोभित हो रहा था ॥४२॥

याश्च्यवन्तेऽम्बरात्ताराः पुण्यशेषसमावृताः ।
इमास्ताः सङ्गताः कृत्स्ना इति मेने हरिस्तदा ॥४३॥

जो तारा पुण्यक्षीण होने पर आकाश से गिरते हैं, वे ही सब तारा स्त्रीरूप हो कर रावण के पास इकट्ठे हुये हैं ॥४३॥

ताराणामिव सुव्यक्तं महतीनां शुभार्चिषाम् ।
प्रभा वर्णप्रसादाश्च विरेजुस्तत्र योषिताम् ॥४४॥

क्योंकि सुन्दर प्रकाश युक्त और विशाल तारों ही की तरह उन स्त्रियों की चमक, रूप और प्रसन्नता देख पड़ती थी ॥ ४४ ॥

व्यावृत्तगुरुपीनस्रक्प्रकीर्णवरभूषणाः ।
पानव्यायामकालेषु निद्रापहृतचेतसः ॥४५॥

उनमें से बहुत सी स्त्रियों के बाल और फूलों के हार टेढ़े मेढ़े हो गए थे और बढ़िया बढ़िया गहने बिखरे हुए पड़े थे। क्योंकि मद्यपान करने और गाने नाचने के परिश्रम से थक कर वे सब निद्रा के वश हो गई थीं ॥४५॥

व्यावृत्ततिलकाः काश्चित्काश्चिदुद्भ्रान्तनूपुराः ।
पार्श्वे गलितहाराश्च काश्चित्परमयोषितः ॥४६॥

उनमें से किसी के माथे के तिलक मिट गए थे, किसी के नूपुर उल्टे सीधे हो गए थे और किसी किसी के टूटे हुए हार उसके पास पड़े हुए थे ॥४६॥

मुक्ताहारावृताश्चान्याः काश्चिद्विस्रस्तवाससः ।
व्याविद्धरशनादामाः किशोर्य इव वाहिताः ॥४७॥

किसी किसी के मोतियों के हार टूट गए थे, किसी के कपड़े उसके शरीर से ढीले हो खिसक पड़े थे, किसी की करधनी कमर के नीचे खसक पड़ी थी। वे स्त्रियाँ थकी हुई और बोझ उतारी हुई घोड़ियों की तरह अपने गहनों को इधर उधर पटक शयन कर रही थीं ॥४७॥

सुकुण्डलधराश्चान्या विच्छिन्नमृदितस्रजः ।
गजेन्द्रमृदिताः फुल्ला लता इव महावने ॥४८॥

अनेक स्त्रियों के कानों के कुण्डल गिर पड़े थे, मालाएँ टूट गई थीं और रगड़ खा गई थीं—मानों हाथियों से रौंदी हुई पुष्पितलताएँ महावन में पड़ी हों ॥४८॥

चन्द्रांशुकिरणाभाश्च हाराः कासांचिदुत्कटाः ।
हंसा इव बभुः सुप्ताः स्तनमध्येषु योषिताम् ॥४९॥

किसी किसी के चन्द्रमा की किरणों की तरह सफेद मोती के हार, बटुर कर स्तनों के बीच में जा ऐसी शोभा दे रहे थे, मानों हंस सोते हों ॥४९॥

अपरासां च वैडूर्याः कादम्बा इव पक्षिणः ।
हेमसूत्राणि चान्यासां चक्रवाका इवाभवन् ॥५०॥

अन्य स्त्रियों के पन्नों के हार स्तनों के बीच में जलकाक की तरह शोभा दे रहे थे और अन्य स्त्रियों के सोने के हार समिट कर स्तनों के बीच चकवा चकवी की तरह जान पड़ते थे ॥५०॥

हंसकारण्डवाकीर्णाश्चक्रवाकोपशोभिताः ।
आपगा इव ता रेजुर्जघनैः पुलिनैरिव ॥५१॥

इसलिए वे सब स्त्रियाँ हंस कारण्डव पक्षियों सहित और चक्रवाकों से शोभित नदियों की तरह तट रूपी जंघाओं से शोभायमान हो रही थीं ॥ ५१ ॥

किङ्किणीजालसङ्कोशास्ता वक्रविपुलाम्बुजाः* ।
भावग्राहा यशस्तीराः सुप्ता नद्य इवाबभुः ॥५२॥

उन स्त्रियों के किङ्किणियों के समूह, सुवर्ण कमल की तरह जान पड़ते थे। उनकी विलास भावनायें ग्राह के तुल्य थीं। उनके विविध गुण तट के समान थे। वे सोती हुई स्त्रियाँ इस प्रकार नदी की तरह शोभायमान जान पड़ती थीं ॥५२॥

मृदुष्वङ्गेषु कासांचित्कुचाग्रेषु च संस्थिताः ।
†बभूवुर्भ्रमराणीव शुभा भूषणराजयः ॥५३॥

किसी किसी स्त्री के सुकोमल अंगों में और किसी किसी के स्तनों के अग्रभाग में, आभूषणों की खरोंच भी भौंरे की तरह शोभा दे रही थी ॥५३॥

अंशुकान्ताश्च कासांचिन्मुखमारुतकम्पिताः ।
उपर्युपरि वक्त्राणां व्याधूयन्ते पुनः पुनः ॥५४॥

किसी किसी स्त्री के वस्त्र के अंचल उसके मुख पर लटक रहे थे और मुख से निकली हुई श्वास से बारम्बार हिल कर अति शोभा दे रहे थे ॥५४॥

---

*पाठान्तरे—"हैम विपुलाम्बुजाः ।" "वक्त्रकनकांबुजाः वा ।"
†पाठान्तरे – "बभूवुर्भूषणानीव ।"

ताः पताका इवोद्धूताः पत्नीनां रुचिरप्रभाः ।
नानावर्णाः सुवर्णानां वक्रमूलेषु रेजिरे ॥५५॥

वे रंग बिरंगे ज़रदोज़ी के वस्त्र जो बहुत चमक रहे थे, जब श्वास के पवन से हिलते थे, तब वे पताका की तरह फहराते हुए जान पड़ते थे ॥५५॥

ववल्गुश्चात्र कासांचित्कुण्डलानि शुभार्चिषाम् ।
मुखमारुतसंसर्गान्मन्दं मन्दं स्म योषिताम् ॥५६॥

किसी किसी के कानों के कुण्डल मुख के पवन से धीरे धीरे हिलने लगते थे ॥५६॥

शर्करासवगन्धैश्च प्रकृत्या सुरभिः सुखः ।
तासां वदननिःश्वासः सिषेवे रावणं तदा ॥५७॥

उन स्त्रियों की स्वाभाविक सुगन्धियुक्त एवं स्पर्श करने से सुखदायी, मुख से निकली हुई साँसों का पवन, शर्करासव नामक मद्य से और भी अधिक सुगन्धित हो, रावण को सुख उपजा रहा था ॥५७॥

रावणाननशङ्काश्च काश्चिद्रावणयोषितः ।
मुखानि स्म सपत्नीनामुपाजिघ्रन्पुनः पुनः ॥५८॥

रावण की कोई कोई स्त्री अपनी सौत के मुख को, रावण के मुख के भ्रम से, बार बार सूँघ रही थी ॥५८॥

अत्यर्थं सक्तमनसो रावणे ता वरस्त्रियः ।
अस्वतन्त्राः सपत्नीनां प्रियमेवाचरंस्तदा ॥५९॥

वे स्त्रियाँ भी जो रावण में अत्यन्त आसक्त थीं, मद्य के नशे में चूर हो, अपनी सौतों के साथ प्रीतियुक्त व्यवहार कर रही थीं ॥ ५९ ॥

बाहूनुपनिधायान्याः पारिहार्यविभूषितान् ।
अंशुकानि च रम्याणि प्रमदास्तत्र शिश्यिरे ॥ ६० ॥

कोई कोई स्त्रियाँ अपनी ककनों से अलंकृत कलाइयों को और सुन्दर वस्त्रों को अपने सिर के नीचे तकिया के स्थान पर रख, सो रही थीं ॥ ६० ॥

अन्या वक्षसि चान्यस्यास्तस्याः काश्चित्पुनर्भुजम् ।
अपरा त्वङ्कमन्यस्यास्तस्याश्चाप्यपरा भुजौ ॥ ६१ ॥
ऊरुपार्श्वकटीपृष्ठमन्योन्यस्य समाश्रिताः ।
परस्परनिविष्टाङ्ग्यो मदस्नेहवशानुगाः ॥ ६२ ॥
अन्योन्यस्याङ्गसंस्पर्शात्प्रीयमाणाः सुमध्यमाः ।
एकीकृतभुजाः सर्वाः सुषुपुस्तत्र योषितः ॥ ६३ ॥

एक स्त्री दूसरी स्त्री की छाती पर हाथ रखे हुए थी, कोई आपस में एक दूसरे की भुजा को अपना अपना तकिया बनाए हुए थीं, कोई किसी की गोदी में पड़ी और कोई एक दूसरे के वक्षःस्थल को अपना अपना तकिया बनाये हुए थी और कोई किसी की जाँघ, कमर और बगल से और कोई किसी की पीठ से लिपट कर तथा परस्पर अंगस्पर्श से अति प्रसन्न हो, भुजा से भुजा मिला कर, मदिरा के नशे में चूर, बड़े प्रेम से सो रही थी ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

अन्योन्यभुजसूत्रेण स्त्रीमाला ग्रथिता हि सा ।
मालेव ग्रथिता सूत्रे शुशुभे मत्तषट्पदा ॥ ६४ ॥

परस्पर एक दूसरे की भुजा रूपी सूत से गुथी हुई स्त्रियों की वह माला ऐसी शोभा दे रही थी, मानों डोरे में गुथी हुई पुष्पमाला भ्रमरों से युक्त हो शोभायमान होती हो ॥ ६४ ॥

लतानां माधवे मासि फुल्लानां वायुसेवनात् ।
अन्योन्यमालाग्रथितं संसक्तकुसुमोच्चयम् ६५ ॥

वैशाख मास में फूली हुई बेलों के फूल के ढेर, वायु के कारण एकत्र हुए ऐसे जान पड़ते थे, मानों माला की तरह वे एक सूत्र में गुथे हों ॥ ६५ ॥

व्यतिवेष्टितसुस्कन्धमन्योन्यभ्रमरा कुलम् ।
आसीद्वनमिवोद्धूतं स्त्रीवनं रावणस्य तत् ॥ ६६ ॥

रावण की स्त्रियों का वह समूह एक वन की तरह सुशोभित था। उस वन में फूली हुई वृक्षों की डालियाँ केशरूपी भ्रमरों से भूषित हो, वायुवेग से परस्पर लिपटी हुई सी मालूम पड़ती थीं ॥ ६६ ॥

उचितेष्वपि सुव्यक्तं न तासां योषितां तदा ।
विवेकः शक्य आधातुं भूषणाङ्गाम्बरस्रजाम् ॥ ६७ ॥

यद्यपि स्त्रियों के समस्त आभूषण उचित रीति से यथास्थानों पर थे, तथापि उनके परस्पर लिपटने से यह स्थिर करना कठिन था कि, इनमें कौन सा गहना है, कौन सी पुष्पमाला है अथवा इनका कौनसा अंग है ॥ ६७ ॥

रावणे सुखसंविष्टे ताः स्त्रियो विविधप्रभाः ।
ज्वलन्तः काञ्चना दीपाः प्रैक्षन्तानिमिषा इव ॥ ६८ ॥

रावण को इस समय [illegible] बनी हो रहा था, जैसे सोने के दीपक, मानों उन स्त्रियों को, जो [illegible] न पड़ी [illegible] मदमत्त किए हुए थीं, एकटक देख रहे थे ॥ ६८ ॥

राजर्षिविप्रदैत्यानां गन्धर्वाणां च योषितः ।
*रक्षसां चाभवन्कन्यास्तस्य कामवशं गताः ॥ ६९ ॥

उन स्त्रियों में कोई कोई तो राजर्षियों की, कोई कोई ब्राह्मणों की, कोई कोई दैत्यों की, कोई कोई गन्धर्वों की स्त्रियाँ थीं और कोई कोई राक्षसों की कन्याएँ थीं, जिन्हें रावण ने अपनी प्रणयिनी बनाया था अथवा ब्याहा था ॥ ६९ ॥

युद्धकामेन ताः सर्वा रावणेन हृताः स्त्रियः ।
समदा मदनेनैव मोहिताः काश्चिदागताः ॥ ७० ॥

उनमें से किसी किसी को रावण युद्ध में उनके पिताओं को हराकर छीन लाया था और कोई कोई मदमाती युवतियाँ काम से सतायी जाकर स्वयं ही रावण के साथ चली आई थीं ॥ ७० ॥

न तत्र काश्चित्प्रमदा प्रसह्य
वीर्योपपन्नेन गुणेन लब्धा ।
न चान्यकामापि न चान्यपूर्वा
विना वरार्हां जनकात्मजां ताम् ॥ ७१ ॥

यद्यपि रावण बड़ा पराक्रमी था ; तथापि बरजोरी वह किसी स्त्री को हरकर नहीं लाया था, किन्तु सम्मान योग्य जानकी को छोड़, अन्य बहुत सी स्त्रियाँ रावण के सौन्दर्यादि गुणों पर मुग्ध हो स्वयं ही उसके साथ चली आई थीं । इनमें ऐसी कोई स्त्री न थी

* पाठान्तरे—" राक्षसानां च याः कन्याः । "

परस्पर एक दूसरे को भुजा रूपी अन्य किसी पुरुष के साथ वह माला ऐसी शोभा दे, अथवा हनुमान जी ने वहाँ जितनी भ्रमरों से युक्त हो शे रावण को पति समझने वाली स्त्रियाँ थीं। लतानां ऐसा एक भी न थी ॥ ७१ ॥

न चाकुलीना न च हीनरूपा
नादक्षिणा नानुपचारयुक्ता ।
भार्याऽभवत्तस्य न हीनसत्त्वा
न चापि कान्तस्य न कामनीया ॥७२॥

उन स्त्रियों में कोई स्त्री कुलहीन, कुरूप, फूहर, शृङ्गार रहित और अशक्त न थी। उनमें ऐसी एक भी न थी, जिसको रावण न चाहता हो ॥ ७२ ॥

बभूव बुद्धिस्तु हरीश्वरस्य
यदीदृशी राघवधर्मपत्नी ।
इमा यथा राक्षसराजभार्याः[१]
सुजातमस्येति हि साधुबुद्धेः ॥ ७३ ॥

उस समय साधुबुद्धि हनुमान जी ने अपने मन में सोचा कि, जिस प्रकार रावण की ये स्त्रियाँ अपने पति में अनुरागवती हैं; उसी प्रकार यदि श्रीरामचन्द्र जी की धर्मपत्नी सीता भी

राक्षसराजभार्या—यथा स्वपतिस्मरणादिषु निरताः ईदृशी तथा रामस्मरणादिनिरता यदि राघवधर्मपत्नी तत्स्मरणादीनां विघ्नो न कृतः स्यादित्यर्थः ; तदा अस्य रावणस्य सुजातम् कल्याणमेवेत्यर्थः इति साधुबुद्धेर्हरीश्वरस्य बुद्धिर्निश्चयो बभूव । (शि०)

श्रीरामचन्द्र में अभी तक अनुरागवती बनी हो रहा था, जैसे सीता के, श्रीराम के प्रति अनुराग में बाधा न पड़ी है मदमत्त का कल्याण है ॥ ७३ ॥

पुनश्च सोऽचिन्तयदार्तरूपो
ध्रुवं विशिष्टा गुणतो हि सीता ।
अथायमस्यां कृतवान्महात्मा
लंकेश्वरः कष्टमनार्यकर्म ॥ ७४ ॥

इति नवमः सर्गः ॥

फिर हनुमान जी ने विचारा कि, निश्चय ही जानकी जी में पातिव्रत्यादि गुण विशेष रूप से हैं ; क्योंकि जिस समय क्रूरकर्मा रावण सीता को पकड़ कर लिये जाता था, उस समय वह बुरी तरह रोती हुई गई थी, अतः उसका इन स्त्रियों में होना सम्भव नहीं ॥ ७४ ॥

सुन्दरकाण्ड का नवाँ सर्ग पूरा हुआ ।



दशमः सर्गः



तत्र [1]दिव्योपमं मुख्यं स्फाटिकं रत्नभूषितम् ।
अवेक्षमाणो हनुमान्ददर्श शयनासनम्[2] ॥ १ ॥

---

१ दिव्योपमं—स्वर्गस्य । (शि०) २ शयनासनम्—खट्वा । (गो०)

परस्पर एक

वह माला पे हनुमान जी ने उस शयनशाला में चारों ओर देखते अमरों से स्थान पर विविध-रत्न-विभूषित, स्फटिक का बना पलंग जैसा एक बड़ा पलंग पड़ा देखा ॥ १ ॥

दान्तकाञ्चनचित्राङ्गैर्वैडूर्यैश्च वरासनैः ।
महार्हास्तरणोपेतैरुपपन्नं महाधनैः ॥ २ ॥

उस पलंग पर हाथीदांत और सोने से चित्रकारी (नक्काशी का काम) की गयी थी और जगह जगह पन्ने जड़े हुए थे । उसके ऊपर बड़े मूल्यवान् और कोमल बिछौने बिछे थे ॥ २ ॥

तस्य चैकतमे देशे सोऽग्र्यमालाविभूषितम् ।
ददर्श पाण्डुरं छत्रं ताराधिपतिसन्निभम् ॥ ३ ॥

उस शयनशाला में एक विशेष स्थान पर सफेद रंग का, चन्द्रमा की तरह चमचमाता, एक छत्र रखा था । वह छत्र दिव्य-पुष्पों की माला से भूषित था ॥ ३ ॥

जातरूपपरिक्षिप्तं चित्रभानुसमप्रभम् ।
अशोकमालाविततं ददर्श परमासनम् ॥ ४ ॥

वहाँ सुवर्ण का बना हुआ, सूर्यसम चमकीला और अशोक पुष्पों की माला से अलङ्कृत एक पलंग हनुमान जी ने देखा ॥४॥

वालव्यजनहस्ताभिर्वीज्यमानं समन्ततः ।
गन्धैश्च विविधैर्जुष्टं वरधूपेन धूपितम् ॥ ५ ॥

इस पलंग के आसपास सुन्दर पुतलियाँ हाथों में चँवर और पंखा से हवा कर रही थीं । वहाँ पर विविध प्रकार के इत्र रखे हुए थे और उत्तम सुगन्धि की धूप जल रही थी, जिससे वह स्थान सुवासित हो रहा था ॥ ५ ॥

परमास्तरणास्तीर्णमाविकाजिन[1]संवृ॰ हो रहा था, जैसे

दामभिर्वरमाल्यानां समन्तादुपशोभितम् ॥ मदमत्त

वह पलङ्ग कोमल पशमीने से मढ़ा था, कोमल ।॰ उस पर बिछे हुए थे। उसके चारों ओर फूलों के हार लटक रहे थे ॥ ६ ॥

तस्मिञ्जीमूतसङ्काशं प्रदीप्तोत्तमकुण्डलम् ।

लोहिताक्षं महाबाहुं महारजतवाससम् ॥ ७ ॥

उस पलङ्ग पर काले मेघ की तरह काले ंग का, कानों में उत्तम और चमकते हुए कुण्डल पहिने हुए, लाल लाल नेत्रों वाला, बड़ी भुजाओं वाला, कलाबत्तू के काम के कपड़े धारण किए हुए ॥ ७ ॥

लोहितेनानुलिप्ताङ्गं चन्दनेन सुगन्धिना ।

सन्ध्यारक्तमिवाकाशे तोयदं सतडिद्‌गणम् ॥ ८ ॥

सब शरीर में लाल चन्दन लगाए, दामिनी सहित सन्ध्या-कालीन लाल बादल की तरह शोभा धारण किए हुए ॥ ८ ॥

वृतमाभरणैर्दिव्यैः सुरूपं कामरूपिणम् ।

सवृक्षवनगुल्माढ्यं प्रसुप्तमिव मन्दरम् ॥ ९ ॥

दिव्य गहने पहिने हुए, सुस्वरूप, कामरूपी रावण, उस पर पड़ा हुआ, ऐसा जान पड़ता था, मानों विविध प्रकार की लताओं और झाड़ियों से पूर्ण, मन्दराचल पर्वत पड़ा सो रहा हो ॥ ९ ॥

---

१ आविकाजिन—ऊर्णायुचर्म (गो॰)

परस्पर एक ... त रात्रौ वराभरणभूषितम् ।
वह माला ऐ हनुमा ...
भ्रमरों से ... ाक्षसकन्यानां राक्षसानां सुखावहम् ॥ १० ॥

रावण रात को विहार करते करते थका हुआ, मदिरापान किए हुए था। वह राक्षस-कन्याओं को प्रिय था और राक्षसों को सुख देने वाला था ॥ १० ॥

पीत्वाऽप्युपरतं चापि ददर्श स महाकपिः ।
भास्वरे शयने वीरं प्रसुप्तं राक्षसाधिपम् ॥ ११ ॥

मदिरापान एवं स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करके तृप्त हो सुवर्ण के चमचमाते पलङ्ग पर शयन किए हुए वीर राक्षसराज को हनुमान जी ने देखा ॥ ११ ॥

निःश्वसन्तं यथा नागं रावणं वानरर्षभः ।
आसाद्य परमोद्विग्नः सोऽपासर्पत्सुभीतवत् ॥ १२ ॥
अथारोहणमासाद्य वेदिकान्तरमाश्रितः ।
सुप्तं राक्षसशार्दूलं प्रेक्षते स्म महाकपिः ॥ १३ ॥

सोते में रावण नाग की तरह श्वास छोड़ रहा था। हनुमान रावण को देख घबड़ा कर डरे हुए मनुष्य की तरह उस जगह से कुछ दूर हट कर सीढ़ी की आड़ में एक चबूतरे पर खड़े हो गए और वहाँ से राक्षसराज को देखने लगे ॥ १२ ॥ १३ ॥

शुशुभे राक्षसेन्द्रस्य स्वपतः शयनोत्तमम् ।
गन्धहस्तिनि संविष्टे यथा प्रस्रवणं महत् ॥ १४ ॥

सोते हुए रावण का पलङ्ग ऐसा शोभायमान हो रहा था, जैसे वह पहाड़ी झरना शोभायमान होता है, जिसके निकट मदमत्त हाथी सोता हो ॥ १४ ॥

काञ्चनाङ्गदनद्धौ च ददर्श स महात्मनः ।
विक्षिप्तौ राक्षसेन्द्रस्य भुजाविन्द्रध्वजोपमौ ॥ १५ ॥

रावण की दोनों भुजाएँ जो बाजूबन्दों से अलङ्कृत थीं और जिनको पसार कर वह सो रहा था, इन्द्रध्वज की तरह जान पड़ती थीं ॥ १५ ॥

ऐरावतविषाणाग्रैरापीडनकृतव्रणौ ।
वज्रोल्लिखितपीनांसौ विष्णुचक्रपरिक्षतौ ॥ १६ ॥

उसकी दोनों भुजाओं पर ऐरावत के दाँतों के आघात के चिह्न थे। कंधों पर वज्र के आघात के निशान थे। सुदर्शनचक्र के लगने के भी उसकी दोनों भुजाओं पर निशान बने हुए थे ॥१६॥

पीनौ समसुजातांसौ संहतौ बलसंयतौ ।
सुलक्षणनखाङ्गुष्ठौ स्वङ्गुलीतललक्षितौ ॥ १७ ॥

उसकी दोनों लम्बी भुजाएँ मोटी और शरीर के अनुरूप एवं बलयुक्त थीं। उसकी अँगुलियाँ और अँगूठे के नख सुलक्षण युक्त थे और अँगुलियाँ सुन्दर सुन्दर अँगूठियों से भूषित थीं ॥ १७ ॥

संहतौ परिघाकारौ वृत्तौ करिकरोपमौ ।
विक्षिप्तौ शयने शुभ्रे पञ्चशीर्षाविवोरगौ ॥ १८ ॥

(रावण की भुजाएँ,) मोटी, परिघ के आकार वाली, हाथी की सूंड़ की तरह उतार चढ़ाव की और पलङ्ग पर फैली हुई ऐसी जान पड़ती थीं; मानों पाँच सिर वाले सर्प हों ॥ १८ ॥

शशक्षतजकल्पेन सुशीतेन सुगन्धिना ।
चन्दनेन परार्ध्येन स्वनुलिप्तौ स्वलंकृतौ ॥ १९ ॥

खरहा के रक्त की तरह लाल, सुगंधित, शीतल एवं उत्तम चन्दन तथा अन्य सुगन्धित पदार्थों से लिप्त वे दोनों भुजाएँ सुन्दर आभूषणों से अलङ्कृत थीं ॥ १९ ॥

उत्तमस्त्रीविमृदितौ गन्धोत्तमनिषेवितौ ।
यक्षपन्नगगन्धर्वदेवदानवराविणौ ॥ २० ॥

सुन्दरी स्त्रियों के आलिङ्गन से मर्दित, अत्यन्त सुगन्धित द्रव्यों से सेवित, यक्ष, नाग, गन्धर्व, देव और दानवों को रुला देने वाली ॥ २० ॥

ददर्श स कपिस्तस्य बाहू शयनसंस्थितौ ।
मन्दरस्यान्तरे सुप्तौ महाही रुषिताविव ॥ २१ ॥

और बिछौने पर फैली हुई दोनों भुजाओं को हनुमान जी ने देखा । उस समय वे दोनों भुजाएँ ऐसी जान पड़ती थीं, मानों मन्दराचल पर्वत की तलेटी में दो क्रुद्ध सर्प सो रहे हों ॥ २१ ॥

ताभ्यां स परिपूर्णाभ्यां भुजाभ्यां राक्षसेश्वरः ।
शुशुभेऽचलसङ्काशः शृङ्गाभ्यामिव मन्दरः ॥ २२ ॥

उन दोनों भुजाओं से युक्त रावण, दो शिखरों से शोभित मन्दराचल की तरह शोभायमान हो रहा था ॥ २२ ॥

चूतपुन्नागसुरभिर्वकुलोत्तमसंयुतः ।
मृष्टान्नरससंयुक्तः पानगन्धपुरः सरः ॥ २३ ॥

तस्य राक्षससिंहस्य निश्चक्राम महामुखात् ।
शयानस्य विनिःश्वासः पूरयन्निव तद्गृहम् ॥ २४ ॥

उस राक्षसराज रावण के बड़े मुख से निकली हुई साँसें, जो आम, नागकेसर और मौलसिरी के पुष्पों की सुगन्धि से सुवासित थीं तथा जिनमें षड्रस युक्त अन्न तथा शराब की गन्ध मिश्रित थी, उस सम्पूर्ण शयनशाला को सुवासित कर रहीं थीं ॥ २३ ॥ २४ ॥

मुक्तामणिविचित्रेण काञ्चनेन विराजितम् ।
मुकुटेनापवृत्तेन[1] कुण्डलोज्ज्वलिताननम् ॥ २५ ॥

विचित्र मोतियों और मणियों के जड़ाऊ सोने के मुकुट से, जो सोते में अपने स्थान से कुछ खसक गया था तथा कुण्डलों से उसका मुख बड़ा सुन्दर जान पड़ता था ॥ २५ ॥

रक्तचन्दनदिग्धेन तथा हारेण शोभिना ।
पीनायतविशालेन वक्षसाभिविराजितम् ॥ २६ ॥

उसका माँसल और चौड़ा वक्षःस्थल लाल चन्दन और सुन्दर हार से अलङ्कृत था ॥ २६ ॥

पाण्डुरेणापविद्धेन क्षौमेण क्षतजेक्षणम् ।
महार्हेण सुसंवीतं पीतेनोत्तमवाससा ॥ २७ ॥

वह सफेद रेशमी धोती पहिने हुए था और बढ़िया पीले रंग का दुपट्टा ओढ़े हुए था ॥ २७ ॥

माषराशिप्रतीकाशं निःश्वसन्तं भुजङ्गवत् ।
गाङ्गे महति तोयान्ते प्रसुप्तमिव कुञ्जरम् ॥ २८ ॥

---

१ अपवृत्तेन—स्थानात्किञ्चिच्चलितेन । (गो०)

रावण सोता हुआ उर्दों के ढेर की तरह जान पड़ता था। वह साँप की फुफकार की तरह साँस लेता हुआ, पलङ्ग पर पड़ा, ऐसा सो रहा था; मानों गंगा जी के गहरे जल में पड़ा हाथी सोता हो ॥ २८ ॥

चतुर्भिः काञ्चनैर्दीपैर्दीप्यमानैश्चतुर्दिशम् ।
प्रकाशीकृतसर्वाङ्गं मेघं विद्युद्गणैरिव ॥ २९ ॥

उसके चारों ओर चार सोने के दीपक जल रहे थे। उन दीपकों के प्रकाश से उसके शरीर के समस्त अङ्ग वैसे ही चमक रहे थे, जैसे बिजलियों से बादल ॥ २९ ॥

पादमूलगताश्चापि ददर्श सुमहात्मनः ।
पत्नीः स प्रियभार्यस्य तस्य रक्षःपतेर्गृहे ॥ ३० ॥

हनुमान जी ने देखा कि, उस पत्नीप्रिय राक्षसराज रावण की शयनशाला में, रावण के पैताने उसकी पत्नियां पड़ी हैं ॥ ३० ॥

शशिप्रकाशवदनाश्चारुकुण्डलभूषिताः ।
अम्लानमाल्याभरणा ददर्श हरियूथपः ॥ ३१ ॥

हनुमान जी ने देखा कि, उन स्त्रियों के मुखमण्डल, चन्द्रमा की तरह चमचमा रहे थे। उनके कानों में श्रेष्ठ कुण्डल उनकी शोभा बढ़ा रहे थे और उनके गलों में बिना कुम्हलाए ताजे फूलों की मालाएँ पड़ी हुईं थीं ॥ ३१ ॥

नृत्तवादित्रकुशला राक्षसेन्द्रभुजाङ्कगाः ।
वराभरणधारिण्यो निषण्णा[1] ददर्श हरिः ॥ ३२ ॥

---

१ निषण्णाः—शयानाः । (गो०)

हनुमान जी ने देखा कि, वे सब स्त्रियाँ जो रावण की भुजाओं के बीच तथा गोद में पड़ी थीं नाचने गाने में निपुण थीं और अच्छे अच्छे गहने पहिने हुए, सो रही थीं ॥ ३२ ॥

वज्रवैडूर्यगर्भाणि श्रवणान्तेषु योषिताम् ।
ददर्श तापनीयानि कुण्डलान्यङ्गदानि च ॥ ३३ ॥

उनके कानों में सोने के तथा हीरे पन्नों के जड़ाऊ कर्णफूल लटक रहे थे। हनुमान जी ने देखा कि, वे स्त्रियाँ भुजाओं में जो बाजूबन्द पहिने हुए थीं, भुजाओं का तकिया लगाने से, वे भी कानों के पास कुण्डलों के साथ शोभायमान हो रहे थे ॥ ३३ ॥

तासां चन्द्रोपमैर्वक्त्रैः शुभैर्ललितकुण्डलैः ।
विरराज विमानं तन्नभस्तारागणैरिव ॥ ३४ ॥

उन स्त्रियों के चन्द्रमा के समान मुखों और सुन्दर कुण्डलों से वह स्थान ऐसा शोभायमान हो रहा था, जैसे तारों से आकाश की शोभा होती है ॥ ३४ ॥

मदव्यायामखिन्नास्ता राक्षसेन्द्रस्य योषितः ।
तेषु तेष्ववकाशेषु प्रसुप्तास्तनुमध्यमाः ॥ ३५ ॥

मदिरा के नशे में चूर हो तथा नाचने गाने के परिश्रम से अत्यन्त खिन्न हो कर, जहाँ जिसे जो जगह मिली वहीं पड़ कर, वह सो रही थी ॥ ३५ ॥

अङ्गहारैस्तथैवान्या कोमलैर्नृत्तशालिनी ।
विन्यस्तशुभसर्वाङ्गी प्रसुप्ता वरवर्णिनी ॥ ३६ ॥

कोई कोई मनोहर कोमलाङ्गी कामनी निद्रावस्था में अपने कोमल हाथों को हिला डुला रही थी, जिसको देखने से ऐसा जान पड़ता था, मानों वह हाव भाव दिखा कर नाच रही हो ॥३६॥

काचिद्वीणां परिष्वज्य प्रसुप्ता संप्रकाशते ।
महानदीप्रकीर्णेव नलिनी पोतमाश्रिता ॥ ३७ ॥

कोई स्त्री वीणा को अपनी छाती से लिपटा कर सो जाने से ऐसी जान पड़ती थी, मानों नदी की धार में डूबती हुई कमलिनी सौभाग्यवश किसी नाव से जा लिपटी हो ॥ ३७ ॥

अन्या कक्षगतेनैव मण्डुकेनासितेक्षणा ।
प्रसुप्ता भामिनी भाति बालपुत्रेव वत्सला ॥ ३८ ॥

कमल के समान नेत्र वाली कोई स्त्री मण्डूक नामक वाद्य (बाजा) विशेष को बग़ल में दबा, वैसे ही सो रही थी, जैसे कोई बालवत्सला स्त्री अपने बालक को बग़ल में दबा सो रही हो ॥ ३८ ॥

पटहं चारुसर्वाङ्गी पीड्य शेते शुभस्तनी ।
चिरस्य रमणं लब्ध्वा परिष्वज्येव भामिनी ॥ ३९ ॥

कोई शुभस्तनी तबला बजाते बजाते (मारे नशे के) उसी पर झुकी हुई सो रही थी। मानों कोई स्त्री बहुत दिनों बाद अपने पति को पा कर, उससे लिपट रही हो ॥ ३९ ॥

काचिद्वंशं परिष्वज्य सुप्ता कमललोचना ।
रहः प्रियतमं गृह्य सकामेव च कामिनी ॥ ४० ॥

कोई कमललोचनी वंशी को पकड़ कर सो रही थी, मानों कोई कामिनी एकान्त में कामातुर हो, अपने प्यारे को पकड़ रही हो ॥ ४० ॥

विपञ्चीं परिगृह्यान्या नियता नृत्तशालिनी ।
निद्रावशमनुप्राप्ता सहकान्तेव भामिनी ॥ ४१ ॥

कोई नाचने वाली स्त्री वीणा को पकड़ कर ऐसे सो रही थी मानों अपने पति के साथ पड़ी सो रही हो ॥ ४१ ॥

अन्या कनकसङ्काशैर्मृदुपीनैर्मनोरमैः ।
मृदङ्गं परिपीड्याङ्गैः प्रसुप्ता मत्तलोचना ॥ ४२ ॥

कोई कोई मदमाते नयनों वाली अपने सुवर्ण सदृश, कोमल एवं मांसल और सुन्दर अङ्गों से मृदंग को लिपटाए और नयन मूंदे सो रही थी ॥ ४२ ॥

भुजापार्श्वान्तरस्थेन कक्षगेन कृशोदरी ।
पणवेन सहानिन्द्या सुप्तामदकृतश्रमा ॥ ४३ ॥

एक कृशोदरी रति के श्रम से थक कर, अपनी भुजाओं में ढोलक को दबाए सो रही थी ॥ ४३ ॥

डिण्डिमं परिगृह्यान्या तथैवासक्तडिण्डिमा ।
प्रसुप्ता तरुणं वत्समुपगुह्येव भामिनी ॥ ४४ ॥

कोई डमरूप्रिय स्त्री, डमरू को छाती से चिपटाए ऐसे पड़ी सो रही थी, मानों कोई बालवत्सा कामिनी अपने बच्चे को छिपाए पड़ी सोती हो ॥ ४४ ॥

काचिदाडम्बरं नारी भुजसंयोगपीडितम् ।
कृत्वा कमलपत्राक्षी प्रसुप्ता मदमोहिता ॥ ४५ ॥

कोई कमलनयनी मदिरा के नशे में बेहोश हो, आडम्बर नाम के बाजे को भुजाओं में दबाए सो रही थी ॥ ४५ ॥

कलशीमपविध्यान्या प्रसुप्ता भाति भामिनी ।
वसन्ते पुष्पशबला मालेव परिमार्जिता ॥ ४६ ॥

एक औरत जल के कलसे ही को लिपटा कर, सो गई थी। कलसे के जल से वह तर थी। इससे उसकी ऐसी शोभा जान पड़ती थी, मानों वसन्तकाल में फूलों की माला को ताज़ी (कुम्हलाने न पावे) रखने के लिए, उस पर जल छिड़का गया हो ॥ ४६ ॥

पाणिभ्यां च कुचौ काचित्सुवर्णकलशोपमौ ।
उपगुह्याबला सुप्ता निद्राबलपराजिता ॥ ४७ ॥

कोई अबला अपने दोनों हाथों से सोने के कलसे की तरह अपने दोनों कुचों को ढक कर, नींद के मारे, पड़ी सो रही थी ॥ ४७ ॥

अन्या कमलपत्राक्षी पूर्णेन्दुसदृशानना ।
अन्यामालिङ्ग्य सुश्रोणीं प्रसुप्ता मदविह्वला ॥ ४८ ॥

एक पूर्णचन्द्रानना एवं कमलनयनी, दूसरी एक सुन्दर नितम्ब वाली स्त्री को, चिपटाए हुए नशे में चूर पड़ी सो रही थी ॥ ४८ ॥

आतोद्यानि विचित्राणि परिष्वज्यापराः स्त्रियः ।
निपीड्य च कुचैः सुप्ताः कामिन्यः कामुकानिव ॥४९॥

इसी प्रकार अन्य स्त्रियाँ भी अनेक प्रकार के बाजों को अपने स्तनों से दबाए सो रही थीं। मानों कामीपुरुषों से वे अपने कुचों को मर्दन कराती हुई पड़ी हों ॥ ४९ ॥

तासामेकान्तविन्यस्ते शयानां शयने शुभे ।
ददर्श रूपसम्पन्नामपरां स कपिः स्त्रियम् ॥ ५० ॥

अन्त में हनुमान जी ने देखा कि अलग एक सुन्दर सेज पर, अपूर्व रूपयौवनशालिनी एक स्त्री पड़ी सो रही है ॥ ५० ॥

मुक्तामणिसमायुक्तैर्भूषणैः सुविभूषिताम् ।
विभूषयन्तीमिव तत्स्वश्रिया भवनोत्तमम् ॥ ५१ ॥

मणियों और मोतियों के जड़ाऊ विविध प्रकार के भूषणों को पहिने हुए वह स्त्री अपने सौन्दर्य से मानों उस उत्तम भवन को अलङ्कृत कर रही थी ॥ ५१ ॥

गौरीं कनकवर्णाङ्गीमिष्टामन्तःपुरेश्वरीम् ।
कपिर्मन्दोदरीं तत्र शयानां चारुरूपिणीम्
स तां दृष्ट्वा महाबाहुर्भूषितां मारुतात्मजः ॥ ५२ ॥
तर्कयामास सीतेति रूपयौवनसम्पदा ।
हर्षेण महता युक्तो ननन्द हरियूथपः ॥ ५३ ॥

उसके शरीर का रंग गौर था और सुवर्ण की तरह उसके शरीर की कान्ति थी । वह सारे रनवास की स्त्रियों की स्वामिनी, रावण की प्यारी और परम रूपवती मन्दोदरी थी । महाबाहु पवन-नन्दन हनुमान जी ने उस सर्वाभरणभूषित, मन्दोदरी की सुन्दरता और जवानी को देख उसे सीता समझा और इससे उनका आनन्द उत्तरोत्तर बढ़ता गया ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

आस्फोटयामास चुचुम्ब पुच्छं
ननन्द चिक्रीड जगौ जगाम ।

स्तम्भानरोहन्निपपात भूमौ
निदर्शयन्स्वां प्रकृतिं कपीनाम् ॥ ५४ ॥

इति दशमः सर्गः ॥

वानरी प्रकृति के वशवर्ती हो, हनुमान जी मारे हर्ष के पूँछ को फटकारने और चूमने लगे। वे खंभे पर बार बार चढ़ने और वहाँ से नीचे भूमि पर कूदने लगे ॥ ५४ ॥

सुन्दरकाण्ड का दसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

एकादशः सर्गः

—❀—

अवधूय च तां बुद्धिं बभूवावस्थितस्तदा।
जगाम चापरां चिन्तां सीतां प्रति महाकपिः ॥ १ ॥

हनुमान जी ने अपना वह निश्चय कुछ ही देर बाद बदल दिया। वे स्थिर हो कर बैठ गए और सीता जी के बारे में फिर सोचने लगे ॥ १ ॥

न रामेण वियुक्ता सा स्वप्तुमर्हति भामिनी।
न भोक्तुं नाप्यलंकर्तुं न पानमुपसेवितुम् ॥ २ ॥

वे मन ही मन कहने लगे कि, सीता पतिव्रता होकर, श्रीराम [वि]योग में न तो इस प्रकार सो ही सकती हैं, न खा सकती [हैं, न अ]पना शृङ्गार कर सकती हैं और न मदिरा ही पी सकती

नान्यं नरमुपस्थातुं सुराणामपि चेश्वरम् ।
न हि रामसमः कश्चिद्विद्यते त्रिदशेष्वपि ॥ ३ ॥

अन्य पुरुष का तो पूछना ही क्या, वह देवताओं के इन्द्र को भी अपना पति नहीं समझ सकती। क्योंकि श्रीरामचन्द्र जी के सामने देवताओं में भी कोई नहीं है ॥ ३ ॥

अन्येयमिति निश्चित्य पानभूमौ चचार सः ।
क्रीडितेनापराः क्लान्ता गीतेन च तथा पराः ॥ ४ ॥
नृत्तेन चापराः क्लान्ताः पानविप्रहतास्तथा ।
मुरजेषु मृदङ्गेषु चेलिकासु च संस्थिताः ॥ ५ ॥

अतः यह कोई और ही स्त्री है। इस प्रकार अपने मन में ठहरा, कपिश्रेष्ठ हनुमान जी सीता जी के दर्शन की अभिलाषा किए हुए पुनः रावण की मदशाला में विचरने लगे। वहाँ उन्होंने देखा कि, कोई स्त्री खेल से, कोई गाने से और कोई नाचते नाचते थक कर और कोई नशे में चूर हो कर और मुरज, अथवा मृदङ्ग, का सहारा ले चोली कसे सो रही हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

तथास्तरणमुख्येषु संविष्टाश्चापराः स्त्रियः ।
अङ्गनानां सहस्रेण भूषितेन विभूषणैः ॥ ६ ॥

कोई सुन्दर बिस्तरों पर यथानियम पड़ी सो रही थी। वहाँ पर हज़ारों स्त्रियाँ भूषणों से सजी सजाई पड़ी सो रही थीं ॥ ६ ॥

रूपसँल्लापशीलेन युक्तगीतार्थभाषिणा ।
देशकालाभियुक्तेन युक्तवाक्याभिधायिना ॥ ७ ॥

सुप्तं ददर्श हरियूथपः ।
मध्ये महाबाहुः शुशुभे राक्षसेश्वरः ॥ ८ ॥

नान जी ने देखा कि, उनमें से कोई स्त्री तो अपने रूप का न करने में कोई गान का अर्थ समझा समझा कर, कोई देश-कालानुसार वार्तालाप करते करते, कोई उचित वचन बोलते बोलते और कोई रतिक्रीड़ा में रत हो, सोई हुई थी। उनके बीच में पड़ा सोता हुआ महाबाहु रावण ऐसा शोभायमान हो रहा था ॥ ७ ॥ ८ ॥

गोष्ठे महति मुख्यानां गवां मध्ये यथा वृषः ।
स राक्षसेन्द्रः शुशुभे ताभिः परिवृतः स्वयम् ॥ ९ ॥

जैसे किसी बड़ी गोठ में, गौओं के बीच साँड़ शोभायमान होता है। स्वयं राक्षसेन्द्र रावण उन स्त्रियों के बीच उसी प्रकार शोभायमान हो रहा था ॥ ९ ॥

करेणुभिर्यथारण्ये परिकीर्णो महाद्विपः ।
सर्वकामैरुपेतां च पानभूमिं महात्मनः ॥ १० ॥

जिस प्रकार किसी वन में हथिनियों के बीच महागज शोभित होता है। रावण की पानशाला में किसी बात की कमी न थी ॥ १० ॥

ददर्श कपिशार्दूलस्तस्य रक्षःपतेर्गृहे ।
मृगाणां महिषाणां च वराहाणां च भागशः ॥ ११ ॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान जी ने, रावण की उस पानशाला में हिरनों ा, भैंसों का और शूकरों का मांस, अलग अलग रखा हुआ खा ॥ ११ ॥

के

तत्र न्यस्तानि मांसानि पानभूमौ ददर्श सः।
रौक्मेषु च विशालेषु भाजनेष्वर्धभक्षितान् ॥ १२ ॥
ददर्श कपिशार्दूलो मयूरान्कुक्कुटांस्तथा।
वराहवार्ध्राणसकान्दधिसौवर्चलायुतान् ॥ १३ ॥
शल्यान्मृगमयूरांश्च हनुमानन्ववैक्षत।
क्रकरान्विविधान्सिद्धांश्चकोरानर्धभक्षितान् ॥ १४ ॥

हनुमान जी ने उस पानशाला में सोने के पात्रों में रखे हुए और अधखाए हुए, मुर्गों और मोरों के मांस देखे। शूकर, जंगली बकरा (जिसके लंबे कान होते हैं) सेही, हिरनों और मोरों के मांस, वहाँ दही और निमक से लपेटे हुए हनुमान जी ने देखे। विविध प्रकार से बनाए हुए तीतरों और चकोरों के मांस अधखाए हुए वहाँ देख पड़े ॥१२॥१३॥१४॥

महिषानेकशल्यांश्च छागांश्छ कृतनिष्ठितान्[1]।
लेह्यानुच्चावचान्पेयान्भोज्यानि विविधानि च ॥ १५॥

भैंसों, एकशल्य मत्स्यों, (मछली जिसके एक कांटा होता है) और बकरों के भली भांति पकाए हुए मांस वहाँ रखे थे। इनके अतिरिक्त अन्य विविध प्रकार के चाटने, खाने और पीने के पदार्थ भी वहाँ रखे थे ॥१५॥

तथाम्ललवणोत्तंसैर्विविधै[2] रागषाडवैः[3]।
हारनूपुरकेयूरैरपविद्धैर्महाधनैः ॥ १६ ॥

---

१ कृतनिष्ठितान्—पर्याप्तपक्कान्। (गो०) २ रागः—श्वेतसर्षप (गो०) ३ षाडवाः—षड्रससंयोगकृताभक्ष्यविशेषाः। (गो०)

इनमें बहुत से तो चरपरे, खट्टे और निमकीन पदार्थों से मिश्रित थे। फिर सफेद सरसों के बनाए हुए षड्रस पदार्थ भी थे। किसी किसी पीने के पात्र में बहुमूल्य हार, नूपुर और विजायठ पड़े हुए थे ॥१६॥

पानभाजनविक्षिप्तैः फलैश्च विविधैरपि ।
कृतपुष्पोपहारा भूरधिकां पुष्यति श्रियम् ॥ १७ ॥

और कहीं प्यालों में अनेक प्रकार के फल रखे थे। उस पानशाला में इधर उधर पड़े हुए फूल वहाँ की अत्यन्त शोभा बढ़ा रहे थे ॥१७॥

तत्रतत्र च विन्यस्तैः सुश्लिष्टैः शयनासनैः ।
पानभूमिर्विना वह्निं प्रदीप्तेवोपलक्ष्यते ॥१८॥

जहाँ तहाँ कोमल बिस्तरों सहित पलंग पड़े हुए थे। वह पानशाला अग्नि के बिना ही अग्निसम चमक रही थी ॥१८॥

बहुप्रकारैर्विविधैर्वरसंस्कारसंस्कृतैः ।
मांसैः कुशलसंयुक्तैः पानभूमिगतैः पृथक् ॥१९॥

बहुत से और विविध प्रकार के निपुण पाचकों (रसोइयों) द्वारा अच्छे प्रकार से पकाए हुए मांस, पानशाला में अलग अलग रखे हुए थे ॥१९॥

[1]दिव्याः प्रसन्ना[2] विविधाः सुराः कृतसुरा[3] अपि ।
शर्करासवमाध्वीकपुष्पासवफलासवाः ॥२०॥

मांसों के अतिरिक्त वारुणी जाति की मदिरा तथा अन्य विविध प्रकार की साफ और बनावटी शराबें भी वहाँ थीं। चीनी

---

१ दिव्याः—वारुणीजातीयाः । (गो०) २ प्रसन्ना—निष्कल्मषाः । ३ कृतसुराः—कृत्रिमसुराः । (गो०)

की, शहद की, फूलों (महुआ आदि के फूलों से खींची हुई) की और फलों से खींची हुई शराबें भी वहाँ रखी हुई थीं ॥२०॥

वासचूर्णैश्च *विविधैर्मृष्टास्तैस्तैः पृथक्पृथक् ।
सन्तता शुशुभे भूमिर्माल्यैश्च बहुसंस्थितैः ॥२१॥
हिरण्मयैश्च विविधैर्भाजनैः स्फाटिकैरपि ।
जाम्बूनदमयैश्चान्यैः करकैरभिसंवृता ॥२२॥

अनेक प्रकार के साफ़ किए हुए सुगन्धित मसालों से बसाए हुए मांस और मदिराएँ वहाँ अलग अलग रखी थीं। वह पान-शाला फूलों के ढेरों से, सुवर्ण के कलसों से, स्फटिक के पात्रों से और सोने के गेडुओं से परिपूर्ण थी ॥२१॥२२॥

राजतेषु च कुम्भेषु जाम्बूनदमयेषु च ।
पानश्रेष्ठं तथा भूरि कपिस्तत्र ददर्श सः ॥२३॥

हनुमान जी ने देखा कि, कहीं चाँदी के और कहीं सोने के बड़े बड़े पात्रों में अच्छी अच्छी शराबें भरी हुई हैं ॥२३॥

सोऽपश्यच्छातकुम्भानि शीधोर्मणिमयानि च ।
राजतानि च पूर्णानि भाजनानि महाकपिः ॥२४॥

हनुमान जी ने और भी देखा कि, सुवर्ण, मणि और चाँदी के पात्रों में मदिराएँ भरी हुई हैं ॥२४॥

क्वचिदर्धावशेषाणि क्वचित्पीतानि सर्वशः ।
क्वचिन्नैव प्रपीतानि पानानि स ददर्श ह ॥२५॥

---

*पाठान्तरे—"विविधैर्दृष्टाः ।

हनुमान जी ने देखा कि, उन पात्रों में कोई तो आधे खाली थे. कोई बिलकुल खाली थे और कोई ज्यों के त्यों लबालब भरे हुए थे ॥२५॥

क्वचिद्भक्ष्यांश्च विविधान्क्वचित्पानानि भागशः ।
क्वचिदन्नावशेषाणि पश्यन्वै विचचार ह ॥२६॥

किसी स्थान में विविध प्रकार की भोजन सामग्री और पीने योग्य मदिरा सजा कर रखी हुई थी। कहीं पर भक्ष्य पदार्थ आधे खाए हुए पड़े थे। इन सब वस्तुओं को देखते भालते हनुमान जी वहाँ विचर रहे थे ॥२६॥

क्वचित्प्रभिन्नैः करकैः क्वचिदालोलितैर्घटैः ।
क्वचित्सम्पृक्तमाल्यानि मूलानि च फलानि च ॥२७॥

कहीं पर टूटे गेडुवे और कहीं पर खाली घड़े लुढ़क रहे थे। कहीं पर फूलों की मालाओं, मूलों और फलों का गड्डमगड्ड हो रहा था ॥२७॥

शयनान्यत्र नारीणां शून्यानि बहुधा पुनः ।
परस्परं समाश्लिष्य काश्चित्सुप्ता वराङ्गनाः ॥२८॥

कहीं कहीं स्त्रियों की सेजें सूनी पड़ी थीं और कोई कोई स्त्रियाँ आपस में लिपटी हुई सो रही थीं ॥२८॥

काचिच्च वस्त्रमन्यस्याः अपहृत्योपगुह्य च ।
उपगम्याबला सुप्ता निद्राबलपराजिता ॥२९॥

कहीं पर कोई स्त्री औंघाती हुई दूसरी स्त्री की सेज पर जा, उसके वस्त्र छीन कर, उससे अपने शरीर को ढक कर, पड़ी सो रही थी ॥२९॥

तासामुच्छ्वासवातेन वस्त्रं माल्यं च गात्रजम् ।
नात्यर्थं स्पन्दते चित्रं प्राप्य मन्दमिवानिलम् ॥३०॥

उनके निश्वास वायु से शरीर के वस्त्र और मालाएँ धीरे धीरे हिल रही थीं; मानों वे मन्द पवन के चलने से हिल रही हों॥३०॥

चन्दनस्य च शीतस्य शीधोर्मधुरसस्य च ।
विविधस्य च माल्यस्य धूपस्य विविधस्य च ॥३१॥
बहुधा मारुतस्तत्र गन्धं विविधमुद्वहन् ।
रसानां चन्दनानां च धूपानां चैव[1] मूर्छितः ३२॥
प्रववौ सुरभिर्गन्धो विमाने पुष्पके तदा ।
श्यामावदातास्तत्रान्याः काश्चित्कृष्णा वराङ्गनाः ॥३३॥
काश्चित्काञ्चनवर्णाङ्ग्यः प्रमदा राक्षसालये ।
तासां निद्रावशत्वाच्च मदनेन च मूर्छितम् ३४॥

शीतल चन्दन, मदिरा, मधुररस, विविध प्रकार की मालाएँ और विविध प्रकार की धूपों का गंध लिए पवन बह रहा था। अनेक प्रकार के चन्दनों के इत्रों की और सुगन्धित पदार्थों की बनी धूपों की सुगन्धि उड़ाता हुआ पवन उस समय पुष्पकविमान में व्याप्त (भरा हुआ) हो रहा था। हनुमान जी ने रावण के रनवास में अनेक स्त्रियाँ देखीं, जिनमें कोई साँवली, कोई काली और कोई सुवर्णवर्ण की थी। वे सब रति से थक कर, सो रही थीं ॥३१॥३२॥३३॥३४॥

पद्मिनीनां प्रसुप्तानां रूपमासीद्यथैव हि ।
एवं सर्वमशेषेण रावणान्तःपुरं कपिः ॥३५॥

---

[1] मूर्छितः—व्याप्तः । (गो०)

उस रात में उनका सौन्दर्य मुरझाई हुई कमलिनी की तरह हो रहा था। इस प्रकार रावण के रनवास में हनुमान जी ने सब कुछ देखा ॥३५॥

ददर्श सुमहातेजा न ददर्श च जानकीम्।
निरीक्षमाणश्च तदा ताः स्त्रियः स महाकपिः ॥३६॥

हनुमान जी ने ये सब तो देखा, किन्तु जानकी जी उनको न देख पड़ीं। हनुमान जी उन सब स्त्रियों को देखने से ॥३६॥

जगाम महतीं चिन्तां धर्मसाध्वसशङ्कितः।
परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम् ॥३७॥

बहुत चिन्तित हुए, क्योंकि सोती हुई परस्त्रियों को देखने से उनको अपने धर्म के नष्ट होने की शंका उत्पन्न हो गई ॥३७॥

इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति।
न हि मे परदाराणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी ॥३८॥

(वे मन ही मन कहने लगे कि) मेरा यह कर्म (सोती हुई पराई स्त्रियों का देखना) अवश्य मेरे धर्मजनित पुण्य को नष्ट कर देगा। आजतक मैंने बुरी दृष्टि से स्त्रियों को कभी नहीं देखा ॥३८॥

अयं चाद्य मया दृष्टः परदारपरिग्रहः।
तस्य प्रादुरभूच्चिन्ता पुनरन्या मनस्विनः ॥३९॥

किन्तु आज मैंने परस्त्रीगामी रावण को देखा है। इस प्रकार चिन्ता करते करते मनस्वी हनुमान जी के मन में, एक दूसरी बात उत्पन्न हुई ॥३९॥

निश्चितैकान्तचित्तस्य कार्यनिश्चयदर्शिनी।
कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः ॥४०॥

न हि मे मनसः किञ्चिद्वैकृत्यमुपपद्यते ।
मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने ॥४१॥
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम् ।
नान्यत्र हि मया शक्या वैदेही परिमार्गितुम् ॥४२॥

उनके मन में स्थिरता और निश्चय पूर्वक यह बात आई कि, यद्यपि मैंने इन स्त्रियों को देखा, तथापि मेरे मन में तिल भर भी विकार उत्पन्न नहीं हुआ। फिर मन ही तो पाप और पुण्य करने वाली सब इन्द्रियों का प्रेरक है। सो वह मन मेरे वश में है। अतः मुझे सोती हुई पराई स्त्रियों के देखने का पाप नहीं लग सकता। फिर अन्यत्र मैं सीता को ढूँढ़ भी तो नहीं सकता था ॥४०॥४१॥४२॥

स्त्रियो हि स्त्रीषु दृश्यन्ते सर्वथा परिमार्गणे ।
यस्य सत्त्वस्य या योनिस्तस्यां तत्परिमार्ग्यते ॥४३॥

स्त्रियाँ तो स्त्रियों ही में ढूँढ़ी जाती हैं। जिस प्राणी की जो जाति होती है, वह प्राणी उसी जाति में खोजा जाता है ॥४३॥

न शक्या प्रमदा नष्टा मृगीषु परिमार्गितुम् ।
तदिदं मार्गितं तावच्छुद्धेन मनसा मया ॥४४॥

खोयी हुई स्त्री हिरनियों के समूह में नहीं खोजी जाती। अतः मैंने शुद्धमन से जानकी को खोजते हुए ॥४४॥

रावणान्तःपुरं सर्वं दृश्यते न च जानकी ।
देवगन्धर्वकन्याश्च नागकन्याश्च वीर्यवान ॥४५॥

अवेक्षमाणो हनुमान्नैवापश्यत जानकीम् ।
तामपश्यन्कपिस्तत्र पश्यंश्चान्या वरस्त्रियः ॥४६॥

रावण के समस्त अन्तःपुर को ढूँढ़ा, पर जानकी जी न देख पड़ीं। वीर्यवान हनुमान ने वहाँ देव, गन्धर्व और नागों की कन्याओं को तो देखा, किन्तु उनको जानकी न देख पड़ीं। तब हनुमान जी ने जानकी को न देख कर, अन्य सुन्दरी स्त्रियों में जानकी जी को तलाश किया ॥४५॥४६॥

अपक्रम्य तदा वीरः प्रध्यातुमुपचक्रमे ।
स भूयस्तु परं श्रीमान्मारुतिर्यत्नमास्थितः ।
आपानभूमिमुत्सृज्य तद्विचेतुं प्रचक्रमे ॥४७॥

इति एकादशः सर्गः ॥

तदनन्तर हनुमान जी, रावण के रनवास से निकल कर, अन्यत्र जाकर जानकीजी का पता लगाने का विचार करने लगे। पवन-नन्दन हनुमानजी पानशाला को त्याग, अन्य स्थानों में जानकी जी की खोज के प्रयत्न में लगे ॥४७॥

सुन्दरकाण्ड का ग्यारहवाँ सर्ग पूर्ण हुआ ।

—:❀:—

द्वादशः सर्गः

—:❀:—

स तस्य मध्ये भवनस्य मारुति-
र्लतागृहांश्चित्रगृहान्निशागृहान् ।
जगाम सीतां प्रति दर्शनोत्सुको
न चैव तां पश्यति चारुदर्शनाम् ॥१॥

रावण के वासगृह के बीच हनुमान जी ने लतागृहों, चित्रशालाओं और रात में रहने के घरों में भली भाँति ढूढ़ा, पर जानकी उनको न देख पड़ीं ॥१॥

स चिन्तयामास ततो महाकपिः
प्रियामपश्यन्रघुनन्दनस्य ताम् ।
ध्रुवं हि सीता म्रियते यथा न मे
विचिन्वतो दर्शनमेति मैथिली ॥२॥

हनुमान जी श्रीरामचन्द्र जी की प्यारी सीता को न देख कर, अत्यन्त चिन्तित हो बिचारने लगे कि, निश्चय ही जानकी जीती हुई नहीं हैं। क्योंकि मैंने उन्हें इतना ढूढ़ा, तो भी उनके दर्शन मुझे न हुए ॥२॥

सा राक्षसानां प्रवरेण जानकी
स्वशीलसंरक्षणतत्परा सती ।
अनेन नूनं परिदुष्टकर्मणा
हता भवेदार्यपथे *वरे स्थिता ॥३॥

जान पड़ता है, अपने पतिव्रतधर्म की रक्षा में तत्पर और श्रेष्ठ पतिव्रतधर्म पर आरूढ़ जानकी को, इस दुष्टात्मा रावण ने मार डाला ॥३॥

विरूपरूपा विकृता विवर्चसो
महानना दीर्घविरूपदर्शनाः ।
समीक्ष्य सा राक्षसराजयोषितो
भयाद्विनष्टा जनकेश्वरात्मजा ॥४॥

---

*पाठान्तरे—"परे" ।

अथवा इन कुरूप, विकराल, बुरे रंग वाली, बड़े बड़े मुखों वाली, दीर्घाकार और भयंकर नयनों वाली रावण की स्त्रियों को देख, डर के मारे सीता स्वयं ही मर गई ॥४॥

सीतामदृष्ट्वा ह्यनवाप्य पौरुषं
विहृत्य कालं सह वानरैश्चिरम् ।
न मेऽस्ति सुग्रीवसमीपगा गतिः
सुतीक्ष्णदण्डो बलवांश्च वानरः ॥५॥

हा ! न तो मुझे सीता का कुछ पता लगा और न समुद्र लाँघने का फल ही मुझे प्राप्त हुआ । फिर वानरों के लिए, सुग्रीव का नियत किया हुआ अवधि-काल भी व्यतीत हो गया । अतः अब लौट कर सुग्रीव के पास जाना भी नहीं बन पड़ता । क्योंकि वह बलवान वानरराज बड़ा कड़ा दण्ड देने वाला है ॥५॥

दृष्टमन्तःपुरं सर्वं दृष्टा रावणयोषितः ।
न सीता दृश्यते साध्वी वृथा जातो मम श्रमः ॥६॥

मैंने रावण का सारा रनवास और उसकी स्त्रियों को रत्ती रत्ती देख डाला, पर वह सती सीता न देख पड़ी—अतः मेरा सारा परिश्रम मिट्टी में मिल गया ॥६॥

किंनु मां वानराः सर्वे गतं वक्ष्यन्ति सङ्गताः ।
गत्वा तत्र त्वया वीर किं कृतं तद्वदस्व नः ॥७॥

जब मैं लौटकर जाऊँगा और वानर मुझसे पूछेंगे कि, तुमने लंका में पहुँच कर क्या किया सो हमसे कहो—तब मैं उनसे क्या कहूँगा ॥७॥

अदृष्ट्वा किं प्रवक्ष्यामि तामहं जनकात्मजाम् ।
ध्रुवं प्रायमुपैष्यन्ति कालस्य व्यतिवर्तने ॥८॥

जानकी को देखे बिना मैं उनसे क्या कहूँगा। अतः सुग्रीव की निश्चित की हुई समय की अवधि तो बीत ही गई, सो मैं तो अब अन्न-जल-त्याग यहीं अपने प्राण गँवा दूँगा ॥८॥

किं वा वक्ष्यति वृद्धश्च जाम्बवानङ्गदश्च सः ।
गतं पारं समुद्रस्य वानराश्च समागताः ॥९॥

यदि मैं समुद्र के पार वानरों के पास लौट कर जाऊँ, तो बूढ़े जाम्बवान् और युवराज अंगद मुझसे क्या कहेंगे ? ॥९॥

अनिर्वेदः श्रियो मूलमनिर्वेदः परं सुखम् ।
अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः ॥१०॥

(इस प्रकार हताश होकर भी पवननन्दन ने पुनः मन ही मन कहा कि, मुझे अभी हतोत्साह न होना चाहिए—क्योंकि) उत्साह ही कार्यसिद्धि की कुंजी है, उत्साह ही परम सुख का देने वाला है और उत्साह ही मनुष्यों को सदैव सब कामों में लगाने वाला है ॥१०॥

करोति सफलं जन्तोः कर्म यच्च करोति सः ।
तस्मादनिर्वेदकरं यत्नं कुर्यादनुत्तमम् ॥११॥

उत्साहपूर्वक जीव जो काम करते हैं, उत्साह उनके उस काम को सिद्ध करता है। अतः मैं अब उत्साहपूर्वक सीता जी को ढूँढ़ने का प्रयत्न करता हूँ ॥११॥

भूयस्तावद्विचेष्यामि देशान्रावणपालितान् ।
आपानशाला विचितास्तथापुष्पगृहाणि च ॥१२॥

चित्रशालाश्च विचिता भूयः क्रीडागृहाणि च ।
निष्कुटान्तररथ्याश्च विमानानि च सर्वशः ॥१३॥

यद्यपि पानशाला, पुष्पगृह, चित्रशाला, क्रीडागृह, गृहोद्यान, भीतरी गलियाँ और अटारियों को एक बार रत्ती रत्ती ढूँढ़ चुका, तथापि मैं अब इन समस्त रावणरक्षित स्थानों को दुबारा ढूढ़ूँगा ॥१२॥१३॥

इति संचिन्त्य भूयोऽपि विचेतुमुपचक्रमे ।
भूमीगृहांश्चैत्यगृहान्[1] गृहातिगृहकानपि[2] ॥१४॥
उत्पतन्निपतंश्चापि तिष्ठन्गच्छन्पुनः पुनः ।
अपावृण्वंश्च द्वाराणि कपाटान्यवघाटयन् ॥१५॥

इस प्रकार मन में निश्चय कर हनुमान जी, फिर ढूँढ़ने में प्रवृत्त हुए। वे तहख़ाने (तलघरों) में, चौराहों के मण्डपों में तथा रहने के घरों से दूर सैर सपाटे के लिए बने हुए घरों में, ऊपर नीचे सर्वत्र ढूँढ़ने लगे। कभी तो वे ऊपर चढ़ते, कभी नीचे उतरते, कभी खड़े हो जाते और कभी फिर चल पड़ते थे। कहीं किवाड़ों को खोलते और कहीं उन्हें बंद कर देते थे। ॥ १४ ॥ १५ ॥

प्रविशन्निष्पतंश्चापि प्रपतन्नुत्पतन्नपि ।
सर्वमप्यवकाशं स विचचार महाकपिः ॥१६॥

कहीं घर में घुस, कहीं बाहिर निकल, कहीं लेट कर और कहीं बैठ कर हनुमान जी, सब स्थानों में घूमे फिरे ॥१६॥

---

१ चैत्यगृहान्—चतुष्पथमण्डपान् । (गो०) २ गृहातिगृहकान्—गृहानतीत्यदूरेस्वैरविहारार्थं निर्मितान् गृहान्। (गो०)

चतुरङ्गुलमात्रोऽपि नावकाशः स विद्यते ।
रावणान्तःपुरे तस्मिन्यं कपिर्न जगाम सः ॥१७॥

यहाँ तक कि, रावण के रनवास में चार अंगुल भी जगह ऐसी न बची, जहाँ कपि न गए हों और जो उन्होंने न देखी हो ॥१७॥

प्राकारान्तररथ्याश्च वेदिकाश्चैत्यसंश्रयाः ।
दीर्घिकाः पुष्करिण्यश्च सर्वं तेनावलोकितम् ॥१८॥

परकोटा, परकोटे के भीतर की गलियाँ, चौराहों के चबूतरे, तालाब और तलैया सभी स्थान हनुमान जी ने देख डाले ॥१८॥

राक्षस्यो विविधाकारा विरूपा विकृतास्तदा ।
दृष्टा हनुमता तत्र न तु सा जनकात्मजा ॥१९॥

इन जगहों में उनको विविध प्रकार की कुरूप विकराल राक्षसियाँ तो दिखलाई पड़ीं ; किन्तु सीता जी कहीं भी न देख पड़ीं ॥१९॥

रूपेणाप्रतिमा लोके वरा विद्याधरस्त्रियः ।
दृष्टा हनुमता तत्र न तु राघवनन्दिनी ॥२०॥

संसार में अनुपम सौन्दर्यवती और श्रेष्ठ विद्याधरों की स्त्रियाँ तो हनुमान जी ने देखीं, किन्तु सीता जी नहीं ॥२०॥

नागकन्या वरारोहाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ।
दृष्टा हनुमता तत्र न तु सीता सुमध्यमा ॥२१॥

चन्द्रवदनी सुन्दरी नागकन्याएँ भी हनुमान जी ने देखीं ; किन्तु सुन्दरी सीता जी इन्हें न देख पड़ीं ॥२१॥

प्रमथ्य राक्षसेन्द्रेण नागकन्या बलाद्धृताः ।
दृष्टा हनुमता तत्र न सा जनकनन्दिनी ॥२२॥

हनुमान जी ने उन नागकन्याओं को देखा जिन्हें रावण बलपूर्वक हर लाया था, किन्तु जनकनन्दिनी नहीं दिखाई पड़ीं ॥ २२ ॥

सोऽपश्यंस्तां महाबाहुः पश्यंश्चान्या वरस्त्रियः ।
विषसाद मुहुर्धीमान्हनुमान्मारुतात्मजः ॥२३॥

महाबाहु पवननन्दन हनुमान जी ने अन्य सुन्दरी स्त्रियों में ढूँढ़ने पर भी जब जानकी जी को न देखा, तब वे दुखी हुए ॥२३॥

उद्योगं वानरेन्द्राणां प्लवनं सागरस्य च ।
व्यर्थं वीक्ष्यानिलसुतश्चिन्तां पुनरुपागमत् ॥२४॥

सीता का पता लगाने के लिए सुग्रीव का उद्योग और अपना समुद्र का फाँदना व्यर्थ हुआ देख, पवननन्दन पुनः चिन्तित हुए ॥२४॥

अवतीर्य विमानाच्च हनुमान्मारुतात्मजः ।
चिन्तामुपजगामाथ शोकोपहतचेतनः ॥२५॥

इति द्वादशः सर्गः ॥

पवननन्दन विमान से उतर और शोक से विकल हो, अत्यंत चिन्तित हो गए ॥२५॥

सुन्दरकाण्ड का बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

त्रयोदशः सर्गः

—:※:—

विमानात्तु सुसंक्रम्य प्राकारं हरिपुङ्गवः ।
हनुमान्वेगवानासीद्यथा विद्युद्घनान्तरे ॥१॥

तदनन्तर वानरश्रेष्ठ हनुमान जी विमान से उतर कर परकोटे पर कूद कर चढ़ गए। हनुमान जी का वेग उस समय ऐसा था, जैसा कि मेघ के भीतर चमकने वाली बिजली का होता है ॥१॥

सम्परिक्रम्य हनुमान्रावणस्य निवेशनम् ।
अदृष्ट्वा जानकीं सीतामब्रवीद्वचनं कपिः ॥२॥

रावण के आवासगृह में चारों ओर घूम फिरकर और सीता को न पा कर, हनुमान जी आप ही आप कहने लगे ॥२॥

भूयिष्ठं लोलिता लङ्का रामस्य चरता प्रियम् ।
न हि पश्यामि वैदेहीं सीतां सर्वाङ्गशोभनाम् ॥३॥

श्रीरामचन्द्र जी का प्रियकार्य करने के अर्थ मैंने दुबारा लंकापुरी खोज डाली, किन्तु उस सर्वाङ्गसुन्दरी सीता का पता तो भी न चला ॥३॥

पल्वलानि तटाकानि सरांसि सरितस्तथा ।
नद्योऽनूपवनान्ताश्च दुर्गाश्च धरणीधराः ॥४॥

पुष्करिणियों, तड़ागों, झीलों, छोटी बड़ी नदियों, नदीतट के वनों, दुर्गों और पर्वतों को लेकर ॥४॥

न तु पश्यामि जानकीम् ।
ता रावणस्य निवेशने ॥५॥
धराज्ञेन न च पश्यामि तामहम् ।
थ वैदेही मैथिली जनकात्मजा ॥६॥

ा पृथ्वीमण्डल देख डाला, किन्तु सीता जी न मिलीं। तु सम्पाति का कहना यह है कि, सीता रावण के ही घर में है, किन्तु यहाँ तो सीता हैं नहीं। कहीं वैदेही, मैथिली, जनकात्मजा सीता ॥५॥६॥

उपतिष्ठेत विवशा रावणं दुष्टचारिणम् ।
क्षिप्रमुत्पततो मन्ये सीतामादाय रक्षसः ॥७॥
बिभ्यतो रामबाणानामन्तरा पतिता भवेत् ।
अथवा ह्रियमाणायाः पथि सिद्धनिषेविते ॥८॥

विवश हो, दुष्टात्मा रावण के वश में तो नहीं हो गईं अथवा जब रावण सीता को हरण करके, श्रीरामचन्द्र जी के बाणों के भय से शीघ्रतापूर्वक आ रहा था, तब जानकी जी कहीं हड़बड़ी में बीच में तो खसक नहीं पड़ीं। अथवा जब वह सिद्धों से सेवित आकाशमार्ग से सीता को हर कर ला रहा था ॥७॥८॥

मन्ये पतितमार्याया हृदयं प्रेक्ष्य सागरम् ।
रावणस्योरुवेगेन भुजाभ्यां पीडितेन च ॥९॥
तया मन्ये विशालाक्ष्या त्यक्तं जीवितमार्यया ।
उपर्युपरि वा नूनं सागरं क्रमतस्तदा ॥१०॥

तब जान पड़ता है कि, सागर को देखने से भयभीत हो, सीता के प्राण निकल गए अथवा रावण के महावेग से चलने और उसकी भुजाओं के बीच दब जाने से विकल हो, उस विशालाक्षी सीता ने प्राण त्याग दिए हों। अथवा समुद्र पार करते समय ॥ ९ ॥ १० ॥

विचेष्टमाना पतिता समुद्रे जनकात्मजा ।
आहो क्षुद्रेण वाऽनेन रक्षन्ती शीलमात्मनः ॥११ ॥
अबन्धुर्भक्षिता सीता रावणेन तपस्विनी ।
अथवा राक्षसेन्द्रस्य पत्नीभिरसितेक्षणा ॥ १२ ॥
अदुष्टा दुष्टभावाभिर्भक्षिता सा भविष्यति ।
सम्पूर्णचन्द्रप्रतिमं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ॥ १३ ॥

छटपटाती सीता समुद्र में गिर पड़ी हो। अथवा अपने पातिव्रत की रक्षा करती हुई उस अनाथिनी को इस नीच रावण ने ही खा डाला हो अथवा रावण की दुष्टा स्त्रियों ने ही कमलाक्षी सीता को सौतिया डाह के कारण मिल कर खा डाला हो। अथवा पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥

रामस्य ध्यायती वक्त्रं पञ्चत्वं कृपणा गता ।
हा राम लक्ष्मणेत्येवं हायोध्ये चेति मैथिली ॥ १४ ॥
विलप्य बहु वैदेही न्यस्तदेहा भविष्यति ।
अथवा निहिता मन्ये रावणस्य निवेशने ॥ १५ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के मुखमण्डल का स्मरण करती हुई वह बपुरी मर गई हो । अथवा हा राम ! हा लक्ष्मण ! हा अयोध्या ! कह

कर बहुत सा विलाप करती हुई मैथिली ने शरीर छोड़ दिया होगा अथवा यह भी सम्भव है कि, रावण के घर में वह कहीं छिपा कर रखी गई हो ॥ १४ ॥ १५ ॥

नूनं लालप्यते सीता पञ्जरस्थेव शारिका ।
जनकस्य सुता सीता रामपत्नी सुमध्यमा ॥१६ ॥
कथमुत्पलपत्राक्षी रावणस्य वशं व्रजेत् ।
विनष्टा[1] वा प्रणष्टा[2] वा मृता वा जनकात्मजा ॥१७॥

और पिंजड़े में बंद मैना की तरह विवश पड़ी विलाप करती हो। किन्तु कमलदल के समान नेत्र वाली और क्षीण कटिवाली सीता जनक की बेटी और श्रीरामचन्द्र जी की भार्या होकर रावण के वश में कैसे जा सकती है? उसे रावण ने भले ही किसी तहख़ाने में छिपा रखा हो अथवा वह समुद्र में गिर कर नष्ट हो गई हो अथवा मर गई हो ॥ १६ ॥ १७ ॥

रामस्य प्रियभार्यस्य न निवेदयितुं क्षमम् ।
निवेद्यमाने दोषः स्याद्दोषः स्यादनिवेदने ॥ १८ ॥

किन्तु श्रीरामचन्द्र जी के पास जा, इन बातों में से मैं एक भी बात नहीं कह सकता। ऐसी बातें कहने से भी दोष लगता है और न कहने से भी दोष का भागी होना पड़ता है ॥ १८ ॥

कथं नु खलु कर्तव्यं विषमं प्रतिभाति मे ।
अस्मिन्नेवं गते कार्ये प्राप्तकालं क्षमं च किम् ॥ १९ ॥

---

[1] विनष्टा—भूगृहादौ स्थापनेनादर्शनं गता । (गो०) [2] प्रणष्टा—समुद्रपतनादिना त्यक्तजीविता । (गो०)

ऐसे में निश्चयपूर्वक मेरा क्या कर्त्तव्य है, इसका निश्चय करना बड़ी विषम समस्या जान पड़ती है। परिस्थिति तो यह है—अब समयानुसार क्या किया जाय ॥ १९ ॥

भवेदिति मतं भूयो हनुमान्प्रविचारयन् ।
यदि सीतामदृष्ट्वाहं वानरेन्द्रपुरीमितः ॥ २० ॥
गमिष्यामि ततः को मे पुरुषार्थो भविष्यति ।
ममेदं लङ्घनं व्यर्थं सागरस्य भविष्यति ॥ २१ ॥

इस प्रकार अपने मन में विचारों की ऊहापोह करते करते, हनुमान बड़े विचार में पड़ गए। वे सोचने लगे कि, यदि सीता को देखे बिना किष्किन्धा को लौट चलूँ, तो इसमें मेरा पुरुषार्थ ही क्या समझा जायगा। बल्कि मेरा सौ योजन समुद्र का लाँघना भी व्यर्थ ही हो जायगा ॥ २० ॥ २१ ॥

प्रवेशश्चैव लङ्कायां राक्षसानां च दर्शनम् ।
किं मां वक्ष्यति सुग्रीवो हरयो वा समागताः ॥ २२ ॥

फिर लङ्का में प्रवेश करना और राक्षसों को देखना भालना सब ही व्यर्थ है। सुग्रीव अथवा अन्य वानर मिलने पर मुझसे क्या कहेंगे? ॥ २२ ॥

किष्किन्धां समनुप्राप्तौ तौ वा दशरथात्मजौ ।
गत्वा तु यदि काकुत्स्थं वक्ष्यामि परमप्रियम् ॥ २३ ॥

फिर किष्किन्धा में जाने पर दशरथनन्दन श्रीराम और लक्ष्मण मुझसे क्या कहेंगे? वहाँ जा कर यदि मैं श्रीरामचन्द्र जी से यह अप्रिय वचन कहूँ ॥ २३ ॥

न दृष्टेति मया सीता ततस्त्यक्ष्यति जीवितम् ।
परुषं दारुणं क्रूरं तीक्ष्णमिन्द्रियतापनम् ॥ २४ ॥

कि, मुझे सीता का पता नहीं मिला, तो वे तत्क्षण प्राण त्याग देंगे। क्योंकि सीता के सम्बन्ध में उनसे इस प्रकार का वचन कहना श्रीराम जी के लिए केवल कठोर, भयङ्कर, असह्य और इन्द्रियों को व्यथित करने वाला ही होगा ॥ २४ ॥

सीतानिमित्तं दुर्वाक्यं श्रुत्वा स न भविष्यति ।
तं तु कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा पञ्चत्वगतमानसम् ॥ २५ ॥

सीता के बारे में कोई भी बुरी बात सुन, श्रीरामचन्द्र जी का बचना कठिन होगा। उनको शोक से विकल हो प्राण त्यागते देख, ॥ २५ ॥

भृशानुरक्तो मेधावी न भविष्यति लक्ष्मणः ।
विनष्टौ भ्रातरौ श्रुत्वा भरतोऽपि मरिष्यति ॥ २६ ॥

उनके अत्यन्त अनुरागी और मेधावी लक्ष्मण भी न बचेंगे। जब श्रीराम और लक्ष्मण के मरने का वृत्तान्त भरत जी सुनेंगे, तब वे भी प्राण त्याग देंगे ॥ २६ ॥

भरतं च मृतं दृष्ट्वा शत्रुघ्नो न भविष्यति ।
पुत्रान्मृतान्समीक्ष्याथ न भविष्यन्ति मातरः ॥ २७ ॥

भरत को मरा देख, शत्रुघ्न भी जीवित न रहेंगे। जब अपने पुत्रों को मरा हुआ देखेंगी, तब उनकी माताएँ भी जीती न बचेंगी ॥ २७ ॥

कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयी च न संशयः ।
कृतज्ञः सत्यसन्धश्च सुग्रीवः प्लवगाधिपः ॥ २८ ॥

निश्चय ही, कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी मर जाँयगी। फिर कृतज्ञ और सत्यप्रतिज्ञ वानरराज सुग्रीव भी ॥ २८ ॥

राम तथागतं दृष्ट्वा ततस्त्यक्ष्यति जीवितम् ।
दुर्मना व्यथिता दीना निरानन्दा तपस्विनी ॥ २९ ॥
पीडिता भर्तृशोकेन रुमा त्यक्ष्यति जीवितम् ।
वालिजेन तु दुःखेन पीडिता शोककर्शिता ॥ ३० ॥

श्रीराम को मरा देख अपना प्राण त्याग देंगे। तब अपना मन मारे, व्यथित, दीन और दुखी बेचारी रुमा अपने पति के शोक से पीड़ित हो, अपने प्राण गँवा देगी। वालि के मारे जाने के दुःख से पीड़ित और शोक से विकल ॥ २९ ॥ ३० ॥

पञ्चत्वं च गते राज्ञि तारापि न भविष्यति ।
मातापित्रोर्विनाशेन सुग्रीवव्यसनेन च ॥ ३१ ॥

तारा उसी समय मरने को तैयार थी; सो अब राजा सुग्रीव के मर जाने पर वह भी कभी न जीती बचेगी। माता, पिता और सुग्रीव के मर जाने पर ॥ ३१ ॥

कुमारोऽप्यङ्गदः कस्माद्धारयिष्यति जीवितम् ।
भर्तृजेन तु दुःखेन ह्यभिभूता वनौकसः ॥ ३२ ॥

युवराज अंगद क्योंकर जीवित रह सकेगा? फिर स्वामी को मरा देख, वानर बहुत दुःखी हो कर ॥ ३२ ॥

शिरांस्यभिहनिष्यन्ति तलैर्मुष्टिभिरेव च ।
सान्त्वेनानुप्रदानेन मानेन च यशस्विना ॥ ३३ ॥

थपेड़ों और घूसों से अपने सिरों को धुन डालेंगे। जो वानरराज सुग्रीव दान व मान से वानरों को सान्त्वना प्रदान कर ॥ ३३ ॥

लालिताः कपिराजेन प्राणांस्त्यक्ष्यन्ति वानराः ।
न वनेषु न शैलेषु न निरोधेषु[1] वा पुनः ॥ ३४ ॥

उनका लालन पालन किया करते हैं, उन सुग्रीव को मरा देख, समस्त वानर मर जायँगे। तब क्या वनों, क्या पर्वतों और क्या घरों में ॥ ३४ ॥

क्रीडामनुभविष्यन्ति समेत्य कपिकुञ्जराः ।
सपुत्रदाराः सामात्या भर्तृव्यसनपीडिताः ॥ ३५ ॥
शैलाग्रेभ्यः पतिष्यन्ति समेषु विषमेषु च ।
विषमुद्बन्धनं वाऽपि प्रवेशं ज्वलनस्य वा ॥ ३६ ॥

कपिकुञ्जर एकत्र हो विहार न करेंगे। अपने स्वामी के शोक से सन्तापित होकर स्त्री पुत्र और अपने अपने सेवकों को साथ लेकर वानरगण, पर्वत शिखरों पर चढ़ ऊबड़ खाबड़ भूमि पर गिर कर, प्राण दे देंगे। अथवा विष खा कर, अथवा गले में फाँसी लगा कर, अथवा जलती हुई आग में कूद कर, मर जायँगे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

उपवासमथो शस्त्रं प्रचरिष्यन्ति वानराः ।
घोरमारोदनं मन्ये गते मयि भविष्यति ॥ ३७ ॥

अथवा उपवास कर या शस्त्र से अपना गला काट, वानर मर जायँगे। मैं समझता हूँ, मेरे किष्किन्धा में लौट कर जाने से, वहाँ महाभयङ्कर हाहाकार मच जायगा ॥ ३७ ॥

---

१ निरोधेषु—गृहादिसंवृतप्रदेशेषु। (गो०)

इक्ष्वाकुकुलनाशश्च नाशश्चैव वनौकसाम् ।
सोऽहं नैव गमिष्यामि किष्किन्धां नगरीमितः ॥ ३८ ॥

क्योंकि मेरे जाते ही इक्ष्वाकुकुल का और वानरकुल का नाश निश्चित है—अतः मैं यहाँ से किष्किन्धा को लौट कर नहीं जाऊँगा ॥ ३८ ॥

न च शक्ष्याम्यहं द्रष्टुं सुग्रीवं मैथिलीं विना ।
मय्यगच्छति चेहस्थे धर्मात्मानौ महारथौ ॥ ३९ ॥
आशया तौ धरिष्येते वानराश्च मनस्विनः ।
हस्तादानो[1] मुखादानो[2] नियतो वृक्षमूलिकः[3] ॥४०॥

मैं सीता को देखे बिना सुग्रीव के सामने नहीं जा सकता और यदि मैं वहाँ न जाकर यहीं बना रहूँ तो वे दोनों धर्मात्मा महारथी श्रीराम और लक्ष्मण तथा वानरगण आशा से जीवित तो बने रहेंगे । अतः अब तो मैं जितेन्द्रिय हो, आपसे आप जो हाथ में या मुख में आ जायगा, उसको खाकर और वृक्षमूलवासी हो ॥ ३९ ॥ ४० ॥

वानप्रस्थो भविष्यामि ह्यदृष्ट्वा जनकात्मजाम् ।
सागरानूपजे देशे बहुमूलफलोदके ॥ ४१ ॥

वानप्रस्थ हो जाऊँगा । यदि मैं जानकी का पता न लगा पाया, तो अनेक फल मूल और जल से पूर्ण कहीं समुद्र के तट पर ॥ ४१ ॥

---

१ हस्तादानः—हस्तपतितभोजी । (गो०) २ मुखादानः—मुखपतित भोजी । (गो०) ३ वृक्षमूलिकः—वृक्षमूलवासी । (गो०)

चितां कृत्वा प्रवेक्ष्यामि समिद्धमरणीसुतम् ।
उपविष्टस्य[1] वा सम्यग्लिङ्गिनं[2] साधयिष्यतः ॥४२॥

चिता बना कर और अरणी से उत्पन्न की हुई आग से उसे जला, उसमें गिर कर प्राण दे दूँगा । अथवा प्रायोपवेशन व्रत धारण कर शरीर से आत्मा को छुड़ा दूँगा अर्थात् मर जाऊँगा ॥ ४२ ॥

शरीरं भक्षयिष्यन्ति वायसाः श्वापदानि च ।
इदं महर्षिभिर्दृष्टं निर्याणमिति मे मतिः ॥ ४३ ॥
सम्यगापः प्रवेक्ष्यामि न चेत्पश्यामि जानकीम् ।
सुजातमूला सुभगा कीर्त्तिमाला यशस्विनी ॥ ४४ ॥

तब मेरे मृतशरीर को कौए स्यार आदि खा डालेंगे । ऋषियों ने इस शरीर को त्याग करने का और भी उपाय बतलाया है । सो यदि मुझे जानकी न मिलेगी, तो मैं जल में डूब कर मर जाऊँगा । हाय, मैंने आरम्भ में लङ्का राक्षसी को जीत कर जो नामवरी प्राप्त की, अब सीता के दर्शन न पाने से, वह मेरी कीर्ति सदा के लिए नष्ट हो गई ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

प्रभग्ना चिररात्रीयं मम सीतामपश्यतः ।
तापसो वा भविष्यामि नियतो वृक्षमूलिकः ॥ ४५ ॥

और जागते जागते इतनी लंबी रात भी सीता के खोजने में समाप्त हुई । किन्तु सीता देखने को न मिली । अतः अब तो

---

१ उपविष्टस्य—प्रायोपविष्टस्य । (गो०) २ लिङ्गिनं—लिङ्गं शरीरं तद्वान् लिङ्गी आत्मा तं साधयिष्यतः शरीरादात्मानं मोचयिष्यत इत्यर्थः । (गो०)

में किसी वृक्ष के तले; जितेंद्रिय बन और वानप्रस्थ हो निवास करूँगा ॥ ४५ ॥

नेतः प्रतिगमिष्यामि तामदृष्ट्वासितेक्षणाम् ।
यदीतः प्रतिगच्छामि सीतामनधिगम्य ताम् ॥ ४६ ॥

उस कमल सदृश नेत्र वाली सीता को देखे बिना तो मैं अब यहाँ से न जाऊँगा और यदि सीता का पता लगाए बिना यहाँ से लौट कर गया ॥ ४६ ॥

अङ्गदः सह तैः सर्वैर्वानरैर्न भविष्यति ।
विनाशे बहवो दोषा जीवन्भद्राणि पश्यति ॥ ४७ ॥

तो अङ्गद सहित वे सब वानर जीते न बचेंगे । मरने में अनेक दोष हैं और जीवित रहने में अनेक शुभों की प्राप्ति की आशा है ॥ ४७ ॥

तस्मात्प्राणान्धरिष्यामि ध्रुवो जीवति सङ्गमः ।
एवं बहुविधं दुःखं मनसा धारयन्मुहुः ॥ ४८ ॥

अतः मैं जीवित रहूँगा । क्योंकि जीवित रहने से निश्चय ही इष्टसिद्धि होती है । इस प्रकार की अनेक दुःखदायिनी चिन्ताएँ करते हुए पवन-नन्दन बहुत दुःखी हो रहे थे ॥ ४८ ॥

नाध्यगच्छत्तदा पारं शोकस्य कपिकुञ्जरः ।
रावणं वा वधिष्यामि दशग्रीवं महाबलम् ॥ ४९ ॥

और वे उस शोक (सागर) के पार न जा सके । तब उन्होंने विचारा कि, चलो महाबली दशग्रीव रावण ही का संहार करते चलें ॥ ४९ ॥

कामसमस्तु हृता सीता प्रत्याचीर्णं भविष्यति ।
अथ वैनं समुत्क्षिप्य उपर्युपरि सागरम् ॥ ५० ॥

क्योंकि सबको मार डालने से सीता के हरने का बदला पूरा हो जायगा अथवा रावण को बारंबार समुद्र के ऊपर उछालते हुए ॥ ५० ॥

रामायोपहरिष्यामि पशुं पशुपतेरिव ।
इति चिन्तां समापन्नः सीतामनधिगम्य ताम् ॥ ५१ ॥
ध्यानशोकपरीतात्मा चिन्तयामास वानरः ।
यावत्सीतां हि पश्यामि रामपत्नीं यशस्विनीम् ॥ ५२ ॥
तावदेतां पुरीं लङ्कां विचिनोमि पुनः पुनः ।
सम्पातिवचनाच्चापि रामं यद्यानयाम्यहम् ॥ ५३ ॥

श्रीरामचन्द्र जी को वैसे ही भेंट कर दूँ, जैसे पशु के मालिक को पशु सौंपा जाता है। इस प्रकार की अनेक चिन्ताएँ करते हुए तथा चिन्ता और शोक में डूबे हुए, हनुमान जी ने विचारा कि, जब तक सीता न मिले तब तक बार बार इसी लङ्का को ढूँढूँ अथवा संपाति के वचनों पर विश्वास कर, श्रीरामचन्द्र जी ही को यहाँ ले आऊँ ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

अपश्यन्राघवो भार्यां निर्दहेत्सर्ववानरान् ।
इहैव नियताहारो वत्स्यामि नियतेन्द्रियः ॥ ५४ ॥

यदि यहाँ आने पर सीता जी को श्रीरामचन्द्र जी ने न पाया तो क्रुद्ध हो, वे सब वानरों को भस्म कर डालेंगे। अतः यही ठीक है कि, मैं नियताहारी और नियतेन्द्रिय हो यहीं रहूँ ॥ ५४ ॥

न मत्कृते विनश्येयुः सर्वे ते नरवानराः ।
अशोकवनिका चेयं दृश्यते या महाद्रुमा ॥ ५५ ॥

मैं नहीं चाहता कि, मेरे पीछे ये सब नर और वानर नष्ट हों और उस अशोकवाटिका को तो जिसमें बड़े बड़े वृक्ष देख पड़ते हैं ॥ ५५ ॥

इमामभिगमिष्यामि न हीयं विचिता मया ।
वसून्रुद्रांस्तथादित्यानश्विनौ मरुतोऽपि च ॥ ५६ ॥
नमस्कृत्वा गमिष्यामि रक्षसां शोकवर्धनः ।
जित्वा तु राक्षसान्सर्वानिक्ष्वाकुकुलनन्दिनीम्
सम्प्रदास्यामि रामाय यथा सिद्धिं तपस्विने ॥ ५७ ॥

मैंने ढूँढ़ा ही नहीं । अतः अब मैं उसमें जाऊँगा । आठों वसुओं, ग्यारहों रुद्रों, बारहों आदित्यों, दोनों अश्विनीकुमारों तथा उनचासों पवनों को नमस्कार कर, राक्षसों का शोक बढ़ाने के लिए मैं वहाँ जाऊँगा । फिर सब राक्षसों को जीत और जनकनन्दिनी को ले जाकर, मैं श्रीरामचन्द्र जी को वैसे ही दूँगा, जैसे तपस्वियों को सिद्धि दी जाती है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा चिन्तावग्रथितेन्द्रियः ।
उदतिष्ठन्महातेजा हनूमान्मारुतात्मजः ॥ ५८ ॥

चिन्ता से विकल हो, महातेजस्वी पवननन्दन हनुमान जी एक मुहूर्त्त तक कुछ सोच विचार कर, उठ खड़े हुए ॥ ५८ ॥

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय
देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै ।

नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो
नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः ॥ ५९ ॥

और मन ही मन बोले—मैं श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण को नमस्कार करता हूँ। उन देवी जनकनन्दिनी को भी मैं नमस्कार करता हूँ। मैं, रुद्र, इन्द्र, यम, वायु, चन्द्र, अग्नि और मरुद्गण को भी नमस्कार करता हूँ ॥ ५९ ॥

स तेभ्यस्तु नमस्कृत्वा सुग्रीवाय च मारुतिः।
दिशः सर्वाः समालोक्य ह्यशोकवनिकां प्रति ॥ ६० ॥

उन सब को और सुग्रीव को नमस्कार कर, पवनकुमार ने दसों दिशाओं को अच्छी तरह देख कर, अशोकवन की ओर प्रस्थान किया ॥ ६० ॥

स गत्वा मनसा पूर्वमशोकवनिकां शुभाम्।
उत्तरं चिन्तयामास वानरो मारुतात्मजः ॥ ६१ ॥

उस मनोहर अशोकवाटिका में पवननंदन हनुमान जी मन द्वारा तो पहिले ही पहुँच गए। तदनन्तर आगे के कर्त्तव्य के विषय में वे विचारने लगे ॥ ६१ ॥

ध्रुवं तु रक्षोबहुला भविष्यति वनाकुला।
अशोकवनिकाचिन्त्या सर्वसंस्कारसंस्कृता ॥ ६२ ॥

उन्होंने विचारा कि, अशोकवाटिका निश्चय ही बहुत साफ सुथरी और सजी हुई होगी और उसकी रखवाली के लिए भी बहुत से राक्षस नियुक्त होंगे। अतः उसे चल कर अवश्य ढूँढ़ना चाहिए ॥ ६२ ॥

रक्षिणश्चात्र विहिता नूनं रक्षन्ति पादपान् ।
भगवानपि सर्वात्मा नातिक्षोभं प्रवाति वै ॥ ६३ ॥

अवश्य ही वहाँ के पेड़ों की रखवाली के लिए रखवाले होंगे । भगवान विश्वात्मा पवनदेव भी पेड़ों को झकोरते हुए, वहाँ न बहने पाते होंगे ॥ ६३ ॥

संक्षिप्तोऽयं मयात्मा च रामार्थे रावणस्य च ।
सिद्धिं दिशन्तु मे सर्वे देवाः सर्षिगणास्त्विह ॥ ६४ ॥

अतः श्रीरामचन्द्र जी का कार्य पूरा करने के लिए और रावण की दृष्टि से अपने को बचाने के लिए, मैंने अपने शरीर को छोटा कर लिया है । अतः इस समय देवगण और ऋषिगण मेरा अभीष्ट पूरा करें ॥ ६४ ॥

ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवान्देवाश्चैव दिशन्तु मे ।
सिद्धिमग्निश्च वायुश्च पुरुहूतश्च वज्रभृत् ॥ ६५ ॥
वरुणः पाशहस्तश्च सोमादित्यौ तथैव च ।
अश्विनौ च महात्मानौ मरुतः शर्व एव च ॥ ६६ ॥
सिद्धिं सर्वाणि भूतानि भूतानां चैव यः प्रभुः ।
दास्यन्ति मम ये चान्ये ह्यदृष्टाः पथि गोचराः ॥ ६७ ॥

भगवान् स्वयंभू ब्रह्मा, देवतागण, तपस्वीगण, अग्नि, वायु, वज्रधारी इन्द्र, पाशहस्त वरुण, चन्द्रमा, सूर्य, महात्मा अश्विनीकुमार, उनचासों मरुत और रुद्र, समस्त प्राणिगण और समस्त प्राणियों के प्रभु श्रीमन्नारायण तथा अदृश्य भाव से विचरने वाले अन्य देवगण—मेरा काम पूरा करें ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

तदुन्नसं पाण्डुरदन्तमव्रणं
शुचिस्मितं पद्मपलाशलोचनम् ।
द्रक्ष्ये तदार्यावदनं कदान्वहं
प्रसन्नताराधिपतुल्यदर्शनम् ॥ ६८ ॥

ना जानूँ कब मैं उन सती एवं कमलनयनी सीता का उच्च नासिकाभूषित, श्वेतदन्तशोभित, मंद मुसक्यान युक्त और चेचक के दागों से रहित मुखारविन्द का दर्शन पाऊँगा ॥ ६८ ॥

क्षुद्रेण पापेन नृशंसकर्मणा
सुदारुणालंकृतवेषधारिणा ।
बलाभिभूता ह्यबला तपस्विनी
कथं नु मे दृष्टिपथेऽद्य सा भवेत् ॥ ६९ ॥

इति त्रयोदशः सर्गः ॥

नीच, ओछे, घातक और भयङ्कर रूप वाले रावण ने कपट रूप सजा कर, बलपूर्वक जिस अबला तपस्विनी सीता को हर लिया है ; वह देखें, मुझे दिखलाई पड़ती है ॥ ६९ ॥

सुन्दरकाण्ड का तेरहवां सर्ग पूर्ण हुआ ।

—*—

चतुर्दशः सर्गः

—*—

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा मनसा चाधिगम्य ताम् ।
अवप्लुतो महातेजाः प्राकारं तस्य वेश्मनः ॥ १ ॥

महातेजस्वी हनुमान जी मुहूर्त भर कुछ विचार तथा सीता जी का ध्यान कर, रावण के महल के परकोटे के नीचे उतर आए ॥ १ ॥

स तु संहृष्टसर्वाङ्गः प्राकारस्थो महाकपिः ।
पुष्पिताग्रान्वसन्तादौ ददर्श विविधान्द्रुमान् ॥ २ ॥

अशोक वाटिका के परकोटे की भीत पर बैठ कर, बसन्त आदि सब ऋतुओं में सदा फूलने वाले विविध वृक्षों को देख, महाकपि हनुमान का शरीर पुलकित हो गया ॥ २ ॥

सालानशोकान्भव्यांश्चम्पकांश्च सुपुष्पितान् ।
उद्दालकान्नागवृक्षांश्च्तान्कपिमुखानपि ॥ ३ ॥

उन वृक्षों में सुन्दर साल और अशोक के पेड़ तथा भली भाँति फूले हुए चंपा के पेड़, लसोड़ा, नागकेसर और कपि के मुख की आकृति वाले आम के फलों के वृक्ष थे ॥ ३ ॥

अथाम्रवणसंछन्नां लताशतसमावृताम् ।
ज्यामुक्त इव नाराचः पुप्लुवे वृक्षवाटिकाम् ॥ ४ ॥

आम्र के वन से आच्छादित और सैकड़ों लताओं से वेष्टित उस अशोक वाटिका में रोदा से छुटे हुए तीर की तरह, हनुमान जी उछल कर जा पहुँचे ॥ ४ ॥

स प्रविश्य विचित्रां तां विहगैरभिनादिताम् ।
राजतैः काञ्चनैश्चैव पादपैः सर्वतो वृताम् ॥ ५ ॥

वहाँ जाकर हनुमान जी ने देखा कि, वह वाटिका बड़ी अद्भुत है । वहाँ पर बैठे अनेक पक्षी कलरव कर रहे हैं, और वह चारों ओर चाँदी और सोने के वृक्षों से शोभित है ॥ ५ ॥

विहगैर्मृगसंघैश्च विचित्रां चित्रकाननाम् ।
उदितादित्यसङ्काशां ददर्श हनुमान्कपिः ॥ ६ ॥

उसमें तरह तरह के जीवजन्तुओं और पक्षियों के कारण उसकी विचित्र शोभा हो रही थी। हनुमान जी ने वहाँ जाकर देखा कि, उदयकालीन सूर्य की तरह उस वाटिका की शोभा हो रही है ॥ ६ ॥

वृतां नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पोपगफलोपगैः ।
कोकिलैर्भृङ्गराजैश्च मत्तैर्नित्यनिषेविताम् ॥ ७ ॥

उसमें विविध प्रकार के फलों और फूलों के वृक्ष हैं और उन पर मतवाली कोयलें कूक रही हैं तथा भौंरे गुंजार कर रहे हैं ॥ ७ ॥

प्रहृष्टमनुजे काले मृगपक्षिसमाकुले ।
मत्तबर्हिण संघुष्टां नानाद्विजगणायुताम् ॥ ८ ॥

वहाँ पर जाने से मनुष्य का मन सदा प्रसन्न होता और उसमें मृग और पक्षी भरे हुए थे। मतवाली मोरें नाचा करतीं और अनेक पक्षी वहाँ रहते थे ॥ ८ ॥

मार्गमाणो वरारोहां राजपुत्रीमनिन्दिताम् ।
सुखप्रसुप्तान्विहगान्बोधयामास वानरः ॥ ९ ॥

हनुमान जी ने सुन्दरी और अनिन्दिता राजकुमारी सीता को खोजते हुए, सुख की नींद में सोते हुए वहाँ के पक्षियों को जगा दिया ॥ ९ ॥

उत्पतद्भिर्द्विजगणैः पक्षैः सालाः समाहताः ।
अनेकवर्णा विविधा मुमुचुः पुष्पवृष्टयः ॥ १० ॥

जब समस्त पक्षी चौंके और परों को फैला कर उड़े, तब उनके पंखों से निकले हुए पवन के झोंकों से विविध वृक्षों ने रंग बिरंगे पुष्पों की वर्षा की ॥ १० ॥

पुष्पावकीर्णः शुशुभे हनुमान्मारुतात्मजः ।
अशोकवनिकामध्ये यथा पुष्पमयो गिरिः ॥ ११ ॥

हनुमान जी फूलों के ढेर से ढक कर, उस अशोकवाटिका में उस समय फूलों के पहाड़ की तरह जान पड़ने लगे ॥ ११ ॥

दिशः सर्वाः प्रधावन्तं वृक्षषण्डगतं कपिम् ।
दृष्ट्वा सर्वाणि भूतानि वसन्त इति मेनिरे ॥ १२ ॥

जब हनुमान जी वृक्षों ही वृक्षों पर चढ़े हुए उस वाटिका में चारों ओर घूमने लगे, तब उन्हें देख समस्त प्राणियों ने समझा कि, वसन्त ऋतु रूप धारण करके घूम रहा है ॥ १२ ॥

वृक्षेभ्यः पतितैः पुष्पैरवकीर्णा पृथग्विधैः ।
रराज वसुधा तत्र प्रमदेव विभूषिता ॥ १३ ॥

वृक्षों से गिरे हुए फूलों से ढक कर, वहाँ की भूमि शृङ्गार की हुई स्त्री की तरह शोभायमान जान पड़ने लगी ॥ १३ ॥

तरस्विना ते तरवस्तरसाऽभिप्रकम्पिताः ।
कुसुमानि विचित्राणि ससृजुः कपिना तदा ॥ १४ ॥

बलवान हनुमान जी के ज़ोर से हिलाने पर उन पेड़ों के रंग बिरंगे फूल झड़ कर गिर पड़े ॥ १४ ॥

निर्धूतपत्रशिखराः शीर्णपुष्पफलद्रुमाः ।
निक्षिप्तवस्त्राभरणा धूर्ता इव पराजिताः ॥ १५ ॥

उनके केवल फूल ही नहीं, बल्कि पत्ते, फुनगियां और फल सब गिर पड़े। उस समय वे सब वृक्ष ऐसे जान पड़ते थे, जैसे जुआ में कपड़े गहने हारे हुए जुआरी, देख पड़ते हैं॥ १५॥

हनूमता वेगवता कम्पितास्ते नगोत्तमाः।
पुष्पपर्णफलान्याशु मुमुचुः पुष्पशालिनः॥ १६॥

पवननन्दन द्वारा ज़ोर से हिलाए हुए फूलने फलने वाले उन उत्तम वृक्षों ने, अपने अपने फूल पत्ते और फल तुरन्त गिरा दिए॥ १६॥

विहङ्गसङ्घैर्हीनास्ते स्कन्धमात्राश्रया द्रुमाः।
बभूवुरगमाः सर्वे मारुतेनेव निर्धुताः॥ १७॥

पत्तियों से रहित उन वृक्षों में केवल ठुट्ठे ही ठुट्ठे रह गए। हवा द्वारा नष्ट किए हुए वृक्षों की तरह वे वृक्ष, अब किसी पक्षी के बैठने योग्य नहीं रह गए॥ १७॥

निर्धूतकेशी युवतिर्यथा मृदितवर्णका।
निष्पीतशुभदन्तोष्ठी नखैर्दन्तैश्च विक्षता॥ १८॥

उस समय अशोकवाटिका ऐसी जान पड़ती थी, जैसी वह तरुणी स्त्री जान पड़ती है जिसके सिर के बाल बिखरे हों, तिलक पोंछा हुआ हो, ओठों में दाँत से काटने के घाव हों तथा अन्य अंगों में भी दाँतों और नखों के घाव लगे हों॥ १८॥

तथा लाङ्गूलहस्तैश्च चरणाभ्यां च मर्दिता।
बभूवाशोकवनिका प्रभग्नवरपादपा॥ १९॥

हनुमान जी की पूँछ, हाथ और दोनों पैरों से मर्दित होने के कारण, अशोकवाटिका के समस्त उत्तमोत्तम वृक्ष छिन्नभिन्न हो गये ॥ १९ ॥

महालतानां दामानि व्यधमत्तरसा कपिः ।
यथा प्रावृषि विन्ध्यस्य मेघजालानि मारुतः ॥ २० ॥

जिस प्रकार वर्षा ऋतु में तेज़ हवा मेघों को छिन्नभिन्न कर देती है; उसी प्रकार हनुमान जी ने बड़ी तेज़ी से वहाँ की बड़ी बड़ी लताओं को छिन्नभिन्न कर डाला ॥ २० ॥

स तत्र मणिभूमीश्च राजतीश्च मनोरमाः ।
तथा काञ्चनभूमीश्च ददर्श विचरन्कपिः ॥ २१ ॥

वहाँ घूमते फिरते हनुमान जी ने रजतमयी, मणिमयी, और सुवर्णमयी विविध प्रकार की मनोहर भूमियाँ देखीं ॥ २१ ॥

वापीश्च विविधाकाराः पूर्णाः परमवारिणा ।
महार्हैर्मणिसोपानैरुपपन्नास्ततस्ततः ॥ २२ ॥

सुस्वादु मीठे जल से भरी विविध आकार प्रकार की बावली वहाँ हनुमान जी ने देखीं । इन बावलियों की सीढ़ियों में बड़ी मूल्यवान मणियाँ जड़ी हुई थीं ॥ २२ ॥

मुक्ताप्रवालसिकताः स्फाटिकान्तरकुट्टिमाः ।
काञ्चनैस्तरुभिश्चित्रैस्तीरजैरुपशोभिताः ॥ २३ ॥

उनमें मोती और मूंगे ही बालू की तरह देख पड़ते थे और उनकी तली में स्फटिक पत्थर जड़ा हुआ था । उनके तीर पर रंग बिरंगे सुनहले चित्र वृक्षों के शोभायमान थे ॥ २३ ॥

फुल्लपद्मोत्पलवनाश्चक्रवाकोपकूजिताः ।
नत्यूहरुतसंघुष्टा हंससारसनादिताः ॥ २४ ॥

उसमें फूले हुए कमलों के वन से देख पड़ते थे और चक्रवाक पक्षी गूंज रहे थे। दात्यूह, हंस और सारस पक्षी बोल रहे थे ॥ २४ ॥

दीर्घाभिर्द्रुमयुक्ताभिः सरिद्भिश्च समन्ततः ।
अमृतोपमतोयाभिः [1]शिवाभिरुपसंस्कृताः ॥ २५ ॥

उन बावियों के चारों ओर बड़े बड़े वृक्ष लगे थे और छोटी छोटी नदियाँ बह रही थीं। उन बावियों में अमृतोपम स्वादिष्ट जल भरा हुआ था जो भीतरी सोतों से उन बावियों में पहुँचा करता था ॥ २५ ॥

लताशतैरवतताः सन्तानकुसुमावृताः ।
नानागुल्मावृतघनाः करवीरकृतान्तराः ॥ २६ ॥

उनके ऊपर लता के मण्डप बने हुए थे और वे कल्पवृक्ष के फूलों से घिरे हुए थे। विविध गुच्छों से उनका जल ढका हुआ था और करवीर से उनके बीच में छिद्र से बने हुए थे ॥ २६ ॥

ततोऽम्बुधरसङ्काशं प्रवृद्धशिखरं गिरिम् ।
विचित्रकूटं कूटैश्च सर्वतः परिवारितम् ॥ २७ ॥

मेघ के समान उच्च शिखरों वाला एक अद्भुत पर्वत वहाँ चारों ओर फैला हुआ था ॥ २७ ॥

---

१ शिवाभिः—सरिद्भिः उपसंस्कृताः नित्यं पूर्णत्वायप्रापिताः । (शि०)

शिलागृहैरवततं नानावृक्षैः समाकुलम् ।
ददर्श हरिशार्दूलो रम्यं जगति पर्वतम् ॥ २८ ॥

उस पर्वत में अनेक पत्थर के गुफानुमा घर बने हुए थे, जिनके चारों ओर अनेक वृक्ष थे। संसार भर के पर्वतों में रमणीक इस पर्वत को हनुमान जी ने देखा ॥ २८ ॥

ददर्श च नगात्तस्मान्नदीं निपतितां कपिः ।
अङ्कादिव समुत्पत्य प्रियस्य पतितां प्रियाम् ॥ २९ ॥

इस पर्वत से निकल कर एक नदी बह रही थी। हनुमान जी को वह ऐसी जान पड़ी मानों, कोई प्रियतमा कामिनी कुपित हो अपने प्रियतम की गोद को त्याग कर, भूमि पर गिर पड़ी हो ॥ २९ ॥

जले निपतिताग्रैश्च पादपैरुपशोभिताम् ।
वार्यमाणामिव क्रुद्धां प्रमदां प्रियबन्धुभिः ॥ ३० ॥

जैसे कोई मानिनी कामिनी कुपित हो अपने प्रियतम को त्याग अन्यत्र जाना चाहे और उसकी प्यारी सखी सहेलियां उसे रोक रही हों, वैसे ही उस नदी के तीरवर्ती वृक्षों की डालियाँ जल में डूबी हुईं इसी भाव को प्रदर्शित कर रही थीं ॥ ३० ॥

पुनरावृत्ततोयां च ददर्श स महाकपिः ।
प्रसन्नामिव कान्तस्य कान्तां पुनरुपस्थिताम् ॥ ३१ ॥

हनुमान जी ने देखा कि, कुछ दूर जा कर नदी का जल पुनः पीछे आ रहा है। मानों वह रूठी हुई कामिनी प्रसन्न होकर लौट कर प्रियतम के समीप आ रही है ॥ ३१ ॥

तस्यादूराच्च पद्मिन्यो नानाद्विजगणायुताः ।
ददर्श हरिशार्दूलो हनुमान्मारुतात्मजः ॥ ३२ ॥

पवननन्दन हनुमान जी ने देखा कि, उस नदी से कुछ दूर हट कर, अनेक जाति के पक्षियों से युक्त और कमल के फूलों से शोभित एक पुष्करिणी है ॥ ३२ ॥

कृत्रिमां दीर्घिकां चापि पूर्णां शीतेन वारिण ।
मणिप्रवरसोपानां मुक्तासिकतशोभिताम् ॥ ३३ ॥

फिर हनुमान जी ने एक बनावटी और लम्बा चौड़ा सरोवर भी देखा, जो ठंडे जल से परिपूर्ण था और जिसकी सीढ़ियाँ मणिमयी थीं । वे मुक्ता रूपी बालू से शोभित थीं ॥३३॥

विविधैर्मृगसङ्घैश्च विचित्रां चित्रकाननाम् ।
प्रासादैः सुमहद्भिश्च निर्मितैर्विश्वकर्मणा ॥ ३४ ॥

अनेक प्रकार के मृगों से और चित्र विचित्र वनों से पूर्ण तथा अनेक बहुत बड़े बड़े भवनों से शोभित, उस वाटिका को विश्वकर्मा ने बनाया था ॥ ३४ ॥

काननैः कृत्रिमैश्चापि सर्वतः समलंकृताम् ।
ये केचित्पादपास्तत्र पुष्पोपगफलोपगाः ॥ ३५ ॥

नकली वनों से वह चारों ओर से सजाई गयी थी । वहाँ जितने फूलने और फलने वाले वृक्ष लगे थे ॥ ३५ ॥

सच्छत्राः सवितर्दीकाः सर्वे सौवर्णवेदिकाः[1] ।
लताप्रतानैर्बहुभिः पर्णैश्च बहुभिर्वृताम् ॥ ३६ ॥

---

१ सौवर्णवेदिकाः—वितर्दिकारोहणार्थं सुवर्णमयसोपानवेदिकायुक्ताः (गो०)

वे सब छाते की तरह ऊपर से फैले हुए छाया किए हुए थे, उनके चारों ओर चबूतरे बने हुए थे, जिन पर चढ़ने के लिये सोने की सीढ़ियाँ थीं। वहाँ अनेक लताओं के जाल से छाए हुए, जिनके पत्तों से वहाँ छाया बनी रहती थी ॥ ३६ ॥

काञ्चनीं शिंशुपामेकां ददर्श हनुमान्कपिः ।
वृतां हेममयीभिस्तु वेदिकाभिः समन्ततः ॥ ३७ ॥

तदनन्तर हनुमान जी ने सुनहले रंग का एक शिंशुपा वृक्ष देखा। उसका थंवला सोने का बना हुआ था ॥ ३७ ॥

सोऽपश्यद्भूमिभागांश्च गर्तप्रस्रवणानि च ।
सुवर्णवृक्षानपरान्ददर्श शिखिसन्निभान् ॥ ३८ ॥

इनके अतिरिक्त हनुमान जी ने वहाँ अनेक भूभाग (क्यारियाँ), पहाड़ी झरने तथा अन्य अग्नि की तरह कान्तिमान् सुवर्ण के रंग के वृक्ष भी देखे ॥ ३८ ॥

तेषां द्रुमाणां प्रभया मेरोरिव दिवाकरः ।
अमन्यत तदा वीरः काञ्चनोऽस्मीति वानरः ॥ ३९ ॥

सुमेरु के संसर्ग से जिस प्रकार सूर्य भगवान प्रदीप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार उन समस्त सुनहले वृक्षों की प्रभा से हनुमान जी ने अपने को सुवर्णमय जाना ॥ ३९ ॥

तां काञ्चनैस्तरुगणैर्मारुतेन च वीजिताम् ।
किङ्किणीशतनिर्घोषां दृष्ट्वा विस्मयमागमत् ॥ ४० ॥

जब वे पेड़ वायु के झोके से हिले, तब उनमें से असंख्य घुंघुरुओं के एक साथ झनकारने का शब्द हुआ। इससे हनुमान जी को बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ४० ॥

स पुष्पिताग्रां रुचिरां तरुणाङ्कुरपल्लवाम् ।
तामारुह्य महाबाहुः शिंशुपां पर्णसंवृताम् ॥ ४१ ॥

सुन्दर पुष्पों वाले, नवीन अंकुरों तथा पत्तों से युक्त, दीप्तिमान् उन वृक्षों में से उस शिंशपा वृक्ष पर हनुमान जी चढ़ गए और उसके पत्तों में अपने को छिपा लिया ॥ ४१ ॥

इतो द्रक्ष्यामि वैदेहीं रामदर्शनलालसाम् ।
इतश्चेतश्च दुःखार्तां सम्पतन्तीं यदृच्छया ॥ ४२ ॥

वहाँ बैठ वे विचारने लगे कि, यहाँ से कदाचित् मैं सीता को देख सकूँ । क्योंकि दुःख से विकल हो, वह श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन की लालसा किए हुए, इधर उधर घूमती दैवात् इधर आ निकलें ॥ ४२ ॥

अशोकवनिका चेयं दृढं रम्या दुरात्मनः ।
चम्पकैश्चन्दनैश्चापि बकुलैश्च विभूषिता ॥ ४३ ॥

यह रावण की अशोकवाटिका अति रमणीय है । चन्दन चंपा और मौलसिरी के वृक्ष इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं ॥ ४३ ॥

इयं च नलिनी रम्या द्विजसङ्घनिषेविता ।
इमां सा राममहिषी ध्रुवमेष्यति जानकी ॥ ४४ ॥

यह पुष्करिणी भी कमलों से पूर्ण है और इसके चारों ओर बैठे हुए पक्षी भी इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं । अतः श्रीरामचन्द्र जी की महिषी सीता यहाँ अवश्य आवेगी ॥ ४४ ॥

सा रामा राममहिषी राघवस्य प्रिया सती ।
वनसञ्चारकुशला ध्रुवमेष्यति जानकी ॥ ४५ ॥

श्रीराम की प्यारी जानकी वनों में घूमने में . अर्थात् वह घूमती घामती अवश्य यहाँ आवेगी ॥ ४५ ॥ और

अथवा मृगशावाक्षी वनस्यास्य विचक्षणा[1] ।
वनमेष्यति सार्येह रामचिन्तासुकर्शिता ॥ ४६ ॥

अथवा वनविचरणप्रिया मृगशावकनयनी सीता वन सम्बन्धी ढूढ़ खोज में चतुर है, सो वह श्रीरामचन्द्र जी की चिन्ता में विकल हो और उस चिन्ता को कम करने के लिए बहुत सम्भव है, यहाँ आवे ॥ ४६ ॥

रामशोकाभिसन्तप्ता सा देवी वामलोचना ।
वनवासे रता नित्यमेष्यते वनचारिणी ॥ ४७ ॥

वह वामलोचना सीता, श्रीरामचन्द्र जी के वियोगजनित शोक से सन्तप्त है और वनवास का उसे अभ्यास है, अतः उस वनचारिणी का इधर आना सम्भव है ॥ ४७ ॥

वनेचराणां सततं नूनं स्पृहयते पुरा ।
रामस्य दयिता भार्या जनकस्य सुता सती ॥ ४८ ॥

श्रीरामचन्द्र जी की प्रिय भार्या और सती जनकनन्दिनी, वन के मृगों और पक्षियों पर अति प्रेम रखती थी ॥ ४८ ॥

सन्ध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी ।
नदीं चेमां शिवजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी ॥ ४९ ॥

प्रातः और सन्ध्या काल में स्नान, जप आदि करने वाली तथा सदा सोलह वर्ष जैसी देख पड़ने वाली तथा सुन्दर वर्ण वाली

---

१ वनस्यास्य विचक्षणा—वनसम्बन्ध्यन्वेषणादि कुशला । (गो०)

स पुष्पितनदी के स्वच्छजल में स्नानादि तथा *ईश्वरोपासना
ता[illegible]वश्य आवेगी ॥ ४९ ॥

तस्याश्चाप्यनुरूपेयमशोकवनिका शुभा ।
शुभा या पार्थिवेन्द्रस्य पत्नी रामस्य संमता ॥ ५० ॥

राजेन्द्र श्रीरामचन्द्र की श्रेष्ठ एवं प्यारी भार्या जानकी के आने के लिए यह उत्तम अशोकवाटिका सर्वथा उपयुक्त भी है ॥ ५० ॥

यदि जीवति सा देवी ताराधिपनिभानना ।
आगमिष्यति साऽवश्यमिमां शिवजलां नदीम् ॥ ५१ ॥

यदि वह चन्द्रानना जानकी बची जीती है, तो वह शुभ या शुद्ध जल वाली इस नदी के तट पर अवश्य ही आवेगी ॥ ५१ ॥

एवं तु मत्वा हनुमान्महात्मा
प्रतीक्षमाणो मनुजेन्द्रपत्नीम् ।
अवेक्षमाणश्च ददर्श सर्वं
सुपुष्पिते पत्रघने निलीनः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार महात्मा हनुमान जी उस फूले हुए शिंशपावृक्ष के घने पत्तों में अपने को छिपाए, सीता के आने की प्रतीक्षा करते हुए और चारों ओर आँख फैला कर देखते हुए, बैठे रहे ॥ ५२ ॥

सुन्दरकाण्ड का चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ

---

* "सन्ध्यार्थ" का अर्थ टीकाकारों ने ईश्वरोपासना इसलिये किया है कि, धर्मशास्त्रों ने स्त्रियों को, पुरुषों की तरह वैदिक विधि विधान से सन्ध्योपासन करने का अधिकार नहीं दिया ।

पञ्चदशः सर्गः

—❀—

स वीक्षमाणस्तत्रस्थो मार्गमाणश्च मैथिलीम् ।
अवेक्षमाणश्च महीं सर्वां तामन्ववैक्षत ॥ १ ॥

हनुमान जी उस वृक्ष पर बैठे हुए, सीता जी को ढूँढ़ने के लिए पृथिवी पर चारों ओर दृष्टि फैला कर, देख रहे थे ॥ १ ॥

सन्तानकलताभिश्च पादपैरुपशोभिताम् ।
दिव्यगन्धरसोपेतां सर्वतः समलंकृताम् ॥ २ ॥

वह वन कल्पवृक्षों की लताओं और वृक्षों से शोभित, दिव्य गन्धों और दिव्य रसों से पूर्ण, और सर्वत्र सजा हुआ था ॥ २ ॥

तां स नन्दनसङ्काशां मृगपक्षिभिरावृताम् ।
हर्म्यप्रासादसंबाधां कोकिलाकुलनिःस्वनाम् ॥ ३ ॥

वह वन नन्दनवन के तुल्य, मृगों और पक्षियों से पूर्ण, अटारियों से युक्त, भवनों से सघन और कोकिल की कूज से कूजित था ॥ ३ ॥

काञ्चनोत्पलपद्माभिर्वापीभिरुपशोभिताम् ।
बह्वासनकुथोपेतां बहुभूमिगृहायुताम् ॥ ४ ॥

उसमें सुवर्ण के कमलों वाली वापियाँ थीं, और वहाँ बैठने के लिए सुन्दर बैठकी बनी हुई थीं और उनपर बिछौने पड़े हुए थे। उसमें पृथिवी के नीचे अनेक तहखाने भी थे ॥ ४ ॥

सर्वर्तुकुसुमै रम्यां फलवद्भिश्च पादपैः ।
पुष्पितानामशोकानां श्रिया सूर्योदयप्रभाम् ॥ ५ ॥

स दीप्तामिव तत्रस्थो *हनूमानन्ववैक्षत ।
निष्पत्रशाखां विहगैः क्रियमाणामिवासकृत् ॥ ६ ॥

उसमें ऐसे वृक्ष लगे हुए थे, जिनमें सब ऋतुओं में फल और फूल लगे रहते थे। फूले हुए अशोकवृक्ष की कान्ति से मानों वहाँ सूर्योदय की प्रभा फैल रही थी। हनुमान जी ने देखा कि, पेड़ों की डालियों पर अनेक पक्षी अपने दोनों परों को फैलाए और पत्तों को ढके बैठे थे, जिससे ऐसा जान पड़ता था, मानों वृक्षों की डालियों में पत्ते हैं ही नहीं ॥ ५ ॥ ६ ॥

विनिष्पतद्भिः शतशश्चित्रैः पुष्पावतंसकैः[1] ।
आमूलपुष्पनिचितैरशोकैः शोकनाशनैः ॥ ७ ॥

सैकड़ों रंग विरंगे पक्षी जो अपनी चोंचों में फूलों को दबाए हुए थे, आभूषणों से सजे हुए से जान पड़ते थे। जड़ से लेकर फुनगी तक फूले हुए और मन को हर्षित करने वाले अशोकवृक्ष ॥ ७ ॥

पुष्पभारातिभारैश्च स्पृशद्भिरिव मेदिनीम् ।
कर्णिकारैः कुसुमितैः किंशुकैश्च सुपुष्पितैः ॥ ८ ॥

फूलों के बोझ से झुक कर, मानों पृथिवी को छू रहे थे। फूले हुए कनैर और टेसू के फूलों की ॥ ८ ॥

स देशः प्रभया तेषां प्रदीप्त इव सर्वतः ।
पुंनागाः सप्तपर्णाश्च चम्पकोद्दालकास्तथा ॥ ९ ॥

---

१ पुष्पावतंसकैः—चञ्चुपुटलग्नपुष्पालंकृतैरित्यर्थः। (गो०) *पाठान्तरे—"मारुतिः समुदैक्षत।"

प्रभा से, वह स्थान सर्वत्र प्रदीप्त सा जान पड़ता था अर्थात् उन लाल लाल फूलों से ऐसा जान पड़ता था मानों, चारों ओर आग लगी हुई है। नागकेसर छितिऊन, चंपा, लसोड़ा॥ ९॥

विवृद्धमूला बहवः शोभन्ते स्म सुपुष्पिताः।
शातकुम्भनिभाः केचित्केचिदग्निशिखोपमाः॥ १०॥

आदि बड़ी बड़ी जड़ों वाले फूले हुए वृक्ष वहाँ की शोभा बढ़ा रहे थे। इन वृक्षों में कोई तो सुनहले रंग के, कोई अग्नि की तरह लाल रंग के॥ १०॥

नीलाञ्जननिभाः केचित्तत्राशोकाः सहस्रशः।
नन्दनं विविधोद्यानं चित्रं चैत्ररथं यथा॥ ११॥
अतिवृत्तमिवाचिन्त्यं दिव्यं रम्यं श्रिया वृतम्।
द्वितीयमिव चाकाशं पुष्पज्योतिर्गणायुतम्॥ १२॥

और कोई काजल की तरह काले रंग के थे। इस प्रकार के रंग बिरंगे हज़ारों अशोक वृक्ष वहाँ थे। यह अशोकवाटिका इन्द्र के नन्दनकानन और कुबेर के चैत्ररथ नामक उद्यान से भी उत्तमता, रमणीयता, और सौन्दर्य में बढ़ी चढ़ी थी। इसके सौन्दर्य की कल्पना भी करना सम्भव नहीं है। कहै तो कह सकते हैं कि, रावण का अशोक उद्यान पुष्प रूपी तारागण से युक्त दूसरे आकाश के समान था॥ ११॥ १२॥

पुष्परत्नशतैश्चित्रं पञ्चमं सागरं यथा।
सर्वर्तुपुष्पैर्निचितं पादपैर्मधुगन्धिभिः॥ १३॥

अथवा पुष्प रूपी सैकड़ों रंग बिरंगे रत्नों से भरा पांचवाँ सागर था। सब ऋतुओं में इसमें फूलों के ढेर लगे रहते थे और मधुर गन्धयुक्त वृक्षों से यह सँवारा हुआ था ॥ १३ ॥

नानानिनादैरुद्यानं रम्यं मृगगणैर्द्विजैः ।
अनेकगन्धप्रवहं पुण्यगन्धं मनोरमम् ॥ १४ ॥

शैलेन्द्रमिव गन्धाढ्यं द्वितीयं गन्धमादनम् ।
अशोकवनिकायां तु तस्यां वानरपुङ्गवः ॥ १५ ॥

इसमें विविध प्रकार के पक्षी कूजा करते और तरह तरह के पक्षी और मृग रहा करते थे। विविध प्रकार की मनोहर सुगंधों से सुवासित मानों यह दूसरा गिरिश्रेष्ठ गन्धमादन था। इस अशोकवाटिका में हनुमान जी ने ॥ १४ ॥ १५ ॥

स ददर्शाविदूरस्थं चैत्यप्रासादमुच्छ्रितम् ।
मध्ये स्तम्भसहस्रेण स्थितं कैलासपाण्डुरम् ॥ १६ ॥

समीप ही एक ऊँचा और गोलाकार भवन देखा। उसके बीच में एक हज़ार खंभे थे और उसका रंग कैलासपर्वत की तरह सफेद था ॥ १६ ॥

प्रवालकृतसोपानं तप्तकाञ्चनवेदिकम् ।
मुष्णन्तमिव चक्षूंषि द्योतमानमिव श्रिया ॥ १७ ॥

उसकी सीढ़ियाँ मूंगे की और उसके चबूतरे सोने के थे। वह भवन ऐसा चमक रहा था कि, उसकी ओर देखने से आँखें चौंधिया जाती थीं ॥ १७ ॥

विमलं प्रांशुभावत्वादुल्लिखन्तमिवाम्बरम् ।
ततो मलिनसंवीतां राक्षसीभिः समावृताम् ॥ १८ ॥
उपवासकृशां दीनां निःश्वसन्तीं पुनः पुनः ।
ददर्श शुक्लपक्षादौ चन्द्ररेखामिवामलाम् ॥ १९ ॥

वह भवन बहुत साफ स्वच्छ था और ऊँचाई में आकाश से बातें करता था। उसमें मैले कपड़े पहिने हुए और राक्षसियों से घिरी, उपवास से कृश, उदास और बार बार लंबी साँस लेती हुई और शुक्लपक्ष के आरम्भ की चन्द्ररेखा की तरह निर्मल, एक स्त्री को हनुमान जी ने देखा।। १८। १९ ॥

मन्दं प्रख्यायमानेन रूपेण रुचिरप्रभाम् ।
पिनद्धां धूमजालेन शिखामिव विभावसोः ॥ २० ॥

मनोहर कान्तियुक्त सीता जी का रूप, जो धुएँ से ढकी हुई अग्निशिखा की तरह बड़ी कठिनाई से देखने में आता था, हनुमान जी ने देखा ॥ २० ॥

पीतेनैकेन संवीतां क्लिष्टेनोत्तमवाससा ।
सपङ्कामनलंकारां विपद्मामिव पद्मिनीम् ॥ २१ ॥

वह एक पुरानी पीले रंग की उत्तम साड़ी पहिने हुए और आभूषण रहित होने से पुष्पहीन कमलिनी की तरह शोभाहीन जान पड़ती थी। २१ ॥

*पीडितां दुःखसन्तप्तां परिम्लानां तपस्विनीम् ।
ग्रहेणाङ्गारकेणेव पीडितामिव रोहिणीम् ॥ २२ ॥

---

*पाठान्तरे—"व्रीडितां।"

पीड़ित और दुःख से सन्तप्त, अत्यन्त दुर्बल तपस्विनी जानकी—मङ्गलग्रह से सताई हुई रोहिणी की तरह, उदास जान पड़ती थी ॥ २२ ॥

अश्रुपूर्णमुखीं दीनां कृशामनशनेन च ।
शोकध्यानपरां दीनां नित्यं दुःखपरायणाम् ॥ २३ ॥

सदा शोकान्वित और चिन्तित और उदास रहने और उपवास करने के कारण, वह दुबली हो गई थी और उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी ॥ २३ ॥

प्रियं जनमपश्यन्तीं पश्यन्तीं राक्षसीगणम् ।
स्वगणेन मृगीं हीनां श्वगणाभिवृतामिव ॥ २४ ॥

उसके नेत्रों के सामने सदा राक्षसियाँ रहा करती थीं। वह अपने प्रियजन श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण को न देखने के कारण, झुंड से बिछुड़ी और शिकारी कुत्तों से घिरी हिरनी की तरह त्रस्त और घबड़ाई हुई थी ॥ २४ ॥

नीलनागाभया वेण्या जघनं गतयैकया ।
नीलया[1] नीरदापाये वनराज्या महीमिव ॥ २५ ॥

काले साँप की तरह जो चोटी उसकी जाँघ पर पड़ी थी वह ऐसी जान पड़ती थी, जैसे शरद ऋतु में नील वर्ण वाली वनपंक्ति से पृथिवी जान पड़ती है ॥ २५ ॥

सुखार्हां दुःखसन्तप्तां व्यसनानामकोविदाम् ।
तां समीक्ष्य विशालाक्षीमधिकं मलिनां कृशाम् ॥ २६ ॥

---

१ नीरदापाये—शरदि । (गो०)

तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादिभिः ।
ह्रियमाणा तदा तेन रक्षसा कामरूपिणा ॥ २७ ॥

सुख भोगने योग्य और कभी दुःख न भोगे हुए, किन्तु अत्र दुःखसन्तप्त, मलिन वेश बनाए और दुबली पतली उस विशाल नयनी को देख, हनुमान जी ने तर्क बितर्क द्वारा अनेक कारणों से अपने मन में निश्चय किया कि, यही सीता है। वह मन ही मन कहने लगे कि, कामरूपी रावण जब इसको हर कर लिये आता था ॥ २६ ॥ २७ ॥

यथारूपां हि दृष्टा वै तथारूपेयमङ्गना ।
पूर्णचन्द्राननां सुभ्रूं चारुवृत्तपयोधराम् ॥ २८ ॥

तब मैंने जैसीरूप वाली स्त्री देखी थी, वैसा ही रूप इस स्त्री का है। क्योंकि उसीकी तरह यह पूर्णचन्द्रवदनी है, इसकी सुन्दर भौंहें हैं तथा इसके गोल पयोधर हैं ॥ २८ ॥

कुर्वन्तीं प्रभया देवीं सर्वा वितिमिरा दिशः ।
तां [1]नीलकण्ठीं*बिम्बोष्ठीं सुमध्यां सुप्रतिष्ठिताम् ॥२९॥

अपने शरीर की कान्ति से इसने मानों समस्त दिशाओं को प्रकाशित कर रखा है। इसका कण्ठ इन्द्र-नील-मणि-जटित आभूषण की प्रभा से दमक रहा है। इसके अधर कुन्दरू की तरह लाल हैं, कमर पतली और समस्त अङ्ग साँचे में ढले हुए से हैं ॥ २९ ॥

सीतां पद्मपलाशाक्षीं मन्मथस्य रतिं यथा ।
इष्टां सर्वस्य जगतः पूर्णचन्द्रप्रभामिव ॥ ३० ॥

---

१ नीलकण्ठी—सौभाग्यसूचकेन्द्रनीलमणिमयकण्ठस्थभूषणप्रभया तद्वर्णकण्ठां। (रा०) * पाठान्तरे—" नीलकेशीं।"

यह कमलनयनी सीता मानों साक्षात् मदन की स्त्री रति है अथवा पूर्णिमा के चन्द्र की चाँदनी की तरह सारे जगत् की इष्टदेवी है ॥ ३० ॥

भूमौ सुतनुमासीनां[1] नियतामिव तापसीम् ।
निःश्वासबहुलां भीरुं भुजगेन्द्रवधूमिव ॥ ३१ ॥

यह सुन्दर शरीर वाली सीता मन को वश में किए हुए तपस्विनी की तरह पृथिवी पर बैठी है और त्रस्त नागिन की तरह बार बार निःश्वास छोड़ रही है ॥ ३१ ॥

शोकजालेन महता विततेन न राजतीम् ।
संसक्तां धूमजालेन शिखामिव विभावसोः ॥ ३२ ॥

बड़े भारी शोकजाल में पड़ जाने से सीता अब पूर्ववत् शोभायमान नहीं है। यह इस समय ऐसी जान पड़ती है, मानों धुएँ के बीच अग्निशिखा छिपी हो ॥ ३२ ॥

तां स्मृतीमिव संदिग्धामृद्धिं निपतितामिव ।
विहतामिव च श्रद्धामाशां प्रतिहतामिव ॥ ३३ ॥

सन्दिग्धार्थ मन्वादि की उक्तियों की तरह, अथवा खोयी हुई सम्पत्ति की तरह, अथवा अविश्वासयुक्त श्रद्धा की तरह, अथवा हतआशा की तरह, ॥ ३३ ॥

सोपसर्गां यथा सिद्धिं बुद्धिं सकलुषामिव ।
अभूतेनापवादेन कीर्तिं निपतितामिव ॥ ३४ ॥

अथवा विघ्नयुक्त सिद्धि की तरह, अथवा कलुषित (बिगड़ी हुई) बुद्धि की तरह, अथवा असत्य अपवाद की तरह, अथवा लुप्तप्राय कीर्ति की तरह ॥ ३४ ॥

---

१ नियतां— यतचित्तां । (शि०)

रामोपरोधव्यथितां रक्षोहरणकर्शिताम् ।
अबलां मृगशावाक्षीं वीक्षमाणां *समन्ततः ॥ ३५ ॥

राक्षस द्वारा हरी जाने पर तथा श्रीरामचन्द्र जी से मिलने में बाधा पड़ने के कारण, शोक से विकल मृगशावकनयनी यह अबला, घबड़ा कर चारों ओर देख रही है ॥ ३५ ॥

बाष्पाम्बुपरिपूर्णेन कृष्णवक्राक्षिपक्ष्मणा ।
वदनेनाप्रसन्नेन निःश्वसन्तीं पुनः पुनः ॥ ३६ ॥

काली बरनियों से युक्त आँसू भरे नेत्रों और उदास मुख वाली यह अबला बार बार लंबी साँसे ले रही है ॥ ३६ ॥

मलपङ्कधरां दीनां मण्डनार्हाममण्डिताम् ।
प्रभां नक्षत्रराजस्य कालमेघैरिवावृताम् ॥ ३७ ॥

यह आभूषण धारण करने योग्य होने पर भी आभूषणशून्य सी हो रही है और इसके शरीर में मैल लगा हुआ है तथा यह अत्यन्त उदास हो रही है; मानों प्रलयकालीन मेघों से ढकी चन्द्रमा की प्रभा हो ॥ ३७ ॥

तस्य सन्दिदिहे बुद्धिर्मुहुः सीतां निरीक्ष्य तु ।
आम्नायानामयोगेन विद्यां प्रशिथिलामिव ॥ ३८ ॥

इस प्रकार सीता को देख, हनुमान जी की बुद्धि वैसे ही चक्कर में पड़ गई, जैसे अनभ्यस्त विद्या, शिथिल पड़ जाती है ॥ ३८ ॥

दुःखेन बुबुधे सीतां हनुमाननलङ्कृताम् ।
संस्कारेण यथा हीनां वाचमर्थान्तरं गताम् ॥ ३९ ॥

---

*पाठान्तरे—"ततस्ततः ।"

हनुमान जी ने सीता को, अलङ्काररहीन देख कर, शब्दव्युत्पत्ति-हीन अर्थान्तर प्रतिपादक किसी वाक्य की तरह, बड़ी कठिनाई से पहचाना ॥ ३९ ॥

तां समीक्ष्य विशालाक्षीं राजपुत्रीमनिन्दिताम् ।
तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादिभिः ॥ ४० ॥

अनिन्दिता, विशालाक्षी राजपुत्री सीता को देख कर, हनुमान जी ने कई कारणों के आधार पर तर्क वितर्क किया और विचारने लगे कि, क्या यही सीता है ? ॥ ४० ॥

वैदेह्या यानि चाङ्गेषु तदा रामोऽन्वकीर्तयत् ।
तान्याभरणजालानि शाखाशोभीन्यलक्षयत् ॥ ४१ ॥

सीता जी को पहिचानने का मुख्य कारण यह था कि, श्रीरामचन्द्र ने सीता के शरीर पर जिन आभूषणों का होना बतला दिया था, उनमें से बहुत से आभूषण हनुमान जी ने सीता के शरीर पर देखे ॥ ४१ ॥

सुकृतौ कर्णवेष्टौ च श्वदंष्ट्रौ च सुसंस्थितौ ।
मणिविद्रुमचित्राणि हस्तेष्वाभरणानि च ॥ ४२ ॥
श्यामानि चिरयुक्तत्वात्तथा संस्थानवन्ति च ।
तान्येवैतानि मन्येऽहं यानि रामोऽन्वकीर्तयत् ॥ ४३ ॥

कानों में बहुत अच्छे बने हुए कुण्डल और कुत्ते के दांतों के आकार की कानों की तर्कियाँ और हाथों में मूँगा तथा मणियों के जड़ाऊ कंगन ; जो बहुत दिनों से साफ न करने के कारण काले हो गए थे, किन्तु थे यथास्थान । (इन्हें देख हनुमान जी ने मन ही मन कहा कि,) वे ये ही भूषण हैं जिनको श्रीरामचन्द्र जी ने बतलाया था ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

तत्र यान्यवहीनानि तान्यहं नोपलक्षये ।
यान्यस्या नावहीनानि तानीमानि न संशयः ॥ ४४ ॥

किन्तु उन बतलाए हुओं में कई नहीं देख पड़ते हैं। सो वे गिर गए हैं या खो गए हैं। परन्तु जो मैाजूद हैं, वे निस्सन्देह वे ही हैं ॥ ४४ ॥

पीतं कनकपट्टाभं स्रस्तं तद्वसनं शुभम् ।
उत्तरीयं नगासक्तं तदा दृष्टं प्लवङ्गमैः ॥ ४५ ॥

उनमें से ज़रदोज़ी का पीला दुपट्टा जो पर्वत पर खसक कर गिर पड़ा था, उसे तो हम सब वानरों ने देखा ही था ॥ ४५ ॥

भूषणानि *विचित्राणि दृष्टानि धरणीतले ।
अनयैवापविद्धानि स्वनवन्ति महान्ति च ॥ ४६ ॥

तथा कई एक उत्तम (अथवा अद्भुत) आभूषण जो पृथिवी पर पड़े हुए देखे थे और जिनके गिरने पर बड़ा झन झन शब्द हुआ था, इन्हींके गिराए हुए थे ॥ ४६ ॥

इदं चिरगृहीतत्वाद्वसनं क्लिष्टवत्तरम् ।
तथापि नूनं तद्वर्णं तथा श्रीमद्यथेतरत् ॥ ४७ ॥

यद्यपि बहुत दिनों की पहिनी हुई होने के कारण इनकी ओढ़नी मसली हुई सी और मैली हो गई है ; तौ भी उसकी रङ्गत नहीं उड़ी है और जो वस्त्र हमें वहाँ मिला था उसीकी तरह यह चटकदार बनी हुई है ॥ ४७ ॥

---

*पाठान्तरे—"मुख्यानि ।"

इयं कनकवर्णाङ्गी रामस्य महिषी प्रिया ।
प्रनष्टाऽपि सती याऽस्य मनसो न प्रणश्यति ॥ ४८ ॥

यह सुवर्णाङ्गी श्रीराम जी की प्यारी पटरानी पतिव्रता सीता; यद्यपि श्रीरामचन्द्र के निकट नहीं हैं, तो भी श्रीराम जी के मन से दूर नहीं हुई है ॥ ४८ ॥

इयं सा यत्कृते रामश्चतुर्भिः परितप्यते ।
कारुण्येनानृशंस्येन शोकेन मदनेन च ॥ ४९ ॥

यह वही है, जिसके लिए श्रीरामचन्द्र जी चार प्रकार से सन्तप्त हो रहे हैं। अर्थात् कारुण्य, आनृशंस्य, शोक और मदन से ॥ ४९ ॥

स्त्री प्रनष्टेति कारुण्यादाश्रितेत्यानृशंस्यतः ।
पत्नी नष्टेति शोकेन प्रियेति मदनेन च ॥ ५० ॥

स्त्री हरण हो गई इस कारण करुणा, आश्रितजन की रक्षा न कर पाई इस लिए दयालुता, भार्या का पता नहीं चलता इसका शोक और प्रिया का वियोग होने से कामदेव की पीड़ा। ये चार प्रकार के शोक श्रीरामचन्द्र जी को सता रहे हैं ॥ ५० ॥

अस्या देव्या यथा रूपमङ्गप्रत्यङ्गसौष्ठवम् ।
रामस्य च यथा रूपं तस्येयमसितेक्षणा ॥ ५१ ॥

इस देवी का जैसा रूप लावण्य और अंग प्रत्यंग का सौन्दर्य है, वैसा ही श्रीरामचन्द्र जी का भी है। अतः इससे तो यह श्रीरामचन्द्र जी ही की प्यारी सीता जान पड़ती है ॥ ५१ ॥

अस्या देव्या मनस्तस्मिंस्तस्य चास्यां प्रतिष्ठितम् ।
तेनेयं स च धर्मात्मा मुहूर्तमपि जीवति ॥ ५२ ॥

इस देवी का मन श्रीरामचन्द्र जी में है और श्रीरामचन्द्र जी का मन इसमें है, इसलिए ये सीता देवी और वे धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी, अब तक जी रहे हैं। नहीं तो (ये दोनों) एक क्षण भी नहीं जी सकते थे। ॥ ५२ ॥

दुष्करं कृतवान्रामो हीनो यदनया प्रभुः ।
धारयत्यात्मनो देहं न शोकेनावसीदति ॥ ५३ ॥

इनके विरह में श्रीरामचन्द्र जी का जीते रहना बड़ा ही दुष्कर कार्य है। आश्चर्य है, सीता जी के विरह जन्य-शोक से पीड़ित हो कर भी, श्रीरामचन्द्र जी अब तक जीवित हैं; नहीं तो इनक विरह-जन्य शोक से उनका (श्रीरामचन्द्र जी का) नष्ट हो ज कोई आश्चर्य की बात न थी ॥ ५३ ॥

धनी

दुष्करं कुरुते रामो य इमां मत्तकाशिनीम् । द्र जी
विना सीतां महाबाहुर्मुहूर्तमपि जीवति ॥ ५४

मेरी समझ में तो महाबाहु श्रीरामचन्द्र जी य दुष्कर कार्य कर रहे हैं कि, सीता जैसी अनु ७ ॥ बिना वे मुहूर्त्त भर भी जीवित रह रहे हैं ॥ ५४

एवं सीतां तदा दृष्ट्वा हृष्टः पवनसम्भव रामचन्द्र जी ने
क्रमी कबन्ध को
जगाम मनसा रामं प्रशशंस च तं प्र

इति पञ्चदशः सर्गः विक्रमः।

पवननन्दन ने इस प्रकार सीता कोवरः ॥ ८ ॥ हुए और मनसा श्रीरामचन्द्र जी के द्ध में भयङ्कर पराक्रमी अथवा स्तुति करने लगे ॥ ५५ ॥ प्रकार इन्द्र ने शंबरासुर

सुन्दरकाण्ड का पन्द्रहवाँ

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
निहतानि जनस्थाने शरैरग्निशिखोपमैः ॥ ९ ॥

इन्हींके लिए श्रीरामचन्द्र जी ने अग्निशिखा की तरह चमचमाते बाणों से जनस्थान-निवासी भयङ्कर कर्म करने वाले चौदह हज़ार राक्षसों को मारा था ॥ ९ ॥

खरश्च निहतः संख्ये त्रिशिराश्च निपातितः ।
दूषणश्च महातेजा रामेण विदितात्मना ॥ १० ॥

युद्ध में खर, त्रिशिरा और महातेजस्वी दूषण को प्रसिद्ध श्रीरामचन्द्र जी ने मारा था ॥ १० ॥

ऐश्वर्यं वानराणां च दुर्लभं वालिपालितम् ।
अस्या निमित्ते सुग्रीवः प्राप्तवाँल्लोकसत्कृतम् ॥ ११ ॥

इन्हींके पीछे दुर्लभ बानरों का राज्य, जिसका पालन वालि करता था, लोकमान्य सुग्रीव को मिला ॥ ११ ॥

सागरश्च मया क्रान्तः श्रीमान्नदनदीपतिः ।
अस्या हेतोर्विशालाक्ष्याः पुरी चेयं निरीक्षिता ॥ १२ ॥

मैंने भी इन्हीं विशालाक्षी जानकी के लिए समुद्र फांदा और यह लङ्कापुरी देखी ॥ १२ ॥

यदि रामः समुद्रान्तां मेदिनीं परिवर्तयेत् ।
अस्याः कृते जगच्चापि युक्तमित्येव मे मतिः ॥ १३ ॥

मेरी समझ में तो यदि श्रीरामचन्द्र जी इस देवी के लिए, केवल यह पृथिवी ही नहीं, बल्कि समस्त लोकों को भी उलट दें; तो भी उनका ऐसा करना उचित ही होगा ॥ १३ ॥

राज्यं वा त्रिषु लोकेषु सीता वा जनकात्मजा।
त्रैलोक्यराज्यं सकलं सीताया नाप्नुयात्कलाम् ॥ १४ ॥

यदि त्रिलोकी के राज्य और जनकनन्दिनी की तुलना की जाय, तो त्रिलोकी का राज्य, सीता की एक कला के बराबर भी तो नहीं हो सकता ॥ १४ ॥

इयं सा धर्मशीलस्य मैथिलस्य महात्मनः।
सुता जनकराजस्य सीता भर्तृदृढव्रता ॥ १५ ॥

क्योंकि धर्मात्मा महात्मा जनक की यह सुता सीता, पातिव्रत धर्म का निर्वाह करने में पूर्ण रूप से दृढ़ है ॥ १५ ॥

उत्थिता मेदिनीं भित्वा क्षेत्रे हलमुखक्षते।
पद्मरेणुनिभैः कीर्णा शुभैःकेदारपांसुभिः ॥ १६ ॥

पद्मरेणु की तरह खेती की धूल से धूसरित, हल की नोंक से जुते हुए खेत से यह पृथिवी को फोड़ कर निकली थी ॥ १६ ॥

विक्रान्तस्यार्यशीलस्य संयुगेष्वनिवर्तिनः।
स्नुषा दशरथस्यैषा ज्येष्ठा राज्ञो यशस्विनी ॥ १७ ॥

और बड़े पराक्रमी, श्रेष्ठस्वभाव वाले और युद्ध में कभी पीठ न दिखाने वाले महाराज दशरथ की महायशस्विनी जेठी पुत्रबधु है ॥ १७ ॥

धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य रामस्य विदितात्मनः।
इयं सा दयिता भार्या राक्षसीवशमागता ॥ १८ ॥

और धर्मात्मा, कृतज्ञ तथा प्रसिद्ध पुरुष श्रीरामचन्द्र जी की यह प्यारी पत्नी है। सो इस समय यह बेचारी, राक्षसियों के वश में आ पड़ी है ॥ १८ ॥

सर्वान्भोगान्परित्यज्य भर्तृस्नेहबलात्कृता ।
अचिन्तयित्वा दुःखानि प्रविष्टा निर्जनं वनम् ॥ १९ ॥

अपने पति के प्रेम की वशवर्तिनी हो, यह घर के समस्त सुखों और भोगों को त्याग कर और वन के दुःखों की रत्ती भर भी परवाह न कर, निर्जन वन में चली आई ॥ १९ ॥

सन्तुष्टा फलमूलेन भर्तृशुश्रूषणे रता ।
या परां भजते प्रीतिं वनेऽपि भवने यथा ॥ २० ॥

और फल फूल खा कर सन्तुष्ट हो, अपने पति की सेवा करती हुई, घर की तरह वन में भी प्रसन्न हो रही थी ॥ २० ॥

सेयं कनकवर्णाङ्गी नित्यं सुस्मितभाषिणी ।
सहते यातनामेतामनर्थानामभागिनी ॥ २१ ॥

जिसने कभी कोई विपत्ति नहीं झेली, जो सदा हँसमुख बनी रहती थी, वही यह सुवर्ण सदृश वर्ण वाली सीता, कष्टों और अनर्थों को भोग रही है ॥ २१ ॥

इमां तु शीलसम्पन्नां द्रष्टुमर्हति राघवः ।
रावणेन प्रमथितां प्रपामिव पिपासितः ॥ २२ ॥

रावण द्वारा सताई हुई इस सुशीला जानकी को देखने के लिए श्रीरामचन्द्र जी उसी तरह उत्सुक हैं ; जिस तरह पौशाला देखने को, प्यासा उत्सुक हुआ करता है ॥ २२ ॥

अस्या नूनं पुनर्लाभाद्राघवः प्रीतिमेष्यति ।
राजा राज्यात्परिभ्रष्टः पुनः प्राप्येव मेदिनीम् ॥ २३ ॥

निश्चय ही इसको पुनः पाकर श्रीरामचन्द्र जी वैसे ही प्रसन्न होंगे; जैसे खोये हुए राज्य को प्राप्त कर राजा प्रसन्न होता है ॥२३॥

कामभोगैः परित्यक्ता हीना बन्धुजनेन च
धारयत्यात्मनो देहं *तत्समागमलालसा ॥ २४ ॥

माला चन्दनादि सुख भोगों से वञ्चित और बन्धुबान्धवों से रहित यह जानकी श्रीरामचन्द्र जी से मिलने की आशा ही से प्राण धारण किए हुए है ॥ २४ ॥

नैषा पश्यति राक्षस्यो नेमान्पुष्पफलद्रुमान् ।
एकस्थहृदया नूनं राममेवानुपश्यति ॥ २५ ॥

न तो ये राक्षसियों की ओर न फले फूले इन वृक्षों की ओर देखती है। यह तो एकाग्र मन से केवल श्रीरामचन्द्र जी के ध्यान ही में मग्न है ॥ २५ ॥

भर्ता नाम परं नार्या भूषणं भूषणादपि ।
एषा †विरहिता तेन भूषणार्हा न शोभते ॥ २६ ॥

क्योंकि स्त्रियों के लिए उनका पति ही भूषण है, बल्कि भूषण से भी बढ़ कर ही है। अतः यह पतिवियोग के कारण, शोभा योग्य होने पर भी, शोभायमान नहीं हो रही है ॥ २६ ॥

दुष्करं कुरुते रामो हीनो यदनया प्रभुः ।
धारयत्यात्मनो देहं न दुःखेनावसीदति ॥ २७ ॥

---

* पाठान्तरे—"तत्समागमकांक्षिणी।" † पाठान्तरे—"एषा तु रहिता।"

इसके पति श्रीरामचन्द्र जी इसके वियोग में भी जीते हैं; सो सचमुच वे यह बड़ा दुष्कर कार्य कर रहे हैं ॥ २७ ॥

इमामसितकेशान्तां शतपत्रनिभेक्षणाम् ।
सुखार्हां दुःखितां दृष्ट्वा ममापि व्यथितं मनः ॥ २८ ॥

काले केशवाली, कमलनयनी और सुख भोगने योग्य इस जानकी को दुःखी देख, मेरा भी कलेजा मारे दुःख के फटा जाता है ॥ २८ ॥

क्षितिक्षमा पुष्करसन्निभाक्षी
या रक्षिता राघवलक्ष्मणाभ्याम् ।
सा राक्षसीभिर्विकृतेक्षणाभिः
संरक्ष्यते सम्प्रति वृक्षमूले ॥ २९ ॥

हा ! जो पृथिवी के समान क्षमा करने वाली है और जिसकी रक्षा स्वयं श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण करते थे, आज वही कमल-नयनी सीता विकट नेत्रों वाली राक्षसियों के पहरे में एक वृक्ष के नीचे बैठी है ॥ २९ ॥

हिमहतनलिनीव नष्टशोभा
व्यसनपरम्परयातिपीड्यमाना ।
सहचररहितेव चक्रवाकी
जनकसुता कृपणां दशां प्रपन्ना ॥ ३० ॥

सीता, पाले की मारी कमलिनी की तरह, दुःखों से उत्पीड़ित हो तथा चकवा से रहित चकवी की तरह, शोच्य दशा को प्राप्त हुई है ॥ ३० ॥

अस्या हि पुष्पावनताग्रशाखाः
शोकं दृढं वै जनयन्त्यशोकाः ।
हिमव्यपायेन च मन्दरश्मि-
रभ्युत्थितो नैकसहस्ररश्मिः ॥ ३१ ॥

फूलों के भार से झुकी हुई अशोक वृक्ष की ये डालियाँ और वसन्त कालीन यह निर्मल और सूर्य की अपेक्षा मन्द किरणों वाला यह चन्द्रमा, इस देवी के शोक को और भी अधिक बढ़ा रहे हैं ॥ ३१ ॥

इत्येवमर्थं कपिरन्ववेक्ष्य
सीतेयमित्येव निविष्टबुद्धिः ।
संश्रित्य तस्मिन्निषसाद वृक्षे
बली हरीणामृषभस्तरस्वी ॥ ३२ ॥

इति षोडशः सर्गः ॥

महावीर कपिश्रेष्ठ हनुमान इस प्रकार मन ही मन भली भाँति निश्चय कर कि, यही सीता है और अपना प्रयोजन सिद्ध हुआ देख, उसी वृक्ष पर अच्छी तरह बैठ गए ॥ ३२ ॥

सुन्दरकाण्ड का सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—:❀:—

सप्तदशः सर्गः

—❀—

ततः कुमुदषण्डाभो निर्मलो निर्मलं स्वयम् ।
प्रजगाम नभश्चन्द्रो हंसो नीलमिवोदकम् ॥ १ ॥

उस समय कुमुद पुष्पों की तरह निर्मल चन्द्रमा निर्मल आकाश में, कुछ ऊपर चढ़, वैसे ही शोभित हुआ, जैसे नीलजल वाली झील में हंस शोभित होता है ॥ १ ॥

साचिव्यमिव कुर्वन्स प्रभया निर्मलप्रभः ।
चन्द्रमा रश्मिभिःशीतैः सिषेवे पवनात्मजम् ॥ २ ॥

निर्मल प्रभा वाले चन्द्रदेव, अपनी चाँदनी से हनुमान जी की सहायता, करते हुए, उनको अपनी शीतल किरणों से हर्षित करने लगे ॥ २ ॥

स ददर्श ततः सीतां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
शोकभारैरिव न्यस्तां भारैर्नावमिवाम्भसि ॥ ३ ॥

हनुमान जी ने चाँदनी के सहारे चन्द्रमुखी सीता को देखा। उस समय सीता की दशा मारे शोक के वैसी ही हो रही थी; जैसी कि, अधिक बोझ से लदी हुई नाव की जल में होती है ॥ ३ ॥

दिदृक्षमाणो वैदेहीं हनुमान्पवनात्मजः ।
स ददर्शाविदूरस्था राक्षसीर्घोरदर्शनाः ॥ ४ ॥

जानकी को देखते देखते पवननन्दन हनुमान जी की दृष्टि उन भयङ्कर रूपों वाली राक्षसियों पर पड़ी, जो सीता जी के समीप ही बैठी हुई थीं ॥ ४ ॥

एकाक्षीमेककर्णां च कर्णप्रावरणां तथा
अकर्णां शङ्कुकर्णां च मस्तकोच्छ्वासनासिकाम् ॥ ५ ॥
अतिकायोत्तमाङ्गीं च तनुदीर्घशिरोधराम् ।
ध्वस्तकेशीं[1] तथाऽकेशीं[2] केशकम्बलधारिणीम् ॥ ६ ॥

१ ध्वस्तकेशीं—स्वल्पकेशीं । (गो०) २ अकेशीं—अनुत्पन्नकेशीं । (गो०)

उन राक्षसियों में कोई कानी, कोई बूँची, कोई बहुत बड़े कानों वाली, कोई दोनों कानों से रहित, कोई कील की तरह कानों वाली तथा कोई मस्तक पर नाक वाली और नाक से साँस लेती हुई वहाँ बैठी थी। उनमें से किसी के शरीर का ऊपरी भाग बहुत बड़ा था, किसी की गर्दन पतली और लंबी थी, किसी के सिर पर थोड़े बाल थे और किसी की चाँद पर बाल उगे ही न थे। किसी के शरीर पर इतने रोम थे कि वह ऐसी जान पड़ती थी, मानों काला कंबल ओढ़े हुए है ॥ ५ ॥ ६ ॥

लम्बकर्णललाटां च लम्बोदरपयोधराम् ।

लम्बोष्ठीं *चुबुकोष्ठीं च लम्बास्यां लम्बजानुकाम् ॥७॥

किसी के लंबे लंबे कान और लंबा कपाल था और किसी का लंबा पेट और लंबे पयोधर (स्तन) थे। किसी के लंबे ओंठ, किसी के ओंठ ठुड्डी तक लटक रहे थे, कोई लंबे मुख वाली थी और कोई लंबी जाँघों वाली थी ॥ ७ ॥

†ह्रस्वां दीर्घां तथा कुब्जां विकटां वामनां तथा ।

करालां भुग्नवक्त्रां च पिङ्गाक्षीं विकृताननाम् ॥ ८ ॥

कोई नाटी, कोई लंबी, कोई कुबड़ी, कोई विकटाकार, कोई बौनी, कोई भयङ्कर रूप वाली, कोई टेढ़े मुख वाली, कोई पीले नेत्रों वाली और कोई विकृत मुख वाली थी ॥ ८ ॥

विकृताः पिङ्गलाः कालीः क्रोधनाः कलहप्रियाः ।

कालायसमहाशूलकूटमुद्गरधारिणीः ॥ ९ ॥

कोई टेढ़े मेढ़े अंगों वाली, कोई पीली, कोई काली, कोई

---

* पाठान्तरे—"चिबुकोष्ठीः"। † पाठान्तरे—"ह्रस्वदीर्घां"

सदा क्रुद्ध रहने वाली और कोई कलहप्रिया थी। उनमें कोई लोहे का बड़ा शूल और कोई काँटेदार मुगदर हाथ में लिये हुए थी ॥ ९ ॥

वराहमृगशार्दूलमहिषाजशिवामुखीः ।
गजोष्ट्रहयपादाश्च निखातशिरसोऽपराः ॥ १० ॥

किसी का मुख शूकर जैसा, किसी का हिरन जैसा, किसी का शार्दूल जैसा, किसी का भैंसा जैसा, किसी का बकरी जैसा और किसी का स्यारिन जैसा था। किसी के पैर हाथी जैसे, किसी के ऊँट जैसे और किसी के घोड़े जैसे थे। किसी किसी का सिर माथे में घुसा हुआ था ॥ १० ॥

एकहस्तैकपादाश्च खरकर्ण्यश्वकर्णिकाः ।
गोकर्णीर्हस्तिकर्णीश्च हरिकर्णीस्तथापराः ॥ ११ ॥

कोई एक हाथ और कोई एक पैर वाली थी। किसी के कान गधे जैसे, किसी के घोड़े जैसे, किसी के गाय जैसे, किसी के हाथी जैसे तथा किसी के बन्दर जैसे थे ॥ ११ ॥

अनासा अतिनासाश्च तिर्यङ्नासा विनासिकाः ।
गजसन्निभनासाश्च ललाटोच्छ्वासनासिकाः ॥ १२ ॥

किसी के नाक थी ही नहीं, किसी के नाक तो थी; किन्तु वह बहुत बड़ी थी। किसी की नाक टेढ़ी थी और किसी की नासिका की बनावट विशेष तरह की थी। किसी की नाक हाथी की सूंड जैसी और किसी की नाक ललाट में थी जिससे वह साँस लेती थी ॥ १२ ॥

हस्तिपादा महापादा गोपादाः पादचूलिकाः ।
अतिमात्रशिरोग्रीवा अतिमात्रकुचोदरीः ॥ १३ ॥

किसी के हाथी जैसे पैर, किसी के महाभारी पैर, किसी के बैलों जैसे पैर और किसी के पैरों पर चोटी जैसे केशों का समूह था। किसी की केवल गर्दन और सिर और किसी के केवल पेट और स्तन ही स्तन देख पड़ते थे ॥ १३ ॥

अतिमात्रास्यनेत्राश्च दीर्घजिह्वानखास्तथा ।
अजामुखीर्हस्तिमुखीर्गोमुखीः सूकरीमुखीः ॥ १४ ॥

किसी के बड़ा मुख और किसी के बड़े बड़े नेत्र थे और किसी के लंबी जीभ और नख थे। कोई बकरे के मुख वाली, कोई हाथी के मुख वाली, कोई गौ के मुख वाली और कोई शूकरी जैसे मुख वाली थी ॥ १४ ॥

हयोष्ट्रखरवक्त्राश्च राक्षसीर्घोरदर्शनाः ।
शूलमुद्गरहस्ताश्च क्रोधनाः कलहप्रियाः ॥ १५ ॥

किसी का मुख घोड़े जैसा, किसी का ऊँट जैसा और किसी का गधे जैसा था। वे सब राक्षसी भयङ्कर रूपवाली थीं। उनके हाथों में शूल और मुग्दर थे तथा वे बड़ी गुस्सैल और झगड़ा करने वाली थीं ॥ १५ ॥

करालाः धूम्रकेशीश्च राक्षसीर्विकृताननाः ।
पिबन्तीः सततं पानं सदा मांससुराप्रियाः ॥ १६ ॥

वे भयङ्कर और धुएँ के तुल्य केशवाली, तथा भयङ्कर मुखों वाली राक्षसियाँ थीं। वे सदा शराब पिया करती थीं। क्योंकि उनको शराब पीना और माँस खाना बहुत प्रिय लगता था ॥ १६ ॥

मांसशोणितदिग्धाङ्गीर्मांसशोणितभोजनाः ।
ता ददर्श कपिश्रेष्ठो रोमहर्षणदर्शनाः ॥ १७ ॥

उनके शरीर में माँस और रुधिर सना हुआ था, क्योंकि वे

सदा पीतीं और मांस खाया करती थीं। उनको देखने से देखने वाले के शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते थे। ऐसी राक्षसियों को हनुमान जी ने वहाँ देखा॥ १७॥

स्कन्धवन्तमुपासीनाः परिवार्य वनस्पतिम्।
तस्याधस्ताच्च तां देवीं राजपुत्रीमनिन्दिताम्॥ १८॥

वे सब की सब, उस सघन वृक्ष को घेरे हुए थीं जिसके नीचे सुन्दरी राजपुत्री सीता जी बैठी हुई थीं॥ १८॥

लक्षयामास लक्ष्मीवान्हनुमाञ्जनकात्मजाम्।
निष्प्रभां शोकसन्तप्तां मलसङ्कुलमूर्धजाम्॥ १९॥

हनुमान जी ने जनकनन्दिनी को देखा कि, वे प्रभाहीन हो रही हैं और शोक से सन्तप्त हैं तथा उनके सिर के बाल मैल से चीकट हो रहे हैं॥ १९॥

क्षीणपुण्यां च्युतां भूमौ तारां निपतितामिव।
[1]चारित्रव्यपदेशाढ्यां भर्तृदर्शनदुर्गताम्॥ २०॥

मानों क्षीणपुण्य कोई तारा पृथिवी पर गिरा पड़ा है। सीता जी एक प्रसिद्ध पतिव्रता स्त्री हैं। परन्तु इस समय इनको अपने पति का दर्शन दुर्लभ हो रहा है॥ २०॥

भूषणैरुत्तमैर्हीनां भर्तृवात्सल्यभूषणाम्।
राक्षसाधिपसंरुद्धां बन्धुभिश्च विनाकृताम्॥ २१॥

यद्यपि उनके अंगों में बढ़िया गहने नहीं हैं; तथापि वे पतिप्रेम रूपी भूषण से भूषित हैं और बन्धुजनों से रहित, वे रावण के यहाँ नज़रबन्द हैं॥ २१॥

---

१ चारित्रव्यपदेशाढ्यां—पतिव्रताधर्माचरणख्यातिसम्पन्नाम्। (गो०)

विपूथां सिंहसंरुद्धां बद्धां गजवधूमिव ।
चन्द्ररेखां पयोदान्ते शारदाभ्रैरिवावृताम् ॥ २२ ॥

उस समय जानकी जी ऐसी जान पड़ती थीं, मानों अपने झुंड से छूटी और बंधी हुई कोई हथिनी, सिंह के चंगुल में फँस गई हो। अथवा वर्षाऋतु के अन्त में, मानों चन्द्र की चाँदनी शारदीय मेघों में छिप रही हो ॥ २२ ॥

क्लिष्टरूपामसंस्पर्शादयुक्तामिव वल्लकीम् ।
सीतां भर्तृवशे युक्तामयुक्तां [1]राक्षसीवशे ॥ २३ ॥

उबटनादि न लगाने से, वे मानों बहुत दिनों से बिना बजाई वीणा की तरह मलिन हो रही हैं। जो सीता जी अपने पति के पास रहने योग्य हैं; वे आज राक्षसियों के क्रूरकटाक्ष का लक्ष्य बनी हुई हैं अथवा राक्षसियों के पहरे में हैं ॥ २३ ॥

अशोकवनिकामध्ये शोकसागरमाप्लुताम् ।
ताभिः परिवृतां तत्र सग्रहामिव रोहिणीम् ॥ २४ ॥

अशोकवाटिका में सीता, मानों शोकसागर में डूबती और उतराती हैं अथवा मङ्गल ग्रह से ग्रसित रोहिणी की तरह, उन राक्षसियों से घिरी हुई हैं ॥ २४ ॥

ददर्श हनुमान्देवीं *लतामकुसुमामिव ।
सा मलेन च दिग्धाङ्गी वपुषा चाप्यलंकृता ॥ २५ ॥

हनुमान जी ने अशोकवाटिका में पुष्पहीन लता की तरह, सीता जी को शरीर में मैल लपेटे और शृङ्गाररहित देखा ॥२५॥

---

१ राक्षसीवशे अयुक्तां—तद्वचनान्यश्रृण्वन्तीमित्यर्थः (गो०)
* पाठान्तरे—" लतां कुसुमितामिव " ।

मृणाली पङ्कदिग्धेव विभाति न विभाति च ।
मलिनेन तु वस्त्रेण परिक्लिष्टेन भामिनीम् ॥ २६ ॥
संवृतां मृगशावाक्षीं ददर्श हनुमान्कपिः ।
तां देवीं दीनवदनामदीनां भर्तृतेजसा[1] ॥ २७ ॥

सुन्दर होने पर भी सीता जी कीचड़ में सनी हुई नलिनी की तरह शोभाहीन हो रही थीं। हनुमान जी ने देखा कि, मृगनयनी सीता जी अपने शरीर को एक जीर्ण और मैले कुचैले वस्त्र से ढके हुए हैं। यद्यपि सीता जी इस समय उदास थीं; तथापि वे श्रीरामचन्द्र जी के बल पराक्रम का स्मरण कर, उदास नहीं जान पड़ती थीं ॥ २६ ॥ २७ ॥

रक्षितां स्वेन शीलेन सीतामसितलोचनाम् ।
तां दृष्ट्वा हनुमान्सीतां मृगशावनिभेक्षणाम् ॥ २८ ॥

काले काले नेत्रों वाली सीता जी अपने शील स्वभाव से स्वयं अपने पातिव्रत धर्म की रक्षा कर रही थीं। उन मृगशावक-नयनी सीता जी को हनुमान जी ने देखा ॥ २८ ॥

मृगकन्यामिव त्रस्तां वीक्षमाणां समन्ततः ।
दहन्तीमिव निःश्वासैर्वृक्षान्पल्लवधारिणः ॥ २९ ॥

वे मृगछौनी की तरह भयभीत हो, चारों ओर देख रही थीं और अपने निःश्वासों से मानों आसपास के पल्लवधारी वृक्षों को भस्म किए डालती थीं ॥ २९ ॥

सङ्घातमिव शोकानां दुःखस्योर्मिमिवोत्थिताम् ।
तां क्षमां सुविभक्ताङ्गीं विनाभरणशोभिनीम् ॥ ३० ॥

---

१ भर्तृतेजसा—रामतेजः स्मरणेन । (शि०)

प्रहर्षमतुलं लेभे मारुतिः प्रेक्ष्य मैथिलीम्।

हर्षजानि च सोऽश्रूणि तां दृष्ट्वा मदिरेक्षणाम्॥ ५ ॥

मुमोच हनुमांस्तत्र नमश्चक्रे च राघवम् ॥ ३१ ॥सको

(उस समय हनुमान जी को ऐसा ज्ञान पड़ा) मानों शोक-सागर से दुःख रूपी लहरें उठ रही हों। क्षमा की साक्षात् मूर्ति, सुन्दर अङ्गों वाली तथा बिना आभूषणों के भी शोभायमान जानकी जी को देख, हनुमान जी बहुत प्रसन्न हुए। उन श्रेष्ठ नेत्रों वाली जानकी जी को देख, हनुमान जी आनन्द के आंसू बहाने लगे और उन्होंने मनसा श्रीरामचन्द्र जी को प्रणाम किया ॥ ३० ॥ ३१ ॥

नमस्कृत्वा स रामाय लक्ष्मणाय च वीर्यवान्।

सीतादर्शनसंहृष्टो हनुमान्संवृतोऽभवत् ॥ ३२ ॥

इति सप्तदशः सर्गः ॥

महाबली हनुमान जी ने श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी को मनसा प्रणाम किया और सीता के दर्शन पाने से अत्यन्त प्रसन्न हो, वे उसी वृक्ष के पत्तों में छिप कर बैठ गए ॥ ३२ ॥

सुन्दरकाण्ड का सत्तरहवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

अष्टादशः सर्गः

—❀—

तथा विप्रेक्षमाणस्य वनं पुष्पितपादपम्।

विचिन्वतश्च वैदेहीं किञ्चिच्छेषा निशाभवत् ॥ १ ॥

पुष्पित वृक्षों से युक्त अशोकवाटिका को देखते देखते और सीता को खोजते खोजते अब थोड़ी ही रात शेष रह गई थी ॥१॥

...ां क्रतुप्रवरयाजिनाम् ।
मृणाल्नैश्चाघोषाँश्च विरात्रे[1] ब्रह्मरक्षसाम्[2] ॥ २ ॥

...तने पर षडङ्गवेदों के ज्ञाता और उत्तमोत्तम यज्ञों के करने
. ब्राह्मण राक्षसों के वेदपाठ की ध्वनि, हनुमान जी ने सुनी ॥२॥

[नोट - इससे जान पड़ता है कि, लङ्का में चारों वर्णों के राक्षस थे और यज्ञ करने और षडङ्गवेदाध्ययन करने वाले ब्राह्मण राक्षस भी वहाँ रहा करते थे। किया "ब्रह्मरक्षसाम्" का अर्थ गोविन्दराज जी ने "ब्राह्मणत्व विशिष्ट रक्षसाम्" किया है। यही अर्थ युक्तियुक्त जान पड़ता है। ब्राह्मण और राक्षस ये दोनों बातें परस्पर विरोध रखने वाली हैं। हाँ कोई कोई जीव राक्षस योनि में जन्म लेकर भी पूर्व जन्म के संस्कारवश ब्राह्मणत्व युक्त हो सकता है। यह भी सम्भव है कि रावण, पुलस्त्य वंशी ऋषि सन्तान था; किन्तु कर्म राक्षसों जैसे किया करता था। तो भी अपने वंश की मर्यादा की रक्षा के हेतु उसे ब्राह्मणों की आवश्यकता पड़ती थी—अतः राजपौरोहित्य के प्रलोभन में पड़, कतिपय राक्षसों ने ब्राह्मण वृत्ति स्वीकार करली हो—अतः उनको ही आदि कवि ने "ब्रह्मरक्षसाम्" लिखा है।]

अथ मङ्गलवादित्रैः शब्दैः श्रोत्रमनोहरैः ।
प्राबुध्यत महाबाहुर्दशग्रीवो महाबलः ॥ ३ ॥

तदनन्तर मङ्गलसूचक बाजों की कर्णमधुर ध्वनि के साथ महाबली एवं महावीर रावण जगाया गया ॥ ३ ॥

विबुध्य तु यथाकालं राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।
स्रस्तमाल्याम्बरधरो वैदेहीमन्वचिन्तयत् ॥ ४ ॥

यथासमय प्रतापी रावण सो कर उठ बैठा और सोते में खसकी हुई मालाओं और वस्त्रों को सम्हालता हुआ वह सीता के विषय में सोचने विचारने लगा ॥ ४ ॥

---

१ विरात्रे—रात्र्यावसाने। (शि०) २ ब्रह्मरक्षसाम्—ब्राह्मणत्वविशिष्ट रक्षसाम्। (गो०), ब्राह्मणराक्षसानाम्। (शि०)

भृशं नियुक्तस्तस्यां च मदनेन मदोत्कटः।
न स तं राक्षसः कामं शशाकात्मनि गूहितुम् ॥ ५ ॥

क्योंकि वह रावण अत्यन्त कामासक्त था अतः उसकी सीता में अत्यन्त आसक्ति थी। साथ ही वह अपने काम वेग को रोकने में सर्वथा असमर्थ था ॥ ५ ॥

स सर्वाभरणैर्युक्तो बिभ्रच्छ्रियमनुत्तमाम्।
तां नगैर्बहुभिर्जुष्टां सर्वपुष्पफलोपगैः ॥ ६ ॥

रावण समस्त आभूषणों को पहिनने के कारण अपूर्व शोभा धारण कर, सर्वऋतु में फलने फूलने वाले वृक्षों से युक्त ॥ ६ ॥

वृतां पुष्करिणीभिश्च नानापुष्पोपशोभिताम्।
सदामदैश्च विहगैर्विचित्रां *परमाद्भुतैः ॥ ७ ॥

तथा अनेक पुष्करिणियों से तथा विविध प्रकार के पुष्पों से शोभित तथा परम अद्भुत एवं मतवाले पक्षियों से कूजित ॥ ७ ॥

ईहामृगैश्च विविधैर्जुष्टां दृष्टिमनोहरैः।
वीथीः सम्प्रेक्षमाणश्च †मणिकाञ्चनतोरणाम् ॥ ८ ॥

तथा देखने में सुन्दर अनेक प्रकार के बनावटी मृगों (खिलौनों) से सुसज्जित तथा मणि और काञ्चन के तोरणों तथा उद्यान-वीथियों को देखता हुआ ॥ ८ ॥

नानामृगगणाकीर्णां फलैः प्रपतितैर्वृताम्।
अशोकवनिकामेव प्राविशत्सन्ततद्रुमाम् ॥ ९ ॥

तथा अनेक प्रकार के बनैले जन्तुओं से युक्त, चुए हुए पके फलों से भरे पूरे और सघन वृक्षों से पूर्ण, उस अशोकवाटिका में पहुँचा ॥ ९ ॥

---

* पाठान्तरे—"परमाद्भुताम्"। † पाठान्तरे—'मणिकाञ्चनतोरणाः"।

अङ्गनाशतमात्रं तु तं व्रजन्तमनुव्रजत् ।
महेन्द्रमिव पौलस्त्यं देवगन्धर्वयोषितः ॥ १० ॥

उसके पीछे पीछे सैकड़ों स्त्रियां भी वैसे ही चली जाती थीं जैसे देवता और गन्धर्वों की स्त्रियां इन्द्र के पीछे चलती हैं ॥१०॥

दीपिकाः काञ्चनीः काश्चिज्जगृहुस्तत्र योषितः ।
वालव्यजनहस्ताश्च तालवृन्तानि चापराः ॥ ११ ॥

किसी किसी स्त्री के हाथ में सुवर्ण के दीपक (अर्थात् लालटेन) किसी के हाथ में चँवर और किसी के हाथ में ताड़ के पंखे थे ॥ ११ ॥

काञ्चनैरपि भृङ्गारैर्जह्रुः सलिलमग्रतः ।
मण्डलाग्रान्वृसींश्चैव गृह्यान्याः पृष्ठतो ययुः ॥ १२ ॥

कोई कोई जल से भरी सुवर्ण की झारी हाथ में लिये हुए आगे चलती थीं, और कोई गोल आसन लिये हुए, पीछे चली जाती थी ॥ १२ ॥

काचिद्रत्नमयीं* पात्रीं पूर्णां पानस्य भामिनी ।
दक्षिणा दक्षिणेनैव तदा जग्राह पाणिना ॥ १३ ॥

कोई कोई चतुर स्त्री दहिने हाथ में मदिरा से भरी साफ रत्नजटित सुराही लिये हुए चली जाती थी ॥ १३ ॥

राजहंसप्रतीकाशं छत्रं पूर्णशशिप्रभम् ।
सौवर्णदण्डमपरा गृहीत्वा पृष्ठतो ययौ ॥ १४ ॥

---

* पाठान्तरे— "स्थालीं" ।

कोई राजहंस की तरह सफेद और पूर्णमासी के चन्द्रमा की तरह गोल और सोने की डंडी वाला छत्र रावण के ऊपर ताने हुए उसके पीछे जा रही थी ॥ १४ ॥

निद्रामदपरीताक्ष्यो रावणस्योत्तमाः स्त्रियः ।
अनुजग्मुः पतिं वीरं घनं विद्युल्लता इव ॥ १५ ॥

नींद और मदिरा के नशे से अलसानी रावण की सुन्दरी स्त्रियाँ, उसी प्रकार अपने वीर पति के पीछे चली जा रही थीं, जिस प्रकार मेघ के पीछे बिजली चमकती है ॥ १५ ॥

व्याविद्धहारकेयूराः समामृदितवर्णकाः ।
समागलितकेशान्ताः सस्वेदवदनास्तथा ॥ १६ ॥

उन स्त्रियों की कण्ठमालाएं और बाजूबंद अपने अपने स्थानों से कुछ कुछ खसक गए थे और उलट पुलट गए थे। उनमें से अनेक के अंगराग छूट गए थे, उनके सिरों के जूड़े खुल गए थे और उनके मुखों पर पसीने की बूँदे झलक रही थीं ॥ १६ ॥

घूर्णन्त्यो मदशेषेण निद्रया च शुभाननाः ।
स्वेदक्लिष्टाङ्गकुसुमाः सुमाल्याकुलमूर्धजाः ॥ १७ ॥

वे सुन्दरी स्त्रियाँ नशे की और नींद की ख़ुमारी से डगमगाती, पसीने से भींगे फूलों को धारण किए तथा जूड़ों में फूल सजाए हुए थीं ॥ १७ ॥

प्रयान्तं नैर्ऋतपतिं नार्यो मदिरलोचनाः ।
बहुमानाच्च कामाच्च प्रिया भार्यास्तमन्वयुः ॥ १८ ॥

इस प्रकार मदमाते नैनों वाली वे सब स्त्रियाँ, अति आदर के साथ और कामपीड़ित हो, अपने पति के पीछे पीछे चली जाती थीं ॥ १८ ॥

स च कामपराधीनः पतिस्तासां महाबलः ।
सीतासक्तमना मन्दो मदाञ्चितगतिर्बभौ ॥ १९ ॥

उनका वह महाबली और कामासक्त पति रावण, सीता पर लट्टू था तथा नशे में चूर, झूमता हुआ, धीरे धीरे चला जाता था ॥ १६ ॥

ततः काञ्चीनिनादं च नूपुराणां च निःस्वनम् ।
शुश्राव परमस्त्रीणां स कपिर्मारुतात्मजः ॥ २० ॥

पवननन्दन हनुमान जी ने उन सुन्दरी स्त्रियों की करधनियों और नूपुरों की झंकार को सुना ॥ २० ॥

तं चाप्रतिमकर्माणमचिन्त्यबलपौरुषम् ।
द्वारदेशमनुप्राप्तं ददर्श हनुमान्कपिः ॥ २१ ॥

हनुमान जी ने देखा कि, वह अनुपम कर्मा, अचिन्त्य एवं असाधारण बल और पुरुषार्थ से युक्त रावण, उस वाटिका के द्वार पर आ पहुँचा है ॥ २१ ॥

दीपिकाभिरनेकाभिः समन्तादवभासितम् ।
गन्धतैलावसिक्ताभिर्ध्रियमाणाभिरग्रतः ॥ २२ ॥

आगे आगे सुगन्धित तेल से पूर्ण अनेक लालटैनों या मशालों के प्रकाश में रावण का समस्त शरीर भली भाँति दिखलाई पड़ रहा था ॥ २२ ॥

कामदर्पमदैर्युक्तं जिह्मताम्रायतेक्षणम् ।
समक्षमिव कन्दर्पमपविद्ध[1] शरासनम् ॥ २३ ॥

---

१ अपविद्ध—अधृत । (गो०)

उस समय रावण नशे में चूर था और काममद से पीड़ित था। उसके विशाल तिरछे नेत्र लाल हो रहे थे। उस समय वह ऐसा जान पड़ता था; मानों साक्षात् कामदेव धनुष को दूर फेंक कर, सामने चला आता हो॥ २३॥

मथितामृतफेनाभमरजो वस्त्रमुत्तमम्।
सलीलमनुकर्षन्तं विमुक्तं सक्तमङ्गदे॥ २४॥

मथे हुए अमृत के झागों की तरह अति उजला तथा अति उत्तम वस्त्र, जो खसक कर उसके बाजूबन्द में अटक गया था, उसे साधारणतया खींच कर यथास्थान उसने रख लिया॥२४॥

तं पत्रविटपे लीनः पत्रपुष्पघनावृतः।
समीपमुपसंक्रान्तं निध्यातुमुपचक्रमे॥ २५॥

रावण ज्यों ज्यों समीप आता जाता था, त्यों त्यों हनुमान जी उस सघन पेड़ के फूल पत्तों में अपने शरीर को छिपाते जाते थे और छिपे छिपे ही वह यह भी जानना चाहते थे कि, सामने आता हुआ व्यक्ति कौन है॥ २५॥

अवेक्षमाणस्तु ततो ददर्श कपिकुञ्जरः।
रूपयौवनसम्पन्ना रावणस्य वरस्त्रियः॥ २६॥

देखते देखते हनुमान जी ने प्रथम रावण की श्रेष्ठ और रूपवती युवती स्त्रियों को देखा॥ २६॥

ताभिः परिवृतो राजा सुरूपाभिर्महायशाः।
तन्मृगद्विजसंघुष्टं प्रविष्टः प्रमदावनम्॥ २७॥

उन अत्यन्त रूपवती सुन्दरियों के साथ महायशवी राक्षस-राज, मृगों और पक्षियों से भरे उस अपने प्रमोद्वन (अशोकवन में) पहुँचा ॥ २७ ॥

क्षीबो विचित्राभरणः शङ्कु[1]कर्णो महाबलः ।
तेन विश्रवसः पुत्रः स दृष्टो राक्षसाधिपः ॥ २८ ॥

उस समय महाबली, उन्मत्त, मूल्यवान गहनों को धारण किए हुए और गर्व से कानों को स्तब्ध किए हुए, विश्रवा के पुत्र राक्षसराज रावण को हनुमान जी ने देखा ॥ २८ ॥

वृतः परमनारीभिस्ताराभिरिव चन्द्रमाः ।
तं ददर्श महातेजास्तेजोवन्तं महाकपिः ॥ २९ ॥

रावणोऽयं महाबाहुरिति संचिन्त्य वानरः ।
अवप्लुतो महातेजा हनुमान्मारुतात्मजः ॥ ३० ॥

परम रूपवती स्त्रियों से घिरे हुए उस महातेजस्वी राक्षसराज रावण को, ताराओं से घिरे चन्द्रमा की तरह शोभित देख, वृक्ष, पर बैठे हुए पवननन्दन हनुमान जी ने सोचा कि, यह महाबाहु रावण ही है ॥ २९ ॥ ३० ॥

स तथाप्युग्रतेजाः सन्निर्धूतस्तस्य तेजसा ।
पत्रगुह्यान्तरे सक्तो हनुमान्संवृतोऽभवत् ॥ ३१ ॥

यद्यपि हनुमान जी स्वयं भी अत्यन्त तेजस्वी थे, तथापि रावण के तेज के सामने वे दब गए और वृक्ष की एक डाली पर, उसके सघन पत्तों में अपने को छिपा लिया ॥ ३१ ॥

---

1 शङ्कुकर्णः—गर्वेण स्तब्धकर्णः । (गो०)

*सीतामसितकेशान्तां सुश्रोणीं संहतस्तनीम् ।
दिदृक्षुरसितापाङ्गीमुपावर्तत रावणः ॥ ३२ ॥

इति अष्टादशः सर्गः ॥

काले केशों वाली, पतली कमर वाली, कठिन स्तन वाली और काले नेत्रों वाली जानकी को देखने के लिए रावण सीता के समीप गया ॥ ३२ ॥

सुन्दरकाण्ड का अट्ठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—❀—

एकोनविंशः सर्गः

—❀—

तस्मिन्नेव ततः काले राजपुत्री त्वनिन्दिता ।
रूपयौवनसम्पन्नं भूषणोत्तमभूषितम् ॥ १ ॥
ततो दृष्ट्वैव वैदेही रावणं राक्षसाधिपम् ।
प्रावेपत वरारोहा प्रवाते कदली यथा ॥ २ ॥

उस समय सुन्दरी राजपुत्री सीता, रूपयौवनसम्पन्न और उत्तम भूषणों से भूषित राक्षसराज रावण को देख, मारे डर के केले के पत्ते की तरह काँपने लगी ॥ १ ॥ २ ॥

आच्छाद्योदरमूरुभ्यां बाहुभ्यां च पयोधरौ ।
उपविष्टा विशालाक्षी†रुदती वरवर्णिनी ॥ ३ ॥

विशालाक्षी और सुन्दर रंग वाली सीता, दोनों जाँघों से अपने पेट को तथा बाँहों से अपने स्तनों को ढाँपे हुए बैठ कर, रोने लगी ॥ ३ ॥

* पाठान्तरे—" स तामसितकेशान्तां" । † पाठान्तरे—" रुदन्ती " ।

दशग्रीवस्तु वैदेहीं रक्षितां राक्षसीगणैः ।
ददर्श सीतां दुःखार्तां नाव सन्नामिवार्णवे ॥ ४ ॥

रावण ने देखा कि, राक्षसियों के पहिरे में सीता अत्यन्त दुःखी है और, समुद्र की लहरों के झकोरों से डगमगाती नाव की तरह कांप रही है ॥ ४ ॥

असंवृतायामासीनां धरण्यां संशितव्रताम् ।
छिन्नां प्रपतितां भूमौ शाखामिव वनस्पतेः ॥ ५ ॥

भूमि पर बिना बिछौना बिछाए बैठी हुई तथा दृढ़व्रत धारण किए हुए सीता, भूमि पर पड़ी वृक्ष की कटी डाली की तरह, जान पड़ती थी ॥ ५ ॥

मलमण्डनचित्राङ्गीं मण्डनार्हाममण्डिताम् ।
मृणाली पङ्कदिग्धेव विभाति न विभाति च ॥ ६ ॥

सीता के अंग, जो भूषणों से भूषित होने योग्य थे, उन सब अंगों पर मैल चढ़ा हुआ था। वह इस समय कीचड़ में सनी कुमुदनी की तरह जान पड़ती थी ॥ ६ ॥

समीपं राजसिंहस्य रामस्य विदितात्मनः ।
सङ्कल्पहयसंयुक्तैर्यान्तीमिव मनोरथैः ॥ ७ ॥

मानों उस समय वह मनोरथों के सङ्कल्प रूपी घोड़ों पर सवार हो, प्रसिद्ध राजसिंह श्रीरामचन्द्र जी के पास जा रही थी ॥ ७ ॥

शुष्यन्तीं रुदतीमेकां ध्यानशोकपरायणाम् ।
दुःखस्यान्तमपश्यन्तीं रामां राममनुव्रताम् ॥ ८ ॥

श्रीरामचन्द्र जी का ध्यान करते करते और शोक से विकल होने के कारण, उसका शरीर सूख कर काँटा हो गया था। वह बराबर रो रही थी। उसको दुःखरूपी सागर का ओर छोर नहीं देख पड़ता था। वह केवल राम ही की ओर ध्यान लगाये हुए थी॥ ८॥

वेष्टमानां तथाऽऽविष्टां पन्नगेन्द्रवधूमिव।
धूप्यमानां ग्रहेणेव रोहिणीं धूमकेतुना॥ ९॥

वह मन्त्रमुग्धा सर्पिणी की तरह छटपटा रही थी, मानों रोहिणी धूमकेतु के ताप से सन्तप्त हो रही हो॥ ९॥

वृत्तशीलकुले जातामाचारवति धार्मिके।
पुनःसंस्कारमापन्नां जातामिव च दुष्कुले॥ १०॥

दृढ़-स्वभाव-सम्पन्न, समयानुकूल-आचारवान् और यज्ञादि धर्म्मानुष्ठान प्रधान-कुल में उत्पन्न हो कर तथा उस कुल के योग्य ही विवाहसंस्कार से संस्कारित हो कर भी, इस समय सीता लङ्कापुरी में रहने के कारण, राक्षसकुलोत्पन्न जैसी जान पड़ रही थी॥ १०॥

सन्नामिव महाकीर्तिं श्रद्धामिव विमानिताम्।
*प्रज्ञामिव परिक्षीणामाशां प्रतिहतामिव॥ ११॥

उस समय सीता ऐसी जान पड़ती थी, मानों निन्दित कीर्त्ति, अनादृत विश्वास, क्षीण बुद्धि, अथवा टूटी हुई आशा हो॥ ११॥

आयतीमिव विध्वस्तामाज्ञां प्रतिहतामिव।
दीप्तामिव दिशं काले पूजामपहृतामिव॥ १२॥

---

* पाठान्तरे—" पूजामिव।"

अथवा घटी हुई आमदनी, उल्लङ्घन की हुई आज्ञा, उल्कापात के समय जलती हुई दिशाएँ, अथवा पूजा की नष्ट हुई सामग्री ॥ १२ ॥

पद्मिनीमिव विध्वस्तां हतशूर चमूमिव ।
प्रभामिव तमोध्वस्तामुपक्षीणामिवापगाम् ॥ १३ ॥

अथवा मसली हुई कुमुदनी, शूरों की पराजित सेना, अन्धकाराच्छन्न प्रभा, सूखी हुई नदी ॥ १३ ॥

वेदीमिव परामृष्टां शान्तामग्निशिखामिव ।
पौर्णमासीमिव निशां राहुग्रस्तेन्दुमण्डलाम् ॥ १४ ॥

अथवा अस्पृश्यों के स्पर्श द्वारा भ्रष्ट हुई यज्ञवेदी, बुझी हुई आग, राहुग्रसित चन्द्रमण्डल से युक्त पूर्णमासी की रात ॥ १४ ॥

उत्कृष्टपर्णकमलां वित्रासितविहङ्गमाम् ।
हस्तिहस्तपरामृष्टामाकुलां पद्मिनीमिव ॥ १५ ॥

अथवा टूटी हुई पंखड़ियों का कमल, भयभीत पक्षी और हाथी की सूँड़ से खलबलाई हुई कमलयुक्त पुष्करिणी ॥ १५ ॥

पतिशोकातुरां शुष्कां नदीं विस्रावितामिव ।
परया मृजया हीनां कृष्णपक्षनिशामिव ॥ १६ ॥

सीता, श्रीरामचन्द्र जी के वियोग-जन्य-शोक से आतुर हो, ऐसी सूख गई थीं, जैसे टूटे हुए बाँध की नदी, जल के इधर उधर बह जाने से सूख जाती है। शरीर में उबटन आदि न लगाने से जानकी कृष्णपक्ष की रात की तरह, कालीकलूटी सी जान पड़ती थी ॥ १६ ॥

सुकुमारीं सुजाताङ्गीं रत्नगर्भगृहोचिताम् ।
तप्यमानामिवोष्णेन मृणालीमचिरोद्धृताम्॥ १७ ॥

सुकुमारी, सुन्दर अंगोंवाली एवं रत्नजटित घर में रहने योग्य जानकी, इस समय दुःख से सन्तप्त ऐसी उदास थी मानों हाल की उखड़ी हुई कमलिनी घाम के ताप से तप्त हो, कुम्हला गई हो ॥ १७ ॥

*गृहीतां लाडितां स्तम्भे यूथपेन विनाकृताम् ।
निःश्वसन्तीं सुदुःखार्तां गजराजवधूमिव ॥ १८ ॥

जिस प्रकार हथिनी पकड़ कर खूँटे में बांध दी जाती है और वह अपने यूथपति के वियोग में अत्यन्त दुःखी हो, बारंबार उसांसे लेती है, उसी प्रकार सीता उस समय अत्यन्त विकल हो, लंबी सांसे ले रही थी ॥ १८ ॥

एकया दीर्घया वेण्या शोभमानामयत्नतः ।
नीलया नीरदापाये वनराज्या महीमिव ॥ १९ ॥

बिना सम्हाली एक वेणी (चोटी) उसकी पीठ पर वैसे ही अनायास शोभायमान थी जैसे वर्षाकाल में नीले रंग की वनश्रेणी से पृथिवी शोभित होती है ॥ १९ ॥

उपवासेन शोकेन ध्यानेन च भयेन च ।
परिक्षीणां कृशां दीनामल्पाहारां[1] तपोधनाम् ॥ २० ॥

---

१ अल्पाहारां—तोयमात्राहारामित्यर्थः । (गो०) * पाठान्तरे—"गृहीतामालितां" ।

उपास, शोक, चिन्ता और भय के कारण सीता का शरीर अत्यन्त दुबला पतला हो रहा था। वह केवल जलमात्र पी कर शरीर को तपा रही थी, अर्थात् कष्ट दे रही थीं॥ २०॥

आयाचमानां दुःखार्तां प्राञ्जलिं देवतामिव।
भावेन रघुमुख्यस्य दशग्रीवपराभवम्॥ २१॥

और दुःख से विकल हो इष्टदेवता की तरह हाथ जोड़ कर, मानों रघुवंशियों में प्रधान श्रीरामचन्द्र जी से रावण के पराजय की प्रार्थना कर रही थीं॥ २१॥

[1] समीक्षमाणां रुदतीमनिन्दितां
सुपक्ष्मताम्रायतशुक्ललोचनाम्।
अनुव्रतां राममतीव मैथिलीं
प्रलोभयामास वधाय रावणः॥ २२॥

इति एकोनविंशः सर्गः॥

निन्दारहित सीता जी रो रो कर श्रेष्ठ पलकों से युक्त अरुणा-प्रान्त-भूषित, श्वेत विशाल नेत्रों से, अपनी रक्षा के लिए इधर उधर दृष्टि डालती हुई, अपने रक्षक को देख रही थीं और रावण श्रीरामचन्द्र जी की ऐसी पतिव्रता भार्या सीता को लालच दिखला कर, मानों अपने लिए मृत्यु को आमंत्रण दे रहा था॥ २२॥

सुन्दरकाण्ड का उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—:*:—

१ समीक्षमाणां—रक्षकं समीक्षमाणां। (गो०)

विंशः सर्गः

—:*:—

स तां पतिव्रतां दीनां निरानन्दां तपस्विनीम् ।
साकारैर्मधुरैर्वाक्यैर्न्यदर्शयत रावणः ॥ १ ॥

राक्षसियों से घिरी हुई दीनभाव को प्राप्त दुःखिनी और तपस्विनी सीता को रावण सङ्केतों और मधुर वचनों से लुभाने लगा ॥ १ ॥

मां दृष्ट्वा नागनासोरु गूहमाना स्तनोदरम् ।
अदर्शनमिवात्मानां भयान्नेतुं त्वमिच्छसि ॥ २ ॥

रावण ने कहा—हे सुन्दरी ! तू मुझे देख कर अपने उदर और स्तनों को ढक कर, भयभीत हो, अपने सारे शरीर को छिपाना चाहती है ॥ २ ॥

कामये त्वां विशालाक्षि बहुमन्यस्व मां प्रिये ।
सर्वाङ्गगुणसम्पन्ने सर्वलोकमनोहरे ॥ ३ ॥

हे विशालाक्षी ! हे प्रिये ! मैं तुझे चाहता हूँ ; अतः तू भी मुझे अच्छी तरह मान। तेरे सब अङ्ग सुन्दर हैं ; अतः तू सब का मन हरने वाली है ॥ ३ ॥

नेह केचिन्मनुष्या वा राक्षसाः कामरूपिणः ।
व्यपसर्पतु ते सीते भयं मत्तः समुत्थितम् ॥ ४ ॥

हे सीते ! इस समय यहाँ न तो कोई मनुष्य है और न कामरूपी कोई राक्षस ही है। (फिर तू डरती किससे है ?) यदि तुझे मुझसे डर लगता हो तो, इस भय को तू त्याग दे ॥ ४ ॥

स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वथैव न संशयः।
गमनं वा परस्त्रीणां हरणं सम्प्रमथ्य वा ॥ ५ ॥

हे भीरु! निस्सन्देह पराई स्त्री से सम्भोग करना अथवा पराई स्त्री को बरजोरी हर लाना राक्षसों का सदा का धर्म है ॥ ५ ॥

एवं चैतदकामां तु न त्वां स्प्रक्ष्यामि मैथिलि।
कामं कामः शरीरे मे यथाकामं प्रवर्तताम् ॥ ६ ॥

तिस पर भी यदि तू न चाहैगी तो मैं तुझे न छुऊँगा। भले ही कामदेव मुझे ख़ूब सतावे ॥ ६ ॥

देवि नेह भयं कार्यं मयि विश्वसिहि प्रिये।
प्रणयस्व च तत्त्वेन मैवं भूः शोकलालसा ॥ ७ ॥

हे देवि! यहाँ तू डरे मत और मुझमें विश्वास कर। हे प्रिये! मुझसे तू ठीक ठीक (यथार्थ) प्रेम कर और इस प्रकार तू शोक से विकल मत हो ॥ ७ ॥

एकवेणी धरा शय्या ध्यानं मलिनमम्बरम्।
अस्थानेऽप्युपवासश्च नैतान्यौपयिकानि ते ॥ ८ ॥

एक वेणी धारण करना, बिना बिछौने की भूमि पर सोना, मैले कपड़े पहिनना और अनावश्यक उपवास करना; तुझको शोभा नहीं देता ॥ ८ ॥

विचित्राणि च माल्यानि चन्दनान्यगरूणि च।
विविधानि च वासांसि दिव्यान्याभरणानि च ॥ ९ ॥
महार्हाणि च पानानि शयनान्यासनानि च।
गीतं नृत्यं च वाद्यं च लभ मां प्राप्य मैथिलि ॥ १० ॥

हे मैथिली ! मेरे पास रह कर, रंगबिरंगे फूलों की मालाएँ पहिन, चन्दन और अगर शरीर में लगा, विविध प्रकार के सुन्दर कपड़े और गहने पहिन, बढ़िया शराबें पी, बहुमूल्य सेजों पर सो, बढ़िया आसनों पर बैठ कर गाना, बजाना सुन और नाचना देख ॥ ९ ॥ १० ॥

स्त्रीरत्नमसि मैव भूः कुरु गात्रेषु भूषणम् ।
मां प्राप्य हि कथं नु स्यास्त्वमनर्हा सुविग्रहे ॥ ११ ॥

तू तो स्त्रियों में एक रत्न है। अतएव ऐसा शृङ्गारहीन वेष मत बना ; बल्कि अपने शरीर को अलंकृत कर। हे सुन्दरी ! मुझे पा कर भी तू क्यों अपने शृङ्गार करने याग्य शरीर की ऐसी ख़राबी कर रही है ॥ ११ ॥

इदं ते चारु सञ्जातं यौवनं व्यतिवर्तते ।
यदतीतं पुनर्नैति स्रोतः शीघ्रमपामिव ॥ १२ ॥

यह तेरी सुन्दर उठती हुई जवानी बीती जा रही है। यह जवानी नदी की धार की तरह है, जो एक बार बह गई, वह फिर लौट कर नहीं आ सकती ॥ १२ ॥

त्वां कृत्वोपरतो मन्ये रूपकर्ता स विश्वसृक् ।
न हि रूपोपमा त्वन्या तवास्ति शुभदर्शने ॥ १३ ॥

हे सुन्दरी ! जान पड़ता है, रूप रचने वाले ब्रह्मा ने तुझको रचकर, फिर रचना करना ही बंद कर दिया है। क्योंकि तेरे समान रूपवती स्त्री और कोई नहीं दिखलाई पड़ती ॥ १३ ॥

त्वां समासाद्य वैदेहि रूपयौवनशालिनीम् ।
कः पुमानतिवर्तेत साक्षादपि पितामहः ॥ १४ ॥

हे वैदेही! तेरी जैसी सुन्दरी युवती को पा कर कौन ऐसा होगा, जिसका मन कुमार्ग में न जाय। और की बात ही क्या, (तुझे देख) ब्रह्मा जी भी कुपथगामी होने से अपने को नहीं रोक सकते॥ १४॥

यद्यत्पश्यामि ते गात्रं शीतांशुसदृशानने।
तस्मिंस्तस्मिन्पृथुश्रोणि चक्षुर्मम निबध्यते॥ १५॥

हे चन्द्रमुखी! मैं तेरे शरीर के जिस जिस अङ्ग पर दृष्टि डालता हूँ, उसी उसी अङ्ग में मेरी आँख जाकर अटक जाती है॥ १५॥

भव मैथिलि भार्या मे मोहमेनं विसर्जय।
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणामाहृतानामितस्ततः॥ १६॥
सर्वासामेव भद्रं ते ममाग्रमहिषी भव।
लोकेभ्यो यानि रत्नानि सम्प्रमथ्याहृतानि वै॥ १७॥
तानि मे भीरु सर्वाणि राज्यं चैतदहं च ते।
विजित्य पृथिवीं सर्वां नानानगरमालिनीम्॥ १८॥
जनकाय प्रदास्यामि तव हेतोर्विलासिनि।
नेह पश्यामि लोकेऽन्यं यो मे प्रतिबलो भवेत्॥ १९॥

हे मैथिली! तू अब मेरी पत्नी बन जा। मैं जो इधर से उधर अनेक उत्तमोत्तम स्त्रियाँ ले आया हूँ; तू उन सब की मुख्य पटरानी बन जा। अब अपनी इस मूर्खता को त्याग दे। मैं अनेक लोकों को जीत कर जो रत्न राशि लाया हूँ, उन सब रत्नों को तथा अपने समस्त राज्य को मैं तुझे देता हूँ। हे विलासिनी! मैं तेरे लिए, नाना नगरों से भरी यह अखिल पृथिवी जीत कर, तेरे पिता जनक को दे दूँगा। मैं इस जगत में किसी को ऐसा नहीं देखता, जो मेरा सामना कर सके॥ १६॥ १७॥ १८॥ १९॥

पश्य मे सुमहद्वीर्यमप्रतिद्वन्द्वमाहवे ।
असकृत्संयुगे भग्ना मया विमृदितध्वजाः ॥ २० ॥
अशक्ताः प्रत्यनीकेषु स्थातुं मम सुरासुराः ।
*इच्छ मां क्रियतामद्य [1]प्रतिकर्म तवोत्तमम् ॥ २१ ॥

युद्ध सम्बन्धी मेरे अत्यन्त बल पराक्रम को देख। युद्ध में मैंने सुर असुरों को बारंबार पराजित कर, उनकी ध्वजाएँ तोड़ गिराई हैं। सुर और असुरों की सेना में मेरे सामने खड़ा रह सके, ऐसा कोई भी नहीं है। तू मुझे अब अङ्गीकार कर, जिससे तेरा भली भाँति शृङ्गार कराया जाय ॥ २० ॥ २१ ॥

सप्रभाण्यवसज्यन्तां तवाङ्गे भूषणानि च ।
साधु पश्यामि ते रूपं संयुक्तं प्रतिकर्मणा ॥ २२ ॥

और सुन्दर चमकीले गहनों से तेरे अंग सजाए जायँ। मेरी इच्छा है कि, मैं तेरे शृङ्गार किए हुए रूप को देखूँ ॥ २२ ॥

प्रतिकर्माभिसंयुक्ता दाक्षिण्येन वरानने ।
भुङ्क्ष्व भोगान्यथाकामं पिब भीरु रमस्व च ॥२३॥

हे सुन्दरी! तू अपने शरीर को बहुत अच्छी तरह भूषित कर। हे भीरु! इच्छानुसार भोगों को भोग; मदिरा पान कर और मेरे साथ रमण कर ॥ २३ ॥

यथेष्टं च प्रयच्छ त्वं पृथिवीं वा धनानि च ।
†रमस्व मयि विस्रब्धा धृष्टमाज्ञापयस्व च ॥ २४ ॥

---

१ प्रतिकर्म—अलङ्कारः। (गो०) * पाठान्तरे—"इच्छया"
† पाठान्तरे—"ललस्व"।

तू जितना चाहे उतना धन या पृथिवी जिसको चाहे उसको दे डाल। मेरा विश्वास कर, मेरे साथ विहार कर और निस्सङ्कोच भाव से मुझे आज्ञा दिया कर॥ २४॥

मत्प्रसादाल्ललन्त्याश्च ललन्तां बान्धवास्तव।
ऋद्धिं ममानुपश्य त्वं श्रियं भद्रे यशश्च मे॥ २५॥

मुझे प्रसन्न करने से केवल तेरी ही अभीष्ट सिद्धि न होगी; बल्कि तेरे बन्धुजनों की भी इच्छाएँ पूरी होती रहेंगी। हे भद्रे! तू मेरी ऋद्धि, धन और कीर्ति को देख॥ २५॥

किं करिष्यसि रामेण सुभगे चीरवाससा।
निक्षिप्तविजयो रामो गतश्रीर्वनगोचरः॥ २६॥

हे सुभगे! चीर-वल्कल-धारी राम को ले कर तू क्या करेगी? राम तो हारा हुआ है, श्रीभ्रष्ट है और वन में रहा करता है॥२६॥

व्रती स्थण्डिलशायी च शङ्के जीवति वा न वा।
न हि वैदेहि रामस्त्वां द्रष्टुं वाप्युपलप्स्यते॥ २७॥

वह केवल व्रतधारी है और ज़मीन पर सोया करता है। मुझे उसके अब तक जीवित रहने में भी सन्देह है। हे वैदेहि! राम से तेरा मिलना तो बात ही और है, तू अब उसे देख भी नहीं सकती॥ २७॥

पुरोबलाकैरसितैर्मेघैर्ज्योत्स्नामिवावृताम्।
न चापि मम हस्तात्त्वां प्राप्तुमर्हति राघवः॥ २८॥

हे वैदेही! जिस प्रकार बगलों की पंक्ति मेघाच्छादित चांदनी को नहीं देख सकती; उसी प्रकार रामचन्द्र भी अब तुझको

नहीं देख सकते ; रामचन्द्र मेरे हाथ से तुझको वैसे ही अब ले भी नहीं सकते, ॥ २८ ॥

हिरण्यकशिपुः कीर्तिमिन्द्रहस्तगतामिव ।
चारुस्मिते चारुदति चारुनेत्रे विलासिनि ॥ २९ ॥

जैसे हिरण्यकशिपु इन्द्र के हाथ में गई कीर्त्ति को नहीं पा सका । हे सुन्दर दांतों वाली ! हे चारुहासिनी ! हे सुन्दरनयनी ! हे विलासिनी ! २९ ॥

मनो हरसि मे भीरु सुपर्णः पन्नगं यथा ।
क्लिष्टकौशेयवसनां तन्वीमप्यनलंकृताम् ॥ ३० ॥

हे भीरु ! तू मेरे मन को उसी प्रकार हर रही है ; जिस प्रकार गरुड़ सांप को हरता है । यद्यपि तू केवल एक पुरानी रेशमी साड़ी पहिने हुए है, शरीर से अत्यन्त दुबली है और तेरे शरीर पर गहने भी नहीं है ॥ ३० ॥

त्वां दृष्ट्वा स्वेषु दारेषु रतिं नोपलभाम्यहम् ।
अन्तःपुरनिवासिन्यः स्त्रियः सर्वगुणान्विताः ॥ ३१ ॥
यावन्त्यो मम सर्वासामैश्वर्यं कुरु जानकि ।
मम ह्यसितकेशान्ते त्रैलोक्यप्रवराः स्त्रियः ॥ ३२ ॥

तथापि तुझे देख कर, अपनी सुन्दरी स्त्रियों में प्रेम करने को मेरा मन नहीं करता । सर्वगुणआगरी मेरे रनवास की जितनी स्त्रियाँ हैं ; तू उन सब की स्वामिनी बन जा । हे काले कान्ते केशों वाली ! मेरे रनवास में तीनों लोकों की सुन्दरी स्त्रियां है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

तास्त्वां परिचरिष्यन्ति श्रियमप्सरसो यथा ।
यानि वैश्रवणे सुभ्रु रत्नानि च धनानि च ।
तानि लोकांश्च सुश्रोणिमां च भुङ्क्ष्व यथा सुखम् ॥२३॥

वे सब तेरी वैसे ही टहल करेंगी, जैसे लक्ष्मी जी की अप्सराएँ टहल किया करती हैं। हे सुभगे ! कुबेर का जो धन और रत्न हैं, उन सब को तथा समस्त लोकों के सुख को मेरे साथ इच्छानुसार भोग ॥ २३ ॥

न रामस्तपसा देवि न बलेन न विक्रमैः ।
न धनेन मया तुल्यस्तेजसा यशसाऽपि वा ॥ २४ ॥

हे देवी ! तप, बल, पराक्रम, धन, तेज और यश में, राम मेरी बराबरी नहीं कर सकता ॥ २४ ॥

पिब विहर रमस्व भुङ्क्ष्व भोगान्-
धननिचयं प्रदिशामि मेदिनीं च ।
मयि लल ललने यथासुखं त्वं ।
त्वयि च समेत्य ललन्तु बान्धवास्ते ॥२५॥

तू मज़े में शराब पी, विहार कर, क्रीड़ा कर, तथा सुखों का उपभोग कर। ढेर का ढेर धन और यह पृथिवी मैं तुझे देता हूँ। हे ललने ! तू भी मेरे साथ मन माना सुख भोग और तेरे साथ साथ तेरे बन्धुजन भी सुख भोगें ॥ २५ ॥

कुसुमिततरुजालसन्ततानि
भ्रमरयुतानि समुद्रतीरजानि

कनकविमलहारभूषिताङ्गी
विहर मया सह भीरु काननानि ॥ ३६ ॥

इति विंशः सर्गः ॥

हे सुन्दर-सुवर्ण-हार से भूषित अङ्ग वाली ! हे भीरु ! तू मेरे साथ, पुष्पित वृक्षों से भरे हुए तथा भैारों से युक्त समुद्रतीरवर्ती वनों में विहार कर ॥ ३६ ॥

सुन्दरकाण्ड का बीसवां सर्ग पूर्ण हुआ ।

—:*:—

एकविंशः सर्गः

—:*:—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सीता रौद्रस्य रक्षसः ।
आर्ता दीनस्वरा दीनं प्रत्युवाच शनैर्वचः ॥ १ ॥

उस भयङ्कर रावण के यह वचन सुन कर, विकल और दीन हो कर सीता ने, रावण की कही बातों के उत्तर में उससे धीरे धीरे यह कहा ॥ १ ॥

दुःखार्ता रुदती सीता वेपमाना तपस्विनी ।
चिन्तयन्ती वरारोहा पतिमेव पतिव्रता ॥ २ ॥

दुःख से विकल रोती हुई तथा थरथराती हुई सुन्दरी तपस्विनी सीता अपने पातिव्रतधर्म की रक्षा के लिए चिन्तित और श्रीरामचन्द्र जी का स्मरण कर ॥ २ ॥

तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता ।
निवर्तय मनो मत्तः स्वजने क्रियतां मनः ॥ ३ ॥

अपने और रावण के बीच में तिनके की आड़ कर और मुस-कुराती सी जान पड़ती हुई, रावण से बोली। हे रावण! मेरी ओर से अपने मन को फेर कर, अपनी स्त्रियों में उसे लगा ॥३॥

न मां प्रार्थयितुं युक्तं सुसिद्धिमिव पापकृत्।
अकार्यं न मया कार्यमेकपत्न्या विगर्हितम् ॥ ४ ॥

क्योंकि मैं तेरे चाहने योग्य वैसे ही नहीं हूँ, जैसे सिद्धि, पापिष्ठ जन द्वारा चाहने योग्य नहीं होती। मैं पातिव्रतधर्म पालन करने वाली हूँ। अतः मैं ऐसा कार्य नहीं कर सकती ॥ ४ ॥

कुलं सम्प्राप्तया पुण्यं कुले महति जातया।
एवमुक्त्वा तु वैदेही रावणं तं यशस्विनी ॥ ५ ॥

मैं उच्च कुल में उत्पन्न हो कर पवित्र कुल में ब्याही गई हूँ। अतः मैं ऐसा गर्हित कार्य नहीं कर सकती। उस यशस्विनी ने रावण से इस प्रकार कह, ॥ ५ ॥

राक्षसं पृष्ठतः कृत्वा भूयो वचनमब्रवीत्।
नाहमौपयिकी भार्या परभार्या सती तव ॥ ६ ॥

और उसकी ओर पीठ फेर वह कहने लगी। हे रावण! मैं एक सती स्त्री हूँ, मैं तेरी उपयुक्त भार्या नहीं बन सकती ॥ ६ ॥

साधु धर्ममवेक्षस्व साधु साधुव्रतं चर।
यथा तव तथाऽन्येषां दारा रक्ष्या निशाचर ॥ ७ ॥

तुझे उचित है कि, तू सद्धर्म और सद्व्रत के अनुकूल आचरण करे। जिस प्रकार अपनी स्त्री की रक्षा करनी चाहिए, वैसे ही पराई स्त्री की भी रक्षा करनी उचित है ॥ ७ ॥

आत्मानमुपमां कृत्वा स्वेषु दारेषु रम्यताम् ।
अतुष्टं स्वेषु दारेषु चपलं चलितेन्द्रियम् ॥ ८ ॥

अतः अपने दृष्टान्त को आगे रख, तू अपनी ही स्त्रियों में रमण कर। क्योंकि जो चञ्चल मन कर के और अपनी इन्द्रियों को चलायमान कर, अपनी स्त्रियों के साथ रमण कर, सन्तुष्ट नहीं होता ॥ ८ ॥

नयन्ति निकृतिप्रज्ञं परदाराः पराभवम् ।
इह सन्तो न वा सन्ति सतो वा नानुवर्तसे ॥ ९ ॥

ऐसी खोटी नीति पर चलने वाले मनुष्य को पराई स्त्रियाँ नष्ट कर डालती हैं। क्या यहाँ सज्जनजन नहीं रहते अथवा तू सज्जनों का सहवास ही पसंद नहीं करता ॥ ९ ॥

तथा हि विपरीता ते बुद्धिराचारवर्जिता ।
वचो मिथ्याप्रणीतात्मा पथ्यमुक्तं विचक्षणैः ॥ १० ॥

क्योंकि यदि उनके साथ तेरा संसर्ग हुआ होता, तो तेरी ऐसी सदाचारहीन बुद्धि कभी न होती। या सज्जनों के हितकर वचनों को मिथ्या समझ ॥ १० ॥

राक्षसानामभावाय त्वं वा न प्रतिपद्यसे ।
अकृतात्मानमासाद्य राजानमनये रतम् ॥ ११ ॥

तू कहीं राक्षसों का नाश करने पर तो नहीं तुला हुआ है। हितोपदेश को न सुनने वाले तथा अनीतिरत राजा के होने से ॥ ११ ॥

समृद्धानि विनश्यन्ति राष्ट्राणि नगराणि च ।
तथेय त्वां समासाद्य लङ्का रत्नौघसङ्कुला ॥ १२ ॥

भरेपूरे राज्यों और नगरों का नाश हो जाता है। अतः जान पड़ता है कि, रत्नों से भरी पूरी इस लङ्का का ॥ १२ ॥

अपराधात्तवैकस्य न चिराद्विनशिष्यति ।
स्वकृतैर्हन्यमानस्य रावणादीर्घदर्शिनः ॥ १३ ॥
अभिनन्दति भूतानि विनाशे पापकर्मणः ।
एवं त्वां पापकर्माणं वक्ष्यन्ति निकृता[1] जनाः ॥ १४ ॥

तेरे अकेले के दोष से नाश होने वाला है। हे रावण! दूरदर्शिता के अभाव से किए हुए अपने पापों से जो पापी नष्ट होता है, उसका नाश देख कर प्राणी मात्र प्रसन्न होते हैं। इसी तरह तुझ पापी को मरा देख, वे लोग, जिनको तूने धोखा दिया है, यह कहेंगे ॥ १३ ॥ १४ ॥

दिष्ट्यैतद्व्यसनं प्राप्तो रौद्र इत्येव हर्षिताः ।
शक्या लोभयितुं नाहमैश्वर्येण धनेन वा ॥ १५ ॥

कि, बड़े हर्ष की बात है जो यह दुष्ट रावण ऐसी विपत्ति में पड़ा है। हे रावण तू यदि मुझे अपना ऐश्वर्य या धन का लालच दिखला लुभाना चाहे, तो मैं लालच में फँसने वाली नहीं ॥१५॥

अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा ।
उपधाय भुजं तस्य लोकनाथस्य सत्कृतम् ॥ १६ ॥
कथं नामोपधास्यामि भुजमन्यस्य कस्यचित् ।
अहमौपयिकी[2] भार्या तस्यैव वसुधापतेः ॥ १७ ॥

---

१ निकृताः—त्वया वञ्चिताः। (गो०) २ औपयिकी—उचिता। (गो०)

जिस प्रकार सूर्य की प्रभा सूर्य को छोड़ कर, अन्य किसी की अनुगामिनी नहीं हो सकती, उसी प्रकार मैं भी श्रीरामचन्द्र जी को छोड़ कर और किसी की नहीं हो सकती। उन लोकनाथ श्रीरामचन्द्र जी की भुजा को आदर पूर्वक अपने सिर के नीचे रख, मैं अब क्योंकर किसी अन्य पुरुष की भुजा को तकिया बना सकती हूँ। मैं तो इन्हीं महाराज श्रीरामचन्द्र जी की उपयुक्त भार्या हूँ ॥१६॥१७॥

व्रतस्नातस्य धीरस्य विद्येव विदितात्मनः ।

साधु रावण रामेण मां समानय दुःखिताम् ॥ १८ ॥

जिस प्रकार ब्रह्म-विद्या, व्रत-स्नायी ब्राह्मण ही के योग्य हो सकती है, उसी प्रकार मैं भी इन जगतप्रसिद्ध श्रीरामचन्द्र जी की ही पत्नी हो सकती हूँ। हे रावण! यदि तू अपना भला चाहता हो तो तू मुझ दुखिया को अब श्रीरामचन्द्र जी से मिला दे ॥ १८ ॥

वने वासितया सार्धं करेण्वेव गजाधिपम् ।

मित्रमौपयिकं कर्तुं रामः स्थानं परीप्सता ॥ १९ ॥

वधं चानिच्छता घोरं त्वयाऽसौ पुरुषर्षभः ।

*विदितः स हि †धर्मात्मा शरणागतवत्सलः ॥ २० ॥

क्योंकि जैसे वन में बिछुड़ी हुई हथिनी हाथी को पा कर ही आनन्दित होती है। (वैसे ही मैं श्रीराम को पा कर ही प्रसन्न हो सकती हूँ।) हे रावण! यदि तू लङ्का बचाना चाहता है और यदि तुझे अपना मरना अभीष्ट नहीं है; तो तुझे चाहिए कि, तू श्रीरामचन्द्र जी को अपना मित्र बना ले। देख, श्रीरामचन्द्र जी धर्मात्मा और शरणागतवत्सल के नाम से प्रसिद्ध हैं ॥१९॥२०॥

---

* पाठान्तरे—"विदिता तव धर्मात्मा।" † पाठान्तरे—"धर्मज्ञः।"

तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि ।
प्रसादयस्व त्वं चैनं शरणागतवत्सलम् ॥ २१ ॥

(मैं चाहती हूँ कि,) तेरी उनके साथ मैत्री हो जाय। यदि तुझे अपने प्राण प्यारे हैं, तो उन शरणागतवत्सल श्रीरामचन्द्र जी को तू मना ले ॥ २१ ॥

मां चास्मै प्रयता भूत्वा निर्यातयितुमर्हसि ।
एवं हि ते भवेत्स्वस्ति सम्प्रदाय रघूत्तमे ॥ २२ ॥

और विनयपूर्वक मुझे उनको सौंप दे। श्रीरामचन्द्र जी को मुझे दे देने ही से तेरा कल्याण होगा ॥ २२ ॥

अन्यथा त्वं हि कुर्वाणो वधं प्राप्स्यसि रावण ।
वर्जयेद्वज्रमुत्सृष्टं वर्जयेदन्तकश्चिरम् ॥ २३ ॥

त्वद्विधं तु न संक्रुद्धो लोकनाथः स राघवः ।
रामस्य धनुषः शब्दं श्रोष्यसि त्वं महास्वनम् ॥ २४ ॥

शतक्रतुविसृष्टस्य निर्घोषमशनेरिव ।
इह शीघ्रं सुपर्वाणो ज्वलितास्या इवोरगाः ॥ २५ ॥

यदि तूने ऐसा न किया तो हे रावण ! तू मारा जायगा। क्योंकि तुझ जैसा पापी, इन्द्र के चलाए हुए वज्र से भले ही बच जाय और भले ही मृत्यु भी बहुत काल तक तुझे जीता छोड़ दे, किन्तु लोकनाथ श्रीरामचन्द्र जी तुझे बिना मारे नहीं छोड़ेंगे। हे रावण ! तू शीघ्र ही इन्द्र के वज्र के समान, श्रीरामचन्द्र जी के धनुष की टङ्कार का महाशब्द सुनेगा। बड़े फलवाले, ज्वलितमुख सर्पों की तरह, ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

इषवो निपतिष्यन्ति रामलक्ष्मणलक्षणाः ।
रक्षांसि परिनिघ्नन्तः पुर्यामस्यां समन्ततः ॥ २६ ॥

श्रीराम और लक्ष्मण के नाम से अंकित बाण, इस लङ्कापुरी में चारों ओर गिरेंगे और राक्षसों को मारेंगे ॥ २६ ॥

असम्पातं करिष्यन्ति पतन्तः कङ्कवाससः ।
राक्षसेन्द्रमहासर्पान्स रामगरुडो महान् ॥ २७ ॥

वे कङ्कपत्तों से भूषित बाण जब यहाँ गिरेंगे, तब लङ्का में तिल बराबर भी जगह बाणों से शून्य न रह जायगी । हे रावण ! राक्षस रूपी महासर्पों को श्रीराम रूपी महागरुड़ ॥ २७ ॥

उद्धरिष्यति वेगेन वैनतेय इवोरगान् ।
अपनेष्यति मां भर्ता त्वत्तः शीघ्रमरिन्दमः ॥ २८ ॥

उसी प्रकार वेगपूर्वक नष्ट कर डालेंगे, जैसे गरुड़ सर्पों को । शत्रुओं को दमन करने वाले मेरे पति, अविलंब मुझे तेरे हाथ से वैसे ही छुड़ा ले जांयगे ॥ २८ ॥

असुरेभ्यः श्रियं दीप्तां विष्णुस्त्रिभिरिव क्रमैः ।
जनस्थाने हतस्थाने निहते रक्षसां बले ॥ २९ ॥

जैसे त्रिविक्रम भगवान ने तीन पैर से नाप कर, दैत्यों के हाथ से देवताओं की राजलक्ष्मी को छुड़ाया था, हे रावण ! तेरे उस जनस्थान में, जिसका अब नाम निशान तक नहीं रह गया, जब श्रीराम ने तेरी राक्षसी सेना का नाश किया था ॥ २९ ॥

अशक्तेन त्वया रक्षः कृतमेतदसाधु वै ।
आश्रमं तु तयोः शून्यं प्रविश्य नरसिंहयोः ॥ ३० ॥

गोचरं गतयोर्भ्रात्रोरपनीता त्वयाऽधम ।
न हि गन्धमुपाघ्राय रामलक्ष्मणयोस्त्वया ॥ ३१ ॥
शक्यं सन्दर्शने स्थातुं शुना शार्दूलयोरिव ।
तस्य ते विग्रहे ताभ्यां [1]युगग्रहणमस्थिरम्[2] ॥ ३२ ॥

तब तुझसे कुछ भी करते धरते न बन पड़ा। किन्तु पीछे उन नरसिंहों की अनुपस्थिति में शून्य आश्रम में जा, तू मुझे चुरा लाया। जिस प्रकार कुत्ता, सिंह की गन्ध पाकर, उसके सम्मुख खड़ा नहीं रह सकता; उसी प्रकार तू भी श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण के सामने नहीं ठहर सकता। उनसे युद्ध छिड़ने पर तेरा उनसे जीतना असम्भव है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

वृत्रस्येवेन्द्रबाहुभ्यां बाह्वोरेकस्य निग्रहः ।
क्षिप्रं तव स नाथो मे रामः सौमित्रिणा सह ।
तोयमल्पमिवादित्यः प्राणानादास्यते शरैः ॥ ३३ ॥

जिस तरह एक भुजा वाले वृत्रासुर को जीतने में इन्द्र को कुछ भी कठिनाई नहीं हुई थी; उसी तरह मेरे स्वामी श्रीरामचन्द्र जी, लक्ष्मण सहित, शीघ्र ही अपने बाणों से तेरे प्राणों को वैसे ही हर लेंगे, जैसे सूर्य को थोड़ा सा पानी सोखने में देर नहीं लगती ॥ ३३ ॥

गिरिं कुबेरस्य *गतोऽथ वालयं
सभां गतो वा वरुणस्य राज्ञः ।

---

१ युगग्रहणं—भुजग्रहणं। (गो०) २ अस्थिरं—असंभावितं। (गो०)
२ कुबेरस्यगिरिं—कैलासं। (गो०) * पाठान्तरे—"गतोपधाय वा सभां।"

असंशयं दाशरथेर्न मोक्ष्यसे
महाद्रुमः कालहतोऽशनेरिव ॥ ३४ ॥

इति एकविंशः सर्गः ॥

हे रावण ! चाहे तू कुबेर के पर्वत पर, (यानी कैलास) अथवा उसके घर में अथवा वरुण की सभा ही में क्यों न जा छिपे, तो भी तू अब श्रीरामचन्द्र जी के बाणों से उसी प्रकार नहीं बच सकता ; जिस प्रकार काल को प्राप्त महाद्रुम, इन्द्र के वज्र से नहीं बच सकता ॥ ३४ ॥

सुन्दरकाण्ड का इक्कीसवां सर्ग पूर्ण हुआ ।

—*—

द्वाविंशः सर्गः

—*—

सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं राक्षसाधिपः ।
प्रत्युवाच ततः सीतां विप्रियं प्रियदर्शनाम् ॥ १ ॥

सीता जी के इन कठोर वचनों को सुन, राक्षसराज ने सुन्दरी सीता से उत्तर में ये अप्रिय वचन कहे ॥ १ ॥

यथा यथा सान्त्वयिता वश्यः स्त्रीणां तथा तथा ।
यथा यथा प्रियं वक्ता परिभूतस्तथा तथा ॥ २ ॥

हे सीते ! जैसे जैसे पुरुष स्त्री को समझाता है, वैसे ही वैसे स्त्री उस समझाने वाले पुरुष के वश में हो जाती है । किन्तु मैंने प्रिय वचनों द्वारा जितना तुझे समझाया, तूने उतना ही मेरा तिरस्कार किया ॥ २ ॥

सन्नियच्छति मे क्रोधं त्वयि कामः समुत्थितः।
द्रवतोऽमार्गमासाद्य हयानिव सुसारथिः ॥ ३ ॥

क्या करूँ, मैं तेरे ऊपर आसक्त हूँ, यह आसक्ति ही क्रोध को वैसे ही रोके हुए है, जैसे कुमार्ग की ओर दौड़ते हुए घोड़ों को सारथी रोकता है ॥ ३ ॥

वामः[1] कामो मनुष्याणां यस्मिन्किल निबध्यते।
जने तस्मिंस्त्वनुक्रोशः स्नेहश्च किल जायते ॥ ४ ॥

मनुष्यों के लिए काम सचमुच बड़ा बन्धन है, क्योंकि जिसके प्रति काम उभर आता है, निश्चय ही उसके ऊपर स्नेह और दया उत्पन्न कर देता है ॥ ४ ॥

एतस्मात्कारणान्न त्वां घातयामि वरानने।
वधार्हामवमानार्हां मिथ्याप्रव्रजिते रताम् ॥ ५ ॥

हे वरानने! यही कारण है कि, मैं तेरा घात नहीं करता। नहीं तो तू मार डालने और तिरस्कार करने ही योग्य है। उस तपस्वी राम में तेरी प्रीति निपट झूठी है ॥ ५ ॥

परुषाणीह वाक्यानि यानि यानि ब्रवीषि माम्।
तेषु तेषु वधो युक्तस्तव मैथिलि दारुणः ॥ ६ ॥

तूने मुझसे जो कठोर वचन कहे हैं, उनके लिए तो तुझे मार डालना ही ठीक है ॥ ६ ॥

एवमुक्त्वा तु वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः।
क्रोधसंरम्भसंयुक्तः सीतामुत्तरमब्रवीत् ॥ ७ ॥

सीता से ऐसा कह कर, क्रोधाविष्ट रावण, सीता की बातों का उत्तर देने लगा ॥ ७ ॥

---

[1] वामः—प्रतिकूलः। (गो०)

द्वौ मासौ रक्षितव्यौ मे योऽवधिस्ते मया कृतः।
ततः शयनमारोह मम त्वं वरवर्णिनि ॥ ८ ॥

मैंने जो अवधि निश्चित कर दी है, उसमें दो मास अभी शेष हैं, तब तक तो मुझे तेरी रक्षा करनी ही उचित है। अवधि बीतने पर तुझे मेरी सेज पर आना पड़ेगा ॥ ८ ॥

*द्वाभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्तारं मामनिच्छतीम्।
मम त्वां प्रातराशार्थमालभन्ते महानसे ॥ ९ ॥

यदि दो मास बीतने पर भी तूने मुझे अपना पति न बनाया, तो मेरे पाचक (बावर्ची) मेरे कलेवे के लिए तेरे शरीर के टुकड़े टुकड़े कर डालेंगे ॥ ९ ॥

तां भर्त्स्यमानां संप्रेक्ष्य राक्षसेन्द्रेण जानकीम्।
देवगन्धर्वकन्यास्ता विषेदुर्विकृतेक्षणाः ॥ १० ॥

रावण द्वारा सीता को इस प्रकार धमकाई जाती देख, वे सब देव और गन्धर्व कन्याएँ, जो रावण के साथ आई थीं, सीता को कनखियों से देख देख, बहुत दुःखी हुईं ॥ १० ॥

ओष्ठप्रकारैरपरा †वक्त्रैर्नेत्रैस्तथाऽपराः।
सीतामाश्वासयामासुस्तर्जितां तेन रक्षसा ॥ ११ ॥

और कोई अधर, कोई नेत्र और कोई मुख चला कर, रावण से पीड़ित जानकी को धीरज बँधाने लगीं ॥ ११ ॥

ताभिराश्वासिता सीता रावणं राक्षसाधिपम्।
उवाचात्महितं वाक्यं [1]वृत्तशौण्डीर्यगर्वितम् ॥ १२ ॥

---

१ वृत्तं—पातिव्रत्यं, सदाचारः शौण्डीर्यं-बलं। (गो०) *पाठान्तरे—"ऊर्ध्वं द्वाभ्यां।" † पाठान्तरे—"वक्त्रनेत्रैः।"

उनसे आश्वासित सीता, अपने पातिव्रतबल से बलान्वित हो, अपने हित की बात रावण से कहने लगी ॥ १२ ॥

नूनं न ते जनः कश्चिदस्ति निःश्रेयसे स्थितः ।
निवारयति यो न त्वां कर्मणोऽस्माद्विगर्हितात् ॥ १३ ॥

हे रावण ! मुझे विश्वास हो गया कि, इस लङ्कापुरी में तेरा हितैषी कोई नहीं है, जो तुझे इस गर्हित कर्म करने से रोके ॥१३॥

मां हि धर्मात्मनः पत्नीं शचीमिव शचीपतेः ।
त्वदन्यस्त्रिषु लोकेषु प्रार्थयेन्मनसाऽपि कः ॥ १४ ॥

क्योंकि तीनों लोकों में तेरे सिवाय दूसरा कोई भी ऐसा पुरुष न होगा, जो इन्द्र की पत्नी शची की तरह धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी की पत्नी मुझको चाहने की मन में कल्पना भी कर सके ॥ १४ ॥

राक्षसाधम रामस्य भार्याममिततेजसः ।
उक्तवानसि *यत्पापं क्व गतस्तस्य मोक्ष्यसे ॥ १५ ॥

हे राक्षसाधम ! अमित तेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी की भार्या से तूने जैसी बुरी बातें कहीं हैं, सो तू अब कहाँ जा कर, श्रीरामचन्द्र जी के बाणों से अपनी रक्षा कर सकेगा ॥ १५ ॥

यथा दृप्तश्च मातङ्गः शशश्च सहितो वने ।
तथा द्विरदवद्रामस्त्वं नीच शशवत्स्मृतः ॥ १६ ॥

यद्यपि दर्पित हाथी और खरगोश वन में एक साथ ही रहते हैं तथापि जैसे वे बराबर नहीं हो सकते वैसे ही श्रीरामचन्द्र जी हाथी के समान हैं और तू क्षुद्र खरगोश की तरह है ॥ १६ ॥

* पाठान्तरे—" यच्छापं । "

स त्वमिक्ष्वाकुनाथं वै क्षिपन्निह न पा था, गलें में रंग
चक्षुषोर्विषयं तस्य न तावदुपगच्छसि ।। में लाल चन्दन
ने और सोने

इक्ष्वाकुनाथ श्रीरामचन्द्र जी की निन्दा करते तुझे ल
आती। जब तक तू उनके सामने नहीं पड़ता, तब तक तू
ही तर्जन जो चाहे सो कहले ॥ १७ ॥

इमे ते नयने क्रूरे विरूपे कृष्णपिङ्गले ।
क्षितौ न पतिते कस्मान्मामनार्य निरीक्षतः ॥ १८ ॥

अरे तेरी ये क्रूर और टेढ़ीमेंढ़ी काली पीली आँखें, जिनसे तूने मुझे बुरी निगाह से देखा है, क्यों निकल कर पृथिवी पर नहीं गिर पड़तीं ॥ १८ ॥

तस्य धर्मात्मनः पत्नीं स्नुषां दशरथस्य च ।
कथं व्याहरतो मां ते *जिह्वा पाप न शीर्यते ॥ १९ ॥

उन धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी की पत्नी और महाराज दशरथ की वधू से तूने जिस जीभ से ऐसी बुरी बातें कही हैं वह जीभ तेरी क्यों गल कर नहीं गिर पड़ती ॥ १९ ॥

असंदेशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात् ।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा ॥ २० ॥

हे रावण! मैं चाहूँ तो तुझको अपने पातिव्रत धर्म के प्रभाव से अभी जला कर भस्म कर डालूँ, परन्तु इसके लिए मुझे श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा नहीं है और मैं पातिव्रतधर्म पालन में तत्पर हूँ ॥ २० ॥

---

* पाठान्तरे—" न जिह्वा व्यवशीर्यते । "

उनसे आश्वासितव्या तस्य राघवस्य धीमतः ।
हो, अपने हित के विधानार्थाय विहितो नात्र संशयः ॥ २१ ॥

न... शक्ति (मजाल) न थी कि, उन श्रीमान् रामचन्द्र रहते, तू मुझे हर लाता । निश्चय जान ले कि, तेरे द्वारा हरे जाने का विधान विधाता ने तेरे नाश के लिए ही रचा है ॥ २१ ॥

शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च ।
अपोह्य राम कस्माद्धि दारचौर्यं त्वया कृतम् ॥ २२ ॥

तू तो अपने को बड़ा शूरवीर लगाता है, कुबेर का भाई बनता है और सब से बढ़ कर अपने को बलवान् समझ रहा है । फिर श्रीरामचन्द्र जी को धोखा दे, तूने उनकी स्त्री को क्यों चुराया ? ॥ २२ ॥

सीताया वचनं श्रुत्वा रावणो राक्षसाधिपः ।
विवृत्य नयने क्रूरे जानकीमन्ववैक्षत ॥ २३ ॥

राक्षसराज रावण सीता के ऐसे वचन सुन और त्योरी बदल कर, क्रूर कटाक्ष से सीता को घूरने लगा ॥ २३ ॥

नीलजीमूतसङ्काशो महाभुजशिरोधरः ।
सिंहसत्त्वगतिः श्रीमान्दीप्तजिह्वोग्रलोचनः ॥ २४ ॥

उस समय रावण नीलवर्ण वाले बादल की तरह जान पड़ता था । उसकी भुजाएँ बड़ी बड़ी थीं और गर्दन लंबी थी । वह बलवान् सिंह के समान अकड़ कर चला करता था । उसकी जीभ और आँखें बड़ी चमकीली थीं ॥ २४ ॥

चलाग्रमुकुटप्रांशुश्चित्रमाल्यानुलेपनः ।
रक्तमाल्याम्बरधरस्तप्ताङ्गदविभूषणः ॥ २५ ॥

उसके सिर का मुकुट कुछ खसका हुआ था, गले में रंग बिरंगे फूलों की माला पहिने हुए था और अंगों में लाल चन्दन लगाए हुए था। वह लाल ही मालाएँ, लाल ही कपड़े और सोने के बाजूबंद भुजाओं में पहिने हुए था॥ २५ ॥

श्रोणीसूत्रेण महता मेचकेन सुसंवृतः।
अमृतोत्पादनद्धेन भुजगेनेव मन्दरः॥ २६॥

उसकी कमर में काले रंग का कटिसूत्र लपटा हुआ था; जो समुद्रमथन के समय मेरुपर्वत से लपटे हुए काले सर्प की तरह जान पड़ता था॥ २६॥

*द्वाभ्यां स परिपूर्णाभ्यां भुजाभ्यां राक्षसेश्वरः।
शुशुभेऽचलसङ्काशः शृङ्गाभ्यामिव मन्दरः॥ २७॥

पर्वत की तरह लंबे डीलडौल के राक्षसराज रावण की दोनों भुजाएँ, दो शिखरों से शोभित मंदराचल की तरह जान पड़ती थीं॥ २७॥

तरुणादित्यवर्णाभ्यां कुण्डलाभ्यां विभूषितः।
रक्तपल्लवपुष्पाभ्यामशोकाभ्यामिवाचलः॥ २८॥

मध्याह्न कालीन सूर्य की तरह चमकीले कुण्डलों से वह विभूषित था—मानों एक पर्वत लाल पत्रों और लाल पुष्पों से युक्त अशोक वृक्षों से शोभायमान हो रहा हो॥ २८॥

स कल्पवृक्षप्रतिमो वसन्त इव मूर्तिमान्।
श्मशानचैत्यप्रतिमो भूषितोऽपि भयङ्करः॥ २९॥

---

* पाठान्तरे—"ताभ्यां।"

यद्यपि रावण कल्पवृक्ष की तरह और मूर्तिमान वसंत की तरह सुशोभित हो रहा था, तथापि वह श्मशान घाट के चैत्य वृक्ष की तरह भयङ्कर ही जान पड़ता था ॥ २९ ॥

अवेक्षमाणो वैदेहीं कोपसंरक्तलोचनः ।
उवाच रावणः सीतां भुजङ्ग इव निःश्वसन् ॥ ३० ॥

वह क्रोध के मारे लाल लाल नेत्रों से सीता को देखता हुआ और सर्प की तरह फुंफकारता हुआ, बोला ॥ ३० ॥

अनयेनाभिसम्पन्नमर्थहीनमनुव्रते ।
नाशयाम्यहमद्य त्वां सूर्यः सन्ध्यामिवौजसा ॥ ३१ ॥

नीति और अर्थ से शून्य श्रीरामचन्द्र को मानने वाली, तुझे मैं अभी उसी प्रकार समाप्त किए देता हूँ; जैसे सूर्य सन्ध्याकालीन अन्धकार का नाश करते हैं ॥ ३१ ॥

इत्युक्त्वा मैथिलीं राजा रावणः शत्रुरावणः ।
सन्दिदेश ततः सर्वा राक्षसीर्घोरदर्शनाः ॥ ३२ ॥

शत्रुओं को रुलाने वाले रावण ने सीता से इस प्रकार कह, उन भयङ्कर समस्त राक्षसियों को आज्ञा दी ॥ ३२ ॥

[1]एकाक्षीमेककर्णां च कर्णप्रावरणां तथा ।
गोकर्णीं हस्तिकर्णीं च लम्बकर्णीमकर्णिकाम् ॥ ३३ ॥

उस समय वहाँ उपस्थित उन राक्षसियों में कोई एक आँख की, कोई एक कान की, कोई बड़े बड़े कानों की, कोई गौ जैसे कानों की, कोई हाथी जैसे कानों की, कोई बड़े लंबे लंबे कानों वाली और कोई बूची थी ॥ ३३ ॥

हस्तिपादयश्वपादौ च गोपादीं पादचूलिकाम् ।
एकाक्षीमेकपादीं च पृथुपादीमपादिकाम् ॥ ३४ ॥

कोई हाथी, कोई घोड़ा, कोई बैल जैसे पैरों वाली और कोई पावों में बड़े बड़े केशों वाली थी। कोई एक बड़ी और एक छोटी आँखों वाली, कोई एक बड़े और एक छोटे पैरों वाली, कोई मोटे पैरों वाली, कोई बिना पैर की थी ॥ ३४ ॥

अतिमात्रशिरोग्रीवामतिमात्रकुचोदरीम् ।
अतिमात्रास्यनेत्रां च दीर्घजिह्वामजिह्विकाम् ॥ ३५ ॥

किसी की गरदन और सिर, किसी के स्तन और उदर बहुत बड़े थे। किसी की आँखें बहुत बड़ी थीं और किसी की जीभ बड़ी लंबी थी और किसी के जीभ थी ही नहीं ॥ ३५ ॥

अनासिकां सिंहमुखीं गोमुखीं सूकरीमुखीम् ।
यथा मद्वशगा सीता क्षिप्रं भवति जानकी ॥ ३६ ॥

कोई नासिकारहित, कोई सिंहमुखी, कोई गोमुखी, और कोई शूकरीमुखी थी। इन सब को सम्बोधन कर, रावण बोला कि, जिस तरह यह जानकी सीता शीघ्र मेरे वश में हो ॥ ३६ ॥

तथा कुरुत राक्षस्यः सर्वाः क्षिप्रं समेत्य च ।
[1]प्रतिलोमानुलोमैश्च सामदानादिभेदनैः ॥ ३७ ॥

उस तरह तुम सब मिल कर शीघ्र प्रयत्न करो। साम, दान, भेदादि से अनुकूल प्रतिकूल (उल्टी सीधी बातें कह कर) उपायों से ॥ ३७ ॥

आवर्जयत वैदेहीं दण्डस्योद्यमनेन च ।
इति प्रतिसमादिश्य राक्षसेन्द्रः पुनः पुनः ॥ ३८ ॥

---

१ प्रतिलोमानुलोमैश्च—प्रतिकूलानुकूलाचरणैः । (गो०)

अथवा डरा धमका कर जैसे हो सके वैसे, ही तुम सीता को मेरे काबू में कर दो। इस प्रकार रावण उन राक्षसियों को बार बार आज्ञा दे ॥ ३८ ॥

कामममन्युपरीतात्मा जानकीं पर्यतर्जयत् ।
उपगम्य ततः क्षिप्रं राक्षसी धान्यमालिनी ॥ ३९ ॥

जब काम से पीड़ित रावण सीता को घुड़कने लगा, तब तुरन्त धान्यमालिनी राक्षसी रावण के पास जा ॥ ३९ ॥

परिष्वज्य दशग्रीवमिदं वचनमब्रवीत् ।
मया क्रीड महाराज सीतया किं तवानया ॥ ४० ॥

और रावण से लिपट उससे कहने लगी! हे महाराज! आप मेरे साथ विहार कीजिये। यह सीता आपके किस काम की है ॥ ४० ॥

विवर्णया कृपणया मानुष्या राक्षसेश्वर ।
नूनमस्यां महाराज न दिव्यान्भोगसत्तमान् ॥ ४१ ॥
विदधात्यमरश्रेष्ठस्तव बाहुबलार्जितान् ।
अकामां कामयानस्य शरीरमुपतप्यते ॥ ४२ ॥

क्योंकि हे रावण! यह सीता तो बुरे रंग की, दुखिया और मानुषी है। निश्चय ही इसके भाग्य में विधाता ने आपके बाहुबल से उपार्जित दुर्लभ भोगों को भोगना लिखा ही नहीं। फिर जो स्त्री अपने को नहीं चाहती; उसकी चाह करने वाले पुरुष का शरीर सदा सन्तप्त रहता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

इच्छन्तीं कामयानस्य प्रीतिर्भवति शोभना ।
एवमुक्तस्तु राक्षस्या समुत्क्षिप्तस्ततो बली ॥ ४३ ॥

और जो स्त्री अपने को चाहती है, उसकी चाह ही से, चाहने का सुख प्राप्त होता है। यह कह वह राक्षसी बलवान रावण को वहाँ से हटा कर ले गई ॥ ४३ ॥

प्रहसन्मेघसङ्काशो राक्षसः स न्यवर्तत।

प्रस्थितः स दशग्रीवः कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥

ज्वलद्भास्करवर्णाभं प्रविवेश निवेशनम् ॥ ४४ ॥

मेघ के समान लंबा चौड़ा वह राक्षस रावण, मुसक्याता हुआ वहां से फिरा। पृथिवी को मानों कंपायमान करता हुआ रावण, चमचमाते सूर्य की तरह अपने घर में चला गया ॥ ४४ ॥

देवगन्धर्वकन्याश्च नागकन्याश्च सर्वतः।

परिवार्य दशग्रीवं विविशुस्तद्गृहोत्तमम् ॥ ४५ ॥

उस समय देव गन्धर्व और नागकन्याएँ भी, उस के साथ ही उस श्रेष्ठभवन में चली गईं ॥ ४५ ॥

स मैथिलीं धर्मपरामवस्थितां
प्रवेपमानां परिभर्त्स्य रावणः।
विहाय सीतां मदनेन मोहितः
स्वमेव वेश्म *प्रविवेश भास्वरम् ॥४६॥

इति द्वाविंशः सर्गः ॥

कामासक्त रावण, पातिव्रत धर्मपालन में तत्पर और डर से थरथराती हुई जानकी को डांट डपट कर और उसको त्याग कर स्वयं अपने घर में चला गया ॥ ४६ ॥

सुन्दरकाण्ड का बाइसवां सर्ग पूरा हुआ।

---

* पाठान्तरे—"प्रतिपद्यवीर्यवान्।"; "प्रविवेशवीर्यवान्।" "प्रविवेशरावणः।"

त्रयोविंशः सर्गः



इत्युक्त्वा मैथिलीं राजा रावणः शत्रुरावणः ।
सन्दिश्य च ततः सर्वा राक्षसीर्निर्जगाम ह ॥ १ ॥

सीता जी को इस प्रकार डरा धमका कर, शत्रुओं को रुलाने वाला राक्षसराज रावण, उन सब राक्षसियों को सीता को शीघ्र वश में करने की आज्ञा दे, अशोकवाटिका से निकल कर, चला आया ॥ १ ॥

निष्क्रान्ते राक्षसेन्द्रे तु पुनरन्तःपुरं गते ।
राक्षस्यो भीमारूपास्ताः सीतां समभिदुद्रुवुः ॥ २ ॥

जब राक्षसेन्द्र वहाँ से, निकल कर अपने अन्तःपुर में पहुँच गया, तब वे भयङ्कर रूपधारिणी राक्षसियाँ सीता की ओर लपकीं ॥ २ ॥

ततः सीतामुपागम्य राक्षस्यः क्रोधमूर्छिताः ।
परं *परुषया वाचा वैदेहीमिदमब्रुवन् ॥ ३ ॥

और सीता के निकट पहुँच क्रुद्ध हो उनसे बड़े कठोर यह वचन बोलीं ॥ ३ ॥

पौलस्त्यस्य वरिष्ठस्य रावणस्य महात्मनः ।
दशग्रीवस्य भार्यात्वं सीते न बहु मन्यसे ॥ ४ ॥

हे सीते ! श्रेष्ठ पुलस्त्य ऋषि के पुत्र महाबली दशग्रीव रावण की पत्नी बनना क्या तू बड़ी बात नहीं समझती ॥ ४ ॥

---

* पाठान्तरे—"परुषं परुषा वाचो ।

देख, बड़े पराक्रमी, शूर तथा युद्धक्षेत्र में कभी शत्रु को पीठ न दिखलाने वाले ॥ १२ ॥

बलिनो वीर्ययुक्तस्य भार्यात्वं किं न *लिप्ससे ।
प्रियां बहुमतां भार्यां त्यक्त्वा राजा महाबलः ॥ १३ ॥

बलवान और पराक्रम युक्त रावण की भार्या बनना क्या तू पसंद नहीं करती? देख, वह महाबली राक्षसराज, अपनी प्यारी और कृपापात्र ॥ १३ ॥

सर्वासां च महाभागां त्वामुपैष्यति रावणः ।
समृद्धं स्त्रीसहस्रेण नानारत्नोपशोभितम् ॥ १४ ॥

और सब स्त्रियों से बढ़ कर भाग्यवती मन्दोदरी को भी त्याग कर, तेरे ही साथ रहा करेगा। फिर हज़ारों औरतों से भरे पूरे और नाना रत्नों से शोभित ॥ १४ ॥

अन्तःपुरं समुत्सृज्य त्वामुपैष्यति रावणः ।
अन्या तु विकटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ॥ १५ ॥

अपने अन्तःपुर को त्याग, रावण तेरे वश हो जायगा। तदनन्तर एक दूसरी राक्षसी जिसका नाम विकटा था, कहने लगी ॥ १५ ॥

असकृद्देवता युद्धे नागगन्धर्वदानवाः ।
निर्जिताः समरे येन स ते पार्श्वमुपागतः ॥ १६ ॥

जिस रावण ने अनेक बार देवताओं, नागों, गन्धर्वों और दानवों को युद्ध में परास्त किया, वह तेरे पास आया था ॥ १६ ॥

तस्य सर्वसमृद्धस्य रावणस्य महात्मनः ।
किमद्य राक्षसेन्द्रस्य भार्यात्वं नेच्छसेऽधमे ॥ १७ ॥

---

* पाठान्तरे—“ लप्स्यसे ।”

हे अधमे ! ऐसे सब प्रकार से समृद्धशाली महाबली राक्षस-राज रावण की पत्नी अब तू क्यों बनना नहीं चाहती ? ॥ १७ ॥

ततस्तु दुर्मुखी नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
यस्य सूर्यो न तपति भीतो यस्य च मारुतः ॥ १८ ॥
न वाति चासितापाङ्गे किं त्वं तस्य न तिष्ठसि ।
पुष्पवृष्टिं च तरवो मुमुचुर्यस्य वै भयात् ॥ १९ ॥

तदनन्तर दुर्मुखी नाम की राक्षसी कहने लगी । जिसके डर से न तो सूर्य (अधिक) तपता और न वायु ही (बहुत तेज़ी के साथ) बहता है, उसके वश में तू क्यों नहीं हो जाती ? जिसके भय से पेड़ फूलों की वृष्टि किया करते हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥

शैलाश्च सुभ्रूः पानीयं जलदाश्च यदेच्छति ।
तस्य नैऋतराजस्य राजराजस्य भामिनी ।
किं त्वं न कुरुषे बुद्धिं भार्यार्थे रावणस्य हि ॥ २० ॥

और पर्वत पानी बहाया करते हैं और जब रावण चाहता है ; तब मेघ पानी बरसाया करते हैं ; उस राक्षसराज रावण की पत्नी बनना तू क्यों पसंद नहीं करती ? ॥ २० ॥

साधु ते तत्वतो देवि कथितं साधु भामिनि ।
गृहाण सुस्मिते वाक्यमन्यथा न भविष्यसि ॥ २१ ॥

इति त्रयोविंशः सर्गः ॥

हे भामिनी ! हे मन्द मुसक्याने वाली ! मैंने तो तुझसे जो ठीक बात थी वही कही है । तू इसे मान ले तो अच्छी बात है, नहीं तो तेरे लिए अच्छा न होगा ॥ २१ ॥

सुन्दरकाण्ड का तेइसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—❀—

चतुर्विंशः सर्गः

—*—

ततः सीताः* समस्तास्ता राक्षस्यो विकृताननाः ।
परुषं परुषा नार्य ऊचुस्तां वाक्यमप्रियम् ॥ १ ॥

तदनन्तर वे विकराल आकृति वाली राक्षसियाँ मिल कर सीता से कठोर वचन कहने लगीं ॥ १ ॥

किं त्वमन्तःपुरे सीते सर्वभूतमनोहरे ।
महार्हशयनोपेते न वासमनुमन्यसे ॥ २ ॥

हे सीते ! क्या तू प्राणिमात्र का मन मोहने वाले और उत्तमोत्तम सेजों से युक्त (रावण के) रनवास में रहना पसंद नहीं करती ! ॥ २ ॥

मानुषी मानुषस्यैव भार्यात्वं बहु मन्यसे ।
प्रत्याहर मनो रामान्न त्वं जातु भविष्यसि ॥ ३ ॥

हे मानुषी ! मनुष्य की पत्नी होना तो तू बड़ी बात समझती है ; पर अब तू श्रीरामचन्द्र की ओर से अपना मन हटा ले, क्योंकि अब तू श्रीरामचन्द्र से कदापि न मिल सकेगी ॥ ३ ॥

त्रैलोक्यवसुभोक्तारं रावणं राक्षसेश्वरम् ।
भर्तारमुपसंगम्य विहरस्व यथासुखम् ॥ ४ ॥

त्रैलोक्य की समृद्धि को भोगने वाले राक्षसराज रावण को अपना पति बना, तू मनमानी मौज उड़ा ॥ ४ ॥

मानुषी मानुषं तं तु राममिच्छसि शोभने ।
राज्याद्भ्रष्टमसिद्धार्थं विक्लवं त्वमनिन्दिते ॥ ५ ॥

---

* पाठान्तरे—" उपागम्य " वा " सीतांसमस्तास्ताः । "

हे अनिन्दिते ! हे सुन्दरी ! तू मानुषी है, इसीसे तू उस राज्य-भ्रष्ट, असफल-मनोरथ और कादर राम को चाहती है ॥ ५ ॥

राक्षसीनां वचः श्रुत्वा सीता पद्मनिभेक्षणा ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥

राक्षसियों के वचन सुन कर, कमलनयनी सीता नेत्रों में आँसू भर, यह कहने लगी ॥ ६ ॥

यदिदं लोकविद्विष्टमुदाहरथ सङ्गताः ।
नैतन्मनसि वाक्यं मे किल्बिषं प्रतिभाति वः ॥ ७ ॥

तुम सब मिल कर मुझे जो पाठ पढ़ा रही हो, वह लोकगर्हित है। तुम्हारी ये पापपूर्ण बातें मेरे कण्ठ में नहीं उतरतीं ॥ ७ ॥

न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति ।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः ॥ ८ ॥

मैं मानुषी हो कर कभी राक्षस की पत्नी नहीं बन सकती। तुम सब भले ही मुझे मार कर खा डालो, किन्तु मैं तुम्हारा कहना नहीं मान सकती ॥ ८ ॥

दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः ।
तं नित्यमनुरक्तास्मि यथा सूर्यं सुवर्चला ॥ ९ ॥

भले ही मेरे स्वामी दीन दुःखिया हों और राज्यभ्रष्ट ही क्यों न हों, किन्तु मेरे लिए तो वे ही मेरे पूज्य हैं। मैं उनमें सदा वैसी ही प्रीति रखती हूँ, जैसी सुवर्चला सूर्य में, ॥ ९ ॥

यथा शची महाभागा शक्रं समुपतिष्ठति ।
अरुन्धती वसिष्ठं च रोहिणी शशिनं यथा ॥ १० ॥

महाभागा शची इन्द्र में, अरुन्धती वसिष्ठ में, रोहिणी चन्द्र में ॥ १० ॥

लोपामुद्रा यथाऽगस्त्यं सुकन्या च्यवनं यथा ।
सावित्री सत्यवन्तं च कपिलं श्रीमती यथा ॥ ११ ॥

लोपामुद्रा अगस्त्य में, सुकन्या च्यवन में, सावित्री सत्यवान् में, श्रीमती कपिल में, ॥ ११ ॥

सौदासं मदयन्तीव केशिनी सगरं यथा ।
नैषधं दमयन्तीव भैमी पतिमनुव्रता ॥ १२ ॥

मदयन्ती सौदास में, केशिनी सगर में और भीमकुमारी दमयन्ती नल में, ॥ १२ ॥

तथाऽहमिक्ष्वाकुवरं रामं पतिमनुव्रता ।
सीताया वचनं श्रुत्वा राक्षस्यः क्रोधमूर्छिताः ॥ १३ ॥

इन सब की तरह मैं इक्ष्वाकुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र जी को अपना पति समझ उनकी अनुयायिनी हूँ। सीता जी के ये वचन सुन कर, वे सब राक्षसियाँ बहुत क्रुद्ध हुईं ॥ १३ ॥

भर्त्सयन्ति स्म परुषैर्वाक्यै रावणचोदिताः
अवलीनः स निर्वाक्यो हनुमाञ्शिंशपाद्रुमे ॥ १४ ॥

सीतां सन्तर्जयन्तीस्ता राक्षसीरशृणोत्कपिः ।
तामभिक्रम्य सङ्क्रुद्धा वेपमानां समन्ततः ॥ १५ ॥

रावण से आदिष्ट वे राक्षसियाँ सीता जी को बुरे बुरे शब्द कह, डाँटने डपटने लगीं। उधर हनुमान जी, उस शिंशपा वृक्ष पर छिपे छिपे, चुपचाप सीता को डपटती हुईं उन

सब राक्षसियों की बातें सुन रहे थे। वे सब सीता को डरातीं धमकातीं हुईं उनसे चारों ओर से घेर कर, ॥ १४ ॥ १५ ॥

भृशं संलिलिहुर्दीप्तान्प्रलम्बान्दशनच्छदान्।
ऊचुश्च परमक्रुद्धाः प्रगृह्याशु परश्वधान् ॥ १६ ॥

बार बार अपने लंबे लंबे होंठ जीभ से चाटने लगीं और अत्यन्त क्रुद्ध हो तथा हाथों में फरसों को ले कर, बोलीं ॥ १६ ॥

नेयमर्हति भर्तारं रावणं राक्षसाधिपम्।
संभर्त्स्यमाना भीमाभी राक्षसीभिर्वरानना ॥ १७ ॥

तू इस राक्षसराज रावण को अपने योग्य पति नहीं समझती! (तो क्या तू अपने को हम लोगों के द्वारा खाने योग्य समझती है।) उन भयङ्कर आकृति वाली राक्षसियों द्वारा इस प्रकार डराई धमकाई गई सुन्दरमुखी सीता, ॥ १७ ॥

स बाष्पमपमार्जन्ती शिंशपां तामुपागमत्।
ततस्तां शिंशपां सीता राक्षसीभिः समावृता ॥ १८ ॥

आंखों से आंसू पोंछती हुई उस शीशम के पेड़ के निकट चली गई। वहाँ भी उन राक्षसियों ने सीता का पिंड न छोड़ा और उन लोगों ने वहाँ भी सीता को घेर लिया ॥ १८ ॥

अभिगम्य विशालाक्षी तस्थौ शोकपरिप्लुता।
तां कृशां दीनवदनां *मलिनाम्बरवासिनीम् ॥ १९ ॥

वे राक्षसी उस मलिनवस्त्रधारिणी दुबली, दीना, शोकसागर में निमग्ना, विशालाक्षी सीता के निकट जा कर, ॥ १९ ॥

---

* पाठान्तरे—"मलिनाम्बरधारिणीम्।"

भर्त्सयांचक्रिरे सीतां राक्षस्यस्तां समन्ततः ।
ततस्तां विनता नाम राक्षसी भीमदर्शना ॥ २० ॥

चारों ओर से घेर कर सीता को धमकाने लगीं। उनमें भयानक आकृति वाली विनता नाम की एक राक्षसी थी ॥ २० ॥

अब्रवीत्कुपिताकारा कराला निर्णतोदरी[1] ।
सीते पर्याप्तमेतावद्भर्तुः स्नेहो निदर्शितः ॥ २१ ॥

वह करालवदना और बड़े पेट वाली राक्षसी, अत्यन्त क्रुद्ध हो कहने लगी—हे सीते! बस बहुत हुआ। तूने अब तक अपने पति के प्रति जितना प्रेम दिखलाया, वह पर्याप्त है ॥ २१ ॥

सर्वत्रातिकृतं भद्रे व्यसनायोपकल्पते ।
परितुष्टास्मि भद्रं ते मानुषस्ते कृतो विधिः ॥ २२ ॥

हे भद्रे! अति किसी बात की अच्छी नहीं होती। क्योंकि, अति का परिणाम दुःखदाई होता है। भगवान तेरा भला करे। मैं तो तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ। क्योंकि, मनुष्य का कर्त्तव्य तूने यथाविधि निभाया है ॥ २२ ॥

ममापि तु वचः पथ्यं ब्रुवन्त्याः कुरु मैथिलि ।
रावणं भज भर्तारं भर्तारं सर्वरक्षसाम् ॥ २३ ॥

अब मैं भी तुझसे जो तेरे हित की बात कहती हूँ, उसे हे मैथिली! तू कर। (वह यह है कि,) तू सब राक्षसों के स्वामी रावण को अपना स्वामी (पति) बना ले ॥ २३ ॥

विक्रान्तं रूपवन्तं च सुरेशमिव वासवम् ।
दक्षिणं त्यागशीलं च सर्वस्य प्रियदर्शनम् ॥ २४ ॥

---

१ निर्णतोदरी उन्नतोदरी। (गो०)

वह बड़ा पराक्रमी, रूपवान् और इन्द्र की तरह चतुर, उदार, और सब के लिए प्रियदर्शी है ॥ २४ ॥

मानुषं कृपणं रामं त्यक्त्वा रावणमाश्रय ।
दिव्याङ्गरागा वैदेहि दिव्याभरणभूषिता ॥ २५ ॥

तू मनुष्य और दीनदुखिया श्रीरामचन्द्र को त्याग कर, रावण का पल्ला पकड़। आज से बढ़िया बढ़िया उबटन लगा और बढ़िया बढ़िया आभूषणों को पहिन कर, अपना शृङ्गार कर ॥ २५ ॥

अद्यप्रभृति सर्वेषां लोकानामीश्वरी भव ।
अग्नेः स्वाहा यथा देवी शचीवेन्द्रस्य शोभने ॥२६॥

और आज ही से प्राणिमात्र को तू स्वामिनी बन जा। जिस प्रकार अग्नि की भार्या स्वाहा और इन्द्र की शची है; उसी प्रकार हे सुन्दरी! तू रावण की पत्नी बन कर शोभा को प्राप्त हो ॥ २६ ॥

किं ते रावण वैदेहि कृपणेन गतायुषा ।
एतदुक्तं च मे वाक्यं यदि त्वं न करिष्यसि ॥ २७ ॥

अरी सीता! तू उस दुखिया और गतायु श्रीरामचन्द्र को लेकर क्या करेगी? मैंने तुझसे जो बातें कहीं हैं, यदि तू उनको न मानेगी ॥ २७ ॥

अस्मिन्मुहूर्ते सर्वास्त्वां भक्षयिष्यामहे वयम् ।
अन्या तु विकटा नाम लम्बमानपयोधरा ॥ २८ ॥

तो हम सब मिल कर अभी तुझको मार कर खा डालेंगी। तदनन्तर लंबे लंबे स्तनों वाली, विकटा नाम की एक और राक्षसी ॥ २८ ॥

अब्रवीत्कुपिता सीतां मुष्टिमुद्यम्य गर्जती ।
बहून्यप्रियरूपाणि वचनानि सुदुर्मते ॥ २९ ॥

अनुक्रोशान्मृदुत्वाच्च सोढानि तव मैथिलि ।
न च नः कुरुषे वाक्यं हितं कालपुरःसरम् ॥ ३० ॥

क्रोध में भर और घूंसा तान कर सीता से बोली—हे सुदुर्मते! तेरे बहुत से अप्रिय वचन हम लोगों ने दया और नम्रता वश सहे; किन्तु अब यदि तू हमारे समयानुकूल और हितकारी वचनों को न मानेगी; तो अब तेरे लिए अच्छा न होगा ॥ २९ ॥ ३० ॥

आनीतासि समुद्रस्य पारमन्यैर्दुरासदम् ।
रावणान्तःपुरं घोरं प्रविष्टा चासि मैथिलि ॥ ३१ ॥

हे सीते! तू समुद्र के पार लाई गई है, जहाँ और कोई नहीं आ सकता। और रावण के दुर्गम अन्तःपुर में तूने केवल प्रवेश ही नहीं किया है ॥ ३१ ॥

रावणस्य गृहे रुद्धामस्माभिस्तु सुरक्षिताम् ।
न त्वां शक्तः परित्रातुमपि साक्षात्पुरन्दरः ॥ ३२ ॥

बल्कि तू रावण के घर में नजरबन्द है और हम लोग तेरी रखवाली पर नियत हैं। श्रीरामचन्द्र की तो हकीकत ही क्या है, यदि इन्द्र भी तुझे बचाना चाहे, तो वह नहीं बचा सकता ॥ ३२ ॥

कुरुष्व हितवादिन्या वचनं मम मैथिलि ।
अलमश्रुप्रपातेन त्यज शोकमनर्थकम् ॥ ३३ ॥

अतएव हे मैथिली ! हम जो तुझसे तेरे हित के लिए कहती हैं, उसे तू मान ले। अब रोना बन्द कर और इस व्यर्थ के शोक को छोड़ ॥ ३३ ॥

भज प्रीतिं प्रहर्षं च त्यजैतां नित्यदैन्यताम् ।
सीते राक्षसराजेन सह क्रीड यथासुखम् ॥३४॥

रावण से प्रेम कर और मौज उड़ा। इस रात दिन की उदासी को दूर भगा दे और हे सीता ! तू राक्षसराज रावण के साथ मज़े में विहार कर ॥ ३४ ॥

जानासि हि यथा भीरु स्त्रीणां यौवनमध्रुवम् ।
यावन्न ते व्यतिक्रामेत्तावत्सुखमवाप्नुहि ॥३५॥

हे भीरु ! तुझको यह मालूम ही है कि, स्त्रियों की जवानी, का कुछ ठीक ठिकाना नहीं। सो जब तक तेरी जवानी नहीं ढलती, तब तक तू भी मौज कर ॥ ३५ ॥

उद्यानानि च रम्याणि पर्वतोपवनानि च ।
सह राक्षसराजेन चर त्वं मदिरेक्षणे ॥ ३६ ॥

हे मतवाले नयनों वाली ! रमणीय बागों में, पर्वतों पर और उपवनों में राक्षसराज रावण के साथ तू घूम फिर ॥ ३६ ॥

स्त्रीसहस्राणि ते सप्त वशे स्थास्यन्ति सुन्दरि ।
रावणं भज भर्तारं भर्तारं सर्वरक्षसाम् ॥ ३७ ॥

हे सुन्दरि ! सात हज़ार (अर्थात् हज़ारों) स्त्रियाँ तेरे कहने में रहेंगी। सो तू सब राक्षसों के स्वामी रावण को अपना पति बना ले ॥ ३७ ॥

उत्पाट्य वा ते हृदयं भक्षयिष्यामि मैथिलि ।
यदि मे व्याहृतं वाक्यं न यथावत्करिष्यसि ॥ ३८ ॥

और यदि आज तू हमारे कथनानुसार यथावत् (जैसा चाहिए वैसा) न करेगी, तो हम तेरा कलेजा निकाल कर, खा डालेंगी ॥ ३८ ॥

ततश्चण्डोदरी नाम राक्षसी क्रोधमूर्छिता ।
भ्रामयन्ती महच्छूलमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३९ ॥

तदनन्तर कुपित हो चण्डोदरी नाम की राक्षसी, एक बड़ा त्रिशूल घुमाती हुई बोली ॥ ३९ ॥

इमां हरिणलोलाक्षीं त्रासोत्कम्पिपयोधराम् ।
रावणेन हृतां दृष्ट्वा दौर्हृदो[1] मे महानभूत् ॥ ४० ॥

हे राक्षसियो! देखो, इस मृगनयनी और भय के मारे कम्पमानस्तनी को जब रावण हर कर लाया, तब मेरे मन में एक बड़ी इच्छा उत्पन्न हुई थी ॥ ४० ॥

[2]यकृत्प्लीह[3] मथोत्पीडं[4] हृदयं च सबन्धनम्[5] ।
अन्त्राण्यपि तथा शीर्षं खादेयमिति मे मतिः ॥ ४१ ॥

मैंने चाहा कि, मैं इसके उदर के दहिनी बाईं कोखों के माँस खण्डों को तथा इनके ऊपर के माँसखण्ड को, हृदय को, हृदय के नीचे के माँस को तथा आँतों और सिर को खा जाऊँ ॥ ४१ ॥

---

१ दौहृदः—इच्छा । (गो०) २ कुक्षिदक्षिणभागस्थ. कालखण्डाख्यो मांसपिण्डो यकृत् । (गो०) ३ प्लीहा—प्लीहातुगुल्माख्योवामभागस्थो मांसपिण्डविशेषः । (गो०) ४ उत्पीडं—तस्योपरिस्थितं मांसं । (गो०) ५ बन्धनं—हृदयधारणमधोमांसं । (गो०)

ततस्तु प्रघसा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
कण्ठमस्या नृशंसायाः पीडयाम किमास्यते ॥ ४२ ॥

तदनन्तर प्रघसा नाम राक्षसी कहने लगी । हे राक्षसियों ! हम बैठी बैठी क्या करें । आओ इस कसाइन का गला घोंट डालें ॥ ४२ ॥

निवेद्यतां ततो राज्ञे मानुषी सा मृतेति ह ।
नात्र कश्चन सन्देहः खादतेति स वक्ष्यति ॥ ४३ ॥

और चल कर रावण को सूचना देदें कि, वह मानुषी मर गई । यह सुन, वह निस्सन्देह हम लोगों को इसके खा डालने की आज्ञा दे ही देंगे ॥ ४३ ॥

ततस्त्वजामुखी नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
विशस्येमां ततः सर्वान्ः समान्कुरुत पीलुकान्[1] ॥४४॥
विभजाम ततः सर्वा विवादो मे न रोचते ।
पेयमानीयतां क्षिप्रं माल्यं च विविधं बहु ॥ ४५ ॥

तदनन्तर अजामुखी नाम की राक्षसी बोली—इसको मार कर इसके माँस के बराबर बराबर भाग कर डालो । क्योंकि, मुझे पीछे से झगड़ा करना पसंद नहीं है । (अर्थात हिस्से के लिए हममें झगड़ा न हो, अतः पहिले ही से बराबर बराबर टुकड़े कर डालो) अब तुरन्त जा कर शराब और विविध प्रकार की बहुत सी मालाएँ ले आओ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

---

१ पीलुकान्—मांसखण्डान् । (गो०)

ततः शूर्पणखा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
अजामुख्या यदुक्तं हि तदेव मम रोचते ॥ ४६ ॥
सुरा चानीयतां क्षिप्रं सर्वशोकविनाशिनी ।
मानुषं मांसमास्वाद्य नृत्यामोऽथ निकुम्भिलाम् ॥४७॥

तदनन्तर शूर्पणखा नाम की राक्षसी बोली— अजामुखी ने जो बात कही वह मुझे भी पसंद है। सो सब शोकों को नष्ट करने वाली शराब शीघ्र मँगवानी चाहिए। फिर मनुष्य का मांस चख कर, हम सब निकुम्भिला के समीप चल कर नाचें कूदें ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

एवं संभर्त्स्यमाना सा सीता सुरसुतोपमा ।
राक्षसीभिः सुघोराभिर्धैर्य मुत्सृज्य रोदिति ॥ ४८ ॥

इति चतुर्विंशः सर्गः ॥

जब इस प्रकार एक सुरबाला की तरह सुन्दरी सीता को, उन भयङ्कर राक्षसियों ने धमकाया डराया; तब वह धैर्य छोड़ रोने लगी ॥ ४८ ॥

सुन्दरकाण्ड का चौबीसवाँ सर्ग पूर्ण हुआ।

—❀—

षोडशः सर्गः

—❀—

तथा तासां वदन्तीनां परुषं दारुणं बहु ।
राक्षसीनामसौम्यानां रुरोद जनकात्मजा ॥ १ ॥

उन भयङ्कर राक्षसियों के इस प्रकार बहुत से कठोर वचनों के कहने पर, जानकी रो पड़ीं ॥ १ ॥

एवमुक्ता तु वैदेही राक्षसीभिर्मनस्विनी[1] ।
उवाच परमत्रस्ता बाष्पगद्गदया गिरा ॥ २ ॥

उन राक्षसियों के इस प्रकार कहने पर पतिव्रतधर्म पालन में दृढ़ता पूर्वक तत्पर सीता अत्यन्त त्रस्त हो, गद्गद् वाणी से बोली ॥ २ ॥

न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति ।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः ॥ ३ ॥

भला कहीं मानुषी भी राक्षस की भार्या बन सकती है। तुम सब भले ही मुझे मार कर खा डालो, पर मैं तुम्हारी यह बात नहीं मान सकती ॥ ३ ॥

सा राक्षसीमध्यगता सीता सुरसुतोपमा ।
न शर्म लेभे दुःखार्ता रावणेन च तर्जिता ॥ ४ ॥

उस समय राक्षसियों के बीच फँसी हुई देवकन्यावत् सीता को, दुःख से छुटकारा पाने का कुछ और उपाय नहीं सूझ पड़ता था। क्योंकि एक तो वह दुःख से विकल थी ही, तिस पर रावण ने उसे धमकाया भी था ॥ ४ ॥

वेपते स्माधिकं सीता विशन्तीवाङ्गमात्मनः ।
वने यूथपरिभ्रष्टा मृगी कोकैरिवार्दिता ॥ ५ ॥

उस समय सीता थरथर काँप रही थी और मारे डर के सिकुड़ कर, अपने शरीर में घुसी जाती थी। मानों अपने झुंड से अलग हुई कोई अकेली हिरनी भेड़ियों से घिरी हो ॥ ५ ॥

---

१ मनस्विनी—पातिव्रत्ये दृढमनाः। (गो०)

सा त्वशोकस्य विपुलां शाखामालम्ब्य पुष्पिताम् ।
चिन्तयामास शोकेन भर्तारं भग्नमानसा ॥ ६ ॥

वह अत्यन्त शोक से विकल तथा हताश हो, उस वृक्ष की पुष्पित डाली को थाम कर, अपने पति श्रीरामचन्द्र जी का स्मरण करने लगी ॥ ६ ॥

सा स्नापयन्ती विपुलौ स्तनौ नेत्रजलस्रवैः ।
चिन्तयन्ती न शोकस्य तदाऽन्तमधिगच्छति ॥ ७ ॥

उस समय उसके नेत्रों से निकले हुए आँसू छल छल करते उसके बड़े स्तनों को धो रहे थे। वह उस सङ्कट से पार होने के लिए बहुत से उपाय सोचती, पर उसे उस शोक (सागर) के पार होने का कोई उपाय नहीं सूझता था ॥ ७ ॥

सा वेपमाना पतिता प्रवाते कदली यथा ।
राक्षसीनां भयत्रस्ता विषण्णवदनाऽभवत् ॥ ८ ॥

अन्त में वह थरथरा कर वायु के झोंके से गिरे हुए केले के पेड़ की तरह, ज़मीन पर गिर पड़ी और राक्षसियों के डर से उसका मुख, फीका पड़ गया वा उदास हो गया ॥ ८ ॥

तस्याः सा दीर्घविपुला वेपन्त्या *सीतया तदा ।
ददृशे कम्पिनी वेणी व्यालीव परिसर्पती ॥ ९ ॥

शरीर के थरथराने से जानकी की बड़ी लंबी और घनी चोटी भी थरथराने लगी। उस समय वह हिलती हुई चोटी ऐसी जान पड़ी, मानों नागिन लहरा रही हो ॥ ९ ॥

---

* पाठान्तरे—"सीतायाः वेपितात्मनः।"

सा निःश्वसन्ती दुःखार्ता शोकोपहतचेतना ।
आर्ता व्यसृजदश्रूणि मैथिली विललाप ह ॥ १० ॥

दुखिया जानकी शोक से अचेत हो और श्रीराम के विरह से विकल हो, उसाँसे लेती हुई, विलाप करके रोने लगी ॥ १० ॥

हा रामेति च दुःखार्ता हा पुनर्लक्ष्मणेति च ।
हा श्वश्रु मम कौसल्ये हा सुमित्रेति भामिनी ॥ ११ ॥

जानकी विलाप करती हुई कहने लगी—हा राम! हा लक्ष्मण! हा मेरी सास कौसल्ये! हा भामिनी सुमित्रे! ॥ ११ ॥

लोकप्रवादः सत्योऽयं पण्डितैः समुदाहृतः ।
अकाले दुर्लभो मृत्युः स्त्रिया वा पुरुषस्य वा ॥ १२ ॥

संसार में पण्डितों की कही हुई यह कहावत ठीक ही है कि बिना समय आए, स्त्री हो या पुरुष, कोई नहीं मरता ॥ १२ ॥

यत्राहमेवं क्रूराभी राक्षसीभिरिहार्दिता ।
जीवामि हीना रामेण मुहूर्तमपि दुःखिता ॥ १३ ॥

नहीं तो क्या, यह सम्भव था कि, जैसा कि ये दुष्टा राक्षसी मुझको सता रही है; दुखिया मैं, श्रीरामचन्द्र जी बिना एक मुहूर्त भी जीती रहती ॥ १३ ॥

एषाऽल्पपुण्या कृपणा विनशिष्याम्यनाथवत् ।
समुद्रमध्ये नौः पूर्णा वायुवेगैरिवाहता ॥ १४ ॥

मैं अल्पपुण्या और दुखियारी एक अनाथिनी की तरह वैसे ही नष्ट हो जाऊँगी; जैसे बोझ से लदी नाव समुद्र में वायु के झोकों से नष्ट हो जाती है ॥ १४ ॥

भर्तारं तमपश्यन्ती राक्षसीवशमागता ।
सीदामि *ननु शोकेन कूलं तोयहतं यथा ॥ १५ ॥

मैं अपने पति की अनुपस्थिति में इन राक्षसियों के पल्ले पड़ गई हूँ और उसी प्रकार निश्चय ही नष्ट हो रही हूँ, जिस प्रकार पानी के धक्कों से नदीतट नष्ट होता है ॥ १५ ॥

तं पद्मदलपत्राक्षं सिंहविक्रान्तगामिनम् ।
धन्याः पश्यन्ति मे नाथं कृतज्ञं प्रियवादिनम् ॥ १६ ॥

जो उन कमलनयन, सिंहविक्रान्तगामी, कृतज्ञ और मधुर-भाषी मेरे स्वामी के दर्शन करते हैं ; वे धन्य हैं ॥ १६ ॥

सर्वथा तेन हीनाया रामेण विदितात्मना ।
तीक्ष्णं विषमिवास्वाद्य दुर्लभं मम जीवितम् ॥ १७ ॥

उन प्रसिद्ध (अथवा आत्मज्ञानी) श्रीरामचन्द्र जी के विना मेरा जीना सर्वथा वैसे ही कठिन है ; जैसे हलाहल विष को पी कर पीने वाले का जीना कठिन होता है ॥ १७ ॥

कीदृशं तु मया पापं पुरा जन्मान्तरे कृतम् ।
येनेदं प्राप्यते दुःखं मया घोरं सुदारुणम् ॥ १८ ॥

नहीं मालूम मैंने पिछले जन्मों में कैसे कैसे पापकर्म किए थे ; जिनके फलस्वरूप मुझे यह घोर दारुण दुःख सहना पड़ रहा है ॥ १८ ॥

जीवितं त्यक्तुमिच्छामि शोकेन महता वृता ।
राक्षसीभिश्च रक्ष्यन्त्या रामो नासाद्यते मया ॥ १९ ॥

---

* पाठान्तरे—" खलु । "

इस समय मेरे ऊपर जैसी भारी विपत्ति पड़ी हुई है, उससे तो मैं अब मरना ही पसंद करती हूँ। क्योंकि इन राक्षसियों के पहरे में रह कर मैं श्रीरामचन्द्र जी को नहीं पा सकती ॥ १९ ॥

धिगस्तु खलु मानुष्यं धिगस्तु परवश्यताम् ।
न शक्यं यत्परित्यक्तुमात्मच्छन्देन जीवितम् ॥ २० ॥

इति पञ्चविंशः सर्गः

धिक्कार है मनुष्य होने पर और धिक्कार है परतंत्रता को, जिसके पंजे में फँस, (मुझे) अपनी इच्छानुसार प्राण परित्याग भी नहीं किया जा सकता ॥ २० ॥

सुन्दरकाण्ड का पचीसवाँ सर्ग पूरा।

—*—

षड्विंशः सर्गः

—*—

प्रसक्ताश्रुमुखीत्येवं ब्रुवन्ती जनकात्मजा ।
अधोमुखमुखी बाला विलप्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥

इस प्रकार रुदन करती हुई सीता नीचे को सिर झुकाए फिर विलाप करने लगी ॥ १ ॥

उन्मत्तेव प्रमत्तेव भ्रान्तचित्तेव शोचती ।
उपावृत्ता किशोरीव विवेष्टन्ती महीतले ॥ २ ॥

श्रम मिटाने के लिए ज़मीन पर लोटने वाली घोड़ी की तरह, बेचारी जानकी पगली, असावधान अथवा भ्रान्तचित्ता स्त्री की तरह भूमि पर लोटने लगी ॥ २ ॥

राघवस्य प्रमत्तस्य रक्षसा कामरूपिणा ।
रावणेन प्रमथ्याहमानीताक्रोशती बलात् ॥ ३ ॥

यह कामरूपी राक्षस श्रीरामचन्द्र जी को भुलावे में डाल, मुझ रोती हुई को बरजोरी हर कर यहाँ ले आया ॥ ३ ॥

राक्षसीवशमापन्ना भर्त्स्यमाना सुदारुणम् ।
चिन्तयन्ती सुदुःखार्ता नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ४ ॥

अब यहाँ आ कर मैं राक्षसियों के पाले में पड़ कर, नित्य बुरी तरह धमकाई डराई जाती हूँ। इस प्रकार सोच में पड़ी और अत्यन्त दुःखियारी मैं, अब जीना नहीं चाहती ॥ ४ ॥

न च मे *जीवितेनार्थो नैवार्थैर्न च भूषणैः ।
वसन्त्या राक्षसीमध्ये विना रामं महारथम् ॥ ५ ॥

न तो मुझे अब जीने ही से कुछ प्रयोजन है और न मुझे धनदौलत और ज़ेवर ही से कुछ काम है। क्योंकि राक्षसियों के बीच रहना और सो भी उन महाबलवान श्रीरामचन्द्र जी के विना ॥ ५ ॥

अश्मसारमिदं नूनमथवाप्यजरामरम् ।
हृदयं मम येनेदं न दुःखेनावशीर्यते ॥ ६ ॥

जान पड़ता है, मेरा कलेजा पत्थर का अथवा अजरामर (कभी निकम्मा या नष्ट न होने वाला) है, तभी तो इतना दुःख पड़ने पर भी टुकड़े टुकड़े नहीं हो जाता ॥ ६ ॥

धिङ् मामनार्यामसतीं याऽहं तेन विनाऽकृता ।
मुहूर्तमपि रक्षामि जीवितं पापजीविता ॥ ७ ॥

---

* पाठान्तरे—"जीवितैरर्थो ।"

मुझ दुष्टात्मा और अपतिव्रता की तरह काम करने वाली को धिक्कार है, जो मैं श्रीरामचन्द्र जी के बिना मुहूर्त्त भर भी जीवित हूँ ॥ ७ ॥

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम् ।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम् ॥ ८ ॥

मैं रावण को तो अपने वाम पाद से भी न छुऊँगी फिर उस दुष्ट की चाहना करना तो बात ही दूर की है ॥ ८ ॥

प्रत्याख्यातं न जानाति नात्मानं नात्मनः कुलम् ।
यो नृशंसस्वभावेन मां प्रार्थयितुमिच्छति ॥ ९ ॥

वह न तो मेरे मना करने पर ही कुछ ध्यान देता है, न अपने आपको और न अपने कुल ही को पहचानता है। वह तो अपने क्रूर स्वभाव के वशवर्त्ती हो, मुझे चाहता है ॥ ९ ॥

[1]छिन्ना भिन्ना[2] विभक्ता[3] वा दीप्तेऽग्नौ प्रदीपिता ।
रावणं नोपतिष्ठेयं किं प्रलापेन वश्चिरम् ॥ १० ॥

चाहे मेरे शरीर के दो टुकड़े कर डालो, चाहे मुझे मसल डालो, चाहे मेरे शरीर की बोटी-बोटी अलग कर दो और चाहे मेरे समूचे अंग को जलती आग में झोंक दो ; किन्तु मैं रावण की हो कर नहीं रहूँगी—तुम लोग क्यों बहुत देर से बकवाद कर रही हो ॥ १० ॥

ख्यातः प्राज्ञः[4] कृतज्ञश्च सानुक्रोशश्च राघवः ।
सद्वृत्तो निरनुक्रोशः शङ्के मद्भाग्यसंक्षयात् ॥ ११ ॥

---

१ छिन्ना—द्विखण्डतयाकृता। (गो०) २ भिन्ना—दलिता (गो०) ३ विभक्ता—अवयवशः कृतः। ४ प्राज्ञः—दोषवत्यपि गुणदर्शी। (गो०)

श्रीरामचन्द्र जी विख्यात, दोषों में भी गुणों को देखने वाले, कृतज्ञ, दयालु और सदाचारी हैं; किन्तु नहीं जान पड़ता, इस समय वे क्यों ऐसे निठुर हो गए हैं। हो न हो, यह मेरे ही भाग्य का दोष है ॥ ११ ॥

राक्षसानां जनस्थाने सहस्राणि चतुर्दश ।
येनैकेन निरस्तानि स मां किं नाभिपद्यते[1] ॥ १२ ॥

जिन्होंने अकेले जनस्थान में चौदह हज़ार राक्षसों का वध कर डाला, वे क्या मेरी रक्षा न करेंगे ॥ १२ ॥

निरुद्धा रावणेनाहमल्पवीर्येण रक्षसा ।
समर्थः खलु मे भर्ता रावणं हन्तुमाहवे ॥ १३ ॥

इस अल्पबली रावण ने मुझे यहाँ ला कर बंदी बना कर रखा है; परन्तु निश्चय ही मेरे पति श्रीरामचन्द्र, युद्ध में रावण का वध करेंगे ॥ १३ ॥

विराधो दण्डकारण्ये येन राक्षसपुङ्गवः ।
रणे रामेण निहतः स मां किं नाभिपद्यते ॥ १४ ॥

जिन्होंने दण्डकवन में राक्षसोत्तम विराध को मार डाला, वे श्रीरामचन्द्र क्या मेरा उद्धार न करेंगे ॥ १४ ॥

कामं मध्ये समुद्रस्य लङ्केयं दुष्प्रधर्षणा ।
न तु राघवबाणानां गतिरोधीह विद्यते ॥ १५ ॥

यद्यपि लङ्का समुद्र के बीच में होने के कारण इसमें बाहर से किसी का आना सहज नहीं है, तथापि श्रीरामचन्द्र जी के बाणों की गति कौन रोक सकता है ॥ १५ ॥

---

१ नाभिपद्यते—न रक्षति। (गो०)

किंतु तत्कारणं येन रामो दृढपराक्रमः ।
रक्षसापहृतां भार्यामिष्टां नाभ्यवपद्यते ॥ १६ ॥

श्रीरामचन्द्र जी दृढ़पराक्रमी हो कर भी, राक्षस द्वारा हरी हुई अपनी प्यारी पत्नी का उद्धार नहीं करते, इसका कारण क्या है ॥ १६ ॥

इहस्थां मां न जानीते शङ्के लक्ष्मणपूर्वजः ।
जानन्नपि हि तेजस्वी धर्षणं मर्षयिष्यति ॥ १७ ॥

इसका कारण यही हो सकता है कि, कदाचित् लक्ष्मण के ज्येष्ठ भाई श्रीरामचन्द्र को अभी यह मालूम नहीं हो पाया कि, मैं लङ्का में बंदी हूँ। यदि वे यह जानते होते, तो क्या ऐसे तेजस्वी हो कर, वे इस प्रकार का अपमान कभी सह सकते थे ॥ १७ ॥

हृतेति योऽधिगतवा मां राघवाय निवेदयेत् ।
गृध्रराजोऽपि स रणे रावणेन निपातितः ॥ १८ ॥

जो जटायु हरे जाने का संवाद श्रीरामचन्द्र जी को दे सकता था; उस गृध्रराज जटायु को भी तो रावण ने युद्ध में मार डाला ॥ १८ ॥

कृत कर्म महत्तेन मां तथाभ्यवपद्यता ।
तिष्ठता रावणद्वन्द्वे वृद्धेनापि जटायुषा ॥ १९ ॥

जटायु ने बड़ा भारी काम किया। उसने वृद्ध हो कर भी मुझे छुड़ाने के लिए रावण से द्वन्द्वयुद्ध किया ॥ १९ ॥

यदि मामिह जानीयाद्वर्तमानां स राघवः ।
अद्य बाणैरभिक्रुद्धः कुर्याल्लोकमराक्षसम् ॥ २० ॥

यदि श्रीरामचन्द्र जी को मेरा यहाँ रहना मालूम पड़ जाय; तो वे आज ही क्रुद्ध हो सारे लोकों को अपने बाणों से राक्षसशून्य कर डालें ॥ २० ॥

*निर्दहेच्च पुरीं लङ्कां शोषयेच्च महोदधिम् ।
रावणस्य च नीचस्य कीर्त्तिं नाम च नाशयेत् ॥ २१ ॥

वे समुद्र को सुखा कर लङ्का को भस्म कर डालें और इस नीच रावण का नाम निशान तक न रहने दें ॥ २१ ॥

ततो निहतनाथानां राक्षसीनां गृहे गृहे ।
यथाऽहमेवं रुदती तथा भूयो न संशयः ॥ २२ ॥

तब वे राक्षसियाँ जिनके पति मारे जाँय, लङ्का के प्रत्येक घर में, मेरी तरह निस्सन्देह रोवें ॥ २२ ॥

अन्विष्य रक्षसां लङ्कां कुर्याद्रामः सलक्ष्मणः ।
न हि ताभ्यां रिपुर्दृष्टो मुहूर्तमपि जीवति ॥२३॥

मुझे विश्वास है कि, लङ्का का पता लगा कर, श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी शत्रु का नाश अवश्य करेंगे। क्योंकि उनके सामने पड़ने पर उनका शत्रु एक क्षण भी जीता नहीं रह सकता ॥ २३ ॥

चिताधूमाकुलपथा गृध्रमण्डलसङ्कुला ।
अचिरेण तु लङ्केयं श्मशानसदृशी भवेत् ॥ २४ ॥

थोड़े ही दिनों के भीतर यह लङ्का चिता के धुँए से पूर्ण और गीधों के दलों से युक्त हो कर, श्मशान जैसी बन जायगी ॥ २४ ॥

अचिरेणैव कालेन प्राप्स्याम्येव मनोरथम् ।
†दुष्प्रस्थानोऽयमाभीति सर्वेषां वो विपर्ययम् ॥ २५ ॥

---

* पाठान्तरे—"विधमेच्च ।" † पाठान्तरे—"दुष्प्रस्थानोयमाख्याति ।"

थोड़े ही दिनों बाद मेरा यह मनोरथ सफल होगा। क्योंकि जहाँ सब कुमार्गगामी होते है ; वहां नाश होता ही है ॥ २५ ॥

यादृशानीह दृश्यन्ते लङ्कायामशुभानि वै ।
अचिरेणैव कालेन भविष्यति हतप्रभा ॥ २६ ॥

किन्तु इस समय लङ्का में जैसे अशकुन देख पड़ रहे हैं, उनको देखते हुए, अब बहुत शीघ्र यह लङ्कापुरी निस्तेज अर्थात् नष्ट हो जायगी ॥ २६ ॥

नूनं लङ्का हते पापे रावणे राक्षसाधमे ।
शोषं[1] यास्यति दुर्धर्षा प्रमदा विधवा यथा ॥ २७ ॥

इस पापात्मा रावण के मारे जाने पर निस्सन्देह यह लङ्का दुर्धर्ष होने पर भी विधवा स्त्री की तरह नष्ट हो जायगी ॥ २७ ॥

पुण्योत्सवसमुत्था च नष्टभर्त्री सराक्षसी ।
भविष्यति पुरी लङ्का नष्टभर्त्री यथाऽङ्गना ॥ २८ ॥

यद्यपि इस समय इस लङ्का नगरी में नित्य ही अच्छे अच्छे उत्सव हुआ करते हैं, तथापि जब रावण मारा जायगा तब यह उस स्त्री की तरह देख पड़ेगी, जिसका पति मर गया हो ॥ २८ ॥

नूनं राक्षसकन्यानां रुदन्तीनां गृहे गृहे ।
श्रोष्यामि न चिरादेव दुःखार्तानामिह ध्वनिम् ॥२९॥

निश्चय ही लङ्का के घर-घर में राक्षस कन्याएँ रोवेंगी। मैं अब शीघ्र ही उन दुःखियारियों का रोना सुनूँगी ॥ २९ ॥

---

१ शोषं—विनाश। (गो०)

सान्धकारा हतद्योता हतराक्षसपुङ्गवा ।
भविष्यति पुरी लङ्का निर्दग्धा रामसायकैः ॥ ३० ॥

जब श्रीरामचन्द्र जी के बाण इस लङ्का को भस्म कर डालेंगे, तब यह अन्धकारमय, हतप्रभ और वीरराक्षसशून्य हो जायगी ॥ ३० ॥

यदि नाम स शूरो मां रामो रक्तान्तलोचनः ।
जानीयाद्वर्तमानां हि रावणस्य निवेशने ॥ ३१ ॥

अरुणनयन वीर श्रीरामचन्द्र जी के पास, रावण के घर में मेरे बंदी होने का संवाद पहुँचने भर की देर है ॥ ३१ ॥

अनेन तु नृशंसेन रावणेनाधमेन मे ।
समयो यस्तु निर्दिष्टस्तस्य कालोऽयमागतः ॥ ३२ ॥

हे राक्षसियों ! इस दुष्ट और अधम रावण ने मेरे लिए जो अवधि निश्चित की थी ; वह अभी पूरी होने वाली है ॥ ३२ ॥

अकार्यं ये न जानन्ति नैर्ऋताः पापकारिणः ।
अधर्मात्तु महोत्पातो भविष्यति हि साम्प्रतम् ॥ ३३ ॥

ये पापी राक्षस, धर्म अधर्म नहीं जानते, सो (मेरे वध रूपी) महापाप से, अब बड़ा भारी उत्पात होने वाला है ॥ ३३ ॥

नैते धर्मं विजानन्ति राक्षसाः पिशिताशनाः ।
ध्रुवं मां प्रातराशार्थे राक्षसः कल्पयिष्यति ॥ ३४ ॥

इन माँसभक्षी राक्षसों को धर्म का तत्त्व कुछ भी नहीं मालूम ; अतः रावण निश्चय ही (जैसा कि वह कह गया है) अपने कलेवा या जलपान के लिए मेरे शरीर के टुकड़े टुकड़े करवावेगा ॥ ३४ ॥

साऽहं कथं*करिष्यामि तं विना प्रियदर्शनम् ।
रामं रक्तान्तनयनमपश्यन्ती सुदुःखिता ॥ ३५ ॥

मैं विना श्रीरामचन्द्र जी के क्या कर सकूँगी। रक्तान्तनयन श्रीरामचन्द्र जी को देखे विना मुझे बड़ा दुःख हो रहा है ॥ ३५ ॥

यदि कश्चित्प्रदाता मे विषस्याद्य भवेदिह ।
क्षिप्रं वैवस्वतं देवं पश्येयं पतिना विना ॥ ३६ ॥

यदि इस समय कोई मुझे विष दे देता ; तो मैं अपने पति के वियोग में शीघ्र ही यमराज के दर्शन करती ॥ ३६ ॥

नाज्ञानाज्जीवतीं रामः स मां लक्ष्मणपूर्वजः ।
जानन्तौ तौ न कुर्यातां नोर्व्यां हि मम मार्गणम् ॥ ३७ ॥

हा ! श्रीरामचन्द्र जी को यह नहीं मालूम कि, मैं अभी जीवित हूँ ; यदि मालूम होता तो वे दोनों भाई मेरे लिए सारी पृथिवी ढूँढ़ डालते ॥ ३७ ॥

नूनं ममैव शोकेन स वीरो लक्ष्मणाग्रजः ।
देवलोकमितो यातस्त्यक्त्वा देहं महीतले ॥ ३८ ॥

मुझे तो यह निश्चय जान पड़ता है कि, मेरे वियोगजन्य शोक से पीड़ित हो, इस पृथिवी पर अपना शरीर छोड़, वे लक्ष्मण के बड़े भाई वीर श्रीरामचन्द्र जी परलोक सिधार गए ॥ ३८ ॥

धन्या देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
मम पश्यन्ति ये नाथं रामं राजीवलोचनम् ॥ ३९ ॥

अब तो स्वर्गलोकवासी वे देवता, वे गन्धर्व, वे सिद्ध और वे देवर्षि धन्य हैं, जो मेरे कमलनयन स्वामी श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन करते होंगे ॥ ३९ ॥

---

* पाठान्तरे—"चरिष्यामि ।"

अथवा न हि तस्यार्थो धर्मकामस्य धीमतः ।
मया रामस्य राजर्षेर्भार्यया परमात्मनः[1] ॥ ४० ॥

अथवा केवल धर्म की चाहना रखने वाले, बुद्धिमान, उत्कृष्ट स्वभाव वाले एवं राजर्षि श्रीरामचन्द्र जी को मुझ जैसी भार्या से मतलब ही क्या है ॥ ४० ॥

दृश्यमाने भवेत्प्रीतिः सौहृदं नास्त्यपश्यतः ।
नाशयन्ति कृतघ्नास्तु न रामो नाशयिष्यति ॥ ४१ ॥

क्योंकि, सुहृद्भाव और प्रीति तो मुँह देखे की हुआ करती है। पीठपीछे कौन किस को चाहता है। किन्तु यह रीति तो कृतघ्नों की है। श्रीरामचन्द्र जी के मन में पीठपीछे भी मेरी प्रीति कभी नष्ट नहीं होगी ॥ ४१ ॥

किं वा मय्यगुणाः केचित्किं वा भाग्यक्षयो मम ।
या हि सीता वरार्हेण हीना रामेण भामिनी ॥ ४२ ॥

हाँ यह हो सकता है कि, मुझसे कोई दोष हो या मेरे सौभाग्य का अन्त ही आ पहुँचा हो। नहीं तो सीता जैसे श्रेष्ठ पदार्थ को अङ्गीकार करने वाले श्रीरामचन्द्र जी का मुझसे वियोग ही क्यों होता ॥ ४२ ॥

श्रेयो मे जीवितान्मर्तुं विहीनाया महात्मनः ।
रामादक्लिष्टचारित्राच्छूराच्छत्रुनिबर्हणात् ॥ ४३ ॥

श्रेष्ठचरित्र वाले, महाबली, शत्रुहन्ता महात्मा श्रीरामचन्द्र जी से जब मेरा वियोग हो गया ; तब मेरे लिए ऐसे दुःख भरे जीने से मर जाना ही कहीं अच्छा है ॥ ४३ ॥

---

१ परमात्मनः—उत्कृष्टस्वभावस्य । (गो०)

अथवा न्यस्तशस्त्रौ तौ वने मूलफलाशिनौ ।
भ्रातरौ हि नरश्रेष्ठौ संवृत्तौ वनगोचरौ ॥ ४४ ॥

या यह भी हो सकता है कि, वे दोनों भाई शस्त्र त्याग कर फल-मूल खाते और मुनिवृत्ति धारण कर, बन मे घूमते फिरते हों ॥४४॥

अथवा राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना ।
छद्मना सादितौ शूरौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४५ ॥

अथवा दुष्ट राक्षसराज रावण ने उन दोनों भाई रामलक्ष्मण को धोखे में मरवा डाला हो ॥ ४५ ॥

साऽहमेवं गते काले मर्तुमिच्छामि सर्वथा ।
न च मे विहितो मृत्युरस्मिन्दुःखेऽपि वर्तति ॥ ४६ ॥

ऐसे सङ्कट के समय, मैं तो मन से मरना पसन्द करती हूँ। किन्तु ऐसे दुःख के समय में भी, मेरी मौत मेरे भाग्य में नहीं लिखी ॥ ४६ ॥

धन्याः खलु महात्मानो मुनयस्त्यक्तकिल्बिषाः ।
जितात्मानो महाभागा येषां न स्तः प्रियाप्रिये ॥ ४७ ॥

निश्चय ही वे पापरहित जितेन्द्रिय महाभाग मुनिगण धन्य हैं, जिनका न तो कोई प्रिय (मित्र) है और न अप्रिय (शत्रु) अर्थात् जो रागद्वेष से परे हैं ॥ ४७ ॥

प्रियान्न सम्भवेद्दुःखमप्रियान्नाधिकं भयम् ।
ताभ्यां हि ये वियुज्यन्ते नमस्तेषां महात्मनाम् ॥ ४८ ॥

जिनको अपने किसी प्रियजन के लिए न तो कभी दुःखी होना पड़ता है और न अपने किसी अप्रियजन से किसी तरह का

खटका ही रहता है। जो इन दोनों अर्थात् प्रिय अप्रिय—रागद्वेष से छूट गए हैं, उन महात्माओं को मेरा प्रणाम है ॥ ४८ ॥

साऽहं त्यक्ता प्रियार्हेण रामेण विदितात्मना ।
प्राणांस्त्यक्ष्यामि पापस्य रावणस्य गता वशम् ॥ ४९ ॥

इति षड्विंशः सर्गः ॥

एक तो उन प्रसिद्ध (अथवा आत्मज्ञानी) प्यारे श्रीराम ने मुझे बिसार दिया, दूसरे मैं पापी रावण के पंजे में आ फँसी—अतः अब तो मैं प्राण त्यागती हूँ ॥ ४९ ॥

सुन्दरकाण्ड का छब्बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—❀—

सप्तविंशः सर्गः

—❀—

इत्युक्ताः सीतया घोरा राक्षस्यः क्रोधमूर्छिताः ।
काश्चिज्जग्मुस्तदाख्यातुं रावणस्य तरस्विनः ॥ १ ॥

सीता की ये बातें सुन, वे राक्षसी बहुत कुपित हुईं और उनमें से कोई कोई तो इन बातों को कहने के लिए बलवान रावण के पास चली गईं ॥ १ ॥

ततः सीतामुपागम्य राक्षस्यो घोरदर्शनाः ।
पुनः परुषमेकार्थमनर्थार्थमथाब्रुवन् ॥ २ ॥

और जो रह गईं, वे भयङ्कररूप वाली राक्षसियाँ, सीता के पास जा, पूर्ववत् कठोर और बुरे-बुरे वचन कहने लगीं ॥ २ ॥

अद्येदानीं तवानार्ये सीते पापविनिश्चये ।

राक्षस्यो *भक्षयिष्यन्ति मांसमेतद्यथासुखम् ॥ ३ ॥

वे बोलीं, हे पापिनी ! हे दुर्बुद्धे ! आज अभी ये सब राक्षसियां मज़े में तेरे माँस को खा डालेंगी ॥ ३ ॥

सीतां ताभिरनार्याभिर्दृष्ट्वा सन्तर्जितां तदा ।

राक्षसी त्रिजटा[1] वृद्धा शयाना वाक्यमब्रवीत् ॥ ४ ॥

इन सब निष्ठुरहृदया राक्षसियों को सीता जी के प्रति तर्जन करते देख, त्रिजटा नामक एक वृद्धा राक्षसी लेटे-लेटे ही कहने लगी ॥ ४ ॥

आत्मानं खादतानार्या न सीतां भक्षयिष्यथ ।

जनकस्य सुतामिष्टां स्नुषां दशरथस्य च ॥ ५ ॥

अरी दुष्टाओ ! तुम अपने आपको खाओ तो भले ही खा डालो, पर जनक की दुलारी और महाराज दशरथ की बहू सीता को, नहीं खाने पाओगी ॥ ५ ॥

स्वप्नो ह्यद्य मया दृष्टो दारुणो रोमहर्षणः ।

राक्षसानामभावाय भर्तुरस्या †जयाय च ॥ ६ ॥

क्योंकि आज मैंने एक बड़ा भयङ्कर और रोमाञ्चकारी स्वप्न देखा है । जिसका फल है, राक्षसों का नाश और इसके पति की विजय ॥ ६ ॥

एवमुक्तास्त्रिजटया राक्षस्यः क्रोधमूर्छिताः ।

सर्वा एवाब्रुवन्भीतास्त्रिजटां तामिदं वचः ॥ ७ ॥

---

१ त्रिजटा—विभीषणपुत्री । (गो०) * पाठान्तरे—"भक्षयिष्यामो ।" † पाठान्तरे—" भवाय । "

त्रिजटा के ये वचन सुन उन राक्षसियों का क्रोध दूर हो गया और वे सब की सब भयभीत हो त्रिजटा से यह बोलीं ॥७॥

कथयस्व त्वया दृष्टः स्वप्नोऽयं कीदृशो निशि ।
तासां तु वचनं श्रुत्वा राक्षसीनां *मुखोद्गतम् ॥८॥
उवाच वचनं काले त्रिजटा स्वप्नसंश्रितम् ।
गजदन्तमयीं दिव्यां शिबिकामन्तरिक्षगाम् ॥ ९ ॥

बतला तो रात को तूने कैसा स्वप्न देखा है । जब उन राक्षसियों ने इस प्रकार पूँछा तब त्रिजटा उनको अपने स्वप्नका वृत्तान्त बतलाने लगी । वह बोली, मैंने स्वप्न में देखा है कि, हाथीदाँत की बनी और आकाशचारिणी पालकी में, ॥८॥९॥

युक्तां हंससहस्रेण स्वयमास्थाय राघवः ।
शुक्लमाल्याम्बरधरो लक्ष्मणेन सहागतः ॥१० ॥

जिसमें सहस्रों हंस जुते हुए हैं; श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मण-सहित, सफेद वस्त्र और सफेद पुष्पमालाएँ पहिने हुए बैठे हैं और लङ्का में आए हैं ॥ १० ॥

स्वप्ने चाद्य मया दृष्टा सीता शुक्लाम्बरावृता ।
सागरेण परिक्षिप्तं श्वेतं पर्वतमास्थिता ॥११ ॥

आज स्वप्न में मैंने सीता को सफ़ेद साड़ी पहिने हुए और समुद्र से घिरे हुए एक सफेद पर्वत के ऊपर बैठे हुए देखा है॥११॥

रामेण सङ्गता सीता भास्करेण प्रभा यथा ।
राघवश्च मया दृष्टश्चतुर्दन्तं महागजम् ॥ १२ ॥

---

*पाठान्तरे—"मुखाच्च्युतम् ।"

आरूढः शैलसङ्काशं चचार सहलक्ष्मणः ।
ततस्तौ नरशार्दूलौ दीप्यमानौ स्वतेजसा ॥१३॥

(उस पर्वत के ऊपर) श्रीरामचन्द्र जी के सीता साथ जी वैसे ही बैठी हैं, जैसे सूर्य के साथ प्रभा। फिर मैंने देखा कि, श्रीरामचन्द्र जी चार दांतों वाले और पर्वत के समान डीलडौल वाले एक बड़े गज की पीठ पर लक्ष्मण सहित सवार हो चले जाते हैं। फिर देखा है कि, वे दोनों नरसिंह, जो अपने तेज से दमक रहे हैं॥ १२॥ १३॥

शुक्लमाल्याम्बरधरौ जानकीं पर्युपस्थितौ ।
ततस्तस्य नगस्याग्रे ह्याकाशस्थस्य दन्तिनः ॥१४॥

सफ़ेद वस्त्रों और सफ़ेद फूल की मालाओं को पहिने हुए जानकी के निकट आए हुए हैं। फिर देखा कि, उस पर्वत के शिखर पर आकाश में खड़े हाथी के ऊपर॥ १४॥

भर्त्रा परिगृहीतस्य जानकी स्कन्धमाश्रिता ।
भर्तुरङ्कात्समुत्पत्य ततः कमललोचना ॥ १५ ॥

जानकी जी सवार हुई हैं। उस गज को इनके पति श्रीरामचन्द्र जी पकड़े हुए हैं। तदनन्तर कमलनयनी जानकी गोदी से उछली हैं। उस समय मैंने देखा कि, ॥ १५॥

चन्द्रसूर्यौ मया दृष्टा पाणिना परिमार्जती ।
ततस्ताभ्यां कुमाराभ्यामास्थितः स गजोत्तमः ॥१६॥
सीतया च विशालाक्ष्या लङ्काया उपरि स्थितः ।
पाण्डुरर्षभयुक्तेन रथेनाष्टयुजा स्वयम् ॥१७॥

जानकी सूर्य और चन्द्रमा को अपने दोनों हाथों से पोंछ रही हैं। तदनन्तर विशालाक्षी सीता सहित उन दोनों राजकुमारों को अपनी पीठ पर चढ़ा वह उत्तम गज आ कर लङ्का के ऊपर ठहर गया है। फिर देखा कि आठ बैलों से युक्त रथ में स्वयं ॥१६॥१७॥

इहोपयातः काकुत्स्थःसीतया सह भार्यया ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया सह वीर्यवान् ॥१८ ॥

श्रीरामचन्द्र जी आप बैठे और अपनी भार्या सीता को साथ ले यहाँ आए हैं। फिर बलवान श्रीरामचन्द्र, अपने भाई लक्ष्मण और भार्या सीता सहित, ॥ १८ ॥

आरुह्य पुष्पकं दिव्यं विमानं सूर्यसन्निभम्
उत्तरां दिशमालोक्य जगाम पुरुषोत्तमः ॥१९ ॥

सूर्य की तरह दमकते हुए पुष्पक विमान पर सवार हो उत्तर की ओर जाते हुए देख पड़े ॥ १९ ॥

एवं स्वप्ने मया दृष्टो रामो विष्णुपराक्रमः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया सह राघवः ॥२० ॥

इस प्रकार स्वप्न में मैंने अपनी पत्नी सीता सहित विष्णु भगवान् के सदृश पराक्रमी श्रीरामचन्द्र को तथा उनके भाई लक्ष्मण को देखा है ॥ २० ॥

न हि रामो महातेजाः शक्यो जेतुं सुरासुरैः ।
राक्षसैर्वाऽपि चान्यैर्वा स्वर्गः पापजनैरिव ॥२१ ॥

जैसे पापियों के लिए स्वर्ग में जाना असम्भव है, वैसे ही देव दानव अथवा राक्षसों के लिए श्रीरामचन्द्र का जीतना असम्भव है ॥ २१ ॥

रावणश्च मया दृष्टः क्षितौ तैलसमुक्षितः ।
रक्तवासाः पिबन्मत्तः करवीरकृतस्रजः ॥ २२ ॥

मैंने रावणको भी स्वप्न में देखा है कि, वह तेल में डूबा हुआ ज़मीन पर लोट रहा है। शराब पिए उन्मत्त हुआ, लाल कपड़े और कनेर के फूलों की माला पहिने हुए ॥ २२ ॥

विमानात्पुष्पकादद्य रावणः पतितो भुवि ।
कृष्यमाणः स्त्रिया दृष्टो मुण्डः कृष्णाम्बरः पुनः ॥२३॥

पुष्पक विमानसे रावण पृथिवी पर आ गिरा है। फिर देखा है कि उसको पकड़ कर स्त्रियाँ खींच रही हैं। उसका मूँड़ मुड़ा हुआ है और वह काले कपड़े पहिने हुए है ॥२३॥

रथेन खरयुक्तेन रक्तमाल्यानुलेपनः ।
पिबंस्तैलं हसन्नृत्यन्भ्रान्तचित्ताकुलेन्द्रियः ॥ २४ ॥

वह लाल माला पहिने और लालचन्दन लगाए गधों के रथ में बैठा है। फिर देखा है कि, वह तेल पी रहा है, हँस रहा है, नाच और भ्रान्त चित्त हो विकल हो रहा है ॥ २४ ॥

गर्दभेन ययौ शीघ्रं दक्षिणां दिशमास्थितः ।
पुनरेव मया दृष्टो रावणो राक्षसेश्वरः ॥ २५ ॥

और गधे पर सवार हो जल्दी जल्दी दक्षिण की ओर जा रहा है। फिर मैंने राक्षसराज रावणको देखा कि, ॥ २५ ॥

पतितोऽवाक्छिरा भूमौ गर्दभाद्भयमोहितः ।
सहसोत्थाय सम्भ्रान्तो भयार्तो मदविह्वलः ॥ २६ ॥

वह गधे पर से नीचे मुख कर भूमि पर गिर पड़ा है और भयभीत हो विकल हो रहा है। फिर तुरन्त उठ कर विकल होता हुआ, भयभीत और मतवाला ॥ २६ ॥

उन्मत्त इव दिग्वासा दुर्वाक्य* प्रलपन्मुहुः ।
दुर्गन्धं दुःसहं घोरं तिमिरं नरकोपमम् ॥ २७ ॥

रावण, पागल की तरह नग्न हो बारबार दुर्वाक्य बकता हुआ आलाप कर रहा है। दुस्सह दुर्गन्ध से युक्त, भयङ्कर अन्धकार से व्याप्त नरक की तरह ॥ २७ ॥

मलपङ्कं प्रविश्याशु मग्नस्तत्र स रावणः ।
कण्ठे बद्ध्वा दशग्रीवं प्रमदा रक्तवासिनी ॥ २८ ॥
काली कर्दमलिप्ताङ्गी दिशं याम्यां प्रकर्षति ।
एवं तत्र मया दृष्टः कुम्भकर्णो निशाचरः ॥२९॥

मल के कीचड़ में जा कर रावण डूब गया है। फिर देखा कि, लाल वस्त्र पहिने हुए विकटाकार कोई स्त्री जिसके शरीर में कीचड़ लिपटी हुई है, गले में रस्सी बाँध रावण को दक्षिण की ओर खींच कर लिये जा रही है। इसी प्रकार मैंने निशाचर कुम्भकर्ण को भी देखा है ॥ २८ ॥ २९ ॥

रावणस्य सुताः सर्वे मुण्डास्तैलसमुक्षिताः ।
वराहेण दशग्रीवः शिशुमारेण चेन्द्रजित् ॥ ३० ॥

रावण के समस्त पुत्रों को मूँड़ मुड़ाए और तेल में डूबा हुआ देखा है। फिर मैंने रावण को शूकर पर, मेघनाद को सूंस पर ॥३०॥

---

*पाठान्तरे—"प्रलपन्बहु ।"

उष्ट्रेण कुम्भकर्णश्च मयातो दक्षिणां दिशम् ।
एकस्तत्र मया दृष्टः श्वेतच्छत्रो विभीषणः ॥ ३१ ॥

और कुम्भकर्ण को ऊँट पर सवार हो कर दक्षिण दिशा की ओर जाते हुए देखा है। मैंने केवल विभीषण को सफेद छाता ताने, ॥ ३१ ॥

शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्नृत्तगीतैरलंकृतः ॥ ३२ ॥

सफेद फूलों की माला तथा सफेद वस्त्र धारण किए और सफेद सुगन्धित चन्दन लगाए हुए देखा है और देखा है कि, उनके सामने शङ्ख दुन्दुभी बज रही हैं और नाचना गाना हो रहा है ॥ ३२ ॥

आरुह्य शैलसङ्काशं मेघस्तनितनिःस्वनम् ।
चतुर्दन्तं गजं दिव्यमास्ते तत्र विभीषणः ॥ ३३ ॥

फिर विभीषण पर्वत के समान डीलडौल के, मेघ की तरह गर्जने वाले चार दाँतों वाले दिव्य हाथी पर सवार हैं ॥३३॥

चतुर्भिः सचिवैः सार्धं वैहायसमुपस्थितः ।
समाजश्च मया दृष्टो गीतवादित्रनिःस्वनः ॥ ३४ ॥

उसके साथ उसके चार मंत्री हैं और वह आकाशमार्ग में स्थित हैं राजसभा में मैंने गाना बजाना देखा है ॥ ३४ ॥

पिबतां रक्तमाल्यानां रक्षसां रक्तवाससाम् ।
लङ्का चेयं पुरी रम्या सवाजिरथकुञ्जरा ॥ ३५ ॥

और देखा है कि, लङ्कावासी समस्त राक्षस मद पी रहे हैं, लाल फूलों की मालाएँ और लाल ही रंग के कपड़े पहिने हुए

हैं फिर मैंने देखा कि, यह रमणीक लङ्कापुरी घोड़ों, रथों और हाथियों सहित ॥ ३५ ॥

सागरे पतिता दृष्टा भग्नगोपुरतोरणा ।
लङ्का दृष्टा मया स्वप्ने रावणेनाभिरक्षिता ॥ ३६ ॥
दग्धा रामस्य दूतेन वानरेण तरस्विना
पीत्वा तैलं प्रनृत्ताश्च प्रहसन्त्यो महास्वनाः ॥ ३७ ॥
लङ्कायां भस्मरूक्षायां प्रविष्टा राक्षसस्त्रियः ।
कुम्भकर्णादयश्चेमे सर्वे राक्षसपुङ्गवाः ॥ ३८ ॥

समुद्र में डूब गई है और उसके गोपुरद्वार और तोरणद्वार टूट फूट गए हैं। फिर मैंने स्वप्न में देखा है कि, रावण द्वारा रक्षित लङ्का, श्रीरामचन्द्र जी के किसी बलवान दूत वानर ने जला कर भस्म कर डाली है। राक्षसों की स्त्रियों को मैंने देखा है कि, वे शरीर में भस्म लगाए तेल पी रही हैं और मतवाली हो इस लङ्का में बड़े ज़ोर से हँस रही हैं फिर कुम्भकर्ण आदि यहाँ के प्रधान प्रधान समस्त राक्षस ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

रक्तं निवसनं गृह्य प्रविष्टा गोमयेहदे ।
अपगच्छत पश्यध्वं सीतामाप स राघवः ॥ ३९ ॥

लाल कपड़े पहिने हुए गोबर भरे कुण्ड में गिर पड़े हैं। सो हे राक्षसियो! तुम सब यहाँ से चली जाओ। देखना, सीता, श्रीरामचन्द्र जी को शीघ्र मिलती है ॥ ३९ ॥

घातयेत्परमामर्षी सर्वैः सार्धं हि राक्षसैः ।
प्रियां बहुमतां भार्यां वनवासमनुव्रताम् ॥ ४० ॥

यदि तुम लोगों ने ऐसा न किया, तो कहीं वे परमक्रुद्ध हो राक्षसों के साथ साथ तुम्हें भी मार न डालें। मेरी समझ में तो यह आता है कि, अपनी प्रेमी प्यारी अत्यन्त कृपापात्री और वनवास में भी साथ देने वाली भार्या को ॥ ४० ॥

भर्त्सितां तर्जितां वाऽपि नानुपंस्यति राघवः।
तदलं क्रूरवाक्यैर्वः सान्त्वमेवाभिधीयताम् ॥४१ ॥

तुम्हारे द्वारा दुर्दशा को गई देख, श्रीरामचन्द्र जी तुमको कभी क्षमा नहीं करेंगे। अतः तुम्हें उचित है कि, अब सीता से कठोर वचन मत कहो और अब उससे ऐसी बातें कहो, जिससे इसे धीरज बंधे ॥ ४१ ॥

अभियाचाम वैदेहीमेतद्धि मम रोचते।
यस्यामेवंविधः स्वप्नो दुःखितायां प्रदृश्यते ॥ ४२ ॥

मेरी तो यह इच्छा है कि, हम सब मिल कर, सीता जी से अनुग्रह की प्रार्थना करें। क्योंकि जिस दुखियारी स्त्री के बारे में ऐसा स्वप्न देखा जाता है ॥ ४२ ॥

सा दुःखैर्विविधैर्मुक्ता प्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमम्।
भर्त्सितामपि याचध्वं राक्षस्यः किं विवक्षया ॥ ४३ ॥

वह विविध प्रकार के दुःखों से छूट कर अपने प्यारे पति को पाती है। हे राक्षसियो! यद्यपि तुम लोगों ने इसको बहुत डराया धमकाया है, तो भी तुम इस बात की चिन्ता मत करो ॥ ४३॥

राघवाद्धि भयं घोरं राक्षसानामुपस्थितम्।
प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा ॥ ४४ ॥

अब राक्षसों को श्रीरामचन्द्र से बड़ा भय आ पहुँचा है। जब यह जनकनन्दिनी प्रणाम करने से प्रसन्न हो जायगी ॥ ४४ ॥

अलमेषा परित्रातुं राक्षस्यो महतो भयात्।*
अपि चास्या विशालाक्ष्या न किञ्चिदुपलक्षये ॥ ४५ ॥
विरूपमपि चाङ्गेषु सुसूक्ष्ममपि लक्षणम्।
छायावैगुण्यमात्रं तु शङ्के दुःखमुपस्थितम् ॥ ४६ ॥

तब राक्षसियों को इस महाभय से बचानेमें यह समर्थ होंगी। (तुमने इतना डराया धमकाया तिस पर भी) इन विशालनयनी सीता के शरीर में दुःख की रेख भी तो नहीं देख पड़ती और न इनके अंग विरूप ही देख पड़ते हैं। इनकी मलिन कान्ति देखने से अवश्य इनके दुःखी होने का सन्देह होता है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

अदुःखार्हामिमां देवीं वैहायसमुपस्थिताम्।
अर्थसिद्धिं तु वैदेह्याः पश्याम्यहमुपस्थिताम् ॥ ४७ ॥

ये देवी दुःख नहीं सह सकतीं। मैंने स्वप्न में भी इनको विमान में स्थित देखा है। इससे मुझे जान पड़ता है कि, इनके कार्य की सिद्धि निश्चित ही होने वाली है ॥४७॥

राक्षसेन्द्रविनाशं च विजयं राघवस्य च।
निमित्तभूतमेतत्तु श्रोतुमस्या महत्प्रियम् ॥ ४८ ॥

और रावण का नाश तथा श्रीरामचन्द्र की जीत भी अवश्य होने वाली है। एक और कारण भी है, जिससे इनका शीघ्र एक बड़ा सुखसंवाद सुनना निश्चित जान पड़ता है ॥ ४८ ॥

---

*पाठान्तरे—"राक्षसीर्महतो।"

दृश्यते च स्फुरच्चक्षुः पद्मपत्रमिवायतम् ।
ईषच्च हृषितो वास्या दक्षिणाया ह्यदक्षिणः ।
अकस्मादेव वैदेह्या बाहुरेकः प्रकम्पते ॥ ४९ ॥

वह यह कि, इनका कमल के तुल्य विशाल वाम नेत्र फरक रहा है और इन परम प्रवीणा जानकी जीकी पुलकायमान केवल वामभुजा भी अकस्मात् फरक रही है ॥ ४९ ॥

करेणुहस्तप्रतिमः सव्यश्चोरुरनुत्तमः ।
वेपमानः सूचयति राघवं पुरतः स्थितम् ॥ ५० ॥

और इनकी हाथी की सूँड़ की तरह उत्तर वाम जाँघ का फरकना यह प्रकट करता है कि, श्रीरामचन्द्र इनके पास ही खड़े हैं ॥ ५० ॥

पक्षी च *शाखानिलयं प्रविष्टः
²पुनः पुनश्चोत्तमसान्त्ववादी ।
सुस्वागतां वाचमुदीरयानः
पुनः पुनश्चोदयतीव हृष्टः ॥ ५१ ॥

इति सप्तविंशः सर्गः ॥

वृक्ष की डाली पर बैठा हुआ यह पिङ्गलिका (मादा सारस) जो प्रसन्न हो बारबार मधुर वाणी से बोल रही है, सो मानों श्रीरामचन्द्र जी के आगमन की सूचना दे रही है ॥ ५१ ॥

सुन्दरकाण्ड का सत्ताइसवाँ सर्ग पूर्ण हुआ ।

---

[1] पक्षी—पिङ्गलिका । (गो०) [2] पुनः पुनश्चोत्तमसान्त्ववादी—भूयो भूयो मधुरवादी । (गो०) *पाठान्तरे—"शाखानिलयः ।"

अष्टाविंशः सर्गः

—:*:—

सा राक्षसेन्द्रस्य वचो निशम्य

तद्रावणस्याप्रियमप्रियार्ता ।

सीता वितत्रास यथा वनान्ते

सिंहाभिपन्ना गजराजकन्या ॥ १ ॥

त्रिजटा के ऐसे वचन सुनने पर भी सीता जी को रावण की धमकी की याद आगई। इसलिए वह वन में सिंह से घिरी हुई गजराजकन्या की तरह भयभीत हो गई ॥ १ ॥

सा राक्षसीमध्यगता च भीरु-

र्वाग्भिर्भृशं रावणतर्जिता च ।

कान्तारमध्ये विजने विसृष्टा

बालेव कन्या विललाप सीता ॥ २ ॥

राक्षसियों में फँसी और रावण से डराई धमकाई हुई सीता, निर्जन वन में छोड़ी हुई एक लड़की की तरह विलाप करने लगी ॥ २ ॥

सत्यं बतेदं प्रवदन्ति लोके

नाकालमृत्युर्भवतीति सन्तः ।

यत्राहमेवं परिभर्त्स्यमाना

जीवामि किञ्चित्क्षणमप्यपुण्या ॥ ३ ॥

बड़े दुःख की बात है सज्जनों का यह कथन सत्य ही है कि, बिना समय आए कोई नहीं मरता। क्योंकि यदि ऐसा न होता, तो इतनी डराई धमकाई और तिरस्कार किए जाने पर, मैं पापिन (क्या) एक क्षण भी जीती जागती बनी रह सकती थी ॥ ३ ॥

सुखाद्विहीनं बहुदुःखपूर्णम्-
इदं तु नूनं हृदयं स्थिरं मे ।
विशीर्यते यन्न सहस्रधाऽद्य
वज्राहतं शृङ्गमिवाचलस्य ॥ ४ ॥

सुखरहित और दुःखपूर्ण मेरा हृदय निश्चय ही बड़ा कठोर है। यदि यह ऐसा न होता तो, वज्र से तोड़े गए पर्वत शिखर की तरह यह हज़ार टुकड़े क्यों नहीं हो गया ? ॥ ४ ॥

नैवास्ति दोषो मम नूनमत्र
वध्याहमस्याप्रियदर्शनस्य ।
[1]भावं न चास्याहमनुप्रदातु
मलं द्विजो मन्त्रमिवाद्विजाय ॥ ५ ॥

निश्चय ही मुझे आत्महत्या का पाप नहीं होगा। क्योंकि अन्त में तो यह भयङ्कर राक्षस मुझे मार ही डालेगा। अतः इसके द्वारा मारी जाने की अपेक्षा स्वयं ही मर जाना अच्छा है। फिर जिस प्रकार ब्राह्मण शूद्र को वेद मन्त्र नहीं दे सकता, वैसे ही मैं अपना हृदय रावण को नहीं दे सकती (अर्थात् उसे नहीं चाह सकती) ॥ ५ ॥

नोट—अलंद्विजो मन्त्रमिवाद्विजाय से पता चलता है कि रामायण काल में भी शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार प्राप्त न था।

नूनं ममाङ्गान्यचिरादनार्यः
शस्त्रैः शितैश्छेत्स्यति राक्षसेन्द्रः ।
तस्मिन्ननागच्छति लोकनाथे
गर्भस्थजन्तोरिव शल्यकृन्तः ॥ ६ ॥

---

१ भावं—हृदयं। (गो०)

यह मुझे निश्चय मालूम है कि, लोकनाथ श्रीरामचन्द्र के आने के पूर्व ही यह राक्षसाधिपति शस्त्र से मेरे शरीर की बोटियाँ कर डालेगा ; जैसे जर्राह गर्भ में रुके हुए बालक को टुकड़े टुकड़े कर काट डालता है ॥ ६ ॥

नोट—गर्भस्थ जन्तोरिव शल्यकृन्तः । से जान पड़ता है शस्त्र चिकित्सा रामायण काल में, भारतवर्ष में थी । Surgery का ज्ञान भारत में अंग्रेज़ों के आने पर हुआ यह वाक्य, इस धारणा का खण्डन करता है ।]

दुःखं बतेदं मम दुःखितायाः
मासौ चिरायाधिगमिष्यतो द्वौ ।
बद्धस्य वध्यस्य यथा निशान्ते
राजोपरोधादिव तस्करस्य ॥ ७ ॥

मुझ चिरकालीन दुखियारी के लिए रावण की निर्दिष्ट की हुई अवधि के दो मास शीघ्र ही पूरे हो जायँगे, जैसे राजा से फाँसी की आज्ञा पाए हुए कारागृह में रुद्ध चोर की फाँसी का समय शीघ्र पूरा हो जाता है ॥ ७ ॥

हा राम हा लक्ष्मण हा सुमित्रे
हा राममातः सह मे जनन्या ।
एषा विपद्याम्यहमल्पभाग्या
महार्णवे नौरिव मूढवाता ॥ ८ ॥

हा राम ! हा लक्ष्मण ? हा सुमित्रे ! हा कौसल्ये ? हा मेरी माता ? मैं अपने मन्दभाग्य के कारण वैसे ही नाश को प्राप्त होने वाली हूँ; जैसे महासागर में तूफ़ान से नाव का नाश होता है ॥८॥

तरस्विनौ धारयता मृगस्य
सत्त्वेन रूपं मनुजेन्द्रपुत्रौ ।
नूनं विशस्तौ मम कारणात्तौ
सिंहर्षभौ द्वाविव वैद्युतेन ॥ ९ ॥

क्या निश्चय ही मृगरूपधारी उस राक्षस ने मेरे पीछे उन तेजस्वी और सिंहसम पराक्रमी दोनों राजपुत्रों को बिजली मारे हुए की तरह मार डाला ॥ ९ ॥

नूनं स कालो मृगरूपधारी
मामल्पभाग्यां लुलुभे तदानीम् ।
यत्रार्यपुत्रं विससर्ज मूढा
रामानुजं लक्ष्मणपूर्वजं च ॥ १० ॥

मृगरूपधारी उस काल ने अवश्य ही मुझ मन्दभाग्यवाली की बुद्धि उस समय हर ली थी। तभी तो मुझ मूढ़बुद्धि वाली ने दोनों के दोनों राजकुमारों को—अर्थात् श्रीराम और लक्ष्मण को, आश्रम के बाहिर भेज दिया था ॥ १० ॥

हा राम सत्यव्रत दीर्घबाहो
हा पूर्णचन्द्रप्रतिमानवक्त्र ।
हा जीवलोकस्य हितः प्रियश्च
वध्यां न मां वेत्सि हि राक्षसानाम् ॥ ११ ॥

हा राम ? हा सत्यव्रतधारी ? हा बड़ीबांहों वाले ? हा पूर्णिमा के चन्द्र की तरह मुख वाले ? हा प्राणीमात्र के हितैषी और प्रिय

तुम यह बात अभी नहीं जानते कि, मैं राक्षसों के हाथ से मारी जाने वाली हूँ ॥ ११ ॥

अनन्यदेवत्वमियं क्षमा च
भूमौ च शय्या नियमश्च धर्मे।
पतिव्रतात्वं विफलं ममेदं
कृतं कृतघ्नेष्विव मानुषाणाम् ॥ १२ ॥

मैं जो अपने पति को छोड़ अन्य किसी देवी देवता की मान मनौती नहीं करती—तो मेरी यह अनन्यता, मेरी यह क्षमा, मेरा भूमिशयन व्रत पातिव्रतधर्म का नियमित रूप से पालन, ये समस्त पतिव्रता स्त्रियों के पालने योग्य अनुष्ठान, वैसे ही व्यर्थ हो गए; जैसे किसी का किया हुआ उपकार कृतघ्नों में निष्फल हो जाता है ॥ १२ ॥

मोघो हि धर्मश्चरितो मयाऽयं
तथैकपत्नीत्वमिदं निरर्थम् ।
या त्वां न पश्यामि कृशा विवर्णा
हीना त्वया सङ्गमने निराशा ॥ १३ ॥

मेरा आचरित यह पातिव्रत धर्म और मेरा यह अभिमान कि, मैं श्रीराम की एकमात्र पत्नी हूँ—निष्फल हुए जाते हैं। जो मैं ऐसी दुर्बल और विवर्ण हो कर भी तुम्हारे दर्शन नहीं पा रही हूँ और तुम्हारा वियोग होने पर भी तुम्हारे संयोग से हताश हो रही हूँ ॥ १३ ॥

पितुर्निदेशं नियमेन कृत्वा
वनान्निवृत्तश्चरितव्रतश्च ।

स्त्रीभिस्तु मन्ये विपुलेक्षणाभिः
त्वं रंस्यसे वीतभयः कृतार्थः ॥ १४ ॥

तुम नियमित रूप से पिता के आज्ञापालन का व्रत समाप्त कर और वन से लौट कर भय से छूट जाओगे और कृतार्थ हो कर विशाल नयनवाली अर्थात् सुन्दरी स्त्रियों के साथ मौजें उड़ाओगे ॥ १४ ॥

अहं तु राम त्वयि जातकामा
चिरं विनाशाय निबद्धभावा ।
मोघं चरित्वाथ तपो व्रतं च
त्यक्ष्यामि धिग्जीवितमल्पभाग्या ॥ १५ ॥

किन्तु हे श्रीरामचन्द्र ! मैंने तो अपना नाश करने ही के लिए तुमको चाहा और तुमसे प्रेम बढ़ाया। मेरे व्रत और तप दोनों व्यर्थ गए, अतः मुझ अल्प भाग्यवती के जीवन को धिक्कार है अतः मैं तो अब अपने प्राण त्यागती हूँ ॥ १५ ॥

सा जीवितं क्षिप्रमहं त्यजेयं
विषेण शस्त्रेण शितेन वाऽपि ।
विषस्य दाता न हि मेऽस्ति कश्चि-
च्छस्त्रस्य वा वेश्मनि राक्षसस्य ॥ १६ ॥

मैं अपना जीवन, विष खाकर अथवा गले में पैनी कटारी मार कर शीघ्र समाप्त करती। किन्तु क्या करूं,न तो मुझे कोई विष ही ला कर देने वाला यहाँ देख पड़ता है और न मुझे इस राक्षस के घर में अपना गला काटने को शस्त्र ही मिल सकता है ॥ १६ ॥

इतीव देवी बहुधा विलप्य
सर्वात्मना राममनुस्मरन्ती ।
प्रवेपमाना परिशुष्कवक्त्रा
नगोत्तमं पुष्पितमाससाद ॥ १७ ॥

इस प्रकार देवी सीता अनेक प्रकार से विलाप करती तथा श्रीरामचन्द्र का स्मरण करती, थरथराती और मुँह सुखाए, पुष्पित एवं श्रेष्ठ (शिंशपा) वृक्ष के निकट चली गई और वहाँ जा शोक से विकल हो गई ॥ १७ ॥

शोकाभितप्ता बहुधा विचिन्त्य
सीताऽथ वेण्युद्ग्रथनं गृहीत्वा ।
उद्बध्य वेण्युद्ग्रथनेन शीघ्र-
महं गमिष्यामि यमस्य मूलम् ॥ १८ ॥

तदनन्तर बहुत कुछ सोच विचार कर, अपनी चोटी के बंधन को हाथ में ले, कहने लगी कि, मैं इसी बंधन से गले में फाँसी लगा कर, अपनी जान दे दूँगी ॥ १८ ॥

उपस्थिता सा मृदुसर्वगात्री
शाखां गृहीत्वाऽथ नगस्य तस्य ।
तस्यास्तु रामं प्रविचिन्तयन्त्या
रामानुजं स्वं च कुलं शुभाङ्ग्याः ॥ १९ ॥

इस प्रकार निश्चय कर, कोमलाङ्गी जानकी उस वृक्ष के निकट जा और उस वृक्षश्रेष्ठ की एक डाली (फाँसी लगाने के लिए)

पकड़ चुकी थी कि, इतने में जानकी को श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण की तथा अपनी कुलमर्यादा की याद आ गई ॥ १९ ॥

शोकानिमित्तानि तथा बहूनि
धैर्यार्जितानि प्रवराणि लोके ।
प्रादुर्निमित्तानि तदा बभूवुः
पुरापि सिद्धान्युपलक्षितानि ॥ २० ॥

इति अष्टाविंशः सर्गः ॥

इस बीच ही में सीता जी के शोक को नाश करने वाले और धैर्य धराने वाले तथा लोक में श्रेष्ठ समझे जाने वाले, शुभ शकुन उन्हें देख पड़े ॥ २० ॥

सुन्दरकाण्ड का अट्ठाइसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—❀—

एकोनत्रिंशः सर्गः

—❀—

तथागतां तां व्यथितामनिन्दितां
व्यपेतहर्षां परिदीनमानसाम् ।
शुभां निमित्तानि शुभानि भेजिरे
नरं श्रिया जुष्टमिवोपजीविनः ॥ १ ॥

जिस समय दुखियारी, हर्षशून्य, सन्तप्त और निन्दारहित सीता जी मरने को तैयारी कर रही थीं, उस समय वे सब शुभ शकुन उनके पास वैसे ही आ उपस्थित हुए ; जैसे किसी धनी के पास उसके नौकर चाकर आ कर उपस्थित होते हैं ॥ १ ॥

तस्याः शुभं वाममरालपक्ष्म-
राजीवृतं कृष्णविशालशुक्लम् ।
प्रास्पन्दतैकं नयनं सुकेश्या
मीनाहतं पद्ममिवाभिताम्रम् ॥ २ ॥

उन सुन्दर केशों वाली जानकी जी के चञ्चल पलकों सहित काले तारे से शोभित, विशाल, शुक्लवर्ण और लाल कोए वाला वामनेत्र, मछली द्वारा हिलाए हुए कमलपुष्प की तरह फड़कने लगा ॥ २ ॥

भुजश्च चार्वञ्चितपीनवृत्तः
परार्ध्यकालागरुचन्दनार्हः ।
अनुत्तमेनाध्युषितः प्रियेण
चिरेण वामः समवेपताशु ॥ ३ ॥

उनकी मनोहर गोल, सुडौल और मांसल वामभुजा, जो बढ़िया अगर चन्दन से चर्चित हो कर बहुत काल से अपने प्यारे पति के संयोग से वञ्चित हो रही थी, फड़कने लगी ॥ ३ ॥

गजेन्द्रहस्तप्रतिमश्च पीनः
तयोर्द्वयोः संहतयोः सुजातः ।
प्रस्पन्दमानः पुनरूरुरस्या
रामं पुरस्तात्स्थितमाचचक्षे ॥ ४ ॥

उनकी एक दूसरे से मिली हुई सी दोनों जाँघों में से वामजाँघ, जो हाथी की सूँड़ की तरह चढ़ाव उतार की थी तथा सुडौल थी,

फड़कती हुई मानों यह बतला रही थी कि, श्रीरामचन्द्र जी सीता जी के सम्मुख ही खड़े हैं ॥ ४ ॥

शुभं पुनर्हेमसमानवर्ण-
मीषद्रजोध्वस्तमिवामलाक्ष्याः ।
वासः स्थितायाः शिखराग्रदत्याः
किञ्चित्परिस्रंसत चारुगात्र्याः ॥ ५ ॥

उपमारहित आँखों वाली और अनार के दानों जैसी दन्तपंक्ति वाली सीता जी की सुनहले रंग की अर्थात् चंपई रंग की ओढ़नी, जो कुछ कुछ मैली सी हो गई थी, सिर से खसक पड़ी ॥ ५ ॥

एतैर्निमित्तैरपरैश्च सुभ्रूः
संबोधिता प्रागपि साधु सिद्धैः ।
वातातपक्लान्तमिव प्रनष्टं
वर्षेण बीजं प्रतिसञ्जहर्ष ॥ ६ ॥

हवा और घाम से नष्ट हुआ बीज जिस तरह वर्षा होने पर पुनः हराभरा हो जाता है, उसी तरह सीता जी उक्त शुभ शकुनों को देख और उनका शुभफलादेश जान कर, हर्षित हो गईं ॥ ६ ॥

तस्याः पुनर्बिम्बफलाधरोष्ठं
स्वक्षिभ्रु केशान्तमरालपक्ष्म ।
वक्त्रं बभासे सितशुक्लदंष्ट्रं
राहोर्मुखाच्चन्द्र इव प्रमुक्तः ॥ ७ ॥

कुँदरू फल की समान लाल अधरों से युक्त, सुन्दर नेत्र, सुन्दर भौंहों व केशों सहित, चञ्चल, शोभायुक्त, सफेद मोती की तरह

चमकीले दाँतों से युक्त सीता जी का मुखमण्डल, राहु से छूटे हुए पूर्णचन्द्र की तरह सुशोभित होने लगा ॥ ७ ॥

सा वीतशोका व्यपनीततन्द्री
शान्तज्वरा हर्षविबुद्धसत्त्वा ।
अशोभतार्या वदनेन शुक्ले
शीतांशुना रात्रिरिवोदितेन ॥ ८ ॥

इति एकोनत्रिंशः सर्गः ॥

उस समय श्रीसीता जी शोक, आलस्य, और सन्ताप से रहित और स्वस्थचित्त हो, अपने प्रसन्न मुखमण्डल से वैसे ही शोभाय-मान हुई, जैसी कि, शुक्लपक्ष की रात, चन्द्रमा के उदय से शोभायमान होती है ॥ ८ ॥

—सुन्दरकाण्ड का उन्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—※—

त्रिंशः सर्गः

—※—

हनुमानपि विक्रान्तः सर्वं शुश्राव तत्त्वतः ।
सीतायास्त्रिजटायाश्च राक्षसीनां च तर्जनम् ॥ १ ॥

सीता जी का विलाप, त्रिजटा के स्वप्न का वृत्तान्त और राक्षसियों की डाटडपट विक्रमशाली हनुमान जी ने सब ज्यों की त्यों सुनी ॥ १ ॥

अवेक्षमाणस्तां देवीं देवतामिव नन्दने ।
ततो बहुविधां चिन्तां चिन्तयामास वानरः ॥ २ ॥

नन्दनकानन में रहने वाली सुरसुन्दरी की तरह, अशोकवन में बैठी हुई उन देवी सीता जी को देख कर, हनुमान जी सोचने लगे ॥ २ ॥

यां कपीनां सहस्राणि सुबहून्ययुतानि च ।
दिक्षु सर्वासु मार्गन्ते सेयमासादिता मया ॥ ३ ॥

जिनको हज़ारों लाखों करोड़ों वानर चारों ओर ढूढ़ते फिर रहे हैं, उन्हें मैंने ढूँढ़ निकाला है ॥ ३ ॥

चारेण तु सुयुक्तेन शत्रोः शक्तिमवेक्षता ।
गूढेन चरता तावदवेक्षितमिदं मया ॥ ४ ॥

मैंने दूत बन कर युक्तिपूर्वक शत्रु का बल देखते देखते और छिप कर इधर उधर घूम फिर कर यह जान लिया है ॥ ४ ॥

राक्षसानां विशेषश्च पुरी चेयमवेक्षिता ।
राक्षसाधिपतेरस्य प्रभावो रावणस्य च ॥ ५ ॥

मैंने राक्षसों के ऐश्वर्य को और इस लङ्कापुरी को तथा रावण के प्रभाव के देख भाल लिया है ॥ ५ ॥

युक्तं तस्याप्रमेयस्य सर्वसत्त्वदयावतः ।
समाश्वासयितु भार्यां पतिदर्शनकाङ्क्षिणीम् ॥ ६ ॥

मुझे इस समय, अप्रमेय (अचिन्त्य प्रभाव) और सब प्राणियों पर दया करने वाले श्रीरामचन्द्र जी की पत्नी को, जो पति के दर्शन की अभिलाषिणी है, धीरज बँधाना उचित है ॥ ६ ॥

अहमाश्वासयाम्येनां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
अदृष्टदुःखां दुःखार्हां दुःखस्यान्तमगच्छतीम् ॥ ७ ॥

जिन्होंने इसके पूर्व कभी दुःख नहीं सहे और जो इस दुःख सागर में डूबती हुई पार नहीं पा रही हैं, ऐसी चन्द्रवदनी सीता को मैं धीरज बँधाता हूँ ॥ ७ ॥

यद्यप्यहमिमां देवीं शोकोपहतचेतनाम् ।
अनाश्वास्य गमिष्यामि दोषवद्गमनं भवेत् ॥ ८ ॥

यदि मैं शोक से विकल हुई इन सीता जी का समाधान किए विना ही चला जाऊँ, तो मेरा यहाँ से लौटना त्रुटिपूर्ण होगा ॥ ८ ॥

गते हि मयि तत्रेयं राजपुत्री यशस्विनी ।
परित्राणमविन्दन्ती जानकी जीवितं त्यजेत् ॥ ९ ॥

क्योंकि मेरे लौट जाने से यह यशस्विनी राजकुमारी सीता अपनी रक्षा का कोई उपाय न देख, प्राण छोड़ देंगी ॥ ९ ॥

मया च स महाबाहुः पूर्णचन्द्रनिभाननः ।
समाश्वासयितुं न्याय्यः सीतादर्शनलालसः ॥ १० ॥

सीता से मिलने की अभिलाषा रखने वाले पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान मुखमण्डल वाले महाबाहु श्रीरामचन्द्र जी को जिस प्रकार धीरज बँधाना उचित है, उसी प्रकार सीता को भी धीरज बँधाना उचित जान पड़ता है ॥ १० ॥

निशाचरीणां प्रत्यक्षमनर्हं चापि भाषणम् ।
कथं नु खलु कर्तव्यमिदं कृच्छ्रगतो ह्यहम् ॥ ११ ॥

किन्तु, इन राक्षसियों के सामने सीता जी से बातचीत करना तो उचित नहीं जान पड़ता। सो सीता से एकान्त में किस प्रकार बातचीत की जाय। यह तो एक बड़ी कठिनाई सामने उपस्थित है॥ ११॥

अनेन रात्रिशेषेण यदि नाश्वास्यते मया।
सर्वथा नास्ति सन्देहः परित्यक्ष्यति जीवितम्॥ १२॥

अब थोड़ी रात शेष रह गई है, इस बीच में यदि मैं इन्हें आश्वासन प्रदान न कर सका, तो निस्सन्देह यह अपने प्राण दे देगी॥ १२॥

रामश्च यदि पृच्छेन्मां किं मां सीताऽब्रवीद्वचः।
किमहं तं प्रतिब्रूयामसम्भाष्य सुमध्यमाम्॥ १३॥

फिर जब श्रीरामचन्द्र जी मुझसे पूँछेंगे कि सीता ने मेरे लिए तुमसे क्या सन्देशा कहा है, तो मैं बिना सीता से वार्तालाप किए उनको क्या उत्तर दूँगा॥ १३॥

सीतासन्देशरहितं मामितस्त्वरया गतम्।
निर्दहेदपि काकुत्स्थः क्रुद्धस्तीव्रेण चक्षुषा॥ १४॥

फिर सीता का संदेशा लिये बिना ही, यदि मैं लौटने में जल्दी करूँ, तो क्या श्रीरामचन्द्र जी क्रोध भरे नेत्रों से मुझे भस्म न कर डालेंगे॥ १४॥

यदि चोद्योजयिष्यामि भर्तारं रामकारणात्।
व्यर्थमागमनं तस्य ससैन्यस्य भविष्यति॥ १५॥

यदि मैं सीता से वार्तालाप किए बिना लौट कर, सुग्रीव द्वारा, श्रीराम के लिए चढ़ाई की तैयारी भी करवाऊँ और यहाँ सीता

आत्मघात कर डाले, तो सेनासहित उनका यहाँ आना सर्वथा निष्फल ही होगा ॥ १५ ॥

अन्तरं त्वहमासाद्य राक्षसीनामिह स्थितः ।
शनैराश्वासयिष्यामि सन्तापबहुलामिमाम् ॥ १६ ॥

अतः मैं अब ठहरा हूँ और ज्योंही अवसर मिला त्योंही मैं इन राक्षसियों की दृष्टि बचा चुकने से अत्यन्त सन्तप्त जानकी को धीरज बँधाऊँगा ॥ १६ ॥

अहं त्वतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः ।
वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्[१] ॥ १७ ॥

जहाँ तक मैं समझता हूँ मेरे बातचीत करने से ये राक्षसियाँ न घबड़ायेंगी—क्योंकि इस समय एक तो मैं अत्यन्त छोटे रूप में हूँ, दूसरे वानर हूँ। सो मैं मनुष्यों जैसी शुद्ध साफ बोली में बात चीत करूँगा ॥ १७ ॥

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम् ।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति ॥ १८ ॥

यदि मैं ब्राह्मणों की तरह संस्कृत भाषा में बातचीत करूँ, तो सीता मुझे रावण समझ कर, मुझसे डर जायगी ॥ १८ ॥

नोट—"द्विजातिरिव संस्कृताम् ।"—यह वाक्य सूचित करता है कि रामायण काल में ब्राह्मण बातचीत संस्कृत भाषा में ही किया करते थे। तत्कालीन यज्ञीय भाषा संस्कृत ही थी।

वानरस्य विशेषेण कथं स्यादभिभाषणम् ।
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत् ॥ १९ ॥

---

१ संस्कृताम्—प्रयोगसौष्ठवलक्षणसंस्कारयुक्तां । (गो०)

क्योंकि सीता जी के मन में यह सन्देह उत्पन्न हो जायगा कि, बंदर क्योंकर संस्कृतभाषा बोल रहा है, सो वह मुझे बनावटी वानर समझ कर मुझसे डर जायगा। अतः मुझे उचित है कि, मैं इसे मनुष्यों की साधारण बोलचाल में समझाऊँ ॥ १९ ॥

मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता ।
सेयमालोक्य मे रूपं जानकी भाषितं तथा ॥ २० ॥
रक्षोभिस्त्रासिता पूर्वं भूयस्त्रासं गमिष्यति ।
ततो जातपरित्रासा शब्दं कुर्यान्मनस्विनी ॥ २१ ॥
जानानामां विशालाक्षी रावणं कामरूपिणम् ।
सीतया च कृते शब्दे सहसा राक्षसीगणः ॥ २२ ॥

नहीं तो मैं अन्य किसी प्रकार से इन अनिन्दिता सीता को न समझा सकूँगा। जानकी जी पहले ही राक्षसों से त्रस्त हैं अतः मुझे वानर के रूप में मनुष्य के समान बातें करते देख, सीता और अधिक डर जायगी। सो डर कर और मुझे काम रूपी रावण जान कर, यदि दुखियारी सीता चिल्ला उठी, तो सीता का सहसा चिल्लाना सुन ये राक्षसियाँ, ॥२० ॥ २१ ॥ २२ ॥

नानाप्रहरणो घोरः समेयादन्तकोपमः ।
ततो मां सम्परिक्षिप्य सर्वतो विकृताननाः ॥ २३ ॥

जो यमराज के समान भयङ्कर हैं विविध प्रकार के अस्त्र शस्त्र ले कर आ जायंगी और मुझे चारों ओर से घेर कर, ये जलमुँही ॥ २३ ॥

वधे च ग्रहणे चैव कुर्युर्यत्नं यथाबलम् ।
गृह्य शाखाः प्रशाखाश्च स्कन्धांश्चोत्तमशाखिनाम् ॥२४॥

मुझे मार डालने या पकड़ लेने के लिए कोई बात उठा न रखेंगी। तब यही होगा कि, मैं पेड़ों की डालों और गुद्दों पर दौड़ता फिरूँगा ॥ २४ ॥

दृष्ट्वा विपरिधावन्तं भवेयुर्भयशङ्किताः ।
मम रूपं च सम्प्रेक्ष्य वने विचरतो महत् ॥ २५ ॥
राक्षस्यो भयवित्रस्ता भवेयुर्विकृताननाः ।
ततः कुर्युः समाह्वानं राक्षस्यो रक्षसामपि ॥ २६ ॥

तब मुझको इस प्रकार दौड़ते देख, ये राक्षसी डर जायँगी। मेरे रूप को और मुझको महावन में फिरते देख और भी अधिक डरेंगी और डर कर उन राक्षसों को भी पुकारेंगी, ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥

राक्षसेन्द्रनियुक्तानां राक्षसेन्द्रनिवेशने ।
ते शूलशक्तिनिस्त्रिंशविविधायुधपाणयः ॥ २७ ॥

जो रावण के घर में रखवाली के लिए रावण द्वारा नियुक्त किए गए हैं। तब वे शूल, शक्ति, बाण, भाला आदि तरह तरह के हथियार हाथों में ले लेकर, ॥ २७ ॥

आपतेयुरिमर्देऽस्मिन्वेगेनोद्वेगकारिणः ।
संरुद्धस्तैः सुपरितो विधमन्रक्षसां बलम् ॥ २८ ॥

और उत्तेजित हो बड़े वेग से आ जायँगे और मुझे चारों ओर से घेर लेंगे। तब मैं उस राक्षसीसेना का नाश तो (अवश्य ही) कर डालूँगा ॥ २८ ॥

शक्नुयां न तु सम्प्राप्तुं परं पारं महोदधेः ।
मां वा गृह्णीयुराप्लुत्य बहवः शीघ्रकारिणः ॥२९ ॥

किन्तु उनके साथ युद्ध करते करते थक जाने के कारण लौट कर समुद्र पार न जा सकूँगा। यदि बहुत से फुर्तीले राक्षसों ने मुझे कूदते हुए पकड़ लिया ॥ २९ ॥

स्यादियं [1]चागृहीतार्था मम च ग्रहणं भवेत्।
हिंसाभिरुचयो हिंस्युरिमां वा जनकात्मजाम् ॥३० ॥

तो सीता को श्रीरामचन्द्र जी का संदेशा नहीं मिलेगा और मैं तो पकड़ा जाऊँगा ही। फिर हिंसाप्रिय ये राक्षस चाहे मुझे अथवा जानकी ही को मार डालें ॥ ३० ॥

विपन्नं स्यात्ततः कार्यं रामसुग्रीवयोरिदम्।
उद्देशे नष्टमार्गेऽस्मिन्राक्षसैः परिवारिते ॥ ३१ ॥
सागरेण परिक्षिप्ते गुप्ते वसति जानकी।
विशस्ते वा गृहीते वा रक्षोभिर्मयि संयुगे ॥ ३२ ॥

तब तो श्रीरामचन्द्र जी का और सुग्रीव का यह कार्य ही बिगड़ जायगा। क्योंकि जानकी जी ऐसे स्थान में हैं जहाँ का मार्ग कोई नहीं जानता और राक्षसों से घिरा हुआ (अर्थात् सुरक्षित) है। इतना ही नहीं; बल्कि चारों ओर समुद्र से घिरा है, ऐसे गुप्त (अथवा सुरक्षित) स्थान में जानकी जो आ फँसी हैं कि, युद्ध में राक्षसों द्वारा मेरे मारे जाने या पकड़े जाने पर, ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

नान्यं पश्यामि रामस्य साहाय्यं कार्यसाधने।
विमृशंश्च न पश्यामि यो हते मयि वानरः ॥ ३३ ॥

१अगृहीतार्था—अविदितरामसन्देशार्था। (गो॰)

मैं ऐसा किसी को नहीं देखता जो श्रीरामचन्द्र जी का यह काम पूरा कर सके। क्योंकि बहुत सोचने पर भी मेरे मारे जाने पर कोई ऐसा वानर मुझे नहीं देख पड़ता है ॥ ३३ ॥

शतयोजनविस्तीर्णं लङ्घयेत महोदधिम् ।
कामं हन्तु समर्थोऽस्मि सहस्राण्यपि रक्षसाम् ॥ ३४ ॥

जो सौ योजन पाट वाले समुद्र को लाँघ कर, यहाँ आ सके। मैं यदि चाहूँ तो हज़ारों राक्षसों को मार सकता हूँ ॥ ३४ ॥

न तु शक्ष्यामि सम्प्राप्तुं परं पारं महोदधेः ।
असत्यानि च युद्धानि संशयो मे न रोचते ॥ ३५ ॥

किन्तु फिर मैं लौट कर समुद्र पार नहीं जा सकता। युद्ध में जीत हार का कुछ निश्चय नहीं है। अतः ऐसे सन्दिग्ध कार्य में हाथ डालना मुझे पसंद नहीं ॥ ३५ ॥

कश्च निःसंशयं कार्यं कुर्यात्प्राज्ञः ससंशयम् ।
प्राणत्यागश्च वैदेह्या भवेदनभिभाषणे ॥ ३६ ॥

ऐसा कौन पुरुष होगा, जो पण्डित हो कर किसी सन्दिग्ध कार्य में, निस्सन्देह हो कर प्रवृत्त हो। फिर सीता जी से बातचीत न करने से सीता जी के प्राण जाने का भी तो सन्देह है ॥ ३६ ॥

एष दोषो महानिह स्यान्मम सीताभिभाषणे ।
[1]भूताश्चार्था विनश्यन्ति देशकालविरोधिताः ॥ ३७ ॥

---

१ भूताश्चार्थाः—निष्पन्नार्थाः। (गो०)

विक्लवं[1] दूतमासाद्य तमः सूर्योदये यथा ।
[2]अर्थानर्थान्तरे बुद्धिः[3] निश्चिताऽपि[4] न शोभते ३८ ॥
घातयन्ति हि कार्याणि दूताः पण्डितमानिनः ।
न विनश्येत्कथं कार्यं [5]वैक्लव्यं न कथं भवेत् ॥ ३९ ॥

और बोलने से ये बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ हैं। बनाबनाया काम भी, देश और काल के विपरीत कार्य करने से और असावधान अथवा अविवेकी दूत के हाथ में पड़ने से वैसे ही नष्ट हो जाता है, जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार। फिर स्वामी अथवा मन्त्रिवर्ग द्वारा कर्त्तव्य अकर्त्तव्य के विषय में निश्चय हो जाने पर भी, असावधानतावश और पण्डितंमन्य दूत के हाथ में पड़ने से भी कार्य बिगड़ जाता है। क्या करने से काम न बिगड़े और मेरी बुद्धि हीनता न समझी जाय ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

लङ्घनं च समुद्रस्य कथं नु न वृथा भवेत् ।
कथं नु खलु वाक्यं मे शृणुयान्नोद्विजेत वा ॥ ४० ॥

मेरा समुद्र का लाँघना क्योंकर वृथा न हो और क्योंकर मेरी बातचीत सीता जी सुनें और सुन कर क्षुब्ध न हों ॥ ४० ॥

इति सञ्चिन्त्य हनुमांश्चकार [6]मतिमान्मतिम् ।
राममक्लिष्टकर्माणं स्वबन्धुमनुकीर्तयन् ॥ ४१ ॥

---

१ विक्लवं—अविवेकिनं । (गो०); अनवधानं । (शि०) २ अर्थानर्थान्तरे—कार्याकार्यविषये । (गो०); बुद्धि—विक्लवं दूतमासाद्य न शोभते । अकिंचित्कराभिभवतीत्यर्थः । (गो०) ४ निश्चितापि—स्वामिना सचिवैः सह निश्चितापि । (गो०) ५ वैक्लव्यं—बुद्धिहीनता । (गो०) ६ मतिमान्—प्रशस्तमतिः । (गो०)

इस प्रकार सोचने विचारते बड़े बुद्धिमान हनुमान जी ने अपने मन में यह निश्चय किया कि, अब मैं अक्लिष्टकर्मा श्रीरामचन्द्र जी की कथा कहना आरम्भ करूँ ॥ ४१ ॥

नैनामुद्वेजयिष्यामि तद्बन्धुगतमानसाम् ।
इक्ष्वाकूणां वरिष्ठस्य रामस्य विदितात्मनः ॥४२ ॥
शुभानि धर्मयुक्तानि वचनानि समर्पयन् ।
श्रावयिष्यामि सर्वाणि मधुरां प्रब्रुवन्गिरम् ।
श्रद्धास्यति यथा हीयं तथा सर्वं समादधे ॥ ४३ ॥

इससे सीता जी क्षुब्ध नहीं होंगी । क्योंकि सीता जी का ध्यान सदा श्रीरामचन्द्र जी ही में लगा रहता है। इक्ष्वाकुवंशियों में श्रेष्ठ, प्रसिद्ध अथवा आत्मज्ञानी श्रीरामचन्द्र जी के शुभ और धर्मयुक्त संदेशे को मधुर वाणी से मैं सुनाऊँगा । जिससे सीता को मेरी बातों में विश्वास हो, मैं वैसा ही करूँगा ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

इति स बहुविधं महानुभावो
जगतिपतेः प्रमदामवेक्षमाणः ।
मधुरमवितथं जगाद वाक्यं
द्रुमविटपान्तरमास्थितो हनूमान् ॥ ४४ ॥

इति त्रिंशः सर्गः ॥

इस प्रकार अनेक प्रकार से सोच विचार कर, (अखिल ब्रह्माण्डनायक) भूपति श्रीरामचन्द्र जी की भार्या जानकी जी को

---

१ अवितथं—मृषासंसर्ग शून्यं (शि०)

देख कर, महानुभाव हनुमान् जी ने, उस वृक्ष की डाली पर बैठे ही बैठे, मधुर किन्तु सत्य शब्दों में श्रीराम जी का संदेशा कहना आरम्भ किया ॥ ४४ ॥

सुन्दरकाण्ड का तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—:o:—

एकत्रिंशः सर्गः

—:o:—

एवं बहुविधां चिन्तां चिन्तयित्वा महाकपिः ।
संश्रवे मधुरं वाक्यं वैदेह्या व्याजहार ह ॥ १ ॥

इस प्रकार बहुत कुछ सोच विचार कर, हनुमान जी, सीता जी को सुनाते हुए, इस प्रकार के मधुर वचन कहने लगे ॥ १ ॥

राजा दशरथो नाम रथकुञ्जरवाजिमान् ।
पुण्यशीलो महाकीर्त्तिरृजुरासीन्महायशाः ॥ २ ॥

दशरथ नाम के एक राजा थे, जो बड़े पुण्यात्मा, बड़ी कीर्ति वाले, सरल और महायशस्वी थे । उनके बहुत से रथ, हाथी और घोड़े थे ॥ २ ॥

राजर्षीणां गुणश्रेष्ठस्तपसा चर्षिभिः समः ।
चक्रवर्तिकुले जातः पुरन्दरसमो बले ॥ ३ ॥

वे अपने गुणों से राजर्षियों में श्रेष्ठ माने जाते थे और तप में वे ऋषियों के तुल्य थे । उनका जन्म चक्रवर्ती कुल में हुआ था और बल में वे इन्द्र के समान थे ॥ ३ ॥

अहिंसारतिरक्षुद्रो घृणी सत्यपराक्रमः ।

मुख्यश्चेक्ष्वाकुवंशस्य लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मिवर्धनः ॥४॥

वे हिंसा से दूर रहते थे और क्षुद्र लोगों का संसर्ग नहीं करते थे। वे बड़े दयालु थे और सत्यपराक्रमी थे। वे इक्ष्वाकुवंशियों में श्रेष्ठ समझे जाते थे और बड़ी कान्ति वाले और सम्पत्ति और वैभव के बढ़ाने वाले थे ॥ ४ ॥

पार्थिवव्यञ्जनैर्युक्तः पृथुश्रीः पार्थिवर्षभः ।

पृथिव्यां चतुरन्तायां विश्रुतः सुखदः सुखी ॥५॥

वे राजलक्षणों से युक्त, अति शोभावान और राजाओं में श्रेष्ठ थे। चारों समुद्रपर्यन्त समस्त पृथिवी मण्डल में वे प्रसिद्ध थे। वे स्वयं सुखी रहते थे और अपनी प्रजा तथा आश्रित जनों को भी सुख देने वाले थे ॥ ५ ॥

तस्य पुत्रः प्रियो ज्येष्ठस्ताराधिपनिभाननः ।

रामो नाम विशेषज्ञः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥६॥

चन्द्रमा की तरह मुख वाले सकल शास्त्र और वेदों के विशेष जानने वाले और सब धनुर्धरों में श्रेष्ठ उनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामचन्द्र जी, उनको बहुत प्रिय थे ॥ ६ ॥

रक्षिता स्वस्य *वृत्तस्य †स्वजनस्यापि रक्षिता ।

रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य च परन्तपः ॥७॥

यह (श्रीराम जी) अपने चरित्र की रक्षा करने वाले और अपने जनों का प्रतिपालन करने वाले हैं। यही नहीं, बल्कि ये संसार के जीवमात्र के रक्षक तथा धर्म की भी मर्यादा रखने वाले हैं और शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले हैं ॥ ७ ॥

* पाठान्तरे—"धर्मस्य।" †पाठान्तरे—"स्वजनस्य च।"

तस्य सत्याभिसन्धस्य वृद्धस्य वचनात्पितुः ।
सभार्यः सह च भ्रात्रा वीरः प्रव्राजितो वनम् ॥८॥

वीर श्रीरामचन्द्र जी, अपने सत्यप्रतिज्ञ एवं वृद्ध पिता के आज्ञानुसार अपनी पत्नी और भाई के साथ वन में भेजे गए ॥ ८॥

तेन तत्र महारण्ये मृगयां परिधावता ।
राक्षसा निहताः शूरा बहवः कामरूपिणः ॥९॥

वन में आ, उन्होंने शिकार खेलते हुए बहुत से यथेच्छ रूप-धारी और बड़े शूर राक्षसों का संहार किया ॥ ९ ॥

जनस्थानवधं श्रुत्वा हतौ च खरदूषणौ ।
ततस्त्वमर्षापहृता जानकी रावणेन तु ॥१०॥

जनस्थानवासी चौदह हज़ार राक्षसों तथा खरदूषण का मारा जाना सुन, रावण ने कुपित हो, जानकी जी को हरा ॥ १० ॥

वञ्चयित्वा वने रामं मृगरूपेण मायया ।
स मार्गमाणस्तां देवीं रामः सीतामनिन्दिताम् ॥११॥

हरने के समय उसने मायामृग के रूप में, श्रीरामचन्द्र जी को वन में धोखा दिया। तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी ने अपनी उस सुन्दरी पत्नी को ढूँढ़ते हुए ॥ ११ ॥

आससाद वने मित्रं सुग्रीवं नाम वानरम् ।
ततः स वालिनं हत्वा रामः परपुरञ्जयः ॥१२॥

वन में सुग्रीव नामक वानर से मैत्री की। शत्रुपुर को जीतने वाले श्रीरामचन्द्रजी ने वालि नामक वानर को मार कर, ॥ १२ ॥

आयच्छत्कपिराज्यं तत्सुग्रीवाय महाबलः ।
सुग्रीवेणापि सन्दिष्टा हरयः कामरूपिणः ॥१३॥

महाबली सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य दे दिया । तब सुग्रीव ने भी यथेच्छ-रूप-धारी वानरों को श्रीरामपत्नी को ढूँढ़ने की आज्ञा दी ॥ १३ ॥

दिक्षु सर्वासु तां देवीं विचिन्वन्ति सहस्रशः ।
अहं सम्पातिवचनाच्छतयोजनमायतम् ॥१४॥

तदनुसार हज़ारों वानर उन देवी को ढूँढ़ते हुए, चारों दिशाओं में घूम रहे हैं। (उन्हीं में से एक) मैंने संपाति के कहने से सौ योजन विस्तार वाले ॥ १४ ॥

अस्या हेतोर्विशालाक्ष्याः सागरं वेगवान्प्लुतः ।
यथारूपां यथावर्णां यथालक्ष्मीं च निश्चिताम् ॥१५॥

समुद्र को, इस देवी के लिये बड़े वेग से नाँघा है। मैंने सीता देवी का जैसा रूप रंग और उनकी कान्ति ॥ १५ ॥

अश्रौषं राघवस्याहं सेयमासादिता मया ।
विररामैवमुक्त्वासौ वाचं वानरपुङ्गवः ॥१६॥

श्रीरामचन्द्र जी के मुख से सुनी थी, वैसे ही मैंने इनमें पाई है। इतना कह कर, हनुमान जी चुप हो गए ॥ १६ ॥

जानकी चापि तच्छ्रुत्वा विस्मयं परमं गता ।
ततः सा वक्रकेशान्ता सुकेशी केशसंवृतम् ।
उन्नम्य वदनं भीरुः शिंशुपावृक्षमैक्षत ॥१७॥

उधर ये सब वृत्तान्त सुन जानकीजी को बड़ा अचम्भा हुआ। तदनन्तर घुँघराले और काले महीन केशों वाली जानकी, केशों से आच्छादित अपने मुख को ऊपर उठा कर, उस शीशम के वृक्ष को देखने लगी ॥ १७ ॥

निशम्य सीता वचनं कपेश्च -
दिशश्च सर्वाः प्रदिशश्च वीक्ष्य ।
स्वयं प्रहर्षं परमं जगाम
[1]सर्वात्मना राममनुस्मरन्ती ॥१८॥

सीता हनुमान जी के ये वचन सुन, चारों ओर देख तथा सब प्रकार से श्रीरामचन्द्र जी का स्मरण करती हुई, आपसे आप अत्यन्त हर्षित हुई ॥ १८ ॥

सा तिर्यगूर्ध्वं च तथाप्यधस्ता-
न्निरीक्षमाणा तमचिन्त्यबुद्धिम् ।
ददर्श पिङ्गाधिपतेरमात्यं
वातात्मजं सूर्यमिवोदयस्थम् ॥१९॥

इति एकत्रिंशः सर्गः ॥

तदनन्तर सीता इधर उधर, ऊपर नीचे देखने लगीं। तब सीता ने उदयकालीन सूर्य की तरह वानरराज सुग्रीव के मंत्री एवं असाधारण बुद्धिसम्पन्न पवननन्दन हनुमान जी को देखा ॥ १९॥

सुन्दरकाण्ड का इकतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

१ सर्वात्मना—सर्वप्रकारेण। (शि०)

द्वात्रिंशः सर्गः

—※—

ततः शाखान्तरे लीनं दृष्ट्वा चलितमानसा ।
वेष्टितार्जुनवस्त्रं तं विद्युत्संघातपिङ्गलम् ॥१॥
सा ददर्श कपिं तत्र प्रश्रितं प्रियवादिनम् ।
फुल्लाशोकोत्कराभासं तप्तचामीकरेक्षणम् ॥२॥
मैथिली चिन्तयामास विस्मयं परमं गता ।
अहो भीममिदं रूपं वानरस्य दुरासदम् ॥३॥

शाखाओं में छिपे, अर्जुन वृक्ष के हरे रंग के वस्त्र पहिने, बिजली के समूह की तरह पीले, प्रियभाषी, अशोक के फूलों के ढेर की तरह कान्तिमान, सोने के सदृश पीले नेत्रों वाले और अति नम्र होकर बैठे हुए हनुमान जी को देख, सीता जी घबड़ा गई और बहुत विस्मित हुई। वे कहने लगीं, अरे! इस दुर्धर्ष वानर का रूप तो बड़ा भयानक है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

दुर्निरीक्ष्यमिति ज्ञात्वा पुनरेव मुमोह सा ।
विललाप भृशं सीता करुणं भयमोहिता ॥४॥

और देखा नहीं जा सकता। यह जान कर सीता मूर्छित हो गई। फिर वे भय से मोहित और दुःख से कातर हो, बहुत विलाप करने लगीं ॥ ४ ॥

राम रामेति दुःखार्ता लक्ष्मणेति च भामिनी ।
रुरोद बहुधा सीता मन्दं मन्दस्वरा सती ॥५॥

धीमे स्वर वाली दुःखियारी सती सीता, हा राम ! हा लक्ष्मण !! कह कर, धीमी आवाज़ से बहुत रोईं ॥ ५ ॥

सा तं दृष्ट्वा हरिश्रेष्ठं विनीतवदुपस्थितम् ।
मैथिली चिन्तयामास स्वप्नोऽयमिति भामिनी ॥६॥

विनम्रभाव से उपस्थित कपिश्रेष्ठ हनुमान जी को देख, जानकी जी ने विचारा कि, कहीं मैं स्वप्न तो नहीं देख रही ॥६॥

सा वीक्षमाणा पृथुभुग्नवक्त्रं
शाखामृगेन्द्रस्य यथोक्तकारम्[1] ।
ददर्श *पिङ्गप्रवरं महार्हं
वातात्मजं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ॥७॥

सीता जी ने जब ऊपर मुख करके देखा ; तब उन्हें पुनः उन आज्ञाकारी, पवननन्दन हनुमान जी का विशाल टेढ़ा मुख देख पड़ा जो; वानरों में तथा बुद्धिमानों में श्रेष्ठ थे और मूल्यवान आभूषण पहिनने योग्य थे ॥७॥

सा तं समीक्ष्यैव भृशं विसंज्ञा
गतासुकल्पेव बभूव सीता ।
चिरेण संज्ञां प्रतिलभ्य भूयो
विचिन्तयामास विशालनेत्रा ॥८॥

उस समय सीता बहुत डर गईं और ऐसी मूर्छित सी हो गईं, (अर्थात् सकपका गईं) मानों मृतप्राय हो गई हों। फिर बहुत देर बाद सचेत हो, वे विशालनयनी सीता विचारने लगीं ॥८॥

---

१ यथोक्तकारं—आज्ञाकरं। (गो०) * पाठान्तरे—" पिङ्गाधिपेतरमात्यं।"

स्वप्ने मयाऽयं विकृतोऽद्य दृष्टः
शाखामृगः शास्त्रगणैर्निषिद्धः
स्वस्त्यस्तु रामाय सलक्ष्मणाय
तथा पितुर्मे जनकस्य राज्ञः ॥ ९ ॥

आज मैंने यह बड़ा बुरा स्वप्न देखा है। (बुरा क्यों ?) क्योंकि स्वप्न में वानर का देखना शास्त्र में बुरा बतलाया गया है। सो लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्र जी का तथा मेरे पिता महाराज जनकजी का मङ्गल हो ॥ ९ ॥

[नोट—स्वप्नाध्यायानुसार स्वप्न में वानर का देखना बन्धुओं के लिए अनिष्टकर माना गया है।]

स्वप्नोऽपि नायं न हि मेऽस्ति निद्रा
शोकेन दुःखेन च पीडितायाः।
सुखं हि मे नास्ति यतोऽस्मि हीना
तेनेन्दुपूर्णप्रतिमाननेन ॥ १० ॥

(जानकी जी फिर विचार कर कहने लगीं) यह स्वप्न तो नहीं है। क्योंकि मैं सो थोड़े ही रही हूँ जो स्वप्न देखती। भला मुझ शोक और दुःख से पीड़ित को नींद कब आने लगी। निद्रा तो सुखियों को आती है। सो जब से मेरा उन चन्द्रमुख श्रीरामचन्द्र जी से विछोह हुआ है, तब से मुझे सुख कैसा ॥ १० ॥

रामेति रामेति सदैव बुद्ध्या
विचिन्त्य वाचा ब्रुवती तमेव।
तस्यानुरूपां च कथां तमर्थम्
एवं प्रपश्यामि तथा शृणोमि ॥ ११ ॥

इनका कारण तो मुझे यह जान पड़ता है कि, मैं रात दिन श्रीराम जी के ध्यान में रहती और श्रीराम जी का नाम रटा करती हूँ। अतः मुझे तदनुरूप ही देख और सुन पड़ता है ॥ ११ ॥

अहं हि तस्याद्य मनोभवेन
सम्पीडिता तद्गतसर्वभावा ।
विचिन्तयन्ती सततं तमेव
तथैव पश्यामि तथा शृणोमि ॥ १२ ॥

सदा की भाँति आज भी मैं (उन्हींके वियोग में) कन्दर्प से पीड़ित हो बैठी हुई, उनका ध्यान कर रही थी। फिर मैं तो सदा उन्हींका ध्यान किया करती हूँ। इसीसे मुझे वैसा ही दिखलाई और सुनाई पड़ता है ॥ १२ ॥

मनोरथः स्यादिति चिन्तयामि
तथाऽपि बुद्ध्या च वितर्कयामि ।
किं कारणं तस्य हि नास्ति रूपं
सुव्यक्तरूपश्च वदत्ययं माम् ॥ १३ ॥

किन्तु इसका कारण तो मेरा मनोरथ है। यह बात मैं समझती हूँ, तो भी बुद्धि इस बात को ग्रहण नहीं करती—क्योंकि मेरे मनोरथ का ऐसा रूप नहीं जान पड़ता। अर्थात् मेरा मनोरथ तो श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन का है, किन्तु यह तो वानर (का दर्शन) है और यह वानर मुझसे साफ साफ बोल भी रहा है; इसका कारण क्या है? ॥ १३ ॥

नमोऽस्तु वाचस्पतये सवज्रिणे
स्वयंभुवे चैव हुताशनाय च ।

अनेन चोक्तं यदिदं ममाग्रतो
वनौकसा तच्च तथाऽस्तु नान्यथा ॥१४॥
इति द्वात्रिंशः सर्गः।

मैं बृहस्पति, इन्द्र, ब्रह्मा और अग्नि को प्रणाम करती हूँ और प्रार्थना करती हूँ कि, इस वानर ने जो मेरे सामने अभी कहा है, वह सच निकले, और अन्यथा न हो ॥ १४ ॥

सुन्दरकाण्ड का बत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

त्रयस्त्रिंशः सर्गः

—*—

सोऽवतीर्य द्रुमात्तस्माद्विद्रुमप्रतिमाननः ।
विनीतवेषः कृपणः प्रणिपत्योपसृत्य च ॥ १ ॥
तामब्रवीन्महातेजा हनूमान्मारुतात्मजः ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय सीतां मधुरया गिरा ॥ २ ॥

इतने में मूंगे के समान लाल मुख वाले, महातेजस्वी हनुमान जी, वृक्ष की ऊँची शाखा से नीचे की शाखा* पर उतर आये और सीता के निकट जा प्रणाम कर, हाथ जोड़े हुए, अर्थात् नम्र और दीनभाव से, मधुर वाणी से बोले ॥ १ ॥ २ ॥

नोट—[आदि कवि ने यहाँ हनुमानजी के मुख को ("विद्रुमप्रतिमाननः") मूंगे जैसा लाल बतलाया है। इससे जान पड़ता है कि पवननन्दन का केवल चेहरा ही लाल था। सारा शरीर नहीं। किन्तु हमारे भारतवासी महावीरभक्त उनकी प्रतिमा पर चन्दन लगा उनका सारा शरीर लाल कर देते हैं। ऐसा करना ठीक नहीं।]

*ऊँची शाखा से नीची शाखा पर इसलिये कहा कि इसी सर्ग के १५ वें श्लोक में हनुमान जी का विशेषण—"द्रुमाश्रितम्" आया है।

का नु पद्मपलाशाक्षि क्लिष्टकौशेयवासिनि ।
द्रुमस्य शाखामालम्ब्य तिष्ठसि त्वमनिन्दिते ॥ ३ ॥

हे कमलनयनी ! हे सर्वाङ्गसुन्दरी ! तुम कौन हो, जो ऐसे मैले कपड़े पहिने और पेड़ की डाली पकड़े हुए खड़ी हो ? ॥३॥

किमर्थं तव नेत्राभ्यां वारि स्रवति शोकजम् ।
पुण्डरीकपलाशाभ्यां विप्रकीर्णमिवोदकम् ॥ ४ ॥

कमलपत्र से जलबिन्दु टपकने की तरह, तुम्हारे नेत्रों से, शोक से उत्पन्न ये आँसू क्यों टपक रहे हैं ? ॥ ४ ॥

सुराणामसुराणां वा नागगन्धर्वरक्षसाम् ।
यक्षाणां किन्नराणां वा का त्वं भवसि शोभने ॥ ५ ॥

हे शोभने ! सुरों, असुरों, नागों, गन्धर्वों, राक्षसों, यक्षों, किन्नरों में से तुम कौन हो ? ॥ ५ ॥

का त्वं भवसि रुद्राणां मरुतां वा वरानने ।
वसूनां वा वरारोहे देवता प्रतिभासि मे ॥ ६ ॥

हे चारुवदने ! अथवा तुम रुद्रों, वायुओं या वसुओं में से कोई हो ? क्योंकि तुम तो मुझे देवता जैसी जान पड़ रही हो ॥ ६ ॥

किंनु चन्द्रमसा हीना पतिता विबुधालयात् ।
रोहिणी ज्योतिषां श्रेष्ठा*श्रेष्ठा सर्वगुणान्विता ॥ ७ ॥

अथवा तुम नक्षत्रों में श्रेष्ठ तथा सर्वगुणआगरियों में श्रेष्ठ रोहिणी तो नहीं हो, चन्द्रमा के वियोगजन्य शोक से ग्रसित हो, स्वर्ग से पृथिवी पर आ गिरी हो ? ॥ ७ ॥

---

*पाठान्तरे—"श्रेष्ठ ।"

का त्वं भवसि कल्याणि त्वमनिन्दितलोचने ।
कोपाद्वा यदि वा मोहाद्भर्तारमसितेक्षणे ॥ ८ ॥
वसिष्ठं कोपयित्वा त्वं नासि कल्याण्यरुन्धती ।
को नु पुत्रः पिता भ्राता भर्ता वा ते सुमध्यमे ॥ ९ ॥

हे सुन्दर नेत्रों वाली कल्याणी! तुम कौन हो? हे काले नेत्रों वाली! कोप या मोह वश, तुम अपने पति वसिष्ठ को, कुपित कर, यहाँ आई हुई अरुन्धती तो नहीं हो? हे सुमध्यमे! यह तो बतलाओ कि, कहाँ तुम्हारा पुत्र, पिता, भाई, अथवा पति तो ॥ ८ ॥ ९ ॥

अस्माल्लोकादमुं लोकं गतं त्वमनुशोचसि ।
रोदनादतिनिःश्वासाद्भूमिसंस्पर्शनादपि ॥ १० ॥

इस लोक से परलोक को नहीं चला गया, जिसके लिए तुम शोक कर रही हो? तुम्हारे रोने, निश्वास छोड़ने और भूमिस्पर्श करने से ॥ १० ॥

न त्वां देवीमहं मन्ये राज्ञः संज्ञावधारणात् ।
[1]व्यञ्जनानि च ते यानि लक्षणानि च लक्षये ॥ ११ ॥

यह तो मुझे निश्चय हो गया कि, तुम देवता नहीं हो। (क्योंकि देवता ये काम नहीं करते) फिर तुम बार बार महाराज श्रीरामचन्द्र जी का नाम ले रही हो। अतः तुम्हारे स्तन जंघा आदि शरीर के अवयवों की गठन तथा सामुद्रिकशास्त्र में वर्णित अन्य शारीरिक लक्षणों को देखने से ॥ ११ ॥

---

१ व्यञ्जनानि—स्तनजघनादीनि। (गो०)

महिषी भूमिपालस्य राजकन्याऽसि मे मता।
रावणेन जनस्थानाद्बलादपहृता यदि ॥ १२ ॥

मुझे निश्चित रूप से ज्ञान पड़ता है कि, तुम किसी भूपाल की पटरानी और राजकन्या हो। रावण राजस्थान से बरजोरी जिसको हर लाया था, यदि ॥ १२ ॥

सीता त्वमसि भद्रं ते तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः।
यथा हि तव वै दैन्यं रूपं चाप्यतिमानुषम्[१] ॥ १३ ॥

तुम वही सीता हो; जो मैं तुम से पूँछता हूँ मुझे बतला दो। तुम्हारा भला हो। क्योंकि तुम्हारी दीनता से, तुम्हारे अत्यद्भुत रूप से ॥ १३ ॥

तपसा चान्वितो वेषस्त्वं राममहिषी ध्रुवम्।
सा तस्य वचनं श्रुत्वा रामकीर्तनहर्षिता ॥ १४ ॥

और तुम्हारे तपस्विनी के वेश से तुम निश्चय ही मुझे श्री-राम-पत्नी जान पड़ती हो। हनुमान जी के इन वचनों को तथा श्री रामजी की बड़ाई सुन, सीता जी हर्षित हो गईं ॥ १४ ॥

उवाच वाक्यं वैदेही हनुमन्तं द्रुमाश्रितम्।
पृथिव्यां राजसिंहानां मुख्यस्य विदितात्मनः ॥ १५ ॥

वृक्ष पर बैठे हनुमान जी से वैदेही कहने लगी—हे कपे! पृथिवी के समस्त श्रेष्ठ राजाओं में मुख्य एवं प्रसिद्ध ॥ १५ ॥

स्नुषा दशरथस्याहं शत्रुसैन्यप्रमाथिनः * ।
दुहिता जनकस्याहं वैदेहस्य महात्मनः ॥ १६ ॥

---

१ अतिमानुषम्—अत्यद्भुतमित्यर्थः (रा०) * पाठान्तरे—"प्रतापिनः", "प्रणाशिनः।"

और शत्रुसैन्यहन्ता महाराज दशरथ की मैं पतोहू और महात्मा विदेह राजा जनक की मैं बेटी हूँ ॥ १६ ॥

सीता च नाम नाम्नाऽहं भार्या रामस्य धीमतः ।
समा द्वादश तत्राऽहं राघवस्य निवेशने ॥ १७ ॥

मेरा नाम सीता है, और बुद्धिमान श्रीरामचन्द्र जी की मैं पत्नी हूँ । बारह वर्षों तक मैं श्रीरामचन्द्र जी के घर में ॥ १७ ॥

भुञ्जाना मानुषान्भोगान्सर्वकामसमृद्धिनी ।
तत्र त्रयोदशे वर्षे राज्येनेक्ष्वाकुनन्दनम् ॥ १८ ॥
अभिषेचयितुं राजा सोपाध्यायः प्रचक्रमे ।
तस्मिन्सं भ्रियमाणे तु राघवस्याभिषेचने ॥ १९ ॥

सब कामनाओं से परिपूर्ण हो, मनुष्योपयोगी समस्त पदार्थों का उपभोग करती रही । तदनन्तर तेरहवें वर्ष महाराज दशरथ ने वसिष्ठ जी की सलाह से इक्ष्वाकुनन्दन श्रीरामचन्द्र जी का राज्याभिषेक करना चाहा । अभिषेक की सारी तैयारियाँ हो चुकने पर ॥ १८ ॥ १९ ॥

कैकेयी नाम भर्तारं देवी वचनमब्रवीत् ।
न पिबेयं न खादेयं प्रत्यहं मम भोजनम् ॥ २० ॥

कैकेयी ने अपने पति महाराज दशरथ से यह कहा कि, मैं (आज से नित्य) न तो पानी पीऊँगी न भोजन करूँगी ॥ २० ॥

एष मे जीवितस्यान्तो रामो यद्यभिषिच्यते ।
यत्तदुक्तं त्वया वाक्यं प्रीत्या नृपतिसत्तम ॥ २१ ॥

यदि तुम श्रीरामचन्द्र जी का राज्याभिषेक करोगे तो मैं अपनी जान दे दूँगी, हे नृपोत्तम! तुमने प्रसन्न हो पूर्वकाल में मुझे जो वर दिया था ॥ २१ ॥

तच्चेन्न वितथं कार्यं वनं गच्छतु राघवः।
स राजा सत्यवाग्देव्या वरदानमनुस्मरन् ॥ २२ ॥

उसे यदि तुम मिथ्या न करना चाहते हो, तो श्रीरामचन्द्र जी वन को जायँ। हे कपे! वे सत्यवादी राजा अपने पूर्वदत्त वर को स्मरण कर ॥ २२ ॥

मुमोह वचनं श्रुत्वा कैकेय्याः क्रूरमप्रियम्।
ततस्तु स्थविरो राजा सत्ये धर्मे व्यवस्थितः ॥ २३ ॥

कैकेयी के इस निष्ठुर और अप्रिय वचन को सुन कर, अचेत हो गए। तदनन्तर वृद्ध महाराज दशरथ ने सत्य रूपी धर्म का पालन करने के लिए ॥ २३ ॥

ज्येष्ठं यशस्विनं पुत्रं रुदन्राज्यमयाचत।
स पितुर्वचनं श्रीमानभिषेकात्परं प्रियम् ॥ २४ ॥

रोदन करते हुए अपने यशस्वी ज्येष्ठ राजकुमार श्रीरामचन्द्र जी को दिया हुआ राज्य फेर लिया; किन्तु श्रीरामचन्द्र जी ने अपने अभिषेक से कहीं बढ़ कर पिता की आज्ञा को प्रिय माना ॥ २४ ॥

मनसा पूर्वमासाद्य वाचा प्रतिगृहीतवान्।
दद्यान्न *प्रतिगृह्णीयात्सत्यं ब्रूयान्नचानृतम् ॥ २५ ॥
अपि जीवितहेतोर्वा रामः सत्यपराक्रमः।
स विहायोत्तरीयाणि महार्हाणि महायशाः ॥ २६ ॥

* पाठान्तरे—"प्रतिगृह्णीयान्न ब्रूयात्किञ्चिदप्रियम्।"

और प्रथम उन्होंने उसे मन से अंगीकार कर फिर वाणी द्वारा प्रकट किया। क्योंकि सत्यपराक्रमी श्रीरामचन्द्र जी दान देते हैं, दान लेते नहीं, वे सदा सत्य ही बोलते हैं, झूठ कभी नहीं बोलते। इस विषय में भले ही उनके प्राण ही क्यों न चले जायँ, पर वे बोलते सच ही हैं। महायशस्वी श्रीरामचन्द्र जी ने बड़े मूल्यवान एवं बढ़िया वस्त्रों को त्याग, ॥ २५ ॥ २६ ॥

विसृज्य मनसा राज्यं जनन्यै मां समादिशत् ।
साऽहं तस्याग्रतस्तूर्णं प्रस्थिता वनचारिणी ॥ २७ ॥

तथा मन से राज्य को छोड़, मुझे अपनी जननी की सेवा करने की आज्ञा दी। परन्तु मैं तो तुरंत वनचारिणी का वेश बना, उनके आगे ही उनके साथ वन जाने को तैयार हुई ॥ २७ ॥

न हि मे तेन हीनाया वासः स्वर्गेऽपि रोचते ।
प्रागेव तु महाभागः सौमित्रिर्मित्रनन्दनः ॥ २८ ॥

क्योंकि श्रीराम के बिना मुझे अकेले स्वर्ग में रहना भी पसंद नहीं है। मित्रों के आनन्द को बढ़ाने वाले महाभाग लक्ष्मण भी ॥ २८ ॥

पूर्वं तस्यानुयात्रार्थे द्रुमचीरैरलंकृतः ।
ते वयं भर्तुरादेशं बहुमान्य दृढव्रताः ॥ २९ ॥
प्रविष्टाः स्म पुरादृष्टं वनं गम्भीरदर्शनम् ।
वसतो दण्डकारण्ये तस्याहममितौजसः ॥ ३० ॥

चीर वल्कल धारण कर, बड़े भाई के साथ चलने को तैयार हो गए। सो हम सब महाराज दशरथ की आज्ञा को अति आदर

और दृढ़ता पूर्वक मान, पहले कभी न देखे हुए और भयानक वन में आए। हम सब लोग दण्डकवन में रहा करते थे कि, उन महाबली ॥ २९ ॥ ३० ॥

रक्षसाऽपहृता भार्या रावणेन दुरात्मना ।
द्वौ मासौ तेन मे कालो जीवितानुग्रहः कृतः ।
ऊर्ध्वं द्वाभ्यां तु मासाभ्यां ततस्त्यक्ष्यामि जीवितम् ॥३१॥

इति त्रयस्त्रिंशः सर्ग.

श्रीरामचन्द्र जी की भार्या (मुझ) को दुष्ट रावण हर लाया। उसने अनुग्रह कर मुझे दो मास तक और जीवित रखने की अवधि बाँध दी है। दो मास बीतने पर मुझे अपने प्राण त्यागने पड़ेंगे ॥ ३१ ॥

सुन्दरकाण्ड का तैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

चतुस्त्रिंशः सर्गः

—❀—

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनुमान्हरियूथपः ।
दुःखाद्दुःखाभिभूतायाः सान्त्वमुत्तरमब्रवीत् ॥ १ ॥

शोकसन्तप्ता जानकी के ये वचन सुन, कपीश्वर हनुमान जी उनको धीरज बँधाते हुए उत्तर में यह बोले ॥ १ ॥

अहं रामस्य सन्देशाद्देवि दूतस्तवागतः ।
वैदेहि कुशली रामस्त्वां च कौशलमब्रवीत् ॥ २ ॥

हे देवी ! श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा से दूत बन कर, मैं तुम्हारे पास उनका सँदेशा लाया हूँ। श्रीरामचन्द्र जी स्वयं अच्छी तरह हैं और उन्होंने तुम्हारा कुशल वृत्तान्त पूँछा है ॥ २ ॥

यो ब्राह्ममस्त्रं वेदांश्च वेद विदां वरः ।
स त्वां दाशरथी रामो देवि कौशलमब्रवीत् ॥ ३ ॥

हे देवी ! जो ब्रह्मास्त्र का चलाना जानते हैं, जो वेदों के ज्ञाता हैं और जो वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं, उन्हीं दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र जी ने तुम्हारी राजीखुशी का हाल पूँछा है ॥ ३ ॥

लक्ष्मणश्च महातेजा भर्तुस्तेऽनुचरः प्रियः ।
कृतवाञ्शोकसन्तप्तः शिरसा तेऽभिवादनम् ॥ ४ ॥

महातेजस्वी और अपने बड़े भाई की सेवा में सदा तत्पर रहने वाले, लक्ष्मण जी ने शोकसन्तप्त हो, तुमको सीस नवा कर, प्रणाम कहलाया है ॥ ४ ॥

सा तयोः कुशलं देवी निशम्य नरसिंहयोः ।
प्रीतिसंहृष्टसर्वाङ्गी हनुमन्तमथाब्रवीत् ॥ ५ ॥

उन दोनों नरसिंहों का कुशलसंवाद सुन, सीता का सारा शरीर हर्ष से पुलकित हो गया। वे हनुमान जी से कहने लगीं ॥ ५ ॥

कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मा ।
एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥ ६ ॥

लोग एक कहावत कहते हैं कि, मनुष्य यदि जीवित रहे; तो सौ वर्ष के पीछे भी वह हर्षित होता है। सो यह कहावत मुझे सत्य ही जान पड़ रही है ॥ ६ ॥

तया समागते तस्मिन्प्रीतिरुत्पादिताऽद्भुता ।
परस्परेण चालापं विश्वस्तौ तौ प्रचक्रतुः ॥ ७ ॥

(इस प्रकार) सीता और हनुमान जी की भेंट हो जाने पर अब उन दोनों में परस्पर विलक्षण अनुराग उत्पन्न हो गया और वे दोनों एक दूसरे पर विश्वास कर आपस में बातचीत करने लगे ॥ ७ ॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनूमान्हरियूथपः ।
सीतायाः शोकदीनायाः समीपमुपचक्रमे ॥ ८ ॥

शोककर्शिता सीता जी के उन वचनों को सुन, कपिश्रेष्ठ हनुमान जी, सीता जी के कुछ और निकट चले गए ॥ ८ ॥

यथा यथा समीपं स हनुमानुपसर्पति ।
तथा तथा रावणं सा सीता परिशङ्कते ॥ ९ ॥

किन्तु हनुमान जी ज्यों ज्यों सीता जी के निकट पहुँचते जाते थे, त्यों त्यों सीता जी हनुमान जी को रावण समझ, उन पर सन्देह करती जाती थीं ॥ ९ ॥

अहो धिग्दुष्कृतमिदं[1] कथितं हि यदस्य मे ।
रूपान्तरमुपागम्य स एवायं हि रावणः ॥ १० ॥

मैंने इससे बातचीत कर बड़ा अनुचित कार्य किया, मुझको धिक्कार है। क्योंकि यह रूप बदले हुए रावण ही है ॥ १० ॥

तामशोकस्य शाखां सा विमुक्त्वा शोककर्शिता ।
तस्यामेवानवद्याङ्गी धरण्यां समुपाविशत् ॥ ११ ॥

१ दुष्कृतं—अनुचितं । (गो०)

सुन्दरी सीता जी यह कह कर तथा शोक से विकल हो और अशोक की शाखा को छोड़, वहीं भूमि पर बैठ गई ॥ ११ ॥

हनुमानपि दुःखार्तां तां दृष्ट्वा भयमोहिताम् ।
अवन्दत महाबाहुस्ततस्तां जनकात्मजाम् ॥ १२ ॥

महाबाहु हनुमान जी ने दुखियारी सीता को भयभीत देख, उनको प्रणाम किया ॥ १२ ॥

सा चैनं भयवित्रस्ता भूयो नैवाभ्युदैक्षत ।
तं दृष्ट्वा वन्दमानं तु सीता शशिनिभानना ॥ १३ ॥

किन्तु भयभीत सीता जी ने फिर हनुमान जी की ओर नहीं देखा। बल्कि चन्द्रमुखी सीता जी ने, हनुमान जी को प्रणाम करते देख, ॥ १३ ॥

अब्रवीद्दीर्घमुच्छ्वस्य वानरं मधुरस्वरा ।
मायां प्रविष्टो मायावी यदि त्वं रावणः स्वयम् ॥ १४

ऊँची साँस ले, हनुमान जी से मधुर स्वर में कहा कि, यदि तू सचमुच कपटरूप धारण किए हुए रावण है ॥ १४ ॥

उत्पादयसि मे भूयः सन्तापं तन्न शोभनम् ।
स्वं परित्यज्य रूपं यः परिव्राजकरूपधृत् ॥ १५ ॥

जनस्थाने मया दृष्टस्त्वं स एवासि रावणः ।
उपवासकृशां दीनां कामरूप निशाचर ॥ १६ ॥

तो तूने मुझे जो पुनः शोकसन्तप्त किया है, सो अच्छा नहीं किया अथवा यह तुझे नहीं सोहता। तू वही रावण है, जो अपना

रूप बदल और संन्यासी का रूप धारण कर, जनस्थान में मुझे हरने गया था। हे कामरूपी निशाचर! मैं तो वैसे ही भूखी प्यासी रह कर, कृश और दीन हो रही हूँ॥ १५॥ १६॥

सन्तापयसि मां भूयः सन्तप्तां तन्न शोभनम्।
अथवा नैतदेवं हि यन्मया परिशङ्कितम्॥ १७॥

सो मुझ सन्तप्ता को पुनः सन्तप्त करना, तुझको शोभा नहीं देता। और यदि मेरा यह सन्देह ठीक न हो॥ १७॥

मनसो हि मम प्रीतिरुत्पन्ना तव दर्शनात्।
यदि रामस्य दूतस्त्वमागतो भद्रमस्तु ते॥ १८॥

और बहुत करके ठीक है भी नहीं, क्योंकि तुझे देख, मेरे मन में अपने आप तेरे प्रति स्नेह उत्पन्न होता है। सो यदि तू श्रीरामचन्द्र जी का दूत बन कर यहाँ आया है, तो तेरा मङ्गल हो॥ १८॥

पृच्छामि त्वां हरिश्रेष्ठ प्रिया रामकथा हि मे।
गुणान्रामस्य कथय प्रियस्य मम वानर॥ १९॥

अब मैं तुझसे पूँछती हूँ। हे कपिश्रेष्ठ! तू मुझे श्रीरामचन्द्र जी का वृत्तान्त बतला। साथ ही हे वानर! मेरे प्यारे श्रीरामचन्द्र जी के गुणों का भी वर्णन कर॥ १९॥

चित्तं हरसि मे सौम्य नदीकूलं यथा रयः।
अहो स्वप्नस्य सुखता याऽहमेवं चिराहृता॥ २०॥
प्रेषितं नाम पश्यामि राघवेण वनौकसम्।
स्वप्नेऽपि यद्यहं वीरं राघवं सहलक्ष्मणम्॥ २१॥

हे सौम्य ! तू मेरे मन को अपनी ओर उसी प्रकार खींच रहा है ; जिस प्रकार नदी अपने किनारे को अपनी ओर खींचती है। आहा ! देखो, स्वप्न भी कैसा सुखदाई होता है, जो मैं मुद्दत से श्रीरामचन्द्र जी से बिछुड़ी हुई आज श्रीरामचन्द्र जी के भेजे हुए वानर को देख रही हूँ। यदि स्वप्न में भी मैं श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी को देखती ॥ २० ॥ २१ ॥

पश्येयं नावसीदेयं स्वप्नोऽपि मम मत्सरी ।
नाहं स्वप्नमिमं मन्ये स्वप्ने दृष्ट्वा हि वानरम् ॥ २२ ॥

तो दुखी न होती, किन्तु स्वप्न भी तो मुझसे ईर्ष्या रखता है (अर्थात् ईर्ष्यावश स्वप्न में भी मुझे श्रीराम लक्ष्मण नहीं दीखते)। परन्तु यह तो मुझे स्वप्न नहीं मालूम पड़ता। क्योंकि स्वप्न में बन्दर को देखने से ॥ २२ ॥

न शक्योऽभ्युदयः प्राप्तुं प्राप्तश्चाभ्युदयो मम ।
किंतु स्याच्चित्तमोहोऽयं भवेद्वातगतिस्त्वियम् ॥२३ ॥

किसी का कल्याण नहीं होता, किन्तु मुझे तो स्वप्न में वानर देखने से सन्तोष रूपी कल्याण की प्राप्ति हुई है। कहीं यह मेरा मनविभ्रम तो नहीं है अथवा भूखी रहते रहते कहीं वायु के कुपित हो जाने से मेरा मस्तिष्क तो नहीं बिगड़ रहा है ? ॥ २३ ॥

उन्मादजो विकारो वा स्यादियं मृगतृष्णिका ।
अथवा नायमुन्मादो मोहोऽप्युन्मादलक्षणः ॥ २४ ॥

अथवा यह विक्षिप्ततामूलक कोई उपद्रव तो नहीं है अथवा यह मृगतृष्णा की तरह मुझे अन्य वस्तु का अन्य स्थान में भास मात्र हो रहा है ? अथवा न तो यह विक्षिप्तता है और न उससे उत्पन्न हुआ यह मोह है अर्थात् ज्ञानशून्यता ही है ॥ २४ ॥

सम्बुध्ये चाहमात्मानमिमं चापि वनौकसम्।
इत्येवं बहुधा सीता सम्प्रधार्य बलाबलम् ॥ २५ ।

क्योंकि मेरे होशहवास दुरुस्त हैं अथवा मैं अपने आपको और इस वानर को भली भाँति जानती हूँ। सीता जी ने इस प्रकार बहुत कुछ ऊँचनीच सोच विचार कर, ॥ २५ ॥

रक्षसां कामरूपत्वान्मेने तं राक्षसाधिपम् ।
एतां बुद्धिं तदा कृत्वा सीता सा तनुमध्यमा ॥ २६ ॥

हनुमान जी को कामरूपी राक्षसराज रावण ही समझा। इस प्रकार का निश्चय कर, पतली कमर वाली सीता ॥ २६ ॥

न प्रतिव्याजहाराथ वानरं जनकात्मजा ।
सीतायाश्चिन्तितं बुद्ध्वा हनुमान्मारुतात्मजः ॥ २७ ॥

जनकनन्दिनी ने फिर हनुमान जी से कुछ बातचीत न की। तब पवननन्दन हनुमान जी सीता जी को चिन्तित जान, अर्थात् अपने ऊपर सन्देह करते जान, ॥ २७ ॥

श्रोत्रानुकूलैर्वचनैस्तदा तां सम्प्रहर्षयत् ।
आदित्य इव तेजस्वी लोककान्तः शशी यथा ॥ २८ ॥

श्रुतमधुर वचन कह, उनको भली भाँति प्रसन्न करने लगे। वे बोले—जो आदित्य की तरह तेजस्वी, चन्द्रमा की तरह सर्वप्रिय हैं ॥ २८ ॥

राजा सर्वस्य लोकस्य देवो वैश्रवणो यथा ।
विक्रमेणोपपन्नश्च यथा विष्णुर्महायशाः ॥ २९ ॥

जो कुबेर की तरह सब लोगों के राजा, पराक्रम प्रदर्शन करने में महायशस्वी विष्णु के समान हैं ॥ २९ ॥

सत्यवादी मधुरवाग्देवो वाचस्पतिर्यथा ।
रूपवान्सुभगःश्रीमान्कन्दर्प इव मूर्तिमान् ॥ ३० ॥

जो बृहस्पति की तरह सत्यवादी और मधुरभाषी हैं। जो रूपवान, सुभग और सौन्दर्य में साक्षात् मूर्तिमान कन्दर्प की तरह हैं ॥ ३० ॥

स्थानक्रोधः प्रहर्ता च श्रेष्ठो लोके महारथः ।
बाहुच्छायामवष्टब्धो यस्य लोको महात्मनः ॥ ३१ ॥

जो उचित क्रोध कर दण्ड देने वाले हैं, जो सर्वश्रेष्ठ और महारथी हैं, जिनकी भुजा की छाया में रह कर लोग सुखी रहते हैं ॥ ३१ ॥

अपकृष्याश्रमपदान्मृगरूपेण राघवम् ।
शून्ये येनापनीतासि तस्य द्रक्ष्यसि यत्फलम् ॥ ३२ ॥

उन श्रीरामचन्द्र जी को बनावटी हिरन द्वारा आश्रम से दूर ले जाकर और एकान्त पा, जिसने तुमको हरा है, वह अपने किए का फल पावेगा ॥ ३२ ॥

न चिराद्रावणं संख्ये यो वधिष्यति वीर्यवान् ।
रोषप्रमुक्तै रिषुभिर्ज्वलद्भिरिव पावकैः ॥ ३३ ॥

जो पराक्रमी श्रीरामचन्द्र जी क्रुद्ध हो अग्नि की तरह दीप्तिमान् बाणों को चला कर युद्ध में रावण को मारेंगे ॥ ३३ ॥

तेनाहं प्रेषितो दूतस्त्वत्सकाशमिहागतः ।
त्वद्वियोगेन दुःखार्तः स त्वां कौशलमब्रवीत् ॥ ३४ ॥

उन्हीं का भेजा हुआ मैं उनका दूत तुम्हारे पास आया हूँ। वे तुम्हारे विरह में बड़े दुःखी हैं। सो उन्होंने तुम्हारी कुशलवार्ता पूँछी है॥ ३४॥

लक्ष्मणश्च महातेजाः सुमित्रानन्दवर्धनः।
अभिवाद्य महाबाहुः स त्वां कौशलमब्रवीत्॥ ३५॥

महाबाहु और सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाले महातेजस्वी लक्ष्मण जी ने प्रणाम पूर्वक तुम्हारी कुशलवार्ता पूँछी है॥ ३५॥

रामस्य च सखा देवि सुग्रीवो नाम वानरः।
राजा वानरमुख्यानां स त्वां कौशलमब्रवीत्॥ ३६॥

हे देवी! सुग्रीव नाम के वानर ने, जो श्रीरामचन्द्र जी के मित्र हैं और वानरों के राजा हैं, तुम्हारी राजीखुशी पूँछी है॥३६॥

नित्यं स्मरति रामस्त्वां ससुग्रीवः सलक्ष्मणः।
दिष्ट्या जीवसि वैदेहि राक्षसीवशमागता॥ ३७॥

सुग्रीव और लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्र जी नित्य तुम्हें याद किया करते हैं। हे वैदेही! यह सौभाग्य की बात है कि, तुम इन राक्षसियों के पंजे में फँस कर भी जीती जागती बनी हुई हो॥३७॥

नचिराद्द्रक्ष्यसे रामं लक्ष्मणं च महाबलम्।
मध्ये वानरकोटीनां सुग्रीवं चामितौजसम्॥ ३८॥

हे देवी! तुम थोड़े ही दिनों बाद लक्ष्मण सहित महाबली श्रीरामन्द्र जी को और बड़े पराक्रमी सुग्रीव को करोड़ों वानरों सहित यहाँ देखोगी॥ ३८॥

अहं सुग्रीवसचिवो हनुमान्नाम वानरः।
प्रविष्टो नगरीं लङ्कां लङ्घयित्वा महोदधिम्॥ ३९॥

मैं सुग्रीव का मंत्री हूँ और मेरा नाम हनुमान है। मैं समुद्र को लाँघ कर लङ्कापुरी में आया हूँ ॥ ३९ ॥

कृत्वा मूर्ध्नि पदन्यासं रावणस्य दुरात्मनः ।
त्वां द्रष्टुमुपयातोऽहं समाश्रित्य पराक्रमम् ॥ ४० ॥

मैं अपने बलपराक्रम के बूते, दुष्ट रावण के सिर पर पैर रख कर, (अर्थात् रावण का तिरस्कार करके) तुम्हें देखने के लिए यहाँ आया हूँ ॥ ४० ॥

नाहमस्मि तथा देवि यथा मामवगच्छसि ।
विशङ्का त्यज्यतामेषा श्रद्धत्स्व वदतो मम ॥ ४१ ॥

इति चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥

हे देवी ! तुम मुझे जो समझ रही हो वह मैं नहीं हूँ (अर्थात् मैं रावण नहीं हूँ)। अतएव तुम अपने सन्देह को दूर कर, मेरे कथन पर विश्वास करो ॥ ४१ ॥

सुन्दरकाण्ड का चौंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—*—

पञ्चत्रिंशः सर्गः

—*—

तां तु रामकथां श्रुत्वा वैदेही वानरर्षभात् ।
उवाच वचनं सान्त्वमिदं मधुरया गिरा ॥ १ ॥

हनुमान जी के मुख से श्रीरामचन्द्र जी का वृत्तान्त सुन, सीता जी ने मधुर वाणी से ये शान्त (ठंडे) वचन कहे ॥ १ ॥

क्व ते रामेण संसर्गः कथं जानासि लक्ष्मणम् ।
वानराणां नराणां च कथमासीत्समागमः ॥ २ ॥

तेरी श्रीरामचन्द्र जी से भेंट कहाँ हुई ? लक्ष्मण जी को तू कैसे जानता है? मनुष्यों का और वानरों का मेल कैसे हुआ ? ॥२॥

यानि रामस्य लिङ्गानि लक्ष्मणस्य च वानर ।
तानि भूयः समाचक्ष्व न मां शोकः समाविशेत् ॥ ३ ॥

हे वानर ! श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी की जो पहिचानें हैं (हुलिया) उनको तुम फिर से कहो, जिनको सुनने से मेरे मन को शोक न हो अर्थात् यदि तुम्हारी वर्णित पहचानें ठीक हुई, तो मुझे तुम्हारे रामदूत होने का विश्वास होगा और फिर शोक करने का कोई कारण ही न रह जायगा ॥ ३ ॥

कीदृशं तस्य संस्थानं रूपं रामस्य कीदृशम् ।
कथमूरू कथं बाहू लक्ष्मणस्य च शंस मे ॥ ४ ॥

उनके शरीरों की गठन कैसी है और श्रीरामचन्द्र जी का रूप कैसा है ? लक्ष्मण जी की जंघाएँ और भुजाएँ कैसी हैं ? यह तुम मुझे बतलाओ ॥ ४ ॥

एवमुक्तस्तु वैदेह्या हनुमान्पवनात्मजः* ।
ततो रामं यथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ५ ॥

जब सीता जी ने इस प्रकार पूँछा; तब पवननन्दन हनुमान जी श्रीरामचन्द्र जी की हुलिया यथावत् बतलाने लगे ॥ ५ ॥

जानन्ती बत दिष्ट्या मां वैदेहि परिपृच्छसि ।
भर्तुः कमलपत्राक्षि संस्थानं लक्ष्मणस्य च ॥ ६ ॥

---

* पाठान्तरे—" हनुमान्मारुतात्मजः । "

वे बोले—हे कमलनयनी ! तुम अपने पति और लक्ष्मण जी के शरीरों के चिह्नों को जान कर भी मुझसे पूँछती हो, यह मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात है ॥ ६ ॥

यानि रामस्य चिह्नानि लक्ष्मणस्य च जानकि ।
लक्षितानि विशालाक्षि वदतः शृणु तानि मे ॥ ७ ॥

हे जानकी जी ! मैंने श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी के जिन शारीरिक चिह्नों को देखा है, वे सब मैं तुमसे कहता हूँ। सुनो ॥ ७ ॥

रामः कमलपत्राक्षः *सर्वभूतमनोहरः ।
रूपदाक्षिण्यसम्पन्नः प्रसूतो जनकात्मजे ॥ ८ ॥

हे जनकनन्दिनी ! श्रीरामचन्द्र जी के नेत्र कमल के समान हैं। वे सब का मन हरण करने वाले हैं। रूप और चातुर्य को साथ लिए हुए वे उत्पन्न हुए हैं (अर्थात् वे स्वभावतः सुस्वरूप और चतुर हैं) ॥ ८ ॥

तेजसाऽऽदित्यसङ्काशः क्षमया पृथिवीसमः ।
बृहस्पतिसमो बुद्ध्या यशसा †वासवोपमः ॥ ९ ॥

वे तेज में सूर्य, क्षमा में पृथिवी, बुद्धिमत्ता में बृहस्पति और यश में इन्द्र के तुल्य हैं ॥ ९ ॥

रक्षिता जीवलोकस्य स्वजनस्य च रक्षिता ।
रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य धर्मस्य च परन्तपः ॥ १० ॥

वे समस्त प्राणियों को, अपने जनों की, अपने चरित्र की और अपने धर्म की रक्षा करने वाले हैं। साथ ही अपने शत्रुओं का नाश (भी) करने वाले हैं ॥ १० ॥

---

* पाठान्तरे—"सर्वसत्वमनोहरः।" † पाठान्तरे—"पृथिवीसमः।"

रामो भामिनि लोकेऽस्मिंश्चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता।
मर्यादानां च लोकस्य कर्ता कारयिता च सः ॥ ११ ॥

हे सुन्दरी ! श्रीरामचन्द्र जी इस लोक में चारों वर्णों के रक्षक और लोक की मर्यादा बांधने वाले और मर्यादा की रक्षा करने वाले हैं ॥ ११ ॥

*अर्चिष्मानर्चितो नित्यं ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः।
साधूनामुपकारज्ञः प्रचारज्ञश्च कर्मणाम् ॥ १२ ॥

वे तमतमाते चेहरे वाले हैं और पूज्यों के भी पूज्य हैं। वे सदा ब्रह्मचर्यव्रत को धारण किए रहते हैं। वे साधु महात्माओं के प्रति उपकार करने के अवसर को जानने वाले अथवा साधु महात्माओं द्वारा किए हुए उपकारों को मानने वाले हैं और वे शास्त्रविहित कर्मों के प्रचार की विधि को जानते हैं अथवा शास्त्रोक्त कर्मों के प्रयोगों को वे जानने वाले हैं ॥ १२ ॥

नोट—श्रीरामचन्द्र जी गृहस्थ थे, फिर हनुमान जी ने उन्हें "नित्य ब्रह्मचर्य-व्रत-स्थित" क्यों बतलाया ? यह शङ्का होने पर सामाधान के लिये भूषणटीकाकार ने मनु भगवान् का यह श्लोक उद्धृत किया है :—

"षोडशर्तुनिशाः स्त्रीणां तस्मिन्युग्मासु संविशेत्
ब्रह्मचार्येव पर्वाद्याश्चतस्रश्च विवर्जयेत ॥"]

राजविद्याविनीतश्च ब्राह्मणानामुपासिता।
श्रुतवाञ्शीलसंपन्नो विनीतश्च परन्तपः ॥ १३ ॥

वे चार प्रकार की राजविद्याओं में शिक्षितः ब्राह्मणोपासक, ज्ञानवान् , शीलवान्, नम्र, किन्तु शत्रुओं को तपाने या नाश करने वाले हैं ॥ १३ ॥

---

१ प्रचारज्ञः—प्रयोगज्ञः। (गो०) *पाठान्तरे—अर्चिष्मानचितोत्यर्थम्।"

[नोट—चार प्रकार की राजविद्याएँ ये हैं :—

" आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती ।
एता विद्याश्चतस्त्रस्तु लोकसंस्थितिहेतवः ॥ "]

यजुर्वेदविनीतश्च वेदविद्भिः सुपूजितः ।
धनुर्वेदे च वेदेषु वेदाङ्गेषु च निष्ठितः ॥ १४ ॥

वे यजुर्वेद भली भाँति सीखे हुए हैं, और वेदवेत्ताओं से भली भाँति सम्मानित अथवा प्रशंसित हैं तथा धनुर्वेद में एवं चारों वेदों और वेदाङ्गों में निपुण हैं ॥ १४ ॥

[नोट—और वेदों का नाम लिखने से पहिले यजुर्वेद का नाम लिखने से आदिकाव्यकार का अभिप्राय यह है कि, श्रीरामचन्द्र जी यजुर्वेदी थे ।]

विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवः शुभाननः ।
गूढजत्रुःसुताम्राक्षो रामो देवि जनैः श्रुतः ॥ १५ ॥

हे देवी ! श्रीरामचन्द्र जी, विशाल कंधों वाले, बड़ी भुजाओं वाले, शङ्खग्रीव, सुन्दरानन, हँसुलियों की मांसल हड्डियों वाले, रक्तनयन और लोक में श्रीरामचन्द्र जी के नाम से प्रसिद्ध हैं ॥ १५ ॥

दुन्दुभिस्वननिर्घोषः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् ।
समः समविभक्ताङ्गो वर्णं श्यामं समाश्रितः ॥ १६ ॥

उनका कण्ठस्वर दुन्दुभि के समान गम्भीर है, उनके शरीर का रङ्ग चिकना है, वे बड़े प्रतापी हैं, उनके सब अंग प्रत्यंग आपस में मिले हुए और छोटे बड़े नहीं हैं और उनका श्याम वर्ण है ॥ १६ ॥

त्रिस्थिरस्त्रिप्रलम्बश्च त्रिसमस्त्रिषु चोन्नतः ।
त्रिताम्रस्त्रिषु च स्निग्धो गम्भीरस्त्रिषु नित्यशः ॥ १७ ॥

उनकी जाँघे, कलाई और मूठी बड़ी मज़बूत हैं । भौंह, अंड-

कोश और बाहु उनके ये तीन अङ्ग लम्बे हैं, केशाग्र, वृषण और जानु ये तीनों अंग उनके समान हैं। नाभि का अभ्यन्तर भाग, कोख और छाती उनके ये तीन अङ्ग ऊँचे हैं। आँखों के कोए, नख और चरणों के तलुए और दोनों हथेलियाँ लाल हैं। उनके पाँव की रेखाएँ, केश, और शिश्न का अगला भाग चिकने हैं। उनका स्वर, उनकी नाभि और गति गम्भीर हैं ॥ १७ ॥

त्रिवलीवांस्त्र्यवनतश्चतुर्व्यङ्गस्त्रिशीर्षवान् ।
चतुष्कलश्चतुर्लेखश्चतुष्किष्कुश्चतुस्समः ॥ १८ ॥
चतुर्दशसमद्वन्द्वश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्गतिः ।
महोष्ठहनुनासश्च पञ्चस्निग्धोष्टवंशवान् ॥ १९ ॥

उनके उदर और कण्ठ में त्रिवली पड़ती है। उनके पैर के तलुए, चरणरेखा और स्तनाग्र गहरे हैं। उनका गला, लिङ्ग, पीठ और जाँघें मोटी हैं। उनके मस्तक के ऊपर चार भँवरियां हैं। उनके अँगुष्ठमूल में चारों वेद की ज्ञान-सम्पादन-सूचक चार रेखाएँ हैं। उनके ललाट में महा-दीर्घायु-सूचक चार रेखाएँ हैं। चौबीस अंगुल के हाथ से वे चार हाथ लंबे हैं। उनके बाहु, घुटना, जंघा, और कपोल समान हैं। भौं, नथुने, नेत्र, कर्ण, ओष्ठ, स्तनाग्र, कुहनी, गट्टा, घुटना, अण्डकोश, कटि, हाथ, पैर और कटिका पिछला भाग समान हैं। उनके चार दाँत चिकने, परस्पर मिले हुए और पैने हैं। सिंह, शार्दूल पक्षी, हाथी और बैल की तरह चार प्रकार की उनकी चाल है। उनके ओठ, ठोड़ी और नाक विशाल हैं। वाणी, मुख, नख, लोम और त्वचा चिकनी हैं। हाथ की नली, पैर की नली, तर्जनी, कनिष्ठा, गुल्फ, बाहु, ऊरू और जंघा दीर्घ हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥

दशपद्मो दशबृहत्त्रिभिर्व्याप्तो द्विशुक्लवान् ।
षडुन्नतो नवतनुस्त्रिभिर्व्याप्नोति राघवः ॥ २० ॥

उनके मुख, नेत्र, थूथन, जिह्वा, ओठ, तालु, स्तन, नख, हाथ और पैर कमल के तुल्य, हैं। उनके वक्षःस्थल, मस्तक, ललाट, ग्रीवा, बाहु; स्कंध, नाभि, पैर, पीठ, और कर्ण बड़े बड़े हैं। श्री, यश और तेज से वे व्याप्त हैं। उनके मातृ पितृ दोनों वंश निर्दोष हैं। उनके कक्ष, पेट, वक्षःस्थल, नासिका, स्कंध और ललाट ऊँचे हैं। अँगुलियों के पोरे, सिर के बाल, रोम, नख, त्वचा और दाढ़ी के बाल कोमल हैं। उनकी सूक्ष्म दृष्टि और सूक्ष्म बुद्धि है॥ २०॥

[नोट—हनुमान जी ने श्रीराम जी के गुप्ताङ्गों का भी उल्लेख किया है। इस पर यह शङ्का उठती है कि हनुमान जी ने क्या उनके गुप्ताङ्ग देखे थे? नहीं—जब गुप्ताङ्गों के साथ के अन्य अङ्ग मोटे या पतले देखे, तब गुप्ताङ्गों के सम्बन्ध में भी उनका अनुमान करना उचित ही था। फिर हनुमान जी ने मूल में अङ्ग प्रत्यङ्गों के नाम नहीं लिए, सङ्केत से यह गुप्त विषय कहा है।]

सत्यधर्मपरः श्रीमान्संग्रहानुग्रहे रतः।
देशकालविभागज्ञः सर्वलोकप्रियंवदः॥ २१॥

श्रीरामचन्द्र जी सत्यधर्मपरायण, कान्तिमान्, द्रव्य के उपार्जन करने और दान करने में सदा तत्पर, समय का यथोचित विभाग जानने वाले और सब से प्रिय बोलने वाले हैं॥ २१॥

*भ्राता चास्य च द्वैमात्रः सौमित्रिरपराजितः।
अनुरागेण रूपेण गुणैश्चैव तथाविधः॥ २२॥

इनके भाई जो सौतेली माता सुमित्रा से उत्पन्न हुए हैं; अनुराग, रूप और गुणों में अपने भाई ही के समान हैं॥ २२॥

तावुभौ नरशार्दूलौ त्वद्दर्शनसमुत्सुकौ।
विचिन्वन्तौ महीं कृत्स्नामस्माभिरभिसङ्गतौ॥ २३॥

---

* पाठान्तरे—"भ्रातापि तस्य"; "भ्राता च तस्य।"

वे दोनों नरसिंह, तुम्हारे देखने की लालसा से तुम्हें सारी पृथिवी पर खोजते हुए, हमसे आमिले हैं ॥ २३ ॥

त्वामेव मार्गमाणौ तौ विचरन्तौ वसुन्धराम् ।
ददर्शतुर्मृगपतिं पूर्वजेनावरोपितम्² ॥ २४ ॥
ऋष्यमूकस्य पृष्ठे तु बहुपादपसङ्कुले ।
भ्रातुर्भयार्तमासीनं सुग्रीवं प्रियदर्शनम् ॥ २५ ॥

वे दोनों तुमको ढूंढते हुए और पृथिवी पर घूमते हुए, अनेक वृक्षों से युक्त ऋष्यमूक पर्वत के समीप पहुँचे और अपने बड़े भाई वानरराज वालि द्वारा निर्वासित और भाई के डर से डरे हुए प्रियदर्शन सुग्रीव को उस पर्वत पर बैठा हुआ उन्होंने देखा ॥ २४ ॥ २५ ॥

वयं तु हरिराजं तं सुग्रीवं सत्यसङ्गरम् ।
परिचर्यास्महे राज्यात्पूर्वजेनावरोपितम् ॥ २६ ॥

हम लोग वहाँ वालि द्वारा राज्य से निर्वासित, सत्यप्रतिज्ञ वानरराज सुग्रीव की सेवा शुश्रूषा करते थे ॥ २६ ॥

ततस्तौ चीरवसनौ धनुःप्रवरपाणिनौ ।
ऋष्यमूकस्य शैलस्य रम्यं देशमुपागतौ ॥ २७ ॥

चीर धारण किए और हाथों में उत्तम धनुष को लिये हुए, वे दोनों ऋष्यमूक पर्वत की रमणीय तलैटी में पहुँचे ॥ २७ ॥

स तौ दृष्ट्वा नरव्याघ्रौ धन्विनौ वानरर्षभः ।
अवप्लुतो गिरेस्तस्य शिखरं भयमोहितः ॥ २८ ॥

कपिश्रेष्ठ सुग्रीव इन दोनों पुरुषसिंहों को हाथ में धनुष लिये हुए आते देख, भयभीत हो एक छलाँग मार, ऋष्यमूकपर्वत के शिखर पर चढ़ गए ॥ २८ ॥

---

२ अवरोपितं—विवासितं । (रा०)

ततः स शिखरे तस्मिन्वानरेन्द्रो व्यवस्थितः।
तयोः समीपं मामेव प्रेषयामास सत्वरम् ॥ २९ ॥

सुग्रीव ने पर्वतशिखर पर पहुँच, उन दोनों के पास मुझको तुरन्त भेजा ॥ २९ ॥

तावहं पुरुषव्याघ्रौ सुग्रीववचनात्प्रभू।
रूपलक्षणसम्पन्नौ कृताञ्जलिरुपस्थितः ॥ ३० ॥

मैं उन दोनों रूपवान् और शुभ लक्षणों से युक्त पुरुषसिंहों के पास अपने मालिक सुग्रीव के कहने से, हाथ जोड़े जा उपस्थित हुआ ॥ ३० ॥

तौ परिज्ञाततत्त्वार्थौ मया प्रीतिसमन्वितौ।
पृष्ठमारोप्य तं देशं प्रापितौ पुरुषर्षभौ ॥ ३१ ॥

मैंने वार्तालाप कर उनके तात्पर्य को जान लिया और वे दोनों भी मेरा अभिप्राय जान बड़े प्रसन्न हुए। तदनन्तर मैं उन दोनों नरश्रेष्ठ को अपनी पीठ पर चढ़ा, ऋष्यमूक पर्वत के शिखर पर ले गया ॥ ३१ ॥

निवेदितौ च तत्त्वेन सुग्रीवाय महात्मने।
तयोरन्योन्यसंलापाद्भृशं प्रीतिरजायत ॥ ३२ ॥

वहाँ जा कर मैंने महात्मा सुग्रीव से सब यथार्थ हाल कह दिया। तदनन्तर उन दोनों में आपस में बातचीत हुई और दोनों में अत्यन्त प्रीति भी हो गई ॥ ३२ ॥

*तत्र तौ कीर्त्तिसम्पन्नौ हरीश्वरनरेश्वरौ।
परस्परकृताश्वासौ कथया पूर्ववृत्तया ॥ ३३ ॥

---

*पाठान्तरे—"ततस्तौ।"

वहाँ पर उन दोनों कीर्तिवान कपिराज और नरराज ने आपस में अपना अपना पूर्व वृत्तान्त कह कर, एक दूसरे को धीरज बँधाया ॥ ३३ ॥

तं ततः सान्त्वयामास सुग्रीवं लक्ष्मणाग्रजः ।
स्त्रीहेतोर्वालिना भ्रात्रा निरस्तमुरुतेजसा ॥ ३४ ॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी ने, सुग्रीव को, जो स्त्री के पीछे अपने तेजस्वी भाई वालि द्वारा राज्य से निकाल दिए गए थे, धीरज बँधाया ॥ ३४ ॥

ततस्त्वन्नाशजं शोकं रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
लक्ष्मणो वानरेन्द्राय सुग्रीवाय न्यवेदयत् ॥ ३५ ॥

तदनन्तर लक्ष्मणजी ने अक्लिष्टकर्मा श्रीरामचन्द्रजी की शोक-कथा, जिसमें तुम्हारे हरे जाने का वृत्तान्त था, वानरराज सुग्रीव को कह सुनाया ॥ ३५ ॥

स श्रुत्वा वानरेन्द्रस्तु लक्ष्मणेनेरितं वचः ।
तदासीन्निष्प्रभोऽत्यर्थं ग्रहग्रस्त इवांशुमान् ॥ ३६

वानरराज सुग्रीव, लक्ष्मण जी के मुख से सारा वृत्तान्त सुन, मारे शोक के ऐसे तेजहीन हो गए; जैसे राहु से ग्रसे हुए सूर्य, तेजहीन हो जाते हैं ॥ ३६ ॥

ततस्त्वद्गात्रशोभीनि रक्षसा ह्रियमाणया ।
यान्याभरणजालानि पातितानि महीतले ॥ ३७ ॥

तब तुम्हारे शरीर को शोभित करने वाले उन सब गहनों को जो तुमने राक्षस द्वारा हरे जाने के समय, ऊपर से भूमि पर फेंके थे ॥३७॥

तानि सर्वाणि *चादाय रामाय हरियूथपाः ।
संहृष्टा दर्शयामासुर्गतिं तु न विदुस्तव ॥ ३८ ॥

ला कर और हर्षित हो सुग्रीव ने श्रीरामचन्द्र जी को दिखलाए। पर राक्षस तुम्हें कहाँ ले गया, यह बात उनको मालूम न थी ॥ ३८ ॥

तानि रामाय दत्तानि मयैवोपहृतानि च ।
स्वनवन्त्यवकीर्णानि तस्मिन्विगतचेतसि ॥ ३९ ॥

मैंने ही उन बजने गहनों को, जो सुग्रीव द्वारा पीछे से श्रीरामचन्द्र जी के सामने रखे गए थे, भूमि पर से उठाया था । श्रीरामचन्द्र जी उनको देखते ही मूर्छित से हो गए थे ॥ ३९ ॥

तान्यङ्के दर्शनीयानि कृत्वा बहुविधं तव ।
तेन देवप्रकाशेन देवेन परिदेवितम् ॥ ४० ॥

तदनन्तर देवताओं की तरह तेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी ने उन देखने योग्य आभूषणों को अपनी गोदी में रख, बहुत विलाप किया ॥ ४० ॥

पश्यतस्तानि रुदतस्ताम्यतश्च पुनः पुनः ।
प्रादीपयन्दाशरथेस्तानि शोकहुताशनम् ॥ ४१ ॥

उन आभूषणों को देख कर वे बहुत रोए बल्कि उन आभूषणों के देखने से श्रीरामचन्द्र जी का शोकाग्नि अति प्रज्वलित हो उठा ॥ ४१ ॥

शयितं[1] च चिरं तेन दुःखार्तेन महात्मना ।
मयाऽपि विविधैर्वाक्यैः कृच्छ्रादुत्थापितः पुनः ॥४२॥

---

१ शयितं—मूर्च्छितं । (गो०) *पाठान्तरे—"आनीय ।"

वे मारे दुःख के बहुत देर तक भूमि पर पड़े अचेत रहे। फिर मैंने विविध प्रकार से समझा बुझा कर, बड़ी कठिनाई से उनको उठाया ॥ ४२ ॥

तानि दृष्ट्वा *महार्हाणि दर्शयित्वा मुहुर्मुहुः ।
राघवः सहसौमित्रिः सुग्रीवे न्यवेदयत् ॥ ४३ ॥

लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्रजी ने बार बार उन मूल्यवान गहनों को देखा और फिर देख कर उनको सुग्रीव को सौंप दिया ॥४४॥

स तवादर्शनादार्ये राघवः परितप्यते ।
महता ज्वलता नित्यमग्निनेवाग्निपर्वतः ॥ ४४ ॥

हे आर्ये! श्रीरामचन्द्र जी तुमको न देखने से बड़े दुःखी हो रहे हैं। जैसे ज्वालामुखी पर्वत सदा दहकता रहता है, वैसे ही श्रीरामचन्द्र जी भी तुम्हारे विरह में शोकाग्नि से सदा दहका करते हैं ॥ ४४ ॥

त्वत्कृते तमनिद्रा च शोकश्चिन्ता च राघवम् ।
तापयन्ति महात्मानमग्न्यागारमिवाग्नयः ॥ ४५ ॥

हे देवी! तुम्हारे विरह में श्रीरामचन्द्रजी को नींद नहीं पड़ती और मारे शोक और चिन्ता के वे वैसे ही सन्तप्त रहते हैं; जैसे अग्नि द्वारा अग्निकुण्ड ॥ ४५ ॥

तवादर्शनशोकेन राघवः परिचाल्यते ।
महता भूमिकम्पेन महानिव शिलोच्चयः ॥ ४६ ॥

हे सीते! तुम्हारे न देखने से वे मारे शोक के वैसे ही थर थराते रहते हैं; जैसे बड़े भारी भूकम्प के आने से पर्वतशिखर थरथराने लगते हैं ॥ ४६ ॥

---

*पाठान्तरे—"महाबाहुः।"

कानानि सुरम्याणि नदीः प्रस्रवणानि च ।
चरन्न रतिमाप्नोति त्वामपश्यन्नृपात्मजे ॥ ४७ ॥

हे राजपुत्र ! यद्यपि श्रीरामचन्द्र जी अत्यन्त रमणीय वनों में, नदियों और झरनों के तटों पर विचरते हैं, तथापि तुम्हारे बिना वहाँ उन्हें आनन्द प्राप्त नहीं होता ॥ ४७ ॥

स त्वां मनुजशार्दूलः क्षिप्रं प्राप्स्यति राघवः ।
समित्रबान्धवं हत्वा रावणं जनकात्मजे ॥ ४८ ॥

हे जनकनन्दिनी ! वे पुरुषसिंह श्रीरामचन्द्र जी शीघ्र ही बन्धु बान्धवों सहित रावण को मार, तुम्हारा यहाँ से उद्धार करेंगे ॥ ४८ ॥

सहितौ रामसुग्रीवावुभावकुरुतां तदा ।
समयं वालिनं हन्तुं तव चान्वेषणं तथा ॥ ४९ ॥

तदनन्तर सुग्रीव और श्रीरामचन्द्र जी ने आपस में प्रतिज्ञा की । श्रीरामचन्द्र जी ने वालि के मारने की और सुग्रीव ने तुम्हारा पता लगाने की ॥ ४९ ॥

ततस्ताभ्यां कुमाराभ्यां वीराभ्यां स हरीश्वरः ।
किष्किन्धां समुपागम्य वाली *युधि निपातितः ॥ ५० ॥

तदनन्तर सुग्रीव उन दोनों वीर राजकुमारों को साथ ले, किष्किन्धा में गए और श्रीरामचन्द्र जी ने वालि को मार गिराया ॥ ५० ॥

ततो निहत्य तरसा रामो वालिनमाहवे ।
सर्वर्क्षहरिसंघानां सुग्रीवमकरोत्पतिम् ॥ ५१ ॥

---

*पाठान्तरे—"युद्धे ।"

बलवान श्रीरामचन्द्र जी ने जब युद्ध में वालि को मार डाला, तब सुग्रीव को समस्त रीछों और वानरों का राजा बनाया ॥५१॥

रामसुग्रीवयोरैक्यं देव्येवं समजायत ।
हनूमन्तं च मां विद्धि तयोर्दूतमिहागतम् ॥ ५२ ॥

हे देवी! इस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी और सुग्रीव का (मनुष्य और वानरों का) मेल हुआ। मुझे हनुमान नामक वानर तथा उन दोनों का भेजा हुआ दूत समझो। मैं तुम्हारे पास आया हूँ ॥ ५२ ॥

स्वराज्यं प्राप्य सुग्रीवः समानीय महाकपीन् ।
त्वदर्थं प्रेषयामास दिशो दश महाबलान् ॥ ५३ ॥

जब सुग्रीव को उनका राज्य मिल गया; तब उन्होंने अपने महावीर वानरों को बुला कर, उनको तुम्हारी खोज में दसों दिशाओं में भेजा है ॥ ५३ ॥

आदिष्टा वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण वनौकसः ।
अद्रिराजप्रतीकाशाः सर्वतः प्रस्थिता महीम् ॥ ५४ ॥

हे देवी! वे सब पर्वताकार वानर सुग्रीव की आज्ञा पाकर, पृथिवी पर चारों ओर रवाना हुए ॥ ५४ ॥

*ततस्तु मार्गमाणास्ते† [1]सुग्रीववचनातुराः ।
चरन्ति वसुधां कृत्स्नां वयमन्ये च वानराः ॥ ५५ ॥

हम तथा अन्य सब वानर, सुग्रीव की आज्ञा से भयभीत हो, तुमको ढूढ़ते हुए समस्त पृथिवी पर घूम रहे हैं ॥ ५५ ॥

---

१ सुग्रीववचनातुरा—सुग्रीवाज्ञाभीताः । (गो०) * पाठान्तरे—"ततस्ते ।" †पाठान्तरे—"वै" ।

अङ्गदो नाम लक्ष्मीवान्वालिसूनुर्महाबलः।
प्रस्थितः कपिशार्दूलस्त्रिभागबलसंवृतः॥ ५६॥

वालि के पुत्र, शोभायमान महाबली एवं कपिश्रेष्ठ अङ्गद एक तिहाई सेना साथ ले कर रवाना हुए॥ ५६॥

तेषां नो विप्रणष्टानां विन्ध्ये पर्वतसत्तमे।
भृशं शोकपरीतानामहोरात्रगणा गताः॥ ५७॥

हम लोग जो तुमको खोजते खोजते अत्यन्त शोकाकुल हो रहे थे, पर्वतोत्तम विन्ध्यगिरि की एक गुफा में जा फँसे और वहाँ हमारे बहुत से रात दिन बीत गए॥ ५७॥

ते वयं कार्यनैराश्यात्कालस्यातिक्रमेण च।
भयाच्च कपिराजस्य प्राणांस्त्यक्तुं व्यवस्थिताः॥ ५८॥

तब हम तुमको पाने से निराश हो और अवधि बीत जाने से, सुग्रीव के डर के मारे, मरने के लिए तैयार हुए॥ ५८॥

विचित्य वनदुर्गाणि गिरिप्रस्रवणानि च।
अनासाद्य पदं देव्याः प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यताः॥ ५९॥

क्योंकि जब हमने पर्वत, दुर्ग, पहाड़, झरने आदि समस्त स्थान देख डाले और तब भी तुम्हारा हमें कहीं भी पता न चला; तब हम लोगों को सिवाय अपने प्राण दे देने के और कुछ न सूझा॥ ५९॥

दृष्ट्वा प्रायोपविष्टांश्च सर्वान्वानरपुङ्गवान्।
भृशं शोकार्णवे मग्नः पर्यदेवयदङ्गदः॥ ६०॥

सब कपिश्रेष्ठों को प्रायोपवेशन किए हुए देख, अङ्गद शोक सागर में निमग्न हो, विलाप करने लगे ॥ ६० ॥

तव नाशं च वैदेहि वालिनश्च तथा वधम् ।
प्रायोपवेशमस्माकं मरणं च जटायुषः ॥ ६१ ॥

वे बोले—सीता का हरण, वालि का वध, हमारा प्रायोपवेशन और जटायु का मरण— ये कैसी कैसी विपत्तियाँ हम लोगों पर आ पड़ी हैं ॥ ६१ ॥

तेषां नः स्वामिसंदेशान्निराशानां मुमूर्षताम् ।
कार्यहेतोरिवायातः शकुनिर्वीर्यवान्महान् ॥ ६२

सुग्रीव की कठोर आज्ञा स्मरण कर, हम लोग अधमरे से हो रहे थे कि, इतने में मानों हम लोगों का काम बनाने के लिए महा वीर्यवान पक्षी ॥ ६२ ॥

गृध्रराजस्य सोदर्यः सम्पातिर्नाम गृध्रराट् ।
श्रुत्वा भ्रातृवधं कोपादिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६३ ॥

जो गृध्रराज जटायु का भाई था और जिसका नाम संपाति था और जो स्वयं भी गृध्रराज था, अपने भाई जटायु का मरण सुन और क्रुद्ध हो बोला ॥ ६३ ॥

यवीयान्केन मे भ्राता हतः क्व च *विनाशितः ।
एतदाख्यातमिच्छामि भवद्भिर्वानरोत्तमाः ॥ ६४ ॥

मेरा छोटा भाई किस के हाथ से कहाँ मारा गया ? सो हे वानरोत्तमो ! यह हाल मैं आप लोगों से सुनना चाहता हूँ ॥ ६४ ॥

---

*पाठान्तरे—" निपातितः ।"

अङ्गदोऽकथयत्तस्य जनस्थाने महद्वधम् ।
रक्षसा भीमरूपेण त्वामुद्दिश्य यथातथम् ॥ ६५ ॥

जनस्थान में तुम्हारे लिए भयङ्कर रूपधारी रावण ने, जटायु को जैसे मारा था, सो सब हाल ज्यों का त्यों अङ्गद ने कहा ॥६५॥

जटायुषो वधं श्रुत्वा दुःखितः सोऽरुणात्मजः ।
*त्वामाह स वरारोहे वसन्तीं रावणालये ॥ ६६ ॥

अरुणपुत्र संपाति, जटायु के मारे जाने का वृत्तान्त सुन, दुःखी हुआ और उसने बतलाया कि, तुम यहाँ रावण के घर हो ॥ ६६ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सम्पातेः प्रीतिवर्धनम् ।
अङ्गदप्रमुखाः सर्वे ततः संप्रस्थिता वयम् ॥ ६७ ॥
विन्ध्यादुत्थाय सम्प्राप्ताः सागरस्यान्तमुत्तरम् ।
त्वद्दर्शनकृतोत्साहा हृष्टास्तुष्टाः प्लवंगमाः ॥ ६८ ॥

संपाति के आनन्द बढ़ाने वाले वचन सुन, अंगद प्रमुख हम सब वानर, विन्ध्यपर्वत से उठे और तुम्हें देखने के लिए उत्साहित हो प्रस्थानित हुए और अत्यन्त प्रसन्न होते हुए, समुद्र के उत्तरतट पर पहुँचे ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

अङ्गदप्रमुखाः सर्वे वेलोपान्तमुपागताः ।
चिन्तां जग्मुः पुनर्भीतास्त्वद्दर्शनसमुत्सुकाः ॥ ६९ ॥

अंगदादि समस्त वानर, समुद्रतट पर पहुँच कर, समुद्र को देख डरे और तुम्हें देखने के लिए उत्सुक हो, समुद्र को पार करने के लिए, चिन्तित हुए ॥६९॥

---

*पाठान्तरे—"त्वां शशंस ।"

अथाह हरिसैन्यस्य सागरं प्रेक्ष्य सीदतः ।
व्यवधूय भयं तीव्रं योजनानां शतं प्लुतः ॥ ७० ॥

जब मैंने देखा कि, वानरी सेना अपने सामने समुद्र को देख दुखी हो रही है, तब मैं निर्भय हो, सौ योजन समुद्र को लांघ, इस पार आया ॥७०॥

लङ्का चापि मया रात्रौ प्रविष्टा राक्षसाकुला ।
रावणश्च मया दृष्टस्त्वं च शोकपरिप्लुता ॥ ७१ ॥

राक्षसों से पूर्ण लङ्का में रात के समय मैं घुसा और यहाँ रावण को और शोकपीड़ित तुमको देखा ॥७१॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं यथावृत्तमनिन्दिते ।
अभिभाषस्व मां देवि दूतो दाशरथेरहम् ॥ ७२ ॥

हे सुन्दरी ! जो कुछ हाल था सो सब मैंने ज्यों का त्यों तुमसे कह सुनाया । अब तुम निःशङ्क हो, मुझसे बातचीत करो । हे देवी ! मैं दाशरथी श्रीरामचन्द्र जी का दूत हूँ ॥७२॥

तं मां राम कृतोद्योगं त्वन्निमित्तमिहागतम् ।
सुग्रीवसचिवं देवि बुध्यस्व पवनात्मजम् ॥ ७३ ॥

मैं तुम्हें देखने के लिए ही श्रीरामचन्द्र जी का भेजा यहाँ आया हूँ । हे देवी ! तुम मुझे सुग्रीव का मन्त्री और पवन का पुत्र जानो ॥७३॥

कुशली तव काकुत्स्थः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
गुरोराराधने युक्तो लक्ष्मणश्च सुलक्षणः ॥ ७४॥

समस्त शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ तुम्हारे श्रीरामचन्द्र जी प्रसन्न हैं। और बड़े भाई की सेवा में तत्पर एवं सुलक्षणों से युक्त लक्ष्मण भी कुशलपूर्वक हैं ॥७४॥

तस्य वीर्यवतो देवि भर्तुस्तव हिते रतः ।
अहमेकस्तु सम्प्राप्तः सुग्रीववचनादिह ॥ ७५ ॥

और हे देवी ! तुम्हारे बलवान् पति श्रीरामचन्द्र जी के हित-साधन में वे सदा तत्पर रहते हैं। सुग्रीव के कहने से मैं अकेला यहाँ आया हूँ ॥७५॥

मयेयमसहायेन चरता कामरूपिणा ।
दक्षिणा दिगनुक्रान्ता त्वन्मार्गविचयैषिणा ॥ ७६ ॥

इच्छारूपधारी मैंने, बिना किसी की मदद के तुम्हें खोजने के लिए, घूम फिर कर सारी दक्षिणदिशा छान डाली ॥७६॥

दिष्ट्याऽहं हरिसैन्यानां त्वन्नाशमनुशोचताम् ।
अपनेष्यामि सन्तापं तवाभिगमशंसनात् ॥ ७७ ॥

हे देवी ! दैवसंयोग ही से अब मैं उस वानरी सेना को, जो तुम्हारा पता न लगने से शोकग्रस्त हो रही है तुम्हारे मिल जाने का संवाद सुनाकर, सन्ताप से छुड़ाऊँगा ॥७७॥

दिष्ट्या हि मम न व्यर्थं देवि सागरलङ्घनम् ।
प्राप्स्याम्यहमिदं दिष्ट्या त्वद्दर्शनकृतं यशः ॥ ७८ ॥

हे देवी ! दैवसंयोग ही से मेरा समुद्र का लाँघना व्यर्थ नहीं हुआ है और तुम्हारा पता लगाने का यह यश भी मुझे दैवसंयोग ही से प्राप्त हुआ है ॥७८॥

राघवश्च महावीर्यः क्षिप्रं त्वामभिपत्स्यते ।
समित्रबान्धवं हत्वा रावणं राक्षसाधिपम् ॥ ७९ ॥

महाबलवान् श्रीरामचन्द्र जी, इस राक्षसराज को मित्रों (सहायकों) और बान्धवों सहित मार कर शीघ्र ही तुम्हें पावेंगे ॥ ७९ ॥

माल्यवान्नाम वैदेहि गिरीणामुत्तमो गिरिः ।
ततो गच्छति गोकर्णं पर्वतं केसरी हरिः ॥ ८० ॥

हे वैदेही ! माल्यवान नामक एक उत्तम पर्वत है । वहां से मेरे पिता केसरी गोकर्ण नामक पर्वत पर जाया करते थे ॥ ८० ॥

स च देवर्षिभिर्दिष्टः पिता मम महाकपिः ।
तीर्थे नदीपतेः पुण्ये शम्बसादनमुद्धरत् ॥ ८१ ॥

देवर्षियों की आज्ञा से मेरे पिता ने समुद्र के किसी पुण्यतीर्थ में जा, शंबर नामक असुर को मार डाला था ॥८१॥

तस्याहं हरिणः क्षेत्रे जातो वातेन मैथिलि ।
हनुमानिति विख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा ॥ ८२ ॥

हे मैथिली ! उसी केसरी नामक वानर की अंजना नामक स्त्री के गर्भ से, पवन द्वारा मेरी उत्पत्ति हुई है और मैं अपने कर्म द्वारा ही हनुमान के नाम से संसार में प्रसिद्ध हूँ ॥ ८२ ॥

विश्वासार्थं तु वैदेहि भर्तुरुक्ता मया गुणाः ।
अचिराद्राघवो देवि त्वामितो नयितानघे ॥ ८३ ॥

हे वैदेहि ! अपने विषय में तुमको विश्वास दिलाने को मैंने तुम्हारे पति के गुणों का वर्णन किया है । हे अनघे ! हे देवी श्रीरामचन्द्र जी अति शीघ्र तुमको यहां से ले जायँगे ॥८३॥

एवं विश्वासिता सीता हेतुभिः शोककर्शिता ।
उपपन्नैरभिज्ञानैर्दूतं तमवगच्छति ॥ ८४ ॥

शोकसन्तप्ता सीता ने अनेक कारण और श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण जी के शारीरिक चिह्नों का यथार्थ पता पा कर, हनुमान जी की बातों पर विश्वास किया और उनको श्रीरामचन्द्र जी का दूत समझा ॥८४॥

अतुलं च गता हर्षं प्रहर्षेण च जानकी ।
नेत्राभ्यां वक्रपक्ष्मभ्यां मुमोचानन्दजं जलम् ॥ ८५

उस समय सीता बहुत हर्षित हुईं और मारे आनन्द के टेढ़े पलकों वाले दोनों नेत्रों से वह आनन्दाश्रु बहाने लगीं ॥८५॥

चारु तद्वदनं तस्यास्ताम्रशुक्लायतेक्षणम् ।
अशोभत विशालाक्ष्या राहुमुक्त इवोडुराट् ॥ ८६ ॥

उस समय सीता के लाल और सफेद विशाल नेत्रों से युक्त मुख, ऐसी शोभा को प्राप्त हुआ, जैसे राहु से मुक्त चन्द्रमा शोभित होता है ॥८६॥

हनुमन्तं कपिं व्यक्तं मन्यते नान्यथेति सा ।
अथोवाच हनूमांस्तामुत्तरं प्रियदर्शनाम् ॥ ८७ ॥

सीता जी को अब विश्वास हो गया कि, यह हनुमान नामक वानर ही है, अन्य कोई नहीं है। तदनन्तर हनुमान जी ने सीता से फिर कहा ॥८७॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं समाश्वसिहि मैथिलि ।
किं करोमि कथं वा ते रोचते प्रतियाम्यहम् ॥ ८८॥

हे मैथिली ! ये सब मैंने तुम्हें कह सुनाया। अब तुम धीरज धारण कर, मुझे बतलाओ कि, मैं अब क्या करूँ ? तुम्हारी क्या इच्छा है सो बतलाओ। क्योंकि मैं अब लौटना चाहता हूँ ॥८८॥

हतेऽसुरे संयति शम्बसादने
कपिप्रवीरेण महर्षिचोदनात् ।
ततोऽस्मि वायुप्रभवो हि मैथिलि
प्रभावतस्तत्प्रतिमश्च वानरः ॥ ८९ ॥

इति पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥

हे विदेहकुमारी ! महर्षियों की आज्ञा से वानरोत्तम केशरी ने जब शम्बसादन को मारा, तब मैं पवनदेव के प्रताप से अपनी माता के गर्भ से उत्पन्न हुआ। अतः मेरा प्रभाव अर्थात् गति और पराक्रम पवनदेव ही के समान है ॥८९॥

सुन्दरकाण्ड का पैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—:o:—

षट्त्रिंशः सर्गः

—:o:—

भूय एव महातेजा हनुमान्मारुतात्मजः ।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सीताप्रत्ययकारणात् ॥ १ ॥

सीता को विश्वास कराने के लिए महातेजस्वी पवननन्दन नम्र हो सीता जी से फिर बोले ॥१॥

वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः।
रामनामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यङ्गुलीयकम् ॥ २ ॥

हे महाभागे! मैं वानर हूँ और बुद्धिमान श्रीरामचन्द्र जी का दूत हूँ। हे देवी! देखो, श्रीरामनामाङ्कित यह अँगूठी है ॥२॥

प्रत्ययार्थं तवानीतं तेन दत्तं महात्मना।
समाश्वसिहि भद्रं ते क्षीणदुःखफला ह्यसि ॥ ३ ॥

तुम्हें विश्वास दिलाने के लिए श्रीरामचन्द्र जी ने यह मुझे दी थी। सो मैं लाया हूँ, अब तुम अपने चित्त को सावधान करो और समझ लो कि, तुम्हारे सब दुःख दूर हो गए ॥ ३ ॥

गृहीत्वा प्रेक्षमाणा सा भर्तुः करविभूषणम्।
भर्तारमिव सम्प्राप्ता जानकी मुदिताऽभवत् ॥ ४ ॥

अपने पति के हाथ की शोभा बढ़ाने वाली, उस अँगूठी को अपने हाथ में ले और उसे देख, जानकी जी को जान पड़ा, मानों श्रीरामचन्द्र जी ही उससे आ मिले हैं। इससे सीता जी बहुत प्रसन्न हुई ॥४॥

चारु तद्वदनं तस्यास्ताम्रशुक्लायतेक्षणम्।
अशोभत विशालाक्ष्या राहुमुक्त इवोडुराट् ॥ ५ ॥

सीता जी का; लाल, सफेद और विशाल नेत्रों से युक्त सुन्दर मुखमण्डल वैसे ही शोभायमान हुआ; जैसे राहु के ग्रास से छूटा हुआ चन्द्रमा शोभायमान होता है ॥५॥

ततः सा ह्रीमती बाला भर्तृसन्देशहर्षिता।
परितुष्टा प्रियं कृत्वा प्रशशंस महाकपिम् ॥ ६ ॥

तदनन्तर लज्जालु सीता, पति के संवाद को पाकर हर्षित और सन्तुष्ट हुई और बड़े प्यार से हनुमान जी की प्रशंसा करने लगी ॥६॥

विक्रान्तस्त्वं समर्थस्त्वं प्राज्ञस्त्वं वानरोत्तम ।
येनेदं राक्षसपदं त्वयैकेन प्रधर्षितम् ॥ ७ ॥

सीता जी कहने लगीं—हे कपिश्रेष्ठ ! तुमने अकेले ही रावण की राजधानी को सर कर लिया—इससे जान पड़ता है कि, तुम कोरे पराक्रमी और शरीर-बल-सम्पन्न ही नहीं हो, बल्कि बुद्धिमान् भी हो ॥७॥

शतयोजनविस्तीर्णः सागरो मकरालयः ।
विक्रमश्लाघनीयेन क्रमता गोष्पदीकृतः ॥ ८ ॥

फिर तुमने इस सौ योजन विस्तार वाले एवं मगर आदि भयानक जलजन्तुओं के आवासस्थान समुद्र को लाँघ कर, गोपद की तरह समझा; अतएव तुम्हारा विक्रम सराहने योग्य है ॥८॥

न हि त्वां प्राकृतं मन्ये वानरं वानरर्षभ ।
यस्य ते नास्ति सत्रासो रावणान्नापि सम्भ्रमः ॥ ९ ॥

हे वानरोत्तम ! जब तुम रावण से जरा भी न डरे और न घबड़ाए, तब मैं तुम्हें साधारण वानर नहीं मान सकती ॥९॥

अर्हसे च कपिश्रेष्ठ मया समभिभाषितुम् ।
यद्यपि प्रेषितस्तेन रामेण विदितात्मना ॥ १० ॥

उन परम प्रसिद्ध श्रीरामचन्द्र जी ने जब तुमको मेरे पास भेजा है; तब तुम अब बेखटके मुझसे वार्तालाप कर सकते हो ॥ १० ॥

प्रेषयिष्यति दुर्धर्षो रामो न ह्यपरीक्षितम् ।
पराक्रममविज्ञाय मत्सकाशं विशेषतः ॥ ११ ॥

यह तो जानीबूझी बात है कि, दुर्धर्ष श्रीरामचन्द्र जी, बलपराक्रम बिना जाने और परीक्षा लिये किसी को अपना दूत बना कर नहीं भेजेंगे—सो भी यहाँ और मेरे पास ॥ ११ ॥

दिष्ट्या स कुशली रामो धर्मात्मा सत्यसङ्गरः ।
लक्ष्मणश्च महातेजाः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ १२ ॥

इसे मैं अपने लिए सौभाग्य ही की बात समझती हूँ कि, वे धर्मात्मा और सत्यप्रतिज्ञ श्रीरामचन्द्र जी, सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाले और महातेजस्वी लक्ष्मण जी सहित कुशलपूर्वक हैं ॥ १२ ॥

कुशली यदि काकुत्स्थः किं नु सागरमेखलाम् ।
[1]महीं दहति कोपेन युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥ १३ ॥

किन्तु जब श्रीरामचन्द्र जी कुशलपूर्वक हैं, तब सागर से घिरी हुई इस लङ्कापुरी को कुपित हो, प्रलयकालीन अग्नि की तरह, क्यों भस्म नहीं कर डालते ॥ १३ ॥

अथवा शक्तिमन्तौ तौ सुराणामपि निग्रहे ।
ममैव तु न दुःखानामस्ति मन्ये विपर्ययः ॥ १४ ॥

अथवा देवताओं तक को दण्ड देने की शक्ति रखने पर भी, जब वे मेरे लिए कुछ नहीं करते, तब जान पड़ता है, अभी मेरे दुःखों का अन्त नहीं आया ॥ १४ ॥

---

१ महीं—लंकाभूमि। (शि०)

*कच्चिन्न व्यथितो रामः कच्चिन्न परितप्यते ।
उत्तराणि च कार्याणि कुरुते पुरुषोत्तमः ॥ १५ ॥

(अच्छा अब यह तो बतलाओ कि,) वे नरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र जी दुःख तो नहीं पाते, उनको मेरे पीछे सन्ताप तो नहीं होता ? वे मेरे उद्धार के लिए यत्न तो कर रहे हैं ॥ १५ ॥

कच्चिन्न दीनः सम्भ्रान्तः कार्येषु च न मुह्यति ।
कच्चित्पुरुषकार्याणि कुरुते नृपतेः सुतः ॥ १६ ॥

वे दीन तो नहीं रहते ? वे घबड़ाते तो नहीं ? काम करने में वे भूलते तो नहीं ? वे राजकुमार अपने पुरुषार्थ का निर्वाह तो भली भाँति किए जाते हैं ॥ १६ ॥

द्विविधं त्रिविधोपायमुपायमपि सेवते ।
विजिगीषुः सुहृत्कच्चिन्मित्रेषु च परन्तपः ॥ १७ ॥

शत्रुओं को तपाने वाले श्रीरामचन्द्र जी, विजय की अभिलाषा कर, मित्रों के प्रति साम, दान और शत्रु के प्रति दान, भेद और दण्ड नीति का बर्ताव तो करते हैं ? ॥ १७ ॥

कच्चिन्मित्राणि लभते मित्रैश्चाप्यभिगम्यते ।
कच्चित्कल्याणमित्रश्च मित्रैश्चापि पुरस्कृतः ॥ १८ ॥

श्रीरामचन्द्र जी औरों के साथ मैत्री तो करते हैं ? अन्य लोग भी उनके साथ मैत्री तो करते हैं ? मित्र लोग उनका और वे मित्रों का आदर मान करते हैं ? ॥ १८ ॥

कच्चिदाशास्ति[1] देवानां प्रसादं पार्थिवात्मजः ।
कच्चित्पुरुषकारं च दैवं च प्रतिपद्यते ॥ १९ ॥

---

१ आशास्ति—आशास्ते । (गो०)

वे नृपनन्दन! देवताओं के अनुग्रह के लिए आशावान् तो रहते हैं? वे अपने बल और भाग्य दोनों पर निर्भर तो हैं?॥१९॥

कच्चिन्न विगतस्नेहः *विवासान्मयि राघवः।
कच्चिन्मां व्यसनादस्मान्मोक्षयिष्यति वानर॥ २०॥

मेरे अन्यत्र रहने से श्रीरामचन्द्र जी मुझसे रूठ तो नहीं गए? हे हनुमान्! इस विपद से वे मेरा उद्धार तो करेंगे?॥ २०॥

सुखानामुचितो नित्यमसुखानामनूचितः।
दुःखमुत्तरमासाद्य कच्चिद्रामो न सीदति॥ २१॥

सुख से रहने योग्य और दुःख भोगने के अयोग्य श्रीरामचन्द्र जी, इस भारी विपद में फँस, कहीं घबड़ा तो नहीं गए?॥२१॥

कौसल्यायास्तथा कच्चित्सुमित्रायास्तथैव च।
अभीक्ष्णं श्रूयते कच्चित्कुशलं भरतस्य च॥ २२॥

भला कौसल्या, सुमित्रा और भरत जी का कुशलसंवाद तो सब कभी उनको मिलता रहता है न?॥ २२॥

मन्निमित्तेन मानार्हः कच्चिच्छोकेन राघवः।
कच्चिन्नान्यमना रामः कच्चिन्मां तारयिष्यति॥ २३॥

सदा सम्मान पाने योग्य श्रीरामचन्द्र जी मेरे विरह-जन्य-शोक से सन्तापित हो, चञ्चलमना तो नहीं हो जाते? वे इस सङ्कट से मुझे उबारेंगे तो?॥ २३॥

कच्चिदक्षौहिणीं भीमां भरतो भ्रातृवत्सलः।
ध्वजिनीं मन्त्रिभिर्गुप्तां प्रेषयिष्यति मत्कृते॥ २४॥

---

* पाठान्तरे—"प्रसादान्मयि।"

क्या (तू बतला सकता है कि,) भ्रातृवत्सल भरत मेरे लिए मंत्रियों से रक्षित या परिचालित अपनी अक्षौहिणी सेना को भेजेंगे ? ॥ २४ ॥

वानराधिपतिः श्रीमान्सुग्रीवः कच्चिदेष्यति ।
मत्कृते हरिभिर्वीरैर्वृतो दन्तनखायुधैः ॥ २५ ॥

क्या वानरराज श्रीमान् सुग्रीव दाँत और नखों से लड़ने वाली वानरी सेना सहित मेरे उद्धार के लिए यहाँ आवेंगे ॥२५॥

कच्चिच्च लक्ष्मणः शूरः सुमित्रानन्दवर्धनः ।
अस्त्रविच्छरजालेन राक्षसान्विधमिष्यति ॥ २६ ॥

क्या माता सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाले वीर लक्ष्मण अस्त्रों और तीरों से राक्षसों का वध करेंगे ? ॥ २६ ॥

रौद्रेण कच्चिदस्त्रेण ज्वलता निहतं रणे ।
द्रक्ष्याम्यल्पेन कालेन रावणं ससुहृज्जनम् ॥ २७ ॥

क्या थोड़े ही दिनों बाद रण में भयङ्कर और चमचमाते अस्त्र द्वारा अपने सहायकों सहित मारे गए रावण को मैं देखूँगी ? ॥ २७ ॥

कच्चिन्न तद्धेमसमानवर्णं
तस्याननं पद्मसमानगन्धि ।
मया विना शुष्यति शोकदीनं
जलक्षये पद्ममिवातपेन ॥ २८ ॥

कहीं जलहीन तड़ाग वाले कमल की तरह, मेरे वियोग में श्रीरामचन्द्र जी का कमल के फूल के समान सुगन्धियुक्त, सुवर्ण

की तरह आभा वाला मुखमण्डल शोक से मलिन हो, कहीं मुर्झा तो नहीं गया ? ॥ २८ ॥

धर्मापदेशात्त्यजतश्च राज्यं
मां चाप्यरण्यं नयतः पदातिम् ।
नासीद्व्यथा यस्य न भीर्न शोकः
*कच्चित्स धैर्यं हृदये करोति ॥ २९ ॥

धर्म के लिए राज्य त्याग कर और मुझको साथ ले पैदल ही वन में आने पर भी, जिनका मन पीड़ित, भयभीत अथवा शोकान्वित नहीं हुआ, वे श्रीरामचन्द्र इस समय अपने हृदय में धैर्य तो रखते हैं ? ॥ २९ ॥

न चास्य माता न पिता च नान्यः
स्नेहाद्विशिष्टोऽस्ति मया समो वा ।
तावत्त्वहं दूत जिजीविषेयं
यावत्प्रवृत्तिं शृणुयां प्रियस्य ॥ ३० ॥

हे दूत ! क्या माता ! क्या पिता ! क्या कोई अन्यपुरुष—कोई भी क्यों न हो, मुझसे अधिक या बराबर उनका अनुराग किसी में नहीं है। सो जब तक मैं परमप्रिय श्रीरामचन्द्र जी का वृत्तान्त सुनती हूँ, तभी तक मैं जीवित भी हूँ ॥ ३० ॥

इतीव देवी वचनं महार्थं
तं वानरेन्द्रं मधुरार्थमुक्त्वा ।
श्रोतुं पुनस्तस्य वचोऽभिरामं
रामार्थयुक्तं विरराम रामा ॥ ३१ ॥

---

* पाठान्तरे—"कच्चिच्च ।"

मनोरमा सीता जी वानरश्रेष्ठ हनुमान जी से इस प्रकार के युक्तियुक्त एवं मधुर वचन कह और हनुमान जी के मुख से श्रीरामचन्द्र जी का वृत्तान्त पुनः सुनने की अभिलाषा से, चुप हो रहीं ॥ ३१ ॥

सीताया वचनं श्रुत्वा मारुतिर्भीमविक्रमः ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ ३२

भीम पराक्रमी हनुमान जो सीता के वचन सुन और हाथ जोड़ कर, उत्तर देते हुए बोले ॥ ३२ ॥

न त्वामिहस्थां जानीते रामः कमललोचने ।
तेन त्वां नानयत्याशु शचीमिव पुरन्दरः ॥ ३३ ॥

हे कमललोचने ! श्रीरामचन्द्र जी को यह नहीं मालूम कि, तुम यहाँ पर इस दशा में हो । इसीसे तुम्हे शीघ्र यहाँ से वे वैसे ही नहीं ले गए, जैसे इन्द्र अपनी स्त्री शची को अनुह्लाद दैत्य के यहाँ से ले आए थे ॥ ३३ ॥

श्रुत्वैव तु वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः ।
चमूं प्रकर्षन्महतीं हर्यृक्षगणसङ्कुलाम् ॥ ३४ ॥

किन्तु जब मैं जा कर उनसे तुम्हारा वृत्तान्त कहूँगा, तब श्रीरामचन्द्र जी बड़ी भारी रीछों और वानरों की सेना अपने साथ ले, यहाँ आवेंगे ॥ ३४ ॥

विष्टम्भयित्वा बाणौघैरक्षोभ्यं वरुणालयम् ।
करिष्यति पुरीं लङ्कां काकुत्स्थः शान्तराक्षसाम् ॥३५॥

और अपने बाणों से इस अक्षोभ्य समुद्र को पाट कर, इस लङ्कापुरी के राक्षसों को शान्त (नष्ट) कर देंगे ॥ ३५ ॥

तत्र यद्यन्तरा मृत्युर्यदि देवाः सहासुराः ।
स्थास्यन्ति पथि रामस्य स तानपि वधिष्यति ॥ ३६ ॥

लङ्का के ऊपर चढ़ाई करने पर, यदि साक्षात् यम (मृत्यु) या अन्य देवता, दैत्यों सहित आड़े आवेंगे अर्थात् विघ्न डालेंगे, तो श्रीरामचन्द्र जी उनको भी मार डालेंगे ॥ ३६ ॥

तवादर्शनजेनार्ये शोकेन स परिप्लुतः ।
न शर्म लभते रामः सिंहार्दित इव द्विपः ॥ ३७ ॥

हे सुन्दरी ! तुम्हारे न देखने के कारण उत्पन्न हुए शोक से, श्रीरामचन्द्र जी सिंह द्वारा पीड़ित हाथी की तरह, ज़रा भी सुखी नहीं हैं ॥ ३७ ॥

मलयेन च विन्ध्येन मेरुणा मन्दरेण च ।
दर्दुरेण च ते देवि शपे मूलफलेन च ॥ ३८ ॥

हे देवी ! मैं मलयाचल, विन्ध्याचल, मेरु, मन्दराचल, दर्दुर, तथा फलों मूलों की शपथ खा कर कहता हूँ कि, ॥ ३८ ॥

यथा सुनयनं वल्गु बिम्बोष्ठं चारुकुण्डलम् ।
मुखं द्रक्ष्यसि रामस्य पूर्णचन्द्रमिवोदितम् ॥ ३९ ॥

तुम सुनयन, सुन्दर, कुँदरू फल की तरह लाल लाल होंठों वाले सुन्दर कुण्डलों से शोभित और उदय हुए पूर्णमासी के चन्द्रमा की तरह, श्रीरामचन्द्र जी के मुखमण्डल को तुम देखोगी ॥ ३९ ॥

क्षिप्रं द्रक्ष्यसि वैदेहि रामं प्रस्रवणे गिरौ ।
शतक्रतुमिवासीनं नाकपृष्ठस्य मूर्धनि ॥ ४० ॥

हे वैदेही ! ऐरावत हाथी पर बैठे हुए इन्द्र की तरह, तुम शीघ्र ही श्रीरामचन्द्र जी को प्रस्रवण पर्वत पर बैठा हुआ देखोगी ॥४०॥

न मांसं राघवो भुङ्क्ते न चापि मधु सेवते ।
वन्यं [1]सुविहितं नित्यं [2]भक्तमश्नाति [3]पञ्चमम् ॥ ४१॥

श्रीरामचन्द्र जी ने मांस खाना और मधुसेवन करना त्याग दिया है। वे नित्य वानप्रस्थोपयोगी और वन में उत्पन्न हुए फल मूल का आदर करते अर्थात् खाते हैं और पाँचवें दिन शरीर-धारणोपयुक्त अन्न खाया करते हैं ॥ ४१ ॥

नैव दंशान्न मशकान्न कीटान्न सरीसृपान् ।
राघवोपनयेद्गात्रात्त्वद्गतेनान्तरात्मना ॥ ४२ ॥

श्रीरामचन्द्र जी का मन तो तुम में ऐसा लगा हुआ है कि, उनके शरीर पर भले ही डाँस, मच्छर, पतंगे अथवा सर्प ही क्यों न रेंगते रहें ; किन्तु वे उन्हें नहीं हटाते ॥ ४२ ॥

नित्यं ध्यानपरो रामो नित्यं शोकपरायणः ।
नान्यच्चिन्तयते किञ्चित्स तु कामवशं गतः ॥ ४३ ॥

श्रीरामचन्द्र जी सदा तुम्हारा ध्यान किया करते हैं और तुम्हारे लिए शोकाकुल रहते हैं। वह कामवशवर्ती हो, तुम्हें छोड़ और किसी की चिन्ता नहीं करते ॥ ४३ ॥

अनिद्रः सततं रामः सुप्तोऽपि च नरोत्तमः ।
सीतेति मधुरां वाणीं व्याहरन्प्रतिबुध्यते ॥ ४४ ॥

नरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र जी को वैसे तो नींद पड़ती ही नहीं और कदाचित् कभी आँख झपक ही गई तो जब जागते हैं ; तब "हे सीते" मधुर वाणी से कहते हुए ही जागते हैं ॥ ४४ ॥

---

१ सुविहितं—वानप्रस्थयोग्यत्वेन विहितं । (गो०) २ भक्तं—अन्नं । (गो०) ३ पञ्चमम्—प्रातस्सायंसायंप्रातरिति, कालचतुष्टयम् त्यक्त्वा पञ्चमे प्रातः काल इत्यर्थः । दिनद्वयमतीत्यभुंक्तइत्यर्थः । (तीर्था)

दृष्ट्वा फलं वा पुष्पं वा यद्वाऽन्यत्सुमनोहरम् ।
बहुशो हा प्रियेत्येवं श्वसंस्त्वामभिभाषते ॥ ४५ ॥

जब कभी वे किसी वनैले सुन्दर फल, फूल या अन्य या किसी सुन्दर वस्तु को देखते हैं ; तब वे बहुधा हा प्यारी ! कह और उसाँस ले, तुमको पुकारते हैं ॥ ४५ ॥

स देवि नित्यं परितप्यमान-
स्त्वामेव सीतेत्यभिभाषमाणः ।
*धृतव्रतो राजसुतो महात्मा
तवैव लाभाय कृतप्रयत्नः ॥ ४६ ॥

हे देवि ! विशेष कहना व्यर्थ है, वे सदा तुम्हारे वियोग से सन्तप्त रहते और सीते सीते कह कर सदा तुम्हें पुकारा करते हैं। धैर्यवान् महात्मा राजकुमार श्रीरामचन्द्र जी, तुम्हारा उद्धार करने को सदा यत्नवान रहते हैं ॥ ४६ ॥

सा रामसङ्कीर्तनवीतशोका
रामस्य शोकेन समानशोका ।
शरन्मुखे साम्बुदशेषचन्द्रा
निशेव वैदेहसुता बभूव ॥ ४७ ॥

इति षट्त्रिंशः सर्गः ॥

श्रीरामचन्द्र जी का संवाद पाने से सीता जी जिस प्रकार हर्षित हुई थीं, उसी प्रकार श्रीराम जी के अपने विरह में दुःखी

---

* पाठान्तरे—" दृढव्रतो । "

होने का वृत्तान्त सुन, वे दुखी भी हुईं। मानों शारदीय रात्रि में चन्द्रमा बादल से निकल, फिर मेघ से आच्छादित हो गया ॥४७॥

सुन्दरकाण्ड का छत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

सप्तत्रिंशः सर्गः

—❀—

सीता तद्वचनं श्रुत्वा पूर्णचन्द्रनिभानना ।
हनूमन्तमुवाचेदं धर्मार्थसहितं वचः ॥ १ ॥

चन्द्रवदनी सीता, हनुमान जी के ये वचन सुन, उनसे धर्म और अर्थ युक्त ये वचन बोलीं ॥ १ ॥

अमृतं विषसंसृष्टं त्वया वानर भाषितम् ।
यच्च नान्यमना रामो यच्च शोकपरायणः ॥ २ ॥

हे वानर! तुम्हारा यह कथन कि, श्रीरामचन्द्र जी का मन अन्य किसी ओर नहीं जाता और वे शोकाकुल बने रहते हैं; विष मिले हुए अमृत के समान है॥ २ ॥

ऐश्वर्ये वा सुविस्तीर्णे व्यसने वा सुदारुणे ।
रज्ज्वेव पुरुषं बद्ध्वा कृतान्तः परिकर्षति ॥ ३ ॥

मनुष्य भले ही बड़े ऐश्वर्य का उपभोग करता हो अथवा महा-दारुण दुःख ही क्यों न भोगता हो, किन्तु मौत, उस मनुष्य के गले में रस्सी बाँध कर उसको अपनी ओर खींचती ही रहती है ॥३॥

विधिर्नूनमसंहार्यः प्राणिनां प्लवगोत्तम ।
सौमित्रिं मां च रामं च व्यसनैः पश्य मोहितान् ॥ ४ ॥

हे वानरश्रेष्ठ ! प्राणियों की भवितव्यता निश्चय ही अमिट है। देखो, लक्ष्मण, मैं और श्रीरामचन्द्र जी कैसे कैसे दुःख झेल रहे हैं॥ ४॥

शोकस्यास्य कदा पारं राघवोऽधिगमिष्यति ।
प्लवमानः परिश्रान्तो हतनौः सागरे यथा ॥ ५ ॥

नौका के टूट जाने पर समुद्र में तैरते हुए और थके हुए मनुष्य की तरह, श्रीरामचन्द्र जी प्रयत्न करके भी, न मालूम कब, इस शोकसागर के पार लगेंगे ?॥ ५ ॥

राक्षसानां वधं कृत्वा सूदयित्वा च रावणम् ।
लङ्कामुन्मूलितां कृत्वा कदा द्रक्ष्यति मां पतिः॥ ६ ॥

मेरे स्वामी श्रीरामचन्द्र जी राक्षसों को मार, रावण का वध कर तथा लङ्का को जड़ से खोद कर, न मालूम मुझे कब देखेंगे ?॥ ६ ॥

स वाच्यः सन्त्वरस्वेति यावदेव न पूर्यते ।
अयं संवत्सरः कालस्तावद्धि मम जीवितम् ॥ ७ ॥

हे वानर ! तुम जा कर श्रीरामचन्द्र जी से शीघ्रता करने के लिए कह देना। क्योंकि जब तक यह वर्ष पूरा नहीं होता, तभी तक मेरे जीने की अवधि है॥ ७॥

वर्तते दशमो मासो द्वौ तु शेषौ प्लवङ्गम ।
रावणेन नृशंसेन समयो यः कृतो मम ॥ ८ ॥

इस वर्ष का यह दसवाँ मास चल रहा है और इसकी समाप्ति में अब केवल दो मास और रह गए हैं। क्रूर रावण ने मेरे जीने के लिए यही अवधि ही बाँधी है॥ ८॥

विभीषणेन च भ्रात्रा मम निर्यातनं प्रति ।
अनुनीतः प्रयत्नेन न च तत्कुरुते मतिम् ॥ ९ ॥

रावण के भाई विभीषण ने इस बात के लिए यत्न किया था और अनुनय विनय भी किया था कि, रावण मुझे श्रीरामचन्द्र जी को लौटादे, परन्तु उस दुष्ट ने उनका कहना न माना ॥ ९ ॥

मम प्रतिप्रदानं हि रावणस्य न रोचते ।
रावणं मार्गते सङ्ख्ये मृत्युः कालवशं गतम् ॥ १० ॥

श्रीरामचन्द्र जी को मेरा लौटा देना, रावण को पसंद नहीं। क्योंकि, उसके सिर पर उसकी मौत खेल रही है और युद्धक्षेत्र में मौत रावण के बध का अवसर ढूँढ़ रही है ॥ १० ॥

ज्येष्ठा *कन्या कला नाम विभीषणसुता कपे ।
तया ममेदमाख्यातं मात्रा प्रहितया स्वयम् † ॥ ११ ॥

हे कपे ! यह बात विभीषण की बड़ी बेटी कला ने, अपनी माता की प्रेरणा से, मुझसे कही थी ॥ ११ ॥

‡आशंसेयं हरिश्रेष्ठ क्षिप्रं मां प्राप्स्यते पतिः ।
अन्तरात्मा हि मे शुद्धस्तस्मिंश्च बहवो गुणाः ॥ १२ ॥

---

* पाठान्तरे—" कन्याऽनला । " † पाठान्तरे—" असंशयं । "

‡ एक संस्करण में ये दो श्लोक और हैं :—

अविन्ध्यो नाम मेधावी विद्वान्राक्षसपुङ्गवः ।
धृतिमाञ्शीलवान्वृद्धो रावणस्य सुसम्मतः ॥
रामक्षयमनुप्राप्तं रक्षसां प्रत्यचोदयत् ।
न च तस्य स दुष्टात्मा शृणोति वचनं हितम् ॥

हे वानरश्रेष्ठ ! मुझे इस बात का पूरा भरोसा है कि, श्रीरामचन्द्र जी मुझे शीघ्र मिलेंगे। क्योंकि, मेरा अन्तरात्मा शुद्ध है और श्रीरामचन्द्र जी में बहुत गुण हैं ॥ १२ ॥

उत्साहः पौरुषं सत्त्वमानृशंस्यं कृतज्ञता ।
विक्रमश्च प्रभावश्च सन्ति वानर राघवे ॥ १३ ॥

वे उत्साही, पुरुषार्थी, वीर्यवान्, दयालु, कृतज्ञ, विक्रमी और प्रतापी हैं ॥ १३ ॥

चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां जघान यः ।
जनस्थाने विना भ्रात्रा शत्रुः कस्तस्य नोद्विजेत् ॥ १४ ॥

जिन्होंने जनस्थान में बात की बात में चौदह हज़ार राक्षसों को, अपने भाई लक्ष्मण की सहायता बिना ही (अकेले) मार डाला, उनसे भला कौन शत्रु न डरेगा ! ॥ १४ ॥

न स शक्यस्तुलयितु व्यसनैः पुरुषर्षभः ।
अहं तस्य प्रभावज्ञा शक्रस्येव पुलोमजा ॥ १५ ॥

उन श्रीरामचन्द्र जी के साथ इन समस्त दुःखदाई राक्षसों की बराबरी नहीं हो सकती। शची देवी जिस प्रकार इन्द्र का प्रभाव जानती हैं; उसी प्रकार मैं श्रीरामचन्द्र जी का प्रभाव जानती हूँ ॥ १५ ॥

शरजालांशुमाञ्छूरः कपे राम दिवाकरः ।
शत्रुरक्षोमयं तोयमुपशोषं नयिष्यति ॥ १६ ॥

हे कपे ! श्रीराम रूपी सूर्य, अपनी बाणजाल रूपी किरनों से, राक्षस रूपी जलाशय को सोख लेंगे ॥ १६ ॥

इति संजल्पमानां तां रामार्थे शोककर्शिताम् ।
अश्रुसंपूर्णनयनामुवाच वचनं कपिः ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी के विषय में बातें करती हुई दुखियारी और आँसू बहाती हुई सीता से, हनुमान जी कहने लगे ॥ १७ ॥

श्रुत्वैव तु वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः ।
चमूं प्रकर्षन्महतीं हर्यृक्षगणसंकुलाम् ॥ १८ ॥

हे सीते! मेरे मुख से तुम्हारा संदेशा पाते ही श्रीरामचन्द्र जी, रीछ और वानरों से पूर्ण बड़ी भारी सेना ले, शीघ्र ही यहाँ आ जायँगे ॥ १८ ॥

अथवा मोचयिष्यामि त्वामद्यैव वरानने ।
अस्माद्दुःखादुपारोह मम पृष्ठमनिन्दिते ॥ १९ ॥

हे वरानने! अथवा मैं स्वयं ही अभी तुमको राक्षसों के अत्याचारों से छुड़ाए देता हूँ। हे अनिन्दिते! तुम मेरी पीठ पर बैठ लो ॥ १९ ॥

त्वां तु पृष्ठगतां कृत्वा सन्तरिष्यामि सागरम् ।
शक्तिरस्ति हि मे वोढुं लङ्कामपि सरावणाम् ॥ २० ॥

तुमको अपनी पीठ पर बैठा कर मैं समुद्र पार हो जाऊँगा। (यह मत जानना कि, मैं ऐसा न कर सकूँगा।) मुझ में इतनी शक्ति है कि, मैं रावण समेत लङ्का को भी ले जा सकता हूँ ॥२०॥

अहं प्रस्रवणस्थाय राघवायाद्य मैथिलि ।
प्रापयिष्यामि शक्राय हव्यं हुतमिवानलः ॥ २१ ॥

हे मैथिली ! मैं आज ही तुमको श्रीरामचन्द्र जी के पास प्रस्रवण गिरि पर वैसे ही पहुँचा दूँगा, जैसे अग्निदेव, इन्द्र के पास होम की हुई सामग्री पहुँचा देते हैं ॥ २१ ॥

द्रक्ष्यस्यद्यैव वैदेहि राघवं सहलक्ष्मणम् ।
व्यवसायसमायुक्तं विष्णुं दैत्यवधे यथा ॥ २२ ॥

हे वैदेहि ! तुम आज ही श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण को देखोगी, जैसे दैत्यवध में तत्पर विष्णु को देवताओं ने देखा था ॥ २२ ॥

त्वद्दर्शनकृतोत्साहमाश्रमस्थं महाबलम् ।
पुरन्दरमिवासीनं नागराजस्य मूर्धनि ॥ २३ ॥

हे देवि ! महाबलवान् श्रीरामचन्द्र जी तुम्हें देखने की अभिलाषा से उत्साहित हो, पर्वतराज प्रस्रवण के शिखर पर इन्द्र की तरह बैठे हुए हैं ॥ २३ ॥

पृष्ठमारोह मे देवि मा विकाङ्क्षस्व शोभने ।
योगमन्विच्छ रामेण शशाङ्केनेव रोहिणी ॥ २४ ॥
*पौलोमीव महेन्द्रेण सूर्येणेव सुवर्चला ।
मत्पृष्ठमधिरुह्य त्वं तराकाशमहार्णवम् ॥ २५ ॥

हे सुन्दरी देवी ! अब तुम सोच विचार मत करो और मेरी पीठ पर बैठ लो और श्रीरामचन्द्र जी से मिलने के लिए वैसे ही इच्छा करो, जैसे रोहिणी देवी चन्द्रमा से, शची देवी इन्द्र से और सुवर्चला देवी सूर्य से मिलने की इच्छा किया करती हैं। तुम

---

* पाठान्तरे—"कथयन्तीव चन्द्रेण सूर्येण च महार्चिषा ।"

मेरी पीठ पर सवार हो लो, मैं आकाशमार्ग से समुद्र के पार हो जाऊँगा ॥ २४ ॥ २५ ॥

न हि मे सम्प्रयातस्य त्वामितो नयतोऽङ्गने ।
अनुगन्तु गतिं शक्ताः सर्वे लङ्कानिवासिनः ॥ २६ ॥

हे सुन्दरि! जिस समय मैं यहाँ से तुम्हें लेकर चलूँगा, उस समय लङ्कानिवासी किसी भी राक्षस में इतनी शक्ति नहीं, जो मेरा पीछा कर सके ॥ २६ ॥

यथैवाहमिह प्राप्तस्तथैवाहमसंशयम् ।
यास्यामि पश्य वैदेहि त्वामुद्यम्य विहायसम् ॥ २७ ॥

जिस प्रकार मैं उस पार से यहाँ आया हूँ, उसी प्रकार तुमको अपनी पीठ पर लिए हुए, निश्चय ही मैं आकाश मार्ग से उस पार चला जाऊँगा ॥ २७ ॥

मैथिली तु हरिश्रेष्ठाच्छ्रुत्वा वचनमद्भुतम् ।
हर्षविस्मितसर्वाङ्गी हनुमन्तमथाब्रवीत् ॥ २८ ॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान जी के इन अद्भुत वचनों को सुन, सीता हर्षित और विस्मित हो हनुमान जी से बोलीं ॥ २८ ॥

हनुमन्दूरमध्वानं कथं मां वोढुमिच्छसि ।
तदेव खलु ते मन्ये कपित्वं हरियूथप ॥ २९ ॥

हे हनुमान्! तुम मुझे लिए हुए इतनी दूर कैसे जा सकोगे! हे हरियूथप! (वानरों के सरदार) तुम्हारी इस बात से तो तुम्हारा वानरपना प्रकट होता है ॥ २९ ॥

कथं वाऽल्पशरीरस्त्वं मामितो नेतुमिच्छसि ।
सकाशं मानवेन्द्रस्य भर्तुर्मे प्लवगर्षभ ॥ ३० ॥

हे वानरोत्तम ! फिर तुम इतने छोटे शरीर वाले होकर, किस तरह मुझे मेरे नरेन्द्र पति के पास पहुँचा सकते हो ? ॥ ३० ॥

सीताया वचनं श्रुत्वा हनुमान्मारुतात्मजः ।
चिन्तयामास लक्ष्मीवान्नवं परिभवं कृतम् ॥ ३१ ॥

लक्ष्मीवान् पवनन्दन हनुमान जी, सीता के इन वचनों को सुन, मन ही मन कहने लगे कि, यह मेरा प्रथम बार ही अनादर हुआ है ॥ ३१ ॥

न मे जानाति सत्त्वं वा प्रभावं वासितेक्षणा ।
तस्मात्पश्यतु वैदेही यद्रूपं मम* कामतः ॥ ३२ ॥

वह बोले—हे कृष्णनयनी ! तुम अभी मेरे बल और प्रभाव को नहीं जानतीं । इसीसे ऐसा कह रही हो । अतः अब तुम, जैसा कि, मेरा कामरूपी शरीर है, उसे देखो । ३२ ॥

इति संचिन्त्य हनुमांस्तदा प्लवगसत्तमः ।
दर्शयामास वैदेह्याः स्वं रूपमरिमर्दनः ॥ ३३ ॥

बहुत कुछ आगा पीछा सोच कर, वानरोत्तम हनुमान जी ने शत्रुनाशकारी अपना रूप वैदेही को दिखलाया ॥ ३३ ॥

स तस्मात्पादपाद्धीमानाप्लुत्य प्लवगर्षभः ।
ततो वर्धितुमारेभे सीताप्रत्ययकारणात् ॥ ३४ ॥

वानरोत्तम बुद्धिमान् हनुमान जी एक छलांग में वृक्ष से नीचे उतर सीता जी को विश्वास कराने के लिए, अपने शरीर को बढ़ाने लगे ॥ ३४ ॥

---

* पाठान्तरे—" कांक्षतः । "

मेरुमन्दरसङ्काशो बभौ दीप्तानलप्रभः ।
अग्रतो व्यवतस्थे च सीताया वानरोत्तमः ॥ ३५ ॥

उस समय कपिश्रेष्ठ हनुमान जी मेरुपर्वत की तरह लंबे चौड़े और दहकती हुई आग की तरह कान्तिमान हो, सीता जी के सामने खड़े हो गए ॥ ३५ ॥

हरिः पर्वतसङ्काशस्ताम्रवक्त्रो महाबलः ।
वज्रदंष्ट्रनखो भीमो वैदेहीमिदमब्रवीत् ॥ ३६ ॥

उस समय पर्वताकार, लालमुख, महाबलवान् और वज्र की समान दाँतों और नखों को धारण किए हुए भयङ्कर-रूप-धारी हनुमान जी ने जानकी जी से यह कहा ॥ ३६ ॥

सपर्वतवनोद्देशां साट्टप्राकारतोरणाम् ।
लङ्कामिमां सनाथां वा नयितुं शक्तिरस्ति मे ॥ ३७ ॥

हे देवी ! पर्वत, वन, गृह, प्राकार और तोरण सहित इस लङ्का को और लङ्का के राजा रावण को यहाँ से उठा कर ले जाने की मुझमें शक्ति है ॥ ३७ ॥

तदवस्थाप्यतां बुद्धिरलं देवि विकाङ्क्षया ।
विशोकं कुरु वैदेहि राघवं सहलक्ष्मणम् ॥ ३८ ॥

हे देवी ! अतः तुम अब मेरे साथ चलने का निश्चय करो और मेरी उपेक्षा मत करो । हे वैदेहि ! तुम मेरे साथ चल कर, श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी का शोक दूर करो ॥ ३८ ॥

तं दृष्ट्वाचलसङ्काशमुवाच जनकात्मजा ।
पद्मपत्रविशालाक्षी मारुतस्यौरसं सुतम् ॥ ३९ ॥

हनुमान जी को पर्वताकार रूप धारण किए हुए देख, कमल की तरह विशाल नयनी जनकनन्दिनी, पवननन्दन हनुमान जी से कहने लगीं ॥ ३९ ॥

तव सत्त्वं बलं चैव विजानामि महाकपे ।
वायोरिव गतिं चापि तेजश्चाग्नेरिवाद्भुतम् ॥ ४० ॥

हे महाकपे ! अब मैंने तुम्हारा बल पराक्रम भली भाँति जान लिया । तुम्हारी गति पवन के समान और तुम्हारा तेज अग्नि के समान अद्भुत है ॥ ४० ॥

प्राकृतोऽन्यः कथं चेमां भूमिमागन्तुमर्हति ।
उदधेरप्रमेयस्य पारं वानरपुङ्गव ॥ ४१ ॥

हे कपिश्रेष्ठ ! नहीं तो क्या कोई मामूली वानर भी इस लाँघने के अयोग्य समुद्र को लाँघ कर, यहाँ आ सकता है ॥ ४१ ॥

जानामि गमने शक्तिं नयने चापि ते मम ।
अवश्यं संप्रधार्याशु कार्यसिद्धिर्महात्मनः ॥ ४२ ॥

मैं जानती हूँ कि, तुममें बहुत दूर चलने की और मुझको अपनी पीठ पर चढ़ा कर ले जाने की शक्ति है, किन्तु शीघ्रता पूर्वक कार्य सिद्धि होने के सम्बन्ध में मुझे स्वयं भी सोच विचार लेना आवश्यक है ॥ ४२ ॥

अयुक्तं तु कपिश्रेष्ठ मम गन्तुं त्वया सह ।
वायुवेगसवेगस्य वेगो मां मोहयेत्तव ॥ ४३ ॥

मेरे विचार में तुम्हारे साथ मेरा चलना ठीक नहीं, क्योंकि, वायु के समान तुम्हारी शीघ्रगति (तेज़ चाल) मुझे मूर्छित कर देगी ॥ ४३ ॥

अहमाकाशमापन्ना ह्युपर्युपरि सागरम् ।
प्रपतेयं हि ते पृष्ठाद्भयाद्वेगेन गच्छतः ॥ ४४ ॥
पतिता सागरे चाहं तिमिनक्रझषाकुले ।
भवेयमाशु विवशा यादसामन्नमुत्तमम् ॥ ४५ ॥

जब तुम मुझे लिए हुए आकाशमार्ग से बड़े वेग से जाने लगोगे, तब मैं कदाचित् भयभीत हो, समुद्र में गिर पड़ी और यदि समुद्र के मगर मच्छ मुझे पकड़ कर खा गए, तब तुम क्या करोगे? ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

न च शक्ष्ये त्वया सार्धं गन्तु शत्रुविनाशन ।
कलत्रवति सन्देहस्त्वय्यपि स्यादसंशयः ॥ ४६ ॥

हे शत्रुविनाशन! अतः मैं तुम्हारे साथ न जा सकूँगी। क्योंकि एक जन किसी स्त्री को उड़ाए लिए जा रहा है, यह देख, निश्चय ही राक्षसगण तुम पर सन्देह करेंगे। ॥ ४६ ॥

ह्रियमाणां तु मां दृष्ट्वा राक्षसा भीमविक्रमाः ।
अनुगच्छेयुरादिष्टा रावणेन दुरात्मना ॥ ४७ ॥

और मुझे लिए जाते हुए देख, दुरात्मा रावण की आज्ञा पा, भयङ्कर विक्रमशाली राक्षस लोग तुम्हारा पीछा करेंगे ॥४७॥

तैस्त्वं परिवृतः शूरैः शूलमुद्गरपाणिभिः ।
भवेस्त्वं संशयं प्राप्तो मया वीर कलत्रवान् ॥ ४८ ॥

एक तो साथ में स्त्री, तिस पर जब तुम शूल, मुद्गरधारी वीर राक्षसों द्वारा घेर लिए जाओगे, तब तुम बड़े सङ्कट में पड़ जाओगे ॥ ४८ ॥

सायुधा बहवो व्योम्नि राक्षसास्त्वं निरायुधः ।
कथं शक्ष्यसि संयातुं मां चैव परिरक्षितुम् ॥ ४९ ॥

फिर राक्षसों के पास तो तरह तरह के हथियार होंगे और तुम आकाश में निरस्त्र होगे । ऐसी दशा होने पर, मेरी रक्षा करनी तो जहाँ तहाँ, तुम आगे जा भी कैसे सकोगी ॥ ४९ ॥

युध्यमानस्य रक्षोभिस्तव तैः क्रूरकर्मभिः ।
प्रपतेयं हि ते पृष्ठाद्भयार्ता कपिसत्तम ॥ ५० ॥

हे कपिश्रेष्ठ ! जब उन क्रूरकर्मा भयङ्कर राक्षसों का तुम सामना करोगे, तब भयभीत हो, मैं अवश्य तुम्हारी पीठ से नीचे गिर पड़ूँगी ॥ ५० ॥

अथ रक्षांसि भीमानि महान्ति बलवन्ति च ।
कथञ्चित्साम्पराये त्वां जयेयुः कपिसत्तम ॥ ५१ ॥
अथवा युध्यमानस्य पतेयं विमुखस्य ते ।
पतितां च गृहीत्वा मां नयेयुः पापराक्षसाः ॥ ५२ ॥

हे कपिश्रेष्ठ ! फिर यदि उन भयङ्कर और महाबली राक्षसों ने युद्ध में तुम्हें जीत ही लिया अथवा तुम हार कर भागे और मैं गिर पड़ी और उन पापी राक्षसों के हाथ पड़ गई, तो क्या होगा? ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

मां वा हरेयुस्त्वद्धस्ताद्विशसेयुरथापि वा ।
अव्यवस्थौ हि दृश्येते युद्धे जयपराजयौ ॥ ५३ ॥

अथवा वे राक्षस तुम्हारे हाथ से मुझे छीन कर ले गए या मुझे मार ही डाला तब क्या होगा? क्योंकि, युद्ध में कौन जीते, कौन हारे, इसका पहले से कुछ भी निश्चय नहीं हो सकता ॥५३॥

अहं वापि विपद्येयं रक्षोभिरभितर्जिता ।
त्वत्प्रयत्नो हरिश्रेष्ठ भवेन्निष्फल एव तु ॥ ५४ ॥

फिर यदि राक्षसों की डाट डपट से मेरे प्राण ही निकल गए तो, हे कपिश्रेष्ठ ! तुम्हारा सारा परिश्रम व्यर्थ ही होगा ॥ ५४ ॥

कामं त्वमसि पर्याप्तो निहन्तुं सर्वराक्षसान् ।
राघवस्य यशो हीयेत्त्वया शस्तैस्तु राक्षसैः ॥ ५५ ॥

यद्यपि तुम निस्सन्देह अकेले सब राक्षसों को मार डाल सकते हो ; तथापि यदि तुमने राक्षसों को मार डाला, तो तुम्हारे इस कार्य से श्रीरामचन्द्र जी के यश में तो बट्टा लग ही जायगा ॥ ५५ ॥

अथवादाय रक्षांसि न्यसेयुः संवृते हि माम् ।
यत्र त नाभिजानीयुर्हरयो नापि राघवौ ॥ ५६ ॥

इसमें एक दोष यह भी है कि यदि राक्षसों ने मुझे पकड़ पाया और लङ्का में ले आए तो फिर वे मुझे किसी ऐसी जगह छिपा देंगे कि, जहाँ कोई वानर या श्रीरामचन्द्र जी मुझे देख ही न पावें ॥ ५६ ॥

आरम्भस्तु मदर्थोऽयं ततस्तव निरर्थकः ।
त्वया हि सह रामस्य महानागमने गुणः ॥ ५७ ॥

अतः मेरे पीछे तुमने जो इतना श्रम किया है सो सब व्यर्थ चला जायगा । अतः यही ठीक होगा कि, तुम श्रीरामचन्द्र जी को साथ लेकर यहाँ आओ ॥ ५७ ॥

मयि जीवितमायत्तं राघवस्य महात्मनः ।
भ्रातॄणां च महाबाहो तव राजकुलस्य च ॥ ५८ ॥

महाबलवान श्रीरामचन्द्र जी का और उनके सब भाइयों का तथा तुम्हारे वानरराज सुग्रीव के कुल का भी जीवन मेरे ही ऊपर निर्भर है ॥ ५८ ॥

तौ निराशौ मदर्थं तु शोकसन्तापकर्शितौ ।
सह सर्वर्क्षहरिभिस्त्यक्ष्यतः प्राणसंग्रहम् ॥ ५९ ॥

यदि वे दोनों भ्राता, जो इस समय सन्तप्त और शोक से विकल हो रहे हैं, मेरी ओर से हताश हो गए तो फिर निश्चय ही उनका जीना असम्भव है। उनके मरने पर वानरी सेना भी अपने प्राण गवाँ देगी ॥ ५९ ॥

भर्तृभक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर ।
न स्पृशामि शरीरं तु पुंसो वानरपुङ्गव ॥ ६० ॥

हे वानर ! तुम्हारे साथ चलने में एक यह भी आपत्ति है कि, मैं पतिव्रता हूँ—अतः श्रीरामचन्द्र जी को छोड़, किसी अन्य पुरुष का शरीर (अपनी इच्छा से) नहीं छू सकती ॥ ६० ॥

यदहं गात्रसंस्पर्शं रावणस्य बलाद्गता ।
अनीशा किं करिष्यामि विनाथा विवशा सती ॥ ६१ ॥

मुझे जो रावण के शरीर का स्पर्श हुआ सो बरजोरी हुआ। क्योंकि उस समय मैं कर ही क्या सकती थी ! मैं विवश थी और उस समय मुझ पतिव्रता को बचाने वाला भी कोई न था ॥ ६१ ॥

यदि रामो दशग्रीवमिह हत्वा सबान्धवम् ।
मामितो गृह्य गच्छेत तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥ ६२ ॥

यदि श्रीरामचन्द्र जी बन्धुबान्धव सहित रावण को मार मुझे लेकर यहाँ से जाँय ; तो ऐसा कार्य उनकी पदमर्यादा के अनुकूल हो ॥ ६२ ॥

श्रुता हि दृष्टाश्च मया पराक्रमा
महात्मनस्तस्य रणावमर्दिनः ।
न देवगन्धर्वभुजङ्गराक्षसा
भवन्ति रामेण समा हि संयुगे ॥ ६३ ॥

उन शत्रुनाशकारी महात्मा श्रीरामचन्द्र जी का पराक्रम मैंने सुना भी है और देखा भी है । अतः मैं कह सकती हूँ कि, युद्ध में क्या देवता, क्या गन्धर्व, क्या सर्प और क्या राक्षस--कोई भी उनका सामना नहीं कर सकता ॥ ६३ ॥

समीक्ष्य तं संयति चित्रकार्मुकं
महाबलं वासवतुल्यविक्रमम् ।
सलक्ष्मणं को विषहेत राघवं
हुताशनं दीप्तमिवानिलेरितम् ॥ ६४ ॥

हे कपिश्रेष्ठ ! जब वे महाबली और इन्द्र के समान विक्रम वाले श्रीरामचन्द्र जी युद्धक्षेत्र में अपना अद्भुत धनुष हाथ में ले खड़े हो जाते हैं और लक्ष्मण उनकी सहायता में सावधान रहते हैं, तब किसकी मजाल है, जो उनके सामने खड़ा रह सके । भला वायु से बढ़ाई हुई आग की लपटों के सामने भी कोई खड़ा रह सकता है, ॥ ६४ ॥

सलक्ष्मणं राघवमाजिमर्दनं
दिशागजं मत्तमिव व्यवस्थितम् ।
सहेत को वानरमुख्य संयुगे
युगान्तसूर्यप्रतिमं शरार्चिषम् ॥ ६५ ॥

जिस समय शत्रुमर्दनकारी श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मणसहित, मतवाले दिग्गज की तरह युद्धक्षेत्र में खड़े हो जाते हैं और प्रलयकालीन सूर्य की तरह बाणों रूपी किरनों से आग बरसाने लगते हैं; उस समय उनके सामने ठहरने की किस में शक्ति है ? ॥ ६५ ॥

स मे हरिश्रेष्ठ सलक्ष्मणं पतिं
सयूथपं क्षिप्रमिहोपपादय ।
चिराय रामं प्रति शोककर्शितां
कुरुष्व मां वानरमुख्य हर्षिताम् ॥ ६६ ॥

इति सप्तत्रिंशः सर्गः ॥

हे वानरश्रेष्ठ ! अतएव तुम लक्ष्मण और सुग्रीव सहित मेरे प्यारे श्रीरामचन्द्र जी को शीघ्र ही यहाँ लिवा लाओ । हे वीर ! मैं श्रीरामचन्द्र जी के वियोगजन्य शोक से चिरकाल से कातर हूँ । सो मुझे अब शीघ्र तुम हर्षित करो ॥ ६६ ॥

सुन्दरकाण्ड का सैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—❀—

अष्टात्रिंशः सर्गः

—:❋:—

ततः स कपिशार्दूलस्तेन वाक्येन हर्षितः ।
सीतामुवाच तच्छ्रुत्वा वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ १ ॥

सीता जी के इन वचनों को सुन, वाक्यविशारद वानरश्रेष्ठ हनुमान जी सीता जी से बोले ॥१॥

युक्तरूपं त्वया देवि भाषितं शुभदर्शने ।
सदृशं स्त्रीस्वभावस्य साध्वीनां विनयस्य[1] च ॥ २ ॥

हे सुन्दरि ! तुमने स्त्री स्वभाव-सुलभ और पतिव्रता स्त्रियों के चरित्रानुकूल ही ये बातें कहीं हैं ॥२॥

स्त्रीत्वं न तु समर्थं हि सागरं व्यतिवर्तितुम् ।
मामधिष्ठाय विस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ॥ ३ ॥

तुम स्त्री हो, इसीसे तुम मेरी पीठ पर सवार हो, सौ योजन चौड़े समुद्र को नहीं लांघ सकतीं ॥३॥

द्वितीयं कारणं यच्च ब्रवीषि विनयान्विते ।
रामादन्यस्य नार्हामि संस्पर्शमिति जानकि ॥ ४ ॥

हे विनयान्विते ! (विनय से युक्त अर्थात् सुशीले !) तुमने जो दूसरा कारण बतलाया कि, तुम श्रीरामचन्द्र जी को छोड़ अन्य किसी पुरुष को अपनी इच्छा से नहीं छू सकतीं ॥४॥

---

१ विनयस्य—वृत्तस्य । (गो०)

एतत्ते देवि सदृशं पत्न्यास्तस्य महात्मनः ।
का ह्यन्या त्वामृते देवि ब्रूयाद्वचनमीदृशम् ॥ ५ ॥

सोभी हे देवि ? ठीक ही है और उन महात्मा श्रीरामचन्द्र जी की पत्नी को ही कहने योग्य है । भला तुमको छोड़, हे देवि ? (ऐसी अवस्था में भी) और कौन स्त्री ऐसे वचन कह सकती है ? ॥ ५ ॥

श्रोष्यते चैव काकुत्स्थः सर्वं निरवशेषतः ।
चेष्टितं यत्त्वया देवि भाषितं मम चाग्रतः ॥ ६ ॥

हे देवि ? तुमने मेरे साथ जैसा बर्ताव किया और जो बातें कहीं— उन सब को श्रीरामचन्द्र जी मेरे मुख से ज्यों का त्यों सुन लेंगे ॥ ६ ॥

कारणैर्बहुभिर्देवि रामप्रियचिकीर्षया ।
स्नेहप्रस्कन्नमनसा मयैतत्समुदीरितम् ॥ ७ ॥

हे देवि ! मैंने जो तुमसे अपने साथ चलने के लिए कहा था—सो इसके बहुत कारण हैं । उनमें से मुख्य तो श्रीरामचन्द्र जी का मुखोल्लास था, दूसरा यह था कि, मेरा मन स्नेह से शिथिल हो रहा था ॥ ७ ॥

लङ्काया दुष्प्रवेशत्वाद्दुस्तरत्वान्महोदधेः ।
सामर्थ्यादात्मनश्चैव मयैतत्समुदाहृतम् ॥ ८ ॥

तीसरा लङ्का में आना, हरेक का काम नहीं है और न समुद्र का लाँघना ही सहज है । किन्तु मुझमें यह सामर्थ्य है, इसीसे मैंने कहा कि, तुम मेरे साथ चली चलो ॥ ८ ॥

इच्छामि त्वां समानेतुमद्यैव रघुबन्धुना ।
गुरुस्नेहेन भक्त्या च नान्यथैतदुदाहृतम् ॥ ९ ॥

हे रघुनन्दिनि ! मैंने जो कहा सो कुछ अन्यथा नहीं कहा। क्योंकि श्रीरामचन्द्र जी के मेरे प्रति स्नेह और मेरी उनके प्रति भक्ति है, उससे मेरी यह इच्छा हुई कि, आज ही तुम्हें ले चल कर श्रीरामचन्द्र जी से मिला दूँ ॥९॥

यदि नोत्सहसे यातुं मया सार्धमनिन्दिते ।
अभिज्ञानं प्रयच्छ त्वं जानीयाद्राघवो हि यत् ॥ १० ॥

हे सुन्दरि ! यदि मेरे साथ चलने की तुम्हारी इच्छा नहीं है, तो मुझे कोई अपनी चिह्नानी ही दो जिससे श्रीरामचन्द्र जी को प्रतीति हो ॥१०॥

एवमुक्ता हनुमता सीता सुरसुतोपमा ।
उवाच वचनं मन्दं बाष्पप्रग्रथिताक्षरम् ॥ ११ ॥

जब हनुमान जी ने इस प्रकार कहा, तब देवकन्या की तरह सीता जी आँखों में आँसू भर (अर्थात् गद्गद् कण्ठ से) धीरे धीरे बोलीं ॥११॥

इदं श्रेष्ठमभिज्ञानं ब्रूयास्त्वं तु मम प्रियम् ।
शैलस्य चित्रकूटस्य पादे पूर्वोत्तरे पुरा १२ ॥

मेरी यही सर्वश्रेष्ठ चिह्नानी तुम श्रीरामचन्द्र जी को बतला देना कि, चित्रकूट पर्वत के ईशान कोण पर ॥१२॥

तापसाश्रमवासिन्याः प्राज्यमूलफलोदके ।
तस्मिन्सिद्धाश्रिते देशे मन्दाकिन्या ह्यदूरतः ॥ १३ ॥

जो बहुत से मूलफल जल से युक्त, सिद्ध लोगों से सेवित, मन्दाकिनी नदी के समीप, तापसाश्रम में जब हम लोग रहते थे ॥१३॥

तस्योपवनषण्डेषु नानापुष्पसुगन्धिषु ।
विहृत्य सलिलक्लिन्ना ममाङ्के समुपाविशः ॥ १४ ॥

तब वहाँ के विविधपुष्पों की सुगन्धि से सुवासित उपवनों में जलक्रीड़ा करके भींगी देह तुम मेरी गोद में सो गये ॥१४॥

ततो मांससमायुक्तो वायसः पर्यतुण्डयत् ।
तमहं लोष्टमुद्यम्य वारयामि स्म वायसम् ॥ १५ ॥

उसी समय में, एक कौआ आकर मांस के लालच से मेरे चोंच मारने लगा। मैं उस पर ढेले फेंक उसे उड़ाती थी ॥१५॥

दारयन्स च मां काकस्तत्रैव परिलीयते ।
न चाप्युपारमन्मांसाद्भक्षार्थी बलिभोजनः ॥ १६ ॥

किन्तु वह मेरे चोंच से घाव कर, उसी जगह कहीं छिप जाया करता था। मैंने उसे बहुत उड़ाया, किन्तु माँसभक्षी और बलि खाने वाला वह काक न माना ॥१६॥

उत्कर्षन्त्यां च रशनां क्रुद्धायां मयि पक्षिणि ।
स्रस्यमाने च वसने ततो दृष्टा त्वया ह्यहम् ॥ १७ ॥

तब तो मुझे उस कौए पर बड़ा क्रोध आया। इतने में मेरी करधनी खिसक गई। मैं जब उसे ऊपर चढ़ाने लगी तब मेरा वस्त्र खिसक गया। उस समय तुम्हारी अर्थात् श्रीरामचन्द्र जी की दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी ॥१७॥

त्वयापहसिता चाहं क्रुद्धा संलज्जिता तदा ।
भक्षगृध्नेन काकेन दारिता त्वामुपागता ॥ १८ ॥
आसीनस्य च ते श्रान्ता पुनरुत्सङ्गमाविशम् ।
क्रुध्यन्ती च प्रहृष्टेन त्वयाहं परिसान्त्विता ॥ १९ ॥

और तुम मुझे देख कर हँस दिए। उस समय मुझे क्रोध तो था ही साथ ही मुझे बड़ी लज्जा भी जान पड़ी। उस भक्तलोलुप कौए से घायल हुई मैं, तंग हो गई थी। मैं आकर तुम्हारी गोद में पड़ रही। मुझे कुपित देख, तुमने प्रहृष्ट हो मुझे समझाया ॥१८॥१९॥

बाष्पपूर्णमुखी मन्दं चक्षुषी परिमार्जती ।
लक्षिताहं त्वया नाथ वायसेन प्रकोपिता ॥२०॥

उस समय आँसुओं से मेरा मुख तर हो रहा था और मैं धीरे धीरे आँसू पोंछ रही थी। इतने में तुमने जान लिया कि कौए ने मुझे कुपित कर लिया है ॥२०॥

परिश्रमात्प्रसुप्ता च राघवाङ्केऽप्यहं चिरम् ।
पर्यायेण प्रसुप्तश्च ममाङ्के भरताग्रजः ॥ २१ ॥

थक जाने के कारण मैं बहुत देर तक श्रीरामचन्द्र जी की गोद में पड़ी सोती रही, फिर पारी से श्रीरामचन्द्र जी मेरी गोद में सोए ॥२१॥

स तत्र पुनरेवाथ वायसः समुपागमत् ।
ततः सुप्तप्रबुद्धां मां राघवाङ्कात्समुत्थिताम् ॥ २२ ॥

इतने में वही कौआ पुनः आया। मैं उसी क्षण श्रीरामचन्द्र जी की गोद से सो कर उठी थी ॥२२॥

वायसः सहसागम्य विरराद स्तनान्तरे ।
पुनः पुनरथोत्पत्य विरराद स मां भृशम् ॥ २३ ॥

उस काक ने अचानक आ मेरे स्तनों के बीच में चोंच मारी और उछल उछल कर उसने मुझे घायल कर डाला ॥२३॥

ततः समुक्षितो रामो मुक्तैः शोणितबिन्दुभिः ॥ २४ ॥

तब रक्त की बूँदें श्रीरामचन्द्र जी के शरीर पर गिरने से वे जाग उठे ॥२४॥

स मां दृष्ट्वा महाबाहुर्वितुन्नां स्तनयोस्तदा ॥ २५ ॥

उन्होंने स्तनों के बीच मेरे घाव हुआ देख, ॥२५॥

आशीविष इव क्रुद्धः श्वसन्वाक्यमभाषत ।
केन ते नागनासोरु विक्षतं वै स्तनान्तरम् ॥ २६ ॥

श्रीरामचन्द्र जी सर्प की तरह कुपित और फुँफकारते हुए बोले—हे सुन्दरि ! तेरे स्तनों के बीच किसने घाव कर दिया ? ॥२६॥

कः क्रीडति सरोषेण पञ्चवक्त्रेण भोगिना ।
वीक्षमाणस्ततस्तं वै वायसं समुदैक्षत ॥ २७ ॥

क्रुद्ध पांच फन वाले सांप के साथ यह खेल किसने खेला है ? यह कह ज्योंही श्रीरामचन्द्र जी ने इधर उधर दृष्टि डाली, त्योंही वह काक उन्हें दिखलाई पड़ा ॥२७॥

नखैः सरुधिरैस्तीक्ष्णैर्मामेवाभिमुखं स्थितम् ।
पुत्रः किल स शक्रस्य वायसः पततां वरः ॥ २८ ॥

उस काक के नख, रक्त में सने हुए थे और वह मेरी ओर मुख कर बैठा हुआ था। वह पक्षिश्रेष्ठ निश्चय ही इन्द्र का पुत्र था ॥२८॥

धरान्तरगतः शीघ्रं पवनस्य गतौ समः।
ततस्तस्मिन्महाबाहुः कोपसंवर्तितेक्षणः ॥ २९ ॥

श्रीरामचन्द्र जी की दृष्टि पड़ते ही वह पवन के समान वेग से झट पृथिवी में समा गया। उस समय श्रीरामचन्द्र जी ने मारे क्रोध के नेत्र टेढ़े कर, ॥२९॥

वायसे कृतवान्क्रूरां मतिं मतिमतां वरः।
स दर्भं संस्तराद्गृह्य ब्राह्मेणास्त्रेण योजयत् ॥ ३० ॥

उस कौए को बड़ी बुरी तरह देखा, और कुश की चटाई से एक कुश खींच, उसको ब्रह्मास्त्र के मंत्र से अभिमंत्रित किया ॥३०॥

स दीप्त इव कालाग्निर्जज्वालाभिमुखो द्विजम्।
स तं प्रदीप्तं चिक्षेप दर्भं तं वायसं प्रति ॥ ३१ ॥

तब तो वह कुश कालाग्नि के समान प्रज्वलित हो उठा। उस कुश को श्रीरामचन्द्र जी ने काक के ऊपर छोड़ा ॥३१॥

ततस्तु वायसं दर्भः सोऽम्बरेऽनुजगाम तम्।
अनुसृष्टस्तदा काको जगाम विविधां गतिम् ॥ ३२ ॥

तब वह कौवा उड़ कर आकाश में गया और वह कुश उसके पीछे लग लिया। उस ब्रह्मास्त्र से पिछियाया हुआ वह काक, कितनी ही जगहों में गया ॥३२॥

त्राणकाम इमं लोकं सर्वं वै विचचार ह ।
स पित्रा च परित्यक्तः सुरैश्च परमर्षिभिः ॥ ३३ ॥

अपनी रक्षा के लिए वह कौआ इस पृथिवी तल पर सर्वत्र घूमा पर उसकी रक्षा न हो सकी । तब वह अपने पिता, तथा अन्य देवताओं और महर्षियों के पास अपनी रक्षा के लिए गया । किन्तु सब ने उसे दुर दुरा दिया ॥ ३३ ॥

त्रींल्लोकान्संपरिक्रम्य तमेव शरणं गतः ।
स तं निपतितं भूमौ शरण्यः शरणागतम् ॥ ३४ ॥

तीनों लोकों में घूम फिर कर अन्त में वह श्रीरामचन्द्र जी ही के शरण में आया । शरणागत वत्सल श्रीरामचन्द्र जी ने उस शरण आए हुए काक को अपने सामने पृथिवी पर पड़ा हुआ देखा ॥ ३४ ॥

वधार्हमपि काकुत्स्थः कृपया पर्यपालयत् ।
न शर्म लब्ध्वा लोकेषु तमेव शरणं गतः ॥ ३५ ॥

उस बध करने योग्य काक को दयावश छोड़ दिया और न मारा । क्योंकि वह सब लोकों में घूमा फिरा, किन्तु उसकी रक्षा कहीं भी न हो सकी, इसीसे वह श्रीरामचन्द्रजी के शरण में आया था ॥ ३५ ॥

परिद्यूनं विषण्णं च स तमायान्तमब्रवीत् ।
मोघं कर्तुं न शक्यं तु ब्राह्ममस्त्रं तदुच्यताम् ॥ ३६ ॥

उस काक को सन्तप्त और दुःखी हो आया हुआ देख, श्रीरामचन्द्र जी ने उससे कहा—यह ब्रह्मास्त्र व्यर्थ तो जा नहीं सकता ; अतः तुम्हीं बतलाओ अब इसका प्रयोग कहाँ किया जाय ॥ ३६ ॥

हिनस्तु दक्षिणाक्षि त्वच्छर इत्यथ सोऽब्रवीत् ।
ततस्तस्याक्षि काकस्य हिनस्ति स्म स दक्षिणम् ॥ ३७ ॥

इस पर उसने कहा कि, जब यही बात है, तब मेरी दहिनी आँख इसके भेंट है। श्रीरामचन्द्र जी ने उस ब्रह्मास्त्र से उसकी दहिनी आँख फोड़ दी ॥ ३७ ॥

दत्त्वा स दक्षिणं नेत्रं प्राणेभ्यः परिरक्षितः ।
स रामाय नमस्कृत्वा राज्ञे दशरथाय च ॥ ३८ ॥

विसृष्टस्तेन वीरेण प्रतिपेदे स्वमालयम् ।
मत्कृते काकमात्रे तु ब्रह्मास्त्रं समुदीरितम् ॥ ३९ ॥

उस कौए ने अपनी दहिनी आँख गँवा, अपने प्राण बचाए, श्रीरामचन्द्र जी तथा महाराज दशरथ जी को प्रणाम कर और बिदा माँग अपने घर चला गया। (हे हनुमान ! तुम उनसे कहना कि) आपने मेरे पीछे तो एक कौए पर ब्रह्मास्त्र चलाया था ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

कस्माद्यो मां हरेत्त्वत्तः क्षमसे तं महीपते ।
स कुरुष्व महोत्साहः कृपां मयि नरर्षभ ॥ ४० ॥

सो हे महाराज ! जो मुझे हरा है उसे क्यों क्षमा कर दिया ? हे नरश्रेष्ठ ! आप अति प्रबल उत्साह का अवलंबन कर, मेरे ऊपर कृपा कीजिए ॥ ४० ॥

त्वया नाथवती नाथ ह्यनाथेव हि दृश्यते ।
आनृशंस्यं परो धर्मस्त्वत्त एव मया श्रुतः ॥ ४१ ॥

तुम्हारे ऐसे नाथ के रहते इस समय में अनाथिनी जैसी हो रही हूँ। मैंने तो तुम्हींसे सुना है कि, दया से बढ़ कर और कोई धर्म नहीं है ॥ ४१ ॥

जानामि त्वां महावीर्यं महोत्साहं महाबलम् ।
अपारपारमक्षोभ्यं गाम्भीर्यात्सागरोपमम् ॥ ४२ ॥

फिर मुझे यह भी विदित है कि, तुम महापराक्रमी, महोत्साही और महाबलवान हो। तुम दुरधिगम्य और समुद्र की तरह गम्भीर हो ॥ ४२ ॥

भर्तारं ससमुद्राया धरण्या वासवोपमम् ।
एवमस्त्रविदां श्रेष्ठः सत्यवान्बलवानपि ॥ ४३ ॥

और इन्द्र की तरह ससागरा पृथिवी के स्वामी हो। तुम अस्त्रवेत्ताओं में सर्वश्रेष्ठ सत्यवादी और बलवान भी हो॥ ४३ ॥

किमर्थमस्त्रं रक्षस्सु न योजयसि राघवः ।
न नागा नापि गन्धर्वा नासुरा न मरुद्गणाः ॥४४॥

सो आप अपने अस्त्रों को राक्षसों पर क्यों नहीं चलाते। न तो नाग, न गन्धर्व, न असुर न मरुद्गण ॥ ४४ ॥

रामस्य समरे वेगं शक्ताः प्रतिसमाधितुम् ।
तस्य वीर्यवतः कश्चिद्यद्यस्ति मयि संभ्रमः ॥ ४५ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के समरवेग को नहीं सम्हाल सकते। सो यदि श्रीरामचन्द्र जी के मन में मेरा कुछ भी आदर है, ॥४५॥

किमर्थं न शरैस्तीक्ष्णैः क्षयं नयति राक्षसान् ।
भ्रातुरादेशमादाय लक्ष्मणो वा परन्तपः ॥ ४६ ॥

कस्य हेतोर्न मां वीरः परित्राति महाबलः ।
यदि तौ पुरुषव्याघ्रौ वाय्वग्निसमतेजसौ ॥ ४७ ॥

तो वे क्यों अपने पैने बाणों से राक्षसों का नाश नहीं कर डालते । अथवा भाई से पूँछ महाबलवान धीर, लक्ष्मण ही मेरी रक्षा क्यों नहीं करते ! वायु और अग्नि के समान तेजस्वी वे दोनों पुरुषसिंह ॥४६॥४७॥

सुराणामपि दुर्धर्षौ किमर्थं मामुपेक्षतः ।
ममैव दुष्कृतं किञ्चिन्महदस्ति न संशयः ॥ ४८ ॥

जो देवताओं के लिए भी दुर्धर्ष हैं अर्थात् अजेय हैं, क्यों मेरी उपेक्षा कर रहे हैं । (इसका कारण यदि कुछ हो सकता है) तो यही कि, निस्सन्देह मेरे किसी जन्मान्तरकृत बड़े पाप का फल यह आ उपस्थित हुआ है ॥ ४८ ॥

समर्थावपि तौ यन्मां नावेक्षेते परन्तपौ ।
वैदेह्या वचनं श्रुत्वा करुणं साश्रु भाषितम् ॥ ४९ ॥

क्योंकि वे दोनों शत्रुहन्ता समर्थ होकर भी मेरी ओर ध्यान नहीं देते । सीता जी के करुणायुक्त और रोकर कहे हुए इन वचनों को सुन, ॥४९॥

अथाब्रवीन्महातेजा हनूमान्मारुतात्मजः ।
[1]त्वच्छोकविमुखो रामो देवि सत्येन मे शपे ॥ ५० ॥

महातेजस्वी पवनपुत्र हनुमान जी कहने लगे—हे देवि ! मैं शपथपूर्वक सत्य सत्य कहता हूँ कि, श्रीरामचन्द्र जी तुम्हारे वियोग-जन्यशोक के कारण विषयान्तर से पराङ्मुख हो रहे हैं ॥ ५० ॥

---

१ त्वच्छोकविमुखो—त्वच्छोकेन विषयान्तरपारङ्मुखः (गो०)

रामे दुःखाभिपन्ने च लक्ष्मणः परितप्यते ।
कथंचिद्भवती दृष्टा न कालः परिशोचितुम् ॥ ५१ ॥

और बहुत दुःखी हैं । लक्ष्मण भी उनके दुःख से परितप्त हैं । अस्तु, किसी प्रकार मैंने तुम्हारा पता लगा लिया है । अब यह समय शोक करने का नहीं है ॥ ५१ ॥

इमं मुहूर्तं दुःखानां द्रक्ष्यस्यन्तमनिन्दिते ।
तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ राजपुत्रौ महाबलौ ॥ ५२ ॥

हे सुन्दरि ! यद्यपि इस समय तुम्हें कष्ट है, तथापि तुम शीघ्र ही, इससे छुटकारा पावोगी । वे दोनों महाबली पुरुषसिंह राजकुमार । ५२ ॥

त्वद्दर्शनकृतोत्साहौ लङ्कां भस्मीकरिष्यतः
हत्वा च समरे क्रूरं रावणं सहबान्धवम् ॥ ५३ ॥

तुम्हारे दर्शन की लालसा से उत्साहित हो बन्धुबान्धव सहित दुष्ट रावण को युद्ध में मार कर और लङ्का को जलाकर, भस्म कर डालेंगे ॥ ५३ ॥

राघवस्त्वां विशालाक्षि नेष्यति स्वां पुरीं प्रति ।
ब्रूहि यद्राघवो वाच्यो लक्ष्मणश्च महाबलः ॥ ५४ ॥

और हे विशालाक्षि ! श्रीरामचन्द्र तुमको अपनी अयोध्यापुरी को ले जायँगे । अब तुम्हें महाबली श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण जी से जो कुछ कहना हो, सो बतलाओ ॥ ५४ ॥

सुग्रीवो वापि तेजस्वी हरयोऽपि समागताः ।
इत्युक्तवति तस्मिंश्च सीता सुरसुतोपमा ॥ ५५ ॥

और तेजस्वी सुग्रीव तथा समागत वानरों से जो कुछ कहना हो सो भी बतलाओ। हनुमान जी का वचन सुन, देवतनया की तरह सीता जी ने ॥ ५५ ॥

उवाच शोकसन्तप्ता हनुमन्तं प्लवङ्गमम्।
कौसल्या लोकभर्तारं सुषुवे यं मनस्विनी ॥ ५६ ॥

शोकसन्तप्त हो वानर हनुमान जी से कहा—मनस्विनी कौसल्या देवी ने जिन लोक-प्रति-पालक पुत्र को उत्पन्न किया है ॥ ५६ ॥

तं ममार्थे सुखं पृच्छ शिरसा चाभिवादय ।
स्रजश्च सर्वरत्नानि प्रिया याश्च वराङ्गनाः ॥ ५७ ॥
ऐश्वर्यं च विशालायां पृथिव्यामपि दुर्लभम् ।
पितरं मातरं चैव संमान्याभिप्रसाद्य च ॥ ५८ ॥
अनुप्रव्रजितो रामं सुमित्रा येन सुप्रजाः ।
आनुकूल्येन धर्मात्मा त्यक्त्वा सुखमनुत्तमम् ॥ ५९ ॥

(कौसल्या को) पहिले प्रणाम कह कर तुम मेरी ओर से उनकी (कौसल्या की) कुशल पूँछना। मालाओं, रत्नों, प्यारी स्त्रियों और पृथिवी के दुर्लभ ऐश्वर्य को त्याग तथा माता एवं पिता को प्रसन्न करके जो श्रीराम के अनुगामी बन, वन में आए, जिनके होने से सुमित्रा देवी सुपुत्रवती कहलाती हैं, जिन्होंने भाई की भक्ति के वश हो, उत्तम सुखों को त्याग, ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

अनुगच्छति काकुत्स्थं भ्रातरं पालयन्वने ।
सिंहस्कन्धो महाबाहुर्मनस्वी प्रियदर्शनः ॥ ६० ॥

और जो भाई की रक्षा करते हुए वन में उनके पीछे पीछे चलते हैं, जो सिंह के समान कंधे वाले, महाभुज, मनस्वी और देखने में अति सुन्दर हैं ॥ ६० ॥

पितृवद्वर्तते रामे मातृवन्मां समाचरन् ।
ह्रियमाणां तदा वीरो न तु मां वेद लक्ष्मणः ॥ ६१ ॥

जो श्रीराम को पिता और मुझे माता समझ बर्ताव करते हैं, उन वीर लक्ष्मण को, उस समय रावण द्वारा मेरा हरा जाना न विदित हुआ ॥ ६१ ॥

वृद्धोपसेवी लक्ष्मीवाञ्शक्तो न बहु भाषिता ।
राजपुत्रः प्रियः श्रेष्ठः सदृशः श्वशुरस्य मे ॥ ६२ ॥

देखो वृद्धसेवी, शोभावान्, समर्थ, कम बोलने वाले, राजकुमार, प्रिय, श्रेष्ठ और मेरे ससुर के समान ॥ ६२ ॥

मत्तः प्रियतरो नित्यं भ्राता रामस्य लक्ष्मणः ।
नियुक्तो धुरि यस्यां तु तामुद्वहति वीर्यवान् ॥ ६३ ॥

लक्ष्मण, मुझसे भी अधिक श्रीराम को प्यारे हैं और जो किसी कार्य में नियुक्त किए जाने पर उस कार्य को बड़ी चतुराई से पूरा करते हैं ॥ ६३ ॥

यं दृष्ट्वा राघवो नैव वृत्तमार्यमनुस्मरेत् ।
स ममार्थाय कुशलं वक्तव्यो वचनान्मम ॥ ६४ ॥

जिनको देखने से श्रीरामचन्द्र जी को पिता की याद नहीं आती, उन लक्ष्मण से मेरे कथनानुसार कुशल कहना ॥ ६४ ॥

मृदुर्नित्यं शुचिर्दक्षः प्रियो रामस्य लक्ष्मणः ।
यथा हि वानरश्रेष्ठ दुःखक्षयकरो भवेत् ॥ ६५ ॥

हे वानरश्रेष्ठ ! जो लक्ष्मण मृदुल स्वभाव, पवित्र, सच्चरित्र चतुर और श्रीरामचन्द्र के प्यारे हैं, उनसे इस प्रकार तुम कहना, जिससे वे मेरे दुःख का नाश करें ॥ ६५ ॥

त्वमस्मिन्कार्यनिर्योगे [1] प्रमाणं हरिसत्तम ।
राघवस्त्वत्समारम्भान्मयि यत्नपरो भवेत् ॥ ६६ ॥

हे कपिश्रेष्ठ ! तुम्हीं इस कार्य के पूरा कराने के लिए व्यवस्थापक हो सो इस प्रकार कहना जिससे श्रीरामचन्द्र जी मेरे उद्धार के लिए प्रयत्नशील हों ॥ ६६ ॥

इदं ब्रूयाश्च मे नाथं शूरं रामं पुनः पुनः ।
जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज ॥ ६७ ॥

मेरे शूर स्वामी से यह बात बार बार कहना, कि हे दशरथात्मज ! मैं एक मास तक और जीवित रहूँगी ॥ ६७ ॥

ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं सत्येनाहं ब्रवीमि ते ।
रावणेनोपरुद्धां मां निकृत्या पापकर्मणा ॥ ६८ ॥

मैं तुमसे सत्य सत्य कहती हूँ कि एक मास से अधिक बीतने पर मैं जीती न बचूँगी। क्योंकि इस पापी रावण ने बड़ी बुरी तरह मुझे बंद कर रखा है ॥ ६८ ॥

त्रातुमर्हसि वीर त्वं पातालादिव कौशिकीम् ।
ततो वस्त्रगतं मुक्त्वा दिव्यं चूडामणिं शुभम् ॥ ६९ ॥

---

१ प्रमाणं—व्यवस्थापकः । (गो०)

सो जिस प्रकार वाराह भगवान ने, पाताल से पृथिवी का उद्धार किया था; उसी प्रकार श्रीरामचन्द्र जी मेरा यहाँ से उद्धार करें। तदनन्तर जानकी जी ने अपनी ओढ़नी के आंचल से खोल कर सुन्दर चूड़ामणि ॥ ६९ ॥

प्रदेयो राघवायेति सीता हनुमते ददौ ।
प्रतिगृह्य ततो वीरो मणिरत्नमनुत्तमम् ॥ ७० ॥

हनुमान जी को दी और कहा इसे श्रीरामचन्द्र जी को दे देना; उस उत्तम मणि को ले हनुमान जी ने ॥ ७० ॥

अङ्गुल्या योजयपास नह्यस्य प्राभवद्भुजः ।
मणिरत्नं कपिवरः प्रतिगृह्याभिवाद्य च ।
सीतां प्रदक्षिणं कृत्वा प्रणतः पार्श्वतः स्थितः ॥ ७१ ॥

उसे अपनी अँगुली में पहिना। क्योंकि वह उनकी भुजा में न आ सकी। उस मणिश्रेष्ठ को ले और प्रणाम कर कपिश्रेष्ठ हनुमान जी ने सीता जी की परिक्रमा की। तदनन्तर वे हाथ जोड़ कर, उनके समीप खड़े हो गए ॥ ७१ ॥

हर्षेण महता युक्तः सीतादर्शनजेन सः ।
हृदयेन गतो रामं शरीरेण तु निष्ठितः ॥ ७२ ॥

हनुमान जी सीता जी के दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे। उनका शरीर तो सीता जी के पास था। किन्तु मन द्वारा श्रीरामचन्द्र जी के पास पहुँच गए ॥ ७२ ॥

मणिवरमुपगृह्य तं महार्हं
जनकनृपात्मजया धृतं प्रभावात् ।

गिरिरिव पवनावधूतमुक्तः
सुखितमनाः प्रतिसंक्रमं प्रपेदे ॥ ७३ ॥

इति अष्टात्रिंशः सर्गः ॥

बड़े यत्न से जिस मूल्यवान मणि को सीता जी ने अपने आँचल में बांध कर रख छोड़ा था; उसे हनुमान जी लेकर, आँधी के झकोरों से मुक्त पर्वत शिखर की तरह प्रसन्न हुए। तदनन्तर उन्होंने वहाँ से लौटने की पर्वतशिखर पर की इच्छा की ॥७३॥

सुन्दरकाण्ड का अड़तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

एकोनचत्वारिंशः सर्गः

—❀—

मणिं दत्वा ततः सीता हनुमन्तमथाब्रवीत् ।
अभिज्ञानमभिज्ञातमेतद्रामस्य तत्त्वतः ॥ १ ॥

तदनन्तर चूड़ामणि देकर सीता जी हनुमान जी से बोली कि इस चिन्हानी को श्रीरामचन्द्र जी भली भाँति जानते हैं ॥ १ ॥

मणिं तु दृष्ट्वा रामो वै त्रयाणां संस्मरिष्यति ।
वीरो जनन्या मम च राज्ञो दशरथस्य च ॥ २ ॥

इस चूड़ामणि को देख कर, श्रीरामचन्द्र जी को तीन जनों की याद आवेगी। मेरी, मेरी माता की और महाराज दशरथ की ॥ २ ॥

स भूयस्त्वं समुत्साहे चोदितो हरिसत्तम ।
अस्मिन्कार्यसमारम्भे प्रचिन्तय यदुत्तरम् ॥ ३ ॥

हे कपिश्रेष्ठ ! तुम इस कार्य में भली भाँति प्रयत्न करना । क्योंकि मुझे देख कर वे युद्ध करने के लिए तुमको प्रेरित करेंगे । अतः इस कार्य में उत्साह की वृद्धि करने के लिए आगे कर्त्तव्य कर्म का अभी से विचार कर लो ॥ ३ ॥

त्वमस्मिन्कार्यनियोगे प्रमाणं हरिसत्तम ।
हनुमान्यत्नमास्थाय दुःखक्षयकरो भव ॥४ ॥

हे कपिश्रेष्ठ ! इस कार्य को पूरा कराने के लिए तुम्हीं व्यवस्थापक हो । हे हनुमान् ! तुम यत्नवान् होकर, मेरा दुःख दूर करो ॥ ४ ॥

तस्य चिन्तयतो यत्नो दुःखक्षयकरो भवेत् ।
स तथेति प्रतिज्ञाय मारुतिर्भीमविक्रमः ॥ ५ ॥

अब ऐसा यत्न विचारो जिससे मेरा दुःख दूर हो जाय । सीता का ऐसा वचन सुन, भीमपराक्रमी हनुमान जी तो बहुत अच्छा ऐसा ही करूँगा, कह कर, ॥ ५ ॥

शिरसाऽऽवन्द्य वैदेहीं गमनायोपचक्रमे ।
ज्ञात्वा सम्प्रस्थितं देवी वानरं मारुतात्मजम् ॥ ६ ॥

और सीता जी को मस्तक नवा प्रणाम कर वहाँ से चलने को तैयार हुए । तब पवननन्दन हनुमान जी को वहाँ से चलने के लिए तैयार जान ॥ ६ ॥

बाष्पगद्गदया वाचा मैथिली वाक्यमब्रवीत् ।
कुशलं हनुमन्ब्रूयाः सहितौ रामलक्ष्मणौ ॥ ७ ॥

जानकी जी ने गद्गद कण्ठ से हनुमान जी से कहा—हे हनुमान्! श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी से मेरी राजीखुशी कह देना ॥ ७ ॥

सुग्रीवं च सहामात्यं वृद्धान्सर्वांश्च वानरान् ।
ब्रूयास्त्वं वानर श्रेष्ठ कुशलं धर्मसंहितम् ॥ ८ ॥

हे वानरश्रेष्ठ! मन्त्रियों सहित सुग्रीव तथा अन्य बूढ़े बड़े वानरों से भी मेरी खुशी राजी के समाचार धर्म सहित ठीक ठीक कह देना ॥ ८ ॥

[नोट—आदि कवि ने उक्त श्लोक में "धर्म संहितम्" दो शब्द दिए हैं। इससे जानकी जी का यह अभिप्राय जान पड़ता है कि, मैं यहां जिस प्रकार कुशल से हूँ—सो ईमान्दारी के साथ ज्यों का त्यों कह देना]।

यथाच स महाबाहुर्मां तारयति राघवः ।
अस्माद्दुःखाम्बुसंरोधात्त्वं समाधातुमर्हसि ९ ॥ ॥

और जिस तरह वे महाबाहु श्रीरामचन्द्र जी मुझे इस शोक-सागर के पार लगावें, उस तरह उनको भली भांति समझाना ॥९॥

जीवन्तीं मां यथा रामः संभावयति कीर्त्तिमान् ।
तत्तथा हनुमन्वाच्यो वाचा धर्ममवाप्नुहि ॥ १० ॥

हे हनुमान! तुम इस प्रकार उनसे कहना कि, जिससे यशस्वी श्रीरामचन्द्र जी मेरे जीवित रहते रहते, मुझे मिल जायँ। ऐसे वचन कहने से तुमको बड़ा पुण्य फल प्राप्त होगा ॥ १० ॥

नित्यमुत्साहयुक्ताश्च वाचः श्रुत्वा त्वयेरिताः ।
वर्धिष्यते दाशरथेः पौरुषं मदवाप्तये ॥ ११ ॥

यद्यपि श्रीरामचन्द्र जी तो सदा उत्साहवान रहते ही हैं, तो भी तुम्हारे मुख से मेरे संदेसे को सुन कर, प्राप्ति के लिए उनका पुरुषार्थ बढ़ेगा ॥ ११ ॥

मत्संदेशयुता वाचस्त्वत्तः श्रुत्वैव राघवः ।
पराक्रमविधिं वीरो विधिवत्संविधास्यति ॥ १२ ॥

और मेरे सन्देशयुक्त तुम्हारे वचन सुन कर, वीर श्रीरामचन्द्र जी यथाविधान अपना पराक्रम प्रकट करने को कटिबद्ध होंगे ॥ १२ ॥

सीताया वचनं श्रुत्वा हनुमान्मारुतात्मजः ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ १३ ॥

सीता जी के इन वचनों को सुन कर, पवननन्दन हनुमान जी ने हाथ जोड़ कर कहा ॥ १३ ॥

क्षिप्रमेष्यति काकुत्स्थो हर्यृक्षप्रवरैर्वृतः ।
यस्ते युधि विजित्यारीञ्शोकं व्यपनयिष्यति ॥ १४ ॥

हे देवि ! श्रीरामचन्द्र जी बहुत ही शीघ्र बड़े बड़े बलवान वानरों और रीछों की सेना को साथ लेकर, यहाँ आवेंगे और शत्रुओं को मार, तुम्हारा शोक दूर करेंगे ॥ १४ ॥

न हि पश्यामि मर्त्येषु नासुरेषु सुरेषु वा ।
यस्तस्य क्षिपतो बाणान्स्थातुमुत्सहतेऽग्रतः ॥ १५ ॥

क्योंकि मनुष्य, देवता, अथवा दैत्य योनियों में मुझे तो ऐसा कोई देख नहीं पड़ता, जो बाणों की वर्षा करते हुए श्रीरामचन्द्र जी के सामने खड़ा रह सके ॥ १५ ॥

अप्यर्कमपि पर्जन्यमपि वैवस्वतं यमम् ।
स हि सोढुं रणे शक्तस्तव हेतोर्विशेषतः ॥ १६ ॥

हे देवि ! श्रीरामचन्द्र जी संग्राम में सूर्य, इन्द्र और यमराज का भी सामना कर सकते हैं और विशेष कर तुम्हारे लिए ॥ १६ ॥

स हि सागरपर्यन्तां महीं शासितुमीहते ।
त्वन्निमित्तो हि रामस्य जयो जनकनन्दिनि ॥ १७ ॥

हे जानकी ! वे तुम्हारे लिए ससागर अखिल भूमण्डल को जीतने के लिए तैयार हुए हैं और जय भी उन्हीं का होगा ॥ १७॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सम्यक्सत्यं सुभाषितम्
जानकी बहु मेनेऽथ वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १८ ॥

हनुमान जी के युक्तियुक्त, परमार्थयुक्त और श्रुतमधुर वचनों को सुन, जानकी जी ने अति आदरपूर्वक यह वचन कहे ॥ १८ ॥

ततस्तं प्रस्थितं सीता वीक्षमाणा पुनः पुनः ।
भर्तृस्नेहान्वितं वाक्यं सौहार्दादनुमानयत् ॥ १९ ॥

सीता जी ने जाने को तैयार खड़े हनुमान जी की ओर बार बार देख, अपने प्रति अपने स्वामी का स्नेह प्रकट करने वाले सम्मानसूचक वचन कहे ॥ १९ ॥

यदि वा मन्यसे वीर वसैकाहमरिन्दम ।
कस्मिंश्चित्संवृते देशे विश्रान्तः श्वो गमिष्यसि ॥ २० ॥

हे शत्रुओं के दमन करने वाले वीर ! यदि ठीक समझो तो एक दिन और यहीं कहीं किसी गुप्त स्थान में रह जाओ और विश्राम कर कल चले जाना ॥ २० ॥

मम चेदल्पभाग्यायाः सांनिध्यात्तव वानर ।
अस्य शोकस्य महतो मुहूर्तं मोक्षणं भवेत् ॥ २१ ॥

क्योंकि तुम्हारे मेरे पास रहने से मुझ अभागी का यह अपार दुःख, कुछ देर के लिए अवश्य घट जाता ॥ २१ ॥

गते हि हरिशार्दूल पुनरागमनाय तु ।
प्राणानामपि सन्देहो मम स्यान्नात्र संशयः ॥ २२ ॥

हे कपिश्रेष्ठ ! तुम्हारे यहाँ से लौट जाने पर और पुनः यहाँ आने के समय तक मुझे सन्देह है कि, मैं जीती रहूँ या न रहूँ ॥ २२ ॥

तवादर्शनजः शोको भूयो मां परितापयेत् ।
दुःखाद्दुःखपरामृष्टां दीपयन्निव वानर ॥ २३ ॥

हे वानर ! तुम्हारे न देखने का शोक भी मुझे सन्तप्त करेगा और वर्तमान दुःख से बढ़ कर यह दुःख केवल मुझे सतावेगा ही नहीं ; बल्कि भस्म कर डालेगा ॥ २३ ॥

अयं च वीर सन्देहस्तिष्ठतीव ममाग्रतः ।
सुमहांस्त्वत्सहायेषु हर्यृक्षेषु हरीश्वर ॥ २४ ॥

हे वीर ! मुझे एक सन्देह और भी है। वह यह कि, वानरराज सुग्रीव अपनी वानरी और रीछों की बड़ी भारी सेना ले ॥२४॥

कथं नु खलु दुष्पारं तरिष्यन्ति महोदधिम् ।
तानि हर्यृक्षसैन्यानि तौ वा नरवरात्मजौ ॥ २५ ॥

इस अपार महासागर के पार कैसे आ पावेंगे, वे दोनों भाई और रीछों वानरों की सेना, कैसे पार हो सकेगी ॥ २५ ॥

त्रयाणामेव भूतानां सागरस्यास्य लङ्घने ।
शक्तिः स्याद्वैनतेयस्य तव वा मारुतस्य वा ॥ २६ ॥

तीन ही जन इस महासागर को पार कर सकते हैं। या तो गरुड़ जी या तुम अथवा पवनदेव ॥ २६ ॥

तदस्मिन्कार्यनिर्योगे वीरैवं दुरतिक्रमे ।
किं पश्यसि समाधानं त्वं हि कार्यविदां वरः ॥२७॥

अतएव हे वीर ! इस दुरतिक्रम कार्य की सफलता में तुमने कौनसा उपाय विचारा है। क्योंकि तुम कार्य को सफल करने वाले श्रेष्ठजनों में सर्वश्रेष्ठ हो ॥ २७ ॥

काममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने ।
पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते फलोदयः ॥ २८ ॥

हे शत्रुहन्ता ! एक तुम्हीं इस कार्य को पूरा कर सकते हो। अतएव यश की देने वाली सफलता तुम्हीं को प्राप्त होगी ॥ २८ ॥

बलैः समग्रैर्यदि मां रावणं जित्य संयुगे ।
विजयी स्वपुरीं यायात्तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥ २९ ॥

जब श्रीरामचन्द्र जी ससैन्य रावण को युद्ध में परास्त कर और विजयी हो मुझे अपनी राजधानी में ले जायँ, तब यह कार्य उनके स्वरूपानुरूप हो ॥ २९ ॥

शरैस्तु सङ्कुलां कृत्वा लङ्कां परबलार्दनः ।
मां नयेद्यदि काकुत्स्थस्तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥ ३० ॥

शत्रुहन्ता श्रीरामचन्द्र जी जब अपने तीरों से लङ्कापुरी को पाट दें और मुझे यहाँ से वे ले चलें, तब उनका यह कार्य उनके स्वरूपानुरूप हो ॥ ३० ॥

तद्यथा तस्य विक्रान्तमनुरूपं महात्मनः ।
भवेदाहवशूरस्य तथा त्वमुपपादय ॥ ३१ ॥

अतएव हे वीर ! जिससे महात्मा रणविजयी श्रीरामचन्द्र जी के पराक्रम की धाक बैठे, तुम वैसा ही प्रयत्न करना ॥ ३१ ॥

तदर्थोपहितं वाक्यं सहितं हेतुसंहितम् ।
निशम्य हनुमाञ्शेषं[1] वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ ३२ ॥

सीता जी के पूर्वकथित अर्थयुक्त परस्परसंगत और युक्तियुक्त वचनों को सुन, हनुमान जी आगे कहने लगे ॥ ३२ ॥

देवि हर्यृक्षसैन्यानामीश्वरः प्लवतां वरः ।
सुग्रीवः सत्त्वसंपन्नस्तवार्थे कृतनिश्चयः ॥ ३३ ॥

हे देवि ! सुग्रीव वानरों और रीछों की सेनाओं के स्वामी हैं, वानरों में श्रेष्ठ हैं और बड़े बलवान हैं । वे तुम्हारा उद्धार करने का निश्चय कर चुके हैं ॥ ३३ ॥

स वानरसहस्राणां कोटीभिरभिसंवृतः ।
क्षिप्रमेष्यति वैदेहि राक्षसानां निबर्हणः ॥ ३४ ॥

सो वे हज़ारों और करोड़ों वानरों को साथ ले, राक्षसों का नाश करने को यहाँ बहुत शीघ्र आवेंगे ॥ ३४ ॥

---

१ शेषं—पूर्वमनुक्तं । (गो०)

तस्य विक्रमसंपन्नाः सत्त्ववन्तो महाबलाः ।
[1]मनः सङ्कल्पसंपाता निदेशे हरयः स्थिताः ॥ ३५ ॥

उनकी आज्ञा में रहने वाले वानर लोग बड़े शूर, बड़े विक्रमी और मन के समान शीघ्रगामी हैं ॥ ३५ ॥

येषां नोपरि नाधस्तान्न तिर्यक्सज्जते गतिः ।
न च कर्मसु सीदन्ति महत्स्वमिततेजसः ॥ ३६ ॥

वे सब ऊपर नीचे, आड़े, तिरछे सब ओर आ जा सकते हैं। वे अतुल तेजसम्पन्न वानरगण बड़े बड़े काम सहज ही में कर डालते हैं ॥ ३६ ॥

असकृत्तैर्महोत्साहैः ससागरधराधरा ।
प्रदक्षिणीकृता भूमिर्वायुमार्गानुसारिभिः ॥ ३७ ॥

उन महोत्साही वानरों ने आकाशमार्ग से चल कर कितनी ही बार इस ससागरा और पर्वतों सहित पृथिवी की परिक्रमा कर डाली है ॥ ३७ ॥

मद्विशिष्टाश्च तुल्याश्च सन्ति तत्र वनौकसः ।
मत्तः प्रत्यवरः कश्चिन्नास्ति सुग्रीवसन्निधौ ॥ ३८ ॥

सुग्रीव के पास मुझसे बढ़ कर और मेरे समान ही सब वानर हैं। मुझसे हेटा वानर तो वहाँ कोई है ही नहीं ॥ ३८ ॥

अहं तावदिह प्राप्तः किं पुनस्ते महाबलाः ।
न हि प्रकृष्टाः प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हीतरे जनाः ॥ ३९ ॥

---

१ मनः सङ्कल्पसंपाताः—मनोव्यापारतुल्यगमनाः । (गो०)

जब मैं ही यहाँ आगया, तब उन महाबलवान् वानरों का तो कहना ही क्या है। ऐसे कामों में अर्थात दूत बना कर, साधारण लोग ही भेजे जाते हैं, प्रधान नहीं ॥ ३९ ॥

तदलं परितापेन देवि शोको व्यपैतु ते ।
एकोत्पातेन ते लङ्कामेष्यन्ति हरियूथपाः ॥ ४० ॥

हे देवि ! इस बात की तुम चिन्ता मत करो और शोक त्याग दो। वे वानरयूथपति एक ही छलांग में लङ्का में आ जायँगे ॥ ४० ॥

मम पृष्ठगतौ तौ च चन्द्रसूर्याविवोदितौ ।
त्वत्सकाशं महासत्त्वौ नृसिंहावागमिष्यतः ॥ ४१ ॥

चन्द्र और सूर्य के समान वे महाबलवान और पुरुषसिंह दोनों भाई मेरी पीठ पर सवार हो, तुम्हारे पास आवेंगे ॥ ४१ ॥

तौ हि वीरौ नरवरौ सहितौ रामलक्ष्मणौ ।
आगम्य नगरीं लङ्कां सायकैर्विधमिष्यतः ॥ ४२ ॥

वे दोनों पुरुषोत्तम वीरवर श्रीराम और लक्ष्मण एक साथ लङ्का में आकर इस लङ्कापुरी को तहस नहस कर डालेंगे ॥४२॥

सगणं रावणं हत्वा राघवो रघुनन्दनः ।
त्वामादाय वरारोहे स्वपुरीं प्रतियास्यति ॥ ४३ ॥

हे सुन्दरि ! रघुनन्दन श्रीरामचन्द्र सपरिवार रावण को मार, और तुमको ले, अयोध्या को जायँगे ॥ ४३ ॥

तदाश्वसिहि भद्रं ते भव त्वं कालकाङ्क्षिणी ।
न चिराद्द्रक्ष्यसे रामं प्रज्वलन्तमिवानलम् ॥ ४४ ॥

हे सीते! तुम्हारा मङ्गल हो। तुम धीरज धरो और समय की प्रतीक्षा करो। तुम बहुत शीघ्र प्रज्वलित अग्नि की तरह तेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी को देखोगी॥ ४४॥

निहते राक्षसेन्द्रेऽस्मिन्सपुत्रामात्यबान्धवे।
त्वं समेष्यसि रामेण शशाङ्केनेव रोहिणी॥ ४५॥

पुत्रों, मन्त्रियों और बन्धुबान्धव सहित रावण के मारे जाने पर तुम उसी प्रकार श्रीरामचन्द्र से मिलोगी, जिस प्रकार रोहिणी चन्द्रमा से मिलती है॥ ४५॥

क्षिप्रं त्वं देवि शोकस्य पारं यास्यसि मैथिलि।
रावणं चैव रामेण निहतं द्रक्ष्यसेऽचिरात्॥ ४६॥

हे मैथिलि देवि! तुम बहुत शीघ्र इस शोकसागर के पार होगी और हे देवि बहुत शीघ्र तुम श्रीराम द्वारा रावण का मारा जाना देखोगी॥ ४६॥

एवमाश्वास्य वैदेहीं हनुमान्मारुतात्मजः।
गमनाय मतिं कृत्वा वैदेहीं पुनरब्रवीत्॥ ४७॥

पवननन्दन हनुमान जी इस प्रकार सीता को धीरज बँधा और वहाँ से लौटने का विचार कर, सीता से पुनः बोले॥ ४७॥

तमरिघ्नं कृतात्मानं क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम्।
लक्ष्मणं च धनुष्पाणिं लङ्काद्वारमुपस्थितम्॥ ४८॥

हे देवि! तुम हाथ में धनुष लिये हुए उन शत्रुहन्ता विजयी श्रीरामचन्द्र जी तथा लक्ष्मण जी को बहुत शीघ्र लङ्का के द्वार पर आया हुआ देखोगी॥ ४८॥

नखदंष्ट्रायुधान्वीरान्सिंहशार्दूलविक्रमान् ।
वानरान्वारणेन्द्राभान्क्षिप्रं द्रक्ष्यसि सङ्गतान् ॥ ४९ ॥

तुम लङ्का में एकत्र हुए, नखों और दाँतों से लड़ने वाले, सिंह और शार्दूल के समान विक्रमी और हाथियों के समान विशाल शरीरधारी वीर वानरों को भी शीघ्र देखोगी ॥ ४९ ॥

शैलाम्बुदनिकाशानां लङ्कामलयसानुषु ।
नर्दतां *कपिमुख्यानामाचिराच्छ्रोष्यसि स्वनम् ॥ ५० ॥

पर्वत और मेघ के समान बड़े बड़े शरीरधारी और लङ्का के इस मलयाचल पर गर्जना करते हुए वानरों के शब्द को तुम बहुत जल्द सुनोगी ॥ ५० ॥

स तु मर्मणि घोरेण ताडितो मन्मथेषुणा ।
न शर्म लभते रामः सिंहार्दित इव द्विपः ॥ ५१ ॥

हे देवि ! श्रीरामचन्द्र जी आपके वियोग में कामदेव के बाणों से पीड़ित हो, सिंह द्वारा घायल हाथी की तरह, घड़ी भर भी चैन नहीं पाते ॥ ५१ ॥

मा रुदो देवि शोकेन मा भूत्ते †मनसो भयम् ।
शचीव पत्या शक्रेण भर्त्रा नाथवती ह्यसि ॥ ५२ ॥

हे देवि ! न तो तुम अब रुदन करो, न दुःखी हो और न अब किसी बात से डरो । तुम शची की तरह इन्द्र तुल्य अपने पति से मिलोगी ॥ ५२ ॥

---

* पाठान्तरे—" कपिमुख्यानामार्ये यूथान्यनेकशः । " † पाठान्तरे—" मनसोऽप्रियम् । "

रामाद्विशिष्टः कोऽन्योस्ति कश्चित्सौमित्रिणा समः ।
अग्निमारुतकल्पौ तौ भ्रातरौ तव संश्रयौ ॥ ५३ ॥

ज़रा विचारो तो श्रीरामचन्द्र जी से बढ़ कर और लक्ष्मण जी के समान जगत् में और है कौन ! सो वे दोनों भाई, जो अग्नि और पवन के समान हैं, तुम्हारे अवलंब हैं ॥ ५३ ॥

नास्मिंश्चिरं वत्स्यसि देवि देशे
रक्षोगणैरध्युषितेऽतिरौद्रे ।
न ते चिरादागमनं प्रियस्य
क्षमस्व मत्सङ्गमकालमात्रम् ॥ ५४ ॥

इति एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥

हे देवि ! तुम राक्षसों की इस पुरी में, जो अत्यन्त भयङ्कर है; बहुत दिनों अब न रहोगी और न तुम्हारे प्यारे पति के यहाँ आने ही में अब विलम्ब है। बस तुम तब तक प्रतीक्षा करो ; जब तक मैं श्रीरामचन्द्र से जा कर मिलूँ ॥ ५४ ॥

सुन्दरकाण्ड का उनतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—❀—

चत्वारिंशः सर्गः

—❀—

श्रुत्वा तु वचनं तस्य वायुसूनोर्महात्मनः ।
उवाचात्महितं वाक्यं सीता सुरसुतोपमा ॥ १ ॥

महात्मा पवननन्दन के वचन सुन, देवकन्या के समान सीता अपने हित या मतलब, की बात बोलीं ॥ १ ॥

त्वां दृष्ट्वा प्रियवक्तारं संप्रहृष्यामि वानर ।
अर्धसञ्जातसस्येव वृष्टिं प्राप्य वसुन्धरा ॥ २ ॥

हे वानर ! तुझ प्यारे वचन बोलने वाले को देख, मुझे वैसा ही हर्ष प्राप्त हुआ है ; जैसा कि, आधे उगे धान्य से युक्त पृथिवी को जलवृष्टि से होता है ॥ २ ॥

यथा तं पुरुषव्याघ्रं गात्रैः शोकाभिकर्शितैः ।
संस्पृशेयं [1]सकामाऽहं तथा कुरु दयां मयि ॥ ३ ॥

तुम मेरे ऊपर दया कर के ऐसा करना कि, जिससे उत्कट इच्छा रखने वाली मैं, शोककर्षित उन पुरुषसिंह श्रीरामचन्द्र जी से मिल भेंट सकूँ ॥ ३ ॥

अभिज्ञानं च रामस्य दद्या हरिगणोत्तम ।
क्षिप्तामिषीकां काकस्य कोपादेकाक्षिशातनीम् ॥ ४ ॥
मनःशिलायास्तिलको गण्डपार्श्वे निवेशितः ।
त्वया प्रनष्टे तिलके तं किल स्मर्तुमर्हसि ॥ ५ ॥

हे वानरोत्तम ! तुम श्रीरामचन्द्र जी को उस काक की आँख फोड़ने वाली पहचान अवश्य बतला देना और यह कह देना कि, जब एक बार मेरा तिलक मिट गया था ; तब तुमने मेरे गालों पर मैनसिल का तिलक लगा दिया था सो इसका भी स्मरण करो ॥ ४ ॥ ५ ॥

स वीर्यवान्कथं सीतां हृतां समनुमन्यसे ।
वसन्तीं रक्षसां मध्ये महेन्द्रवरुणोपमः ॥ ६ ॥

---

१ सकामाहं—उत्कटेच्छावती । (शि०)

तुम इन्द्र और वरुण के समान बलवान हो कर भी राक्षसों के बीच रहने वाली सीता की उपेक्षा क्यों करते हो ?॥ ६ ॥

एष चूडामणिर्दिव्यो मया सुपरिरक्षितः ।
एतं दृष्ट्वा प्रहृष्यामि व्यसने त्वामिवानघ ॥ ७ ॥

देखो, यह दिव्य चूड़ामणि, मैंने अपने पास बड़े यत्न से रख छोड़ी थी और इसे जब देखती तब इस दुःख में भी, मुझे वैसा ही आनन्द प्राप्त होता था जैसा तुम्हें प्रत्यक्ष देखने से होता है ॥ ७ ॥

एष निर्यातितः श्रीमान्मया ते वारिसंभवः ।
अतः परं न शक्ष्यामि जीवितुं शोकलालसा ॥ ८ ॥

अब मैं इस जल से उत्पन्न मणि को तुम्हारे पास चिन्हानी के रूप में भेजती हूँ। इसको तुम्हारे पास भेज, मैं दुःखियारी न जी सकूँगी ॥ ८ ॥

असह्यानि च दुःखानि वाचश्च हृदयच्छिदः ।
राक्षसीनां सुघोराणां त्वत्कृते मर्षयाम्यहम् ॥ ९ ॥

यहाँ मुझे असह्य दुःख झेलने पड़ते हैं और भयङ्कर राक्षसियों के मर्मभेदी वचन सुनने पड़ते हैं। ये सब तुम्हारे लिए ही मैं सह रही हूँ ॥ ९ ॥

धारयिष्यामि मासं तु जीवितं शत्रुसूदन ।
मासादूर्ध्वं न जीविष्ये त्वया हीना नृपात्मज ॥ १० ॥

हे शत्रुसूदन ! अब से एक मास तक और मैं तुम्हारी बाट जोहती हुई जीवित रहूँगी। हे राजकुमार ! एक मास बीतने बाद तुम्हारे यदि दर्शन न हुए तो मैं प्राण त्याग दूँगी ॥ १० ॥

घोरो राक्षसराजोऽयं दृष्टिश्च न सुखा मयि ।
त्वां च श्रुत्वा विषज्जन्तं न जीवेयमहं क्षणम् ॥ ११ ॥

राक्षसराज रावण अत्यन्त निठुर है। मुझे इसकी सूरत देखना भी अच्छा नहीं लगता। यदि तुमने यहाँ आने में विलम्ब किया और यह बात मैंने सुनी, तो एक क्षण भी मैं जीवित न रहूँगी ॥ ११ ॥

वैदेह्या वचनं श्रुत्वा करुणं साश्रु भाषितम् ।
अथाऽब्रवीन्महातेजा हनुमान्मारुतात्मजः ॥ १२ ॥

जानकी जी के रुदनपूर्वक कहे हुए इन वचनों को सुन, महा तेजस्वी पवननन्दन हनुमान जी कहने लगे ॥ १२ ॥

त्वच्छोकविमुखो रामो देवि सत्येन ते शपे ।
रामे दुःखाभिभूते तु लक्ष्मणः परितप्यते ॥ १३ ॥

हे देवि ! मैं शपथपूर्वक सत्य सत्य कहता हूँ कि, श्रीरामचन्द्र जी तुम्हारे वियोग-जन्य-शोक से उदास हैं और उनकी दशा देख लक्ष्मण भी सन्तप्त रहा करते हैं ॥ १३ ॥

कथंचिद्भवती दृष्टा न कालः परिशोचितुम् ।
इमं मुहूर्तं दुःखानामन्तं द्रक्ष्यसि भामिनि ॥ १४ ॥

संयोगवश मैंने किसी तरह अब तुमको देख पाया है। सो अब हे भामिनी ! अब तुम शीघ्र ही इन दुःखों का अन्त देखोगी अर्थात् दुखों से छूट जाओगी ॥ १४ ॥

तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ राजपुत्रावरिन्दमौ ।
त्वद्दर्शनकृतोत्साहौ लङ्कां भस्मीकरिष्यतः ॥ १५ ॥

वे दोनों पुरुषसिंह, शत्रुहन्ता राजकुमार तुम्हारे देखने के लिए उत्साहित हो, लङ्का को जला कर भस्म कर डालेंगे ॥ १५ ॥

हत्वा तु समरे क्रूरं रावणं सहबान्धवम् ।
राघवौ त्वां विशालाक्षि स्वां पुरीं प्रापयिष्यतः ॥१६॥

हे विशालाक्षि ! बन्धुबान्धव सहित निष्ठुर रावण को मार, श्रीरामचन्द्र जी तुमको अयोध्या ले जायँगे ॥ १६ ॥

यत्तु रामो विजानीयादभिज्ञानमनिन्दिते ।
प्रीतिसञ्जननं तस्य भूयस्त्वं दातुमर्हसि ॥ १७ ॥

हे सुन्दरि ! जिस चिन्हानी को श्रीरामचन्द्र जी चीन्हते हों और जिसको देखते ही उनके मन में विश्वास उत्पन्न हो, मुझे ऐसी चिन्हानी कोई और दो ॥ १७ ॥

साब्रवीद्दत्तमेवेति मयाभिज्ञानमुत्तमम् ।
एतदेव हि रामस्य दृष्ट्वा मत्केशभूषणम् ॥ १८ ॥

इस पर सीता जी कहने लगी, हे वीर ! मैंने तुमको यह श्रेष्ठ चूड़ामणि चिन्हानी दी है, जिसको देख ॥ १८ ॥

श्रद्धेयं हनुमन्वाक्यं तव वीर भविष्यति ।
स तं मणिवरं गृह्य श्रीमान्प्लवगसत्तमः ॥ १९ ॥

हे वीर ! श्रीरामचन्द्र जी तुम्हारे वचनों पर विश्वास कर लेंगे । तब शोभायमान वानरश्रेष्ठ हनुमान जी उस मणिश्रेष्ठ को ले, ॥ १९ ।

प्रणम्य शिरसा देवीं गमनायोपचक्रमे ।
तमुत्पातकृतोत्साहमवेक्ष्य हरिपुङ्गवम् ॥ २० ॥

वर्धमानं महावेगमुवाच जनकात्मजा ।
अश्रुपूर्णमुखी दीना बाष्पगद्गदया गिरा ॥ २१ ॥

और जानकी जी को सीस नवा कर प्रणाम कर, वहाँ से चलने को तैयार हुए। हनुमान जी को छलांग मारने के लिए तैयार और बड़ी तेज़ी के साथ शरीर को बढ़ाते हुए देख, सीता जी आँखों में आँसू भर गद्गद कण्ठ से बोलीं ॥ २० ॥ २१ ॥

हनुमन्सिंहसङ्काशौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
सुग्रीवं च सहामात्यं सर्वान्ब्रूया ह्यनामयम् ॥ २२ ॥

हे हनुमान ! सिंह समान पराक्रमी दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण से और मन्त्रियों सहित सुग्रीवादि सब वानरों से मेरा कुशल वृत्तान्त कह देना ॥ २२ ॥

यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघवः ।
अस्माद्दुःखाम्बुसंरोधात्त्वं समाधातुमर्हसि ॥ २३ ॥

और जैसे महाबाहु श्रीरामचन्द्र जी मुझे इस शोकसागर से उबारें, वैसे ही तुम उनको समझा देना ॥ २३ ॥

इमं च तीव्रं मम शोकवेगं
रक्षोभिरेभिः परिभर्त्सनं च ।
ब्रूयास्तु रामस्य गतः समीपं
शिवश्च तेऽध्वास्तु हरिप्रवीर ॥ २४ ॥

हे कपिश्रेष्ठ ! मेरे इस तीव्र शोक के वेग का तथा राक्षसों द्वारा मेरी दुर्दशा का वृत्तान्त तुम श्रीरामचन्द्र जी के पास जाकर कह

देना। मैं आशीर्वाद देती हूँ कि, तुम्हारी यात्रा निर्विघ्न पूरी हो ॥ २४ ॥

स राजपुत्र्या प्रतिवेदितार्थः
कपिः कृतार्थः परिहृष्टचेताः ।
अल्पावशेषं प्रसमीक्ष्य कार्यं
दिशं ह्युदीचीं मनसा जगाम ॥ २५ ॥

इति चत्वारिंशः सर्गः ॥

श्री हनुमान जी राजपुत्री सीता का समस्त हाल जान लेने से, सफलमनोरथ होने के कारण परम प्रसन्न हुए और थोड़े से बचे हुए कार्य के विषय में विचार करते हुए मन द्वारा वे उत्तर दिशा को प्रस्थानित हो गए ॥ २५ ॥

सुन्दरकाण्ड का चालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

एकचत्वारिंशः सर्गः

स च वाग्भिः प्रशस्ताभिर्गमिष्यन्पूजितस्तया ।
तस्माद्देशादपाक्रम्य चिन्तयामास वानरः ॥ १ ॥

वहाँ से चलने के समय सीता जी की सुन्दर वचनावली द्वारा सम्मानित हो, गमन करने की इच्छा से, हनुमान जी उस स्थान से हट कर और दूसरे स्थान पर जा कर विचारने लगे ॥ १ ॥

अल्पशेषमिदं कार्यं दृष्टेयमसितेक्षणा।
त्रीनुपायानतिक्रम्य चतुर्थ इह *दृश्यते ॥ २ ॥

इन कृष्ण-नेत्र-वाली जानकी जी का तो दर्शन मिल गया; किन्तु एक छोटा कार्य और करना रह गया है। सो उसके करने के लिए पहिले तीन उपायों (अर्थात् साम, दान और भेद) से तो काम होता देख नहीं पड़ता। हाँ, चौथे उपाय (अर्थात् दण्ड या बलप्रदर्शन) से काम हो सकता है॥ २ ॥

न साम रक्षःसु गुणाय कल्पते
न दानमर्थोपचितेषु युज्यते।
न भेदसाध्या बलदर्पिता जनाः
पराक्रमस्त्वेव ममेह रोचते॥ ३ ॥

ये राक्षस बड़े क्रूर स्वभाव वाले हैं—अतः खुशामद बरामद से यहाँ काम नहीं निकल सकता। उनके पास धन सम्पत्ति की कमी नहीं; अतः उनको धन सम्पत्ति देने का लालच दिखाना भी व्यर्थ ही है। बलदर्पित पुरुषों में भेद डाल कर भी काम निकालना कठिन है। अतः शेष कार्य को करने के लिए (दण्डनीति) पराक्रम प्रकाश करना ही मुझे ठीक जान पड़ता है॥ ३ ॥

न चास्य कार्यस्य पराक्रमादृते
विनिश्चयः कश्चिदिहोपपद्यते।
हतप्रवीरास्तु रणे हि राक्षसाः
कथंचिदीयुर्यदिहाद्य मार्दवम्॥ ४ ॥

---

* पाठान्तरे—"लक्ष्यते।"

दूसरे के बल की जाँच करने के लिए स्वपराक्रम प्रकट करने के अतिरिक्त मुझे अन्य कोई उपाय कार्यसिद्धि करने वाला नहीं देख पड़ता। जब राक्षसों के पक्ष के कतिपय वीर मारे जायँगे तब सम्भव है, राक्षस आगे के युद्ध में ढीले पड़ जायँ ॥ ४ ॥

कार्ये कर्मणि निर्दिष्टे यो बहून्यपि साधयेत् ।
पूर्वकार्याविरोधेन स कार्यं कर्तुमर्हति ॥ ५ ॥

मुख्य कार्य को प्रथम कर के और मुख्य कार्य को हानि न पहुँचाते हुए, जो दूत और भी कई एक कार्य पूरे कर डाले, तो वही दूत वास्तव में कार्य करने के योग्य कहा जा सकता है ॥५॥

न ह्येकः साधको हेतुः स्वल्पस्यापीह कर्मणः ।
यो ह्यर्थं बहुधा वेद स समर्थोऽर्थसाधने ॥ ६ ॥

जो व्यक्ति छोटे से किसी एक काम को बड़े प्रयत्न से पूरा करता है, वह कार्यसाधक नहीं कहा जा सकता। किन्तु जो सामान्य प्रयास से अपने कार्य को अनेक प्रकार से पूरा कर डाले, उसी को कार्य करने के योग्य कहना चाहिए ॥ ६ ॥

इहैव तावत्कृतनिश्चयो ह्यह
यदि व्रजेयं प्लवगेश्वरालयम् ।
परात्मसंमर्दविशेषतत्त्ववित्
ततः कृतं स्यान्मम भर्तृशासनम् ॥ ७ ॥

यद्यपि मैंने अब सुग्रीव के समीप जाने ही का निश्चय कर लिया है; तथापि शत्रु के साथ जब मेरा युद्ध होगा; तब अपने और शत्रु के बलाबल का ठीक ठीक विचार कर लूंगा। तदनन्तर यहाँ से चलूँगा; तभी तो स्वामी के आदेश का यथावत् पालन हो सकेगा ॥ ७ ॥

कथं नु खल्वद्य भवेत्सुखागतं
प्रसह्य युद्धं मम राक्षसैः सह ।
तथैव खल्वात्मबलं च सारवत्
समानयेन्मां च रणे दशाननः ॥ ८ ॥

इस समय क्या करूँ जिससे राक्षसों के साथ सहज में मेरा युद्ध ठन जाय क्योंकर रावण मुझको रणक्षेत्र में खड़ा देख, अपनी सेना की और मेरे बल की उत्कृष्टता अपकृष्टता जान ले ॥ ८ ॥

ततः समासाद्य रणे दशाननं
समन्त्रिवर्गं सबलप्रयायिनम् ।
हृदि स्थितं तस्य मतं बलं च वै
सुखेन मत्त्वाऽहमितः पुनर्व्रजे ॥ ९ ॥

मन्त्री, सेना तथा अपने सुहृदों के सहित रावण को युद्ध में पा कर अभी उसके हृद्‌गत भावों को तथा उसके बल को जान कर मैं फिर सुखपूर्वक यहाँ से रवाना हो जाऊँगा ॥ ९ ॥

इदमस्य नृशंसस्य नन्दनोपममुत्तमम् ।
वनं नेत्रमनःकान्तं नानाद्रुमलतायुतम् ॥ १० ॥
इदं विध्वंसयिष्यामि शुष्कं वनमिवानलः ।
अस्मिन्भग्ने ततः कोपं करिष्यति दशाननः ॥ ११ ॥

(तदनन्तर हनुमान जी मन ही मन कहने लगे कि, सब से सहज उपाय यह है कि) इस निठुर रावण के नन्दनकानन तुल्य, नेत्रों और मन को सुखी करने वाले, नाना लताओं और विविध प्रकार के वृक्षों से भरे पूरे इस अशोक वन को, मैं वैसे

ही नष्ट कर डालूँ जैसे सूखे वन को अग्निदेव नष्ट करते हैं। इस वन के नष्ट होने पर रावण अवश्य ही क्रुद्ध होगा ॥ १० ॥ ११ ॥

ततो महत्साश्वमहारथद्विपं
बलं समादेक्ष्यति राक्षसाधिपः।
त्रिशूलकालायसपट्टसायुधं
ततो महद्युद्धमिदं भविष्यति ॥ १२ ॥

तब वह घोड़े, रथ और हाथियों सहित, त्रिशूल, खड्ग पटा धारिणी अपनी बड़ी सेना मुझसे लड़ने के लिए भेजेगा। तब बड़ी भारी लड़ाई होगी ॥ १२ ॥

अहं तु तैः सयति चण्डविक्रमैः
समेत्य रक्षोभिरसह्यविक्रमः।
निहत्य तद्रावणचोदितं बलं
सुखं गमिष्यामि कपीश्वरालयम् ॥ १३ ॥

मैं भी उन प्रचण्ड पराक्रमी राक्षसों का भयङ्कर पराक्रम के साथ सामना करूँगा और युद्ध कर के रावण की भेजी हुई समस्त सेना का नाश कर, किष्किन्धापुरी को मज़े में चला जाऊँगा ॥ १३ ॥

ततो मारुतवत्क्रुद्धो मारुतिर्भीमविक्रमः।
ऊरुवेगेन महता द्रुमान्क्षेप्तुमथारभत् ॥ १४ ॥

तदनन्तर भयङ्कर विक्रमशाली पवननन्दन हनुमान जी क्रुद्ध हो पवन की तरह बड़े वेग से अशोकवन के वृक्षों को उखाड़ने लगे ॥ १४ ॥

ततस्तु हनुमान्वीरो बभञ्ज प्रमदावनम्[1] ।
मत्तद्विजसमाघुष्टं नानाद्रुमलतायुतम् ॥ ॥१५ ॥

तब वीर हनुमान ने मतवाले पक्षियों से कूजित और विविध प्रकार के वृक्षों से सुशोभित रावण का अन्तः पुरवन विध्वंस कर डाला ॥ १५ ॥

तद्वनं मथितैर्वृक्षैर्भिन्नैश्च सलिलाशयैः ।
चूर्णितैः पर्वताग्रैश्च बभूवाप्रियदर्शनम् ॥ १६ ॥

वह वन वृक्षों के गिर जाने, जलाशयों के नष्ट हो जाने तथा पर्वतशिखरों के टूट जाने से बहुत ही बुरा देख पड़ने लगा ॥ १६ ॥

नानाशकुन्तविरुतैः प्रभिन्नैः सलिलाशयैः ।
ताम्रैः किसलयैः क्लान्तैः क्लान्तद्रुमलतायुतम् ॥ १७ ॥

विविध प्रकार के जलचर पक्षियों के तितर बितर हो जाने से पुष्करिणियों के टूट जाने से, लाल लाल नवीन पत्तों के मुरझाने से तथा लता सहित वृक्षों के क्लान्त हो जाने से ॥ १७ ॥

न बभौ तद्वनं तत्र दावानलहतं यथा ।
व्याकुलावरणा रेजुर्विह्वला इव ताः लताः ॥ १८ ॥

दावानल से भस्म हुए वन की तरह वह उपवन हो गया। ओढ़नी खसकी हुई व्याकुल स्त्रियों की तरह, लताओं की दशा हो गई ॥ १८ ॥

---

१ प्रमदावनम्—अन्तःपुरवनम् । (गो०)

लतागृहैश्चित्रगृहैश्च नाशितैः
महोरगैर्व्यालमृगैश्च निर्धुतैः ।
शिलागृहैरुन्मथितैस्तथा गृहैः
प्रनष्टरूपं तदभून्महद्वनम् ॥ १९ ॥

लतागृह, चित्रगृह सब ही नष्ट कर डाले गए। वहाँ के सिंह शार्दूल, मृग तथा पक्षी पीड़ित हो कोलाहल करने लगे। वहाँ जो पत्थर के बने घर थे उनको भी हनुमान जी ने गिरा दिया। उस बड़े भारी उपवन की सुन्दरता बिलकुल नष्टभ्रष्ट करदी गई ॥ १९ ॥

सा विह्वलाशोकलताप्रताना
वनस्थली शोकलताप्रताना ।
जाता दशास्यप्रमदावनस्य
कपेर्बलाद्धि प्रमदावनस्य ॥ २० ॥

हनुमान जी ने वहाँ के अशोक लतामण्डपों को नष्ट कर, उस उपवन की भूमि को शोभाहीन कर दिया। अपने बल से राक्षसराज के उस प्रमदावन (अन्तःपुरवन) को हनुमान जी ने शोकघन बना डाला। २० ॥

स तस्य कृत्वाऽर्थपतेर्महाकपिः
महद्व्यलीकं मनसो महात्मनः ।
युयुत्सुरेको बहुभिर्महाबलैः
श्रिया ज्वलंस्तोरणमास्थितः कपिः ॥ २१ ॥

इति एकचत्वारिंशः सर्गः ॥

महाबलवान हनुमान जो रावण के मन को व्यथा पहुँचाने वाले (अशोकवन का नाश) कार्य को कर, अथवा रावण को बड़ी भारी हानि कर अनेक राक्षसों के साथ युद्ध करने की कामना से, उस बाग़ के बड़े फाटक के ऊपर जा बैठे ॥ २१ ॥

सुन्दरकाण्ड का एकतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

द्विचत्वारिंशः सर्गः

—*—

ततः पक्षिनिनादेन वृक्षभङ्गस्वनेन च।
बभूवुस्त्रासम्भ्रान्ताः सर्वे लङ्कानिवासिनः ॥ १ ॥

अशोकवन के पक्षियों के कोलाहल को तथा वहाँ के वृक्षों के टूटने के शब्द सुन लङ्का के रहने वाले सब लोग बहुत डर गए ॥ १ ॥

विद्रुताश्च भयत्रस्ता विनेदुर्मृगपक्षिणः।
रक्षसां च निमित्तानि क्रूराणि प्रतिपेदिरे ॥ २ ॥

उस अशोक वन के मृग और पक्षी डर कर भागे और राक्षसों को विविध प्रकार के बुरे बुरे शकुन होने लगे ॥ २ ॥

ततो गतायां निद्रायां राक्षस्यो विकृताननाः।
तद्वनं ददृशुर्भग्नं तं च वीरं महाकपिम् ॥ ३ ॥

इतने में वे भयङ्कर आकृति वाली राक्षसियाँ जो भुगाये के समय सो गई थीं, जागीं और उस बन को सब प्रकार से ध्वस्त देखा और वीर हनुमान को भी वहीं देखा ॥ ३॥

स तां दृष्ट्वा महाबाहुर्महासत्त्वो महाबलः ।
चकार सुमहद्रूपं राक्षसीनां भयावहम् ॥ ४ ॥

महाबलवान हनुमान जी ने राक्षसियों को देख उनको डराने के लिए भयङ्कररूप धारण कर लिया ॥ ४ ॥

ततस्तं गिरिसङ्काशमतिकायं महाबलम् ।
राक्षस्यो वानरं दृष्ट्वा पप्रच्छुर्जनकात्मजाम् ॥ ५ ॥

तदनन्तर उन पर्वताकार महाविशाल शरीरधारी महाबलवान हनुमान जी को देख, राक्षसियाँ जनकनन्दिनी से पूछने लगीं ॥ ५ ॥

कोऽयं कस्य कुतो वाऽयं किंनिमित्तमिहागतः ।
कथं त्वया सहानेन संवादः कृत इत्युत ॥ ६ ॥

हे सीते ! यह कौन है, किसका भेजा हुआ आया है, कहाँ से आया है और किस लिए यहाँ आया है, तुमने इससे क्यों और क्या बातचीत की ॥ ६ ॥

आचक्ष्व नो विशालाक्षि मा भूत्ते सुभगे भयम् ।
संवादमसितापाङ्गे त्वया किं कृतवानयम् ॥ ७ ॥

हे विशालाक्षि ! डरो मत और हमको बतला दो कि, तुमसे इसने क्या क्या कहा है ॥ ७ ॥

अथाब्रवीत्तदा साध्वी सीता सर्वाङ्गसुन्दरी ।
रक्षसां भीमरूपाणां विज्ञाने मम का गतिः ॥ ८ ॥

इस पर सती एवं सर्वाङ्गसुन्दरी सीता ने उनको उत्तर देते हुए कहा—कामरूपी भयङ्कर राक्षसों की माया भला मैं क्या जान सकती हूँ ॥ ८ ॥

यूयमेवाभिजानीत योऽयं यद्वा करिष्यति
अहिरेव ह्यहेः पादान्विजानाति न संशयः ॥ ९ ॥

यह तो तुम्हीं जान सकती हो कि, यह कौन है और क्या करने वाला है। क्योंकि निस्सन्देह साँप के पैर को साँप ही पहिचान सकता है॥ ९ ॥

अहमप्यस्य भीताऽस्मि नैनं जानामि कोन्वयम् ।
वेद्मि राक्षसमेवैनं कामरूपिणमागतम् ॥ १० ॥

मैं स्वयं बहुत भयभीत हो रही हूँ। मैं क्या जानूँ यह कौन है, किन्तु अनुमान से मैं तो यही जानती हूँ कि, यह कोई कामरूपी राक्षस है॥ १० ॥

वैदेह्या वचनं श्रुत्वा राक्षस्यो विद्रुता दिशः ।
स्थिताः काश्चिद्गताः काश्चिद्रावणाय निवेदितुम् ॥ ११ ॥

सीता जी की बातें सुन राक्षसियाँ चारों ओर भाग खड़ी हुईं। कोई तो भयभीत हो कुछ दूर वहाँ से हट कर खड़ी हो गई और कई एक यह हाल कहने के लिए रावण के पास चली गईं॥ ११ ॥

रावणस्य समीपे तु राक्षस्यो विकृताननाः ।
विरूपं वानरं भीममाख्यातुमुपचक्रमुः ॥ १२ ॥

उन भयङ्कर आकृति वाली राक्षसियों ने रावण के पास जाकर विकराल रूपधारी वानर के आने का संवाद कहा॥ १२ ॥

अशोकवनिकामध्ये राजन्भीमवपुः कपिः ।
सीतया कृतसंवादस्तिष्ठत्यमितविक्रमः ॥ १३ ॥

वे कहने लगीं—हे राजन्! अशोकवाटिका में एक भयङ्कर रूप धारी वानर आया हुआ है। वह अमित बलसम्पन्न है। उसने सीता जी से बातचीत भी की और अब भी वह वहीं है॥ १३॥

न च तं जानकी सीता हरिं हरिणलोचना।
अस्माभिर्बहुधा पृष्टा निवेदयितुमिच्छति॥ १४॥

हम लोगों ने उस मृगनयनी सीता से बार बार पूँछा कि, तुम्हारी और वानर की क्या बातचीत हुई, किन्तु वह उसको बतलाना नहीं चाहती॥ १४॥

वासवस्य भवेद्दूतो दूतो वैश्रवणस्य वा।
प्रेषितो वाऽपि रामेण सीतान्वेषणकाङ्क्षया॥ १५॥

हमारी समझ में तो वह सम्भवतः इन्द्र अथवा कुवेर का दूत है अथवा राम का भेजा हुआ दूत, सीता को खोजने के लिए आया है॥ १५॥

तेन त्वद्भुतरूपेण यत्तत्तव मनोहरम्।
नानामृगगणाकीर्णं प्रमृष्टं प्रमदावनम्॥ १६॥

हे महाराज! उस अद्भुत रूपधारी वानर ने तुम्हारे सुन्दर, अनेक पशु पक्षियों से सुशोभित, प्रमदावन को नष्टभ्रष्ट कर डाला है॥ १६॥

न तत्र कश्चिदुद्देशो यस्तेन न विनाशितः।
यत्र सा जानकी सीता स तेन न विनाशितः॥ १७॥

उस वाटिका में ऐसा कोई भी स्थान नहीं है, जो उसने नष्ट न कर डाला हो, परन्तु जहाँ पर सीता बैठी है? केवल उस स्थान को उसने बचा दिया है॥ १७॥

जानकीरक्षणार्थं वा श्रमाद्वा नोपलक्ष्यते ।
अथवा कः श्रमस्तस्य सैव तेनाभिरक्षिता ॥ १८ ॥

यह नहीं कहा जा सकता कि, ऐसा उसने जानकी की रक्षा करने के लिए किया है अथवा थक जाने के कारण उसने वह स्थान अछूता छोड़ दिया है अथवा वह थक तो क्या सकता है, हो न हो सीता की रक्षा के लिए ही उसने उस स्थान को छोड़ दिया है ॥ १८ ॥

चारुपल्लवपुष्पाढ्यं यं सीता स्वयमास्थिता ।
प्रवृद्धः शिंशुपावृक्षः स च तेनाभिरक्षितः ॥ १९ ॥

सीता जी जिस मनोहर पल्लवपत्रयुक्त शोभायमान विशाल शीशम के पेड़ के नीचे बैठी हैं, बस उसी पेड़ को उसने छोड़ दिया है ॥ १९ ॥

तस्योग्ररूपस्योग्रं त्वं दण्डमाज्ञातुमर्हसि ।
सीता संभाषिता येन तद्वनं च विनाशितम् ॥ २० ॥

हे राजन् ! तुम उस उग्ररूपी वानर को उसकी इस उद्दण्डता के लिए दण्ड दो क्योंकि उसने एक तो सीता से बातचीत की है, दूसरे अशोकवन नष्ट किया है ॥ २० ॥

मनःपरिगृहीतां तां तव रक्षोगणेश्वर ।
कः सीतामभिभाषेत यो न स्यात्त्यक्तजीवितः ॥ २१ ॥

हे राक्षसेश्वर ! आपकी मनोनीता सीता से बातचीत कर कौन जीता जागता रह सकता है ? ॥ २१ ॥

राक्षसीनां वचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः।
हुताग्निरिव जज्वाल कोपसंवर्तितेक्षणः॥ २२॥

राक्षसियों के इन वचनों को सुन कर, राक्षसराज रावण हुताग्नि की तरह प्रज्वलित हो उठा और मारे क्रोध के उसकी आँखें बदल गईं॥ २२॥

तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नास्रबिन्दवः।
दीप्ताभ्यामिव दीपाभ्यां सार्चिषः स्नेहबिन्दवः॥ २३॥

मारे क्रोध के उसके नेत्रों से आँसू टपकने लगे, मानों जलते हुए दो दीपकों में से जलते हुए तेल की बूँद टपक पड़ी हों॥२३॥

आत्मनः सदृशाञ्शूरान्किङ्करान्नाम राक्षसान्।
व्यादिदेश महातेजा निग्रहार्थं हनूमतः॥ २४॥

तदनन्तर महातेजस्वी रावण ने अपने समान शूर किङ्कर नाम राक्षसों को, हनुमान जी के पकड़ने की आज्ञा दी॥ २४॥

तेषामशीतिसाहस्रं किङ्कराणां तरस्विनाम्।
निर्ययुर्भवनात्तस्मात्कूटमुद्गरपाणयः॥२५॥

उनमें से अस्सी हज़ार वेगवान किङ्कर कूट मुद्गरों (वे मुगदर जिनकी नोकों पर लोहा लगा था) को हाथों में ले वहाँ से निकले॥ २५॥

महोदरा महादंष्ट्रा घोररूपा महाबलाः।
युद्धाभिमनसः सर्वे हनुमद्ग्रहणोन्मुखाः॥ २६॥

उन सब के बड़े बड़े पेट थे। बड़े बड़े दाँत थे। अतः वे बड़े भयङ्कर देख पड़ते थे। वे महाबली राक्षस युद्ध के लिए तैयार हो, हनुमान को पकड़ने की कामना से चले॥ २६॥

ते कपिं तं समासाद्य तोरणस्थमवस्थितम् ।
अभिपेतुर्महावेगाः पतङ्गा इव पावकम् ॥ २७ ॥

वे अशोकवन के तोरणद्वार पर, जहाँ हनुमान जी थे, जा पहुँचे। वे हनुमान जी पर ऐसे झपटे, जैसे पतंगे दीपक की लौ के ऊपर झपटते हैं ॥ २७ ॥

ते गदाभिर्विचित्राभिः परिघैः काञ्चनाङ्गदैः ।
आजघ्नुर्वानरश्रेष्ठं शरैश्चादित्यसन्निभैः ॥ २८ ॥

वे अद्भुत गदाओं और सोने के बंदों से भूषित परिघों और सूर्य की तरह चमचमाते पैने बाणों से कपि के ऊपर आक्रमण करने लगे ॥ २८ ॥

मुद्गरैः पट्टिशैः शूलैः प्रासतोमरशक्तिभिः ।
परिवार्य हनूमन्तं सहसा तस्थुरग्रतः ॥ २९ ॥

उनमें से बहुत से मुग्दर, पटा, प्राम (फरसा) और तोमर शस्त्रों को हाथ में ले, हनुमान जी को चारों ओर से घेर कर खड़े हो गए ॥ २९ ॥

हनुमानपि तेजस्वी श्रीमान्पर्वतसन्निभः ।
क्षितावाविध्य लाङ्गूलं ननाद च महास्वनम् ॥ ३० ॥

पर्वताकार विशाल शरीरधारी श्रीमान् हनुमान जी अपनी पूँछ को पृथिवी पर पटक बड़े ज़ोर से गर्जे ॥ ३० ॥

स भूत्वा सुमहाकायो हनुमान्मारुतात्मजः ।
धृष्टमास्फोटयामास लङ्कां शब्देन पूरयन् ॥ ३१ ॥

पवननन्दन हनुमान जी ने विशाल शरीरधारण कर अपनी पूँछ को फटकारा, तो उस फटकार का शब्द सारी लङ्कापुरी में सुनाई पड़ा ॥ ३१ ॥

तस्यास्फोटितशब्देन महता सानुनादिना ।
पेतुर्विहङ्गा गगनादुच्चैश्चेदमघोषयत् ॥ ३२ ॥

उनके उस भयङ्कर नाद और पूँछ फटकारने के शब्द से आकाश में उड़ते हुए पक्षी मूर्छित हो ज़मीन पर गिर पड़े। उस समय हनुमान जी गरज कर कहने लगे ॥ ३२ ॥

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥ ३३ ॥

अति बलवान् श्रीरामचन्द्र जी की जै, महाबलवान लक्ष्मण जी की जै, श्रीरामचन्द्र द्वारा पालित सुग्रीव जी की जै ॥ ३३ ॥

दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
हनुमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः ॥ ३४ ॥

मैं उन कोसलपति श्रीरामचन्द्र जी का दास हूँ, जिनके लिए कोई काम कठिन नहीं है। मेरा नाम हनुमान है और युद्ध में शत्रुसैन्य का नाश करने वाला मैं पवन का पुत्र हूँ ॥ ३४ ॥

न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत् ।
शिलाभिस्तु प्रहरतः पादपैश्च पुनः पुनः ॥ ३५ ॥

जब मैं चट्टानों और पेड़ों से बार बार प्रहार करने लगता हूँ, तब एक रावण तो क्या, सहस्रों रावण मेरा सामना (अथवा समानता) नहीं कर सकते ॥ ३५ ॥

अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम् ।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥ ३६ ॥

मैं समस्त राक्षसों के सामने लङ्कापुरी को ध्वंस कर और जनक नन्दिनी को प्रणाम कर तथा अपना काम पूरा कर चला जाऊँगा ॥ ३६ ॥

तस्य सन्नादशब्देन तेऽभवन्भयशङ्किताः ।
ददृशुश्च हनूमन्तं सन्ध्यामेघमिवोन्नतम् ॥ ३७ ॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान जी के इस सिंहनाद को सुन, राक्षस भय के मारे त्रस्त हो गए और सन्ध्याकालीन मेघ के समान हनुमान जी के बड़े लंबे शरीर को देखने लगे ॥ ३७ ॥

स्वामिसन्देशनिःशङ्कास्ततस्ते राक्षसाः कपिम् ।
चित्रैः प्रहरणैर्भीमैरभिपेतुः ततस्ततः ॥ ३८ ॥

तदनन्तर रावण की आज्ञा से निःशङ्क होकर वे राक्षस विविध प्रकार के अस्त्रशस्त्रों को लेकर चारों ओर से हनुमान जी के ऊपर टूट पड़े ॥ ३८ ॥

स तैः परिवृतः शूरैः सर्वतः स महाबलः ।
आससादायसं भीमं परिघं तोरणाश्रितम् ॥ ३९ ॥

जब हनुमान जी को उन शूर राक्षसों ने चारों ओर से घेर लिया; तब हनुमान जी ने तोरणद्वार से लोहे का एक बड़ा भारी बेंड़ा निकाल लिया ॥ ३९ ॥

स तं परिघमादाय जघान च निशाचरान् ।
स पन्नगमिवादाय स्फुरन्तं विनतासुतः ॥ ४० ॥

विचचाराम्बरे वीरः परिगृह्य च मारुतिः ।
स हत्वा राक्षसान्वीरान्किङ्करान्मारुतात्मजः ।
युद्धाकाङ्क्षी पुनर्वीरस्तोरणं समुपाश्रितः ॥ ४१ ॥

उस बेंड़े से वे उन राक्षसों को मारने लगे और विनतानन्दन गरुड़ जी जिस प्रकार फड़फड़ाते सर्प को पकड़, आकाश में उड़ते हैं, उसी प्रकार हनुमान जी उस बेंड़े को लिये आकाश में पैंतरे बदलने लगे। पवननन्दन हनुमान जी उन वीर किङ्करों का संहार कर, फिर युद्ध की इच्छा से उसी तोरणद्वार पर जा बैठे ॥ ४० ॥ ४१ ॥

ततस्तस्माद्भयान्मुक्ताः कतिचित्तत्र राक्षसाः ।
निहतान्किङ्करान्सर्वान्रावणाय न्यवेदयन् ॥ ४२ ॥

तदनन्तर जो थोड़े से राक्षस मारे जाने से बच गए थे, उन्होंने रावण के पास जाकर कहा कि, किङ्कर नाम सब राक्षसों को कपि ने मार डाला ॥ ४२ ॥

स राक्षसानां निहतं महद्बलं
निशम्य राजा परिवृत्तलोचनः ।
समादिदेशाप्रतिमं पराक्रमे
प्रहस्तपुत्रं समरे सुदुर्जयम् ॥ ४३ ॥

इति द्विचत्वारिंशः सर्गः

राक्षसों की इस बड़ी सेना के मारे जाने का संवाद सुन, राक्षसराज रावण की त्योरी बदल गई और हनुमान जी से लड़ने के लिए उसने प्रहस्त के दुर्जय और अमित पराक्रमी पुत्र को आज्ञा दी ॥ ४३ ॥

सुन्दरकाण्ड का बयालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

त्रिचत्वारिंशः सर्गः

---*---

ततः स किङ्करान्हत्वा हनुमान्ध्यानमास्थितः ।
वनं भग्नं मया [1] चैत्यप्रासादो न विनाशितः ॥१॥

उन किङ्कर नाम राक्षसों का संहार कर, हनुमान जी सोचने लगे कि, मैंने यह अशोकवन तो नष्ट कर डाला; किन्तु यह देव-मन्दिर के आकार के महल को तो नष्ट किया ही नहीं ॥ १ ॥

तस्मात्प्रासादमप्येवमिमं विध्वंसयाम्यहम् ।
इति संचिन्त्य मनसा हनुमान्दर्शयन्बलम् ॥ २ ॥

अतः इस प्रासाद को भी लगे हाथ उजाड़ डालूँ। इस प्रकार मन में सोच विचार हनुमान जी ने अपना बल प्रकट किया ॥ २॥

चैत्यप्रासादमाप्लुत्य मेरुशृङ्गमिवोन्नतम् ।
आरुरोह हरिश्रेष्ठो हनुमान्मारुतात्मजः ॥ ३ ॥

कपिश्रेष्ठ पवननन्दन हनुमान जी एक ही छलाँग में मेरुपर्वत के शिखर की तरह ऊँचे उस चैत्य प्रासाद पर चढ़ गए ॥ ३ ॥

आरुह्य गिरिसङ्काशं प्रासादं हरियूथपः ।
बभौ स सुमहातेजाः प्रतिसूर्य इवोदितः ॥ ४ ॥

अति तेजसम्पन्न कपियूथपति हनुमान जी, उस पर्वत समान ऊँचे प्रासाद के ऊपर चढ़ने पर ऐसे जान पड़ने लगे, जैसे दूसरे सूर्य भगवान् उदय हुए हों ॥४॥

---

१ चैत्यं देवायतनं तद्रूपः प्रासादः—चैत्यप्रासादः तं। (गो०)

संप्रधृष्य दुर्धर्षं चैत्यप्रासादमुत्तमम् ।
हनुमान्प्रज्वलंल्लक्ष्म्या पारियात्रोपमोऽभवत् ॥ ५ ॥

उस दुर्धर्ष और श्रेष्ठ चैत्यप्रासाद को अच्छी तरह से नष्ट कर, हनुमान जी अपनी स्वाभाविक कान्ति से, पारियात्र पर्वत की तरह देख पड़े ॥ ५ ॥

स भूत्वा सुमहाकायः प्रभावान्मारुतात्मजः ।
[1] धृष्टमास्फोटयामास लङ्कां शब्देन पूरयन् ॥ ६ ॥

फिर हनुमान जी ने अपना शरीर और भी बड़ा कर लिया और निर्भय हो ऐसे गर्जे कि, उनकी वह गर्जना सारी लङ्का में व्याप्त हो गई ॥ ६ ॥

तस्यास्फोटितशब्देन महता श्रोत्रघातिना ।
पेतुर्विहङ्गमास्तत्र चैत्यपालाश्च मोहिताः ॥ ७ ॥

उनके उस श्रवणकठोर बड़े सिंहनाद से भयभीत हो आकाश में उड़ते हुए पक्षी नीचे गिर पड़े और उस चैत्य प्रासाद के रक्षक भी मूर्छित हो गए ॥ ७ ॥

अस्त्रविज्जयतां रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥ ८ ॥

अस्त्र जानने वाले श्रीरामचन्द्र की जय हो, महाबली लक्ष्मण जी की जै हो, श्रीरामचन्द्र जी द्वारा रक्षित वानरराज सुग्रीव की जै हो ॥ ८ ॥

---

१ धृष्टम्—निर्भयम् । (रा०)

दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
हनुमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः ॥ ९ ॥

मैं उन कोसलपति श्रीरामचन्द्र जी का दास हूँ जिनके लिए कोई कार्य कठिन नहीं है। मैं शत्रुसैन्य का नाश करने वाला पवननन्दन हनुमान हूँ ॥ ९ ॥

न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत् ।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः ॥ १० ॥

हज़ारों शिलाओं और पेड़ों से प्रहार करते समय, सहस्रों रावण भी मेरे समान नहीं हो सकते ॥ १० ॥

अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम् ।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥ ११ ॥

मैं सब राक्षसों के सामने ही लङ्का को गर्द कर, जानकी जी को प्रणाम कर और अपना उद्देश्य पूरा करके चला जाऊँगा ॥११॥

एवमुक्त्वा महाबाहुश्चैत्यस्थो हरियूथपः ।
ननाद भीमनिर्ह्रादो रक्षसां जनयन्भयम् ॥ १२ ॥

चैत्य प्रासाद पर बैठे हुए, कपियूथपति हनुमान जी ने ऐसा सिंहनाद किया कि, उसे सुन राक्षस, बहुत डर गए ॥ १२ ॥

तेन शब्देन महता चैत्यपालाः शतं ययुः ।
गृहीत्वा विविधानस्त्रान्प्रासान्खड्गान्परश्वधान् ॥ १३ ॥

उस सिंहनाद को सुन उस चैत्यप्रासाद के सैकड़ों रक्षक राक्षस, विविध प्रकार के अस्त्र—प्रास, खड्ग और फरसा लेकर दौड़ पड़े और ॥ १३ ॥

विसृजन्तो महाकाया मारुतिं पर्यवारयन् ।
ते गदाभिर्विचित्राभिः परिघैः काञ्चनाङ्गदैः ॥ १४ ॥
आजघ्नुर्वानरश्रेष्ठं बाणैश्चादित्यसन्निभैः ।
आवर्त इव गङ्गायास्तोयस्य विपुलो महान् ॥ १५ ॥
परिक्षिप्य हरिश्रेष्ठं स बभौ रक्षसां गणः ।
ततो वातात्मजः क्रुद्धो भीमरूपं समास्थितः ॥ १६ ॥

महाकाय हनुमान जी को चारों ओर से घेर कर उन पर प्रहार करने लगे। वे अद्भुत गदाओं और सोने के बन्दों से भूषित परिघों से तथा सूर्य के समान चमचमाते बाणों से कपिश्रेष्ठ हनुमान जी को मारने लगे। इस समय हनुमान जी को घेरे हुए राक्षस ऐसे जान पड़ते थे, जैसे गङ्गा का बड़ा भारी जलभँवर हो। पवननन्दन हनुमान जी क्रुद्ध थे और भयङ्कर रूप धारण किए हुए थे ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

प्रासादस्य महान्तस्य स्तम्भं हेमपरिष्कृतम् ।
उत्पाटयित्वा वेगेन हनुमान्पवनात्मजः ॥१७॥

पवननन्दन हनुमान जी ने उस विशाल प्रासाद का सुवर्ण का बना एक खंभा वेग से उखाड़ लिया ॥ १७ ॥

ततस्तं भ्रामयामास शतधारं महाबलः ।
तत्र चाग्निः समभवत्प्रासादश्चाप्यदह्यत ॥ १८ ॥

वह खंभा सौपहलू था। उसे वे महाबली हनुमान घुमाने लगे। उससे निकली हुई आग की चिनगारियों से वह भवन भस्म हो गया ॥ १८ ॥

दह्यमानं ततो दृष्ट्वा प्रासादं हरियूथपः ।
स राक्षसशतं हत्वा वज्रेणेन्द्र इवासुरान् ॥ १९ ॥

कपियूथपति ने उस प्रासाद को भस्म होते हुए देख, सैकड़ों राक्षसों को उस खंभे से वैसे ही मार डाला, जैसे इन्द्र अपने वज्र से असुरों को मारते हैं ॥ १९ ॥

अन्तरिक्षे स्थितः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ।
मादृशानां सहस्राणि विसृष्टानि महात्मनाम् ॥ २० ॥

अन्तरिक्षस्थित श्रीमान् हनुमान जी कहने लगे कि, मेरे ऐसे सहस्रों वानर उत्पन्न हो चुके हैं ॥ २० ॥

बलिनां वानरेन्द्राणां सुग्रीववशवर्तिनाम् ।
अटन्ति वसुधां कृत्स्नां वयमन्ये च वानराः ॥ २१ ॥

वे सब बलवान् वानरश्रेष्ठ सुग्रीव के वशवर्ती हैं और मैं तथा वे सब अन्य वानर, अखिल पृथिवीमण्डल पर घूमते फिरते हैं ॥ २१ ॥

दशनागबलाः केचित्केचिद्दशगुणोत्तराः ।
केचिन्नागसहस्रस्य बभूवुस्तुल्यविक्रमाः ॥ २२ ॥

उनमें से किसी में दस हाथी के, किसी में सौ हाथी के और किसी में एक हज़ार हाथी के समान बल है ॥ २२ ॥

सन्ति चौघबलाः[1] केचित्केचिद्वायुबलोपमाः ।
अप्रमेयबलाश्चान्ये तत्रासन्हरियूथपाः ॥ २३ ॥

---

१ ओघबलाः—ओघाख्यासंख्याकबलाः । (गो०)

और किसी में ओघ संख्यक हाथियों जितना बल है और कोई वायु के समान बलवाले हैं। अन्य वानर ऐसे भी हैं जिनके बल का पारावार नहीं है। वहाँ ऐसे वानर-यूथपति हैं ॥ २३ ॥

ईदृग्विधैस्तु हरिभिर्वृतो दन्तनखायुधैः ।
शतैः शतसहस्रैश्च कोटीभिरयुतैरपि ॥ २४ ॥

इस प्रकार के नख और दन्त आयुध वाले वहाँ वानर हैं। उनकी संख्या सौ सहस्र कोटि और दस सहस्र है ॥ २४ ॥

आगमिष्यति सुग्रीवः सर्वेषां वो निषूदनः ।
नेयमस्ति पुरी लङ्का न यूयं न च रावणः ।
यस्मादिक्ष्वाकुनाथेन बद्धं वैरं महात्मना ॥ २५ ॥

इति त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥

उनको लेकर सुग्रीव यहाँ आवेंगे और वे सब तुम्हारा सब का नाश करेंगे। न तो यह लङ्का, न तुम और न रावण ही बचेगा। क्योंकि तुमने इक्ष्वाकुवंश के स्वामी महात्मा श्रीरामचन्द्र से वैर बाँधा है ॥ २५ ॥

सुन्दरकाण्ड का तैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः

—*—

संदिष्टो राक्षसेन्द्रेण प्रहस्तस्य सुतो बली ।
जम्बुमाली महादंष्ट्रो निर्जगाम धनुर्धरः ॥ १ ॥

इधर तो उन चैत्य प्रासाद के रक्षकों का नाश हुआ, उधर रावण की आज्ञा से प्रहस्त का पुत्र बलवान जम्बुमाली, जिसकी बड़ी बड़ी डाढ़ें थीं, धनुष ले, नगर से बाहिर निकला ॥ १ ॥

रक्तमाल्याम्बरधरः स्रग्वी रुचिरकुण्डलः ।
महान्विवृत्तनयनः[१] चण्डः समरदुर्जयः ॥ २ ॥

वह उस समय लाल माला और लाल वस्त्र पहिने हुए था। उसके गले में हार था और कानों में सुन्दर कुण्डल थे। उसके नेत्र गोल थे और वह प्रचण्ड पराक्रमी और युद्ध में दुर्जेय था ॥ २ ॥

दग्धत्रिकूटप्रतिमो महाजलदसन्निभः ।
महाभुजशिरःस्कन्धो महादंष्ट्रो महाननः ॥ ३ ॥

वह भस्म हुए पहाड़ को तरह अथवा महामेघ की तरह कृष्ण वर्ण और विशालकाय था। उसकी बड़ी बड़ी भुजाएँ, बड़ा सिर और बड़े बड़े कन्धे थे। उसकी डाढ़ें और उसका मुख भी बड़ा था ॥३॥

महाजवो महोत्साहो महासत्त्वोरुविक्रमः ।
*आजगामातिवेगेन सायुधः स महारथः ॥ ४ ॥

वह बड़ा वेगवान्, बड़ा उत्साही, बड़ा बलवान और बड़ा पराक्रमी था। वह एक बड़े रथ में बैठ तथा आयुधों को ले, बड़े झपाटे से आया ॥ ४ ॥

धनुः शक्रधनुःप्रख्यं महद्रुचिरसायकम् ।
विष्फारयानो वेगेन वज्राशनिसमस्वनम् ॥ ५ ॥

---

१ विवृत्तनयनः—मण्डलीकृतनयनः । * पाठान्तरे—"आजगामाति-वेगेन वज्राशनिसमस्वनः।"

उसका धनुष इन्द्रधनुष के समान था और वह अति सुन्दर बाणों को लिये हुए था। उसने जो अपने धनुष को टंकोरा तो उसमें से वज्र गिरने के समान बड़ा भारी शब्द हुआ ॥ ५ ॥

तस्य विष्फारघोषेण धनुषो महता दिशः ।
प्रदिशश्च नभश्चैव सहसा समपूर्यत ॥ ६ ॥

उसके महाधनुष की टंकार के शब्द से आकाश सहित समस्त दिशाएँ और विदिशाएँ सहसा पूर्ण हो गयीं ॥ ६ ॥

रथेन खरयुक्तेन तमागतमुदीक्ष्य सः ।
हनुमान्वेगसंपन्नो जहर्ष च ननाद च ॥ ७ ॥

वेगवान हनुमान जी, जम्बुमाली को गधों के रथ पर सवार देख, अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने सिंहनाद किया ॥ ७ ॥

तं तोरणविटङ्कस्थं हनुमन्तं महाकपिम् ।
जम्बुमाली महाबाहुर्विव्याध निशितैः शरैः ॥ ८ ॥

महाकपि हनुमान जी को तोरणद्वार की गोख पर बैठा देख, महाबाहु जम्बुमाली ने उनके पैने बाण मार कर, उनको बेध डाला ॥ ८ ॥

अर्धचन्द्रेण वदने शिरस्येकेन कर्णिना ।
बाह्वोर्विव्याध नाराचैर्दशभिस्तं कपीश्वरम् ॥ ९ ॥

उसने अर्धचन्द्राकार बाण हनुमान जी के मुख पर और कान के आकार का एक बाण उनके सिर में मारा। उसने हनुमान जी की भुजाओं में दस नाराच मारे ॥ ९ ॥

तस्य तच्छुशुभे ताम्रं शरेणाभिहतं मुखम्।
शरदीवाम्बुजं फुल्लं विद्धं भास्कररश्मिना ॥ १० ॥

उस बाण के लगने से हनुमान जी का लाल मुख ऐसा शोभायमान हुआ जैसे कि, शरदऋतु में सूर्य की किरणों के पड़ने से कमल शोभायमान होता है ॥ १० ॥

तत्तस्य रक्तं रक्तेन रञ्जितं शुशुभे मुखम्।
तथाऽऽकाशे महापद्मं सिक्तं काञ्चनबिंदुभिः ॥ ११ ॥

हनुमान जी का लाल लोहू से रंगा हुआ मुख, ऐसा सुशोभित हुआ, मानों आकाश में एक बड़ा कमल का फूल, जिस पर सोने की बूँदे छिटकी हों, शोभायमान हो रहा हो ॥ ११ ॥

चुकोप बाणाभिहतो राक्षसस्य महाकपिः।
ततः पार्श्वेऽतिविपुलां ददर्श महतीं शिलाम् ॥ १२ ॥

बाणों के लगने से हनुमान जी उस राक्षस पर कुपित हुए। उस समय उन्हें पास ही एक बड़ी शिला देख पड़ी ॥ १२ ॥

तरसा तां समुत्पाट्य चिक्षेप बलवद्बली।
तां शरैर्दशभिः क्रुद्धस्ताडयामास राक्षसः ॥ १३ ॥

बलवान हनुमान जी ने तुरन्त उसे उखाड़ और बड़े ज़ोर से उसे उस राक्षस के ऊपर फेंका। तब उस राक्षस ने दस बाण मार उसे चूर चूर कर डाला ॥ १३ ॥

विपन्नं कर्म तद्दृष्ट्वा हनुमांश्चण्डविक्रमः।
सालं विपुलमुत्पाट्य भ्रामयामास वीर्यवान् ॥ १४ ॥

प्रचण्ड पराक्रमी हनुमान जी ने उस शिला का फेंकना व्यर्थ हुआ देखा, एक विशाल साल का वृक्ष उखाड़ लिया। फिर महाबलवान् हनुमान जी ने उसे अच्छी तरह घुमाया ॥ १४

भ्रामयन्तं कपिं दृष्ट्वा सालवृक्षं महाबलम्।
चिक्षेप सुबहून्बाणाञ्जम्बुमाली महाबलः ॥ १५ ॥

महाबली हनुमान जी को उस साल वृक्ष को घुमाते देख, महाबली जम्बुमाली ने बहुत से बाण चलाए ॥ १५ ॥

सालं चतुर्भिश्चिच्छेद वानरं पञ्चभिर्भुजे।
*शिरस्येकेन बाणेन दशभिस्तु स्तनान्तरे ॥ १६ ॥

चार बाणों से तो उसने उस वृक्ष के टुकड़े कर डाले और पांच बाण उसने हनुमान जी की भुजा में, एक सिर में और दस छाती में मारे ॥ १६ ॥

स शरैः पूरिततनुः क्रोधेन महता वृतः।
तमेव परिघं गृह्य भ्रामयामास †मारुतिः ॥ १७ ॥

उसने अत्यन्त क्रुद्ध हो बाणों से हनुमान जी का शरीर भर दिया। तब हनुमान जी ने उस बेंड़े को उठा कर घुमाया ॥ १७ ॥

अतिवेगोऽतिवेगेन भ्रामयित्वा बलोत्कटः।
परिघं पातयामास जम्बुमालेर्महोरसि ॥ १८ ॥

अत्यन्त वेगवान और उत्कट बलशाली हनुमान जी ने उस बेंड़े को बड़ी ज़ोर से घुमा कर, जम्बुमाली की छाती में मारा ॥ १८ ॥

तस्य चैव शिरो नास्ति न बाहू न च जानुनी।
न धनुर्न रथो नाश्वास्तत्रादृश्यन्त नेषवः ॥ १९ ॥

---

*पाठान्तरे—"उरस्येकेन।" †पाठान्तरे—"वेगतः।"

उस बेड़े की चोट से जम्बुमाली के सिर, भुजा, जाँघ, धनुष रथ, तीर और रथ के घोड़ों का पता ही न चला कि, वे सब के सब कहाँ गए ॥ १९ ॥

स हतस्तरसा तेन जम्बुमाली महाबलः ।
पपात निहतो भूमौ चूर्णिताङ्गविभूषणः ॥ २० ॥

महाबलवान जम्बुमाली हनुमान जी के बेड़े के आघात से मर कर ज़मीन पर गिर गया और उसका शरीर तथा आभूषण चूर चूर हो गए ॥ २० ॥

जम्बुमालिं च निहतं किङ्करांश्च महाबलान् ।
चुक्रोध रावणः श्रुत्वा कोपसंरक्तलोचनः ॥ २१ ॥

जम्बुमाली और अस्सी हज़ार महाबली किङ्कर नामक राक्षसों के मारे जाने का संवाद सुन, रावण के दोनों नेत्र मारे क्रोध के लाल हो गए ॥ २१ ॥

स रोषसंवर्तितताम्रलोचनः
प्रहस्तपुत्रे निहते महाबले ।
अमात्यपुत्रानतिवीर्यविक्रमान्
समादिदेशाशु निशाचरेश्वरः ॥ २२ ॥

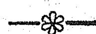
चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥

प्रहस्तपुत्र महाबली जम्बुमाली के मारे जाने पर राक्षसराज रावण ने अत्यन्त पराक्रमी और बलवान मन्त्रिपुत्रों को युद्ध करने के लिए तुरन्त जाने की आज्ञा दी ॥ २२ ॥

सुन्दरकाण्ड का चौवालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—❀—

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः



ततस्ते राक्षसेन्द्रेण चोदिता मन्त्रिणां सुताः ।
निर्ययुर्भवनात्तस्मात्सप्त सप्तार्चिवर्चसः ॥ १ ॥

तब वे अग्नि के समान कान्तिवाले सात मन्त्रिपुत्र, राक्षसराज को प्रेरणा से रावण के भवन से निकले ॥ १ ॥

महाबलपरीवारा धनुष्मन्तो महाबलाः ।
कृतास्त्रास्त्रविदां श्रेष्ठाः परस्परजयैषिणः ॥ २ ॥

वे सब के सब बड़े बलवान, अस्त्रविद्या में कुशल, अस्त्र जानने वालों में श्रेष्ठ, हनुमान जी को जीतने के अभिलाषी, अतुल पराक्रमी और धनुषधारी थे ॥ २ ॥

हेमजालपरिक्षिप्तैर्ध्वजवद्भिः पताकिभिः ।
तोयदस्वननिर्घोषैर्वाजियुक्तैर्महारथैः ॥ ३ ॥

वे ऐसे रथों में बैठ कर चले, जिनके ऊपर सोने की जालीके उघार पड़े हुए थे, ध्वजा पताकाएँ लगी हुई थीं, घोड़े जुते हुए थे और उनके चलने पर बादल की गड़गड़ाहट जैसा शब्द होता था ॥ ३ ॥

तप्तकाञ्चनचित्राणि चापान्यमितविक्रमाः ।
विष्फारयन्तः संहृष्टास्तडित्वन्त इवाम्बुदा ॥ ४ ॥

वे अमित विक्रमशाली मन्त्रिपुत्र प्रसन्न हो सुवर्णरचित विचित्र धनुषों को टङ्कारते, दामिनीयुक्त मेघों की तरह जान पड़ते थे ॥ ४ ॥

जनन्यस्तु ततस्तेषां विदित्वा किङ्करान्हतान् ।
बभूवुः शोकसंभ्रान्ताः सबान्धवसुहृज्जनाः ॥ ५ ॥

किङ्करों का मारा जाना सुन, उन मन्त्रिपुत्रों की माताएँ, बन्धुबांधव और हेती नातेदारों सहित, अत्यन्त शोकसन्तप्त हो रही थीं ॥ ५ ॥

ते परस्परसंघर्षात्तप्तकाञ्चनभूषणाः ।
अभिपेतुर्हनूमन्तं तोरणस्थमवस्थितम् ॥ ६ ॥

"मैं आगे पहुँचूँ" "मैं आगे पहुँचूँ" ऐसी आपस में हिर्स करते और विशुद्ध सुवर्ण के आभूषण धारण किए हुए, वे मन्त्रिकुमार तोरणद्वार पर बैठे हुए हनुमान जी के पास जा पहुँचे ॥६॥

सृजन्तो बाणवृष्टिं ते रथगर्जितनिःस्वनाः ।
वृष्टिमन्त इवाम्भोदा विचेरुर्नैरृताम्बुदाः ॥ ७ ॥

वे राक्षस अपने धनुषों से बादल से जल की वृष्टि की तरह बाणवृष्टि करते और रथों की गड़गड़ाहट सुनाते वर्षाकालीन मेघों की तरह घूमते थे ॥ ७ ॥

अवकीर्णस्ततस्ताभिर्हनुमाञ्शरवृष्टिभिः ।
अभवत्संवृताकारः शैलराडिव वृष्टिभिः ॥ ८ ॥

उस बाणवृष्टि से हनुमान जी बाणों के भीतर वैसे ही छिप गए जैसे पर्वतराज जल की वृष्टि से छिप जाता है ॥ ८ ॥

स शरान्मोघयामास तेषामाशुचरः कपिः ।
रथवेगं च वीराणां विचरन्विमलेऽम्बरे ॥ ९ ॥

तदनन्तर हनुमान जी ऐसी शीघ्रता से आकाश में जा पैतरा बदलने लगे कि, उनके वेगपूर्वक रथों का चलाना और बाणों का लक्ष्य व्यर्थ जाने लगा। अर्थात् उनके चलाए बाणों में से एक भी हनुमान जी के शरीर में नहीं लगता था ॥ ९ ॥

स तैः क्रीडन्धनुष्मद्भिर्व्योम्नि वीरः प्रकाशते ।
धनुष्मद्भिर्यथा मेघैर्मारुतिः प्रभुरम्बरे ॥ १० ॥

इस प्रकार पवननन्दन हनुमान जी उन धनुर्धारियों के साथ कुछ समय तक खेलते रहे। उस समय आकाश में, हनुमान जी इन्द्रधनुष से भूषित मेघों के साथ क्रीड़ा करते हुए, आकाशचारी पवनदेव की तरह जान पड़ते थे ॥ १० ॥

स कृत्वा निनदं घोरं त्रासयस्तां महाचमूम् ।
चकार हनुमान्वेगं तेषु रक्षःसु वीर्यवान् ॥ ११ ॥

पराक्रमी हनुमान जी ने उस सेना को डराने के लिए भयङ्कर सिंहनाद किया और वे उन राक्षसों की ओर झपटे ॥ ११ ॥

तलेनाभ्यहनत्कांश्चित्पद्भ्यां*कांश्चित्परन्तपः ।
मुष्टिनाभ्यहनत्कांश्चिन्नखैः कांश्चिद्व्यदारयत् ॥ १२ ॥

शत्रुहन्ता हनुमान ने राक्षसी सेना में से किसी को थपेड़े से, किसी को लातों से, किसी को घूँसों से और किसी को नखों से चीर फार कर मार डाला ॥ १२ ॥

प्रममाथोरसा कांश्चिदूरुभ्यामपरान्कपिः ।
केचित्तस्य निनादेन तत्रैव पतिता भुवि ॥ १३ ॥

---

* पाठान्तरे—"पादैः।"

हनुमान जी ने किसी को छाती की ठोकर से और किसी को जांघों की रगड़ से मार गिराया। कितने ही राक्षस तो हनुमान जी के सिंहनाद को सुन कर ही पृथिवी पर गिर कर मर गए ॥ १३ ॥

ततस्तेष्ववसन्नेषु भूमौ निपतितेषु च ।
तत्सैन्यमगमत्सर्वं दिशो दश भयार्दितम् ॥ १४ ॥

जब वे सातों मन्त्रिपुत्र इस प्रकार मारे जाकर पृथिवीपर गिर गए, तब उनकी सेना भयभीत हो, चारों ओर भाग गई ॥ १४ ॥

विनेदुर्विस्वरं नागा निपेतुर्भुवि वाजिनः ।
भग्ननीडध्वजच्छत्रैर्भूश्च कीर्णाऽभवद्रथैः ॥ १५ ॥

सेना के हाथी चिग्घारने लगे, घोड़े भूमि पर लोट पोट हो गए। रथों की टूटी हुई ध्वजाओं, ध्वजाओं के डंडों और छत्रों से रणक्षेत्र भर गया ॥ १५ ॥

स्रवता रुधिरेणाथ स्रवन्त्यो दर्शिताः पथि ।
विविधैश्च स्वरैर्लङ्का ननाद विकृतं तदा ॥ १६ ॥

रास्ते में रक्त की नालियाँ बहने लगीं। सारी लङ्का में विविध प्रकार के विकट स्वरों में आर्तनाद सुनाई पड़ने लगे ॥ १६ ॥

स तान्प्रवृद्धान्विनिहत्य राक्षसान्
महाबलश्चण्डपराक्रमः कपिः ।
युयुत्सुरन्यैः पुनरेव राक्षसैः
तदेव वीरोऽभिजगाम तोरणम् ॥ १७ ॥

इति पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥

महाबली, और प्रचण्ड पराक्रमी वीर हनुमान जी उन प्रधान राक्षसों को मार, पुनः युद्ध करने की इच्छा से, छलाँग मार फिर फाटक पर जा बैठे ॥ १७ ॥

सुन्दरकाण्ड का पैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—:०:—

षट्चत्वारिंशः सर्गः

—:०:—

हतान्मन्त्रिसुतान्बुद्ध्वा वानरेण महात्मना ।
रावणः संवृताकारश्चकार [1]मतिमुत्तमाम् ॥ १ ॥

जब रावण ने सुना कि, धीर हनुमान ने सातों मन्त्रिपुत्रों को मार डाला, तब वह भय को अपने मन में छिपा, पुनः सोचने लगा ॥ १ ॥

स विरूपाक्षयूपाक्षौ दुर्धरं चैव राक्षसम् ।
प्रघसं भासकर्णं च पञ्च सेनाग्रनायकान् ॥ २ ॥

विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर, प्रघस और भासकर्ण नामक पाँच सेनापतियों को ॥ २ ॥

संदिदेश दशग्रीवो वीरान्नयविशारदान्
हनुमद्ग्रहणे व्यग्रान्वायुवेगसमान्युधि ॥ ३ ॥

जो युद्ध में वायु की तरह वेगवान और रणनीति-विशारद एवं शूर थे, रावण ने व्यग्र हो, हनुमान जी को पकड़ने को उनको आज्ञा दी ॥ ३ ॥

---

*मतिं—चिन्तां । (गो०)

यात सेनाग्रगाः सर्वे महाबलपरिग्रहाः ।
सवाजिरथमातङ्गाः स कपिः शास्यतामिति ॥ ४ ॥

और कहा कि, तुम सब लोग बड़े बलवान सेनापति हो, घोड़ों रथों तथा हाथियों से युक्त बड़ी भारी सेना अपने साथ ले जाओ और उस वानर को उसकी करनी का मज़ा चखाओ ॥४॥

यत्तैश्च खलु भाव्यं स्यात्तमासाद्य वनालयम् ।
कर्म चापि समाधेयं देशकालाविरोधिनम् ॥ ५ ॥

तुम सब लोग बड़ी सावधानी से उस वनचर के पास जा, देश काल का विचार रखते हुए काम को पूरा करना ॥ ५ ॥

न ह्यहं तं कपिं मन्ये कर्मणा प्रतितर्कयन् ।
सर्वथा तन्महद्भूतं महाबलपरिग्रहम् ॥ ६ ॥

जब मैं उसकी करनी पर विचार करता हूँ, तब वह मुझे वानर नहीं जान पड़ता—बल्कि वह तो कोई महाबली प्राणी जान पड़ता है ॥ ६ ॥

भवेदिन्द्रेण वा सृष्टमस्मदर्थं तपोबलात् ।
सनागयक्षगन्धर्वा देवासुरमहर्षयः ॥ ७ ॥

मेरी समझ में तो इन्द्र ने इसको अपने तपोबल से हम लोगों का नाश करने के लिए उत्पन्न किया है। नाग, गन्धर्व, यक्षों सहित, देवताओं, दैत्यों और महर्षियों को ॥ ७ ॥

युष्माभिः सहितैः सर्वैर्मया सह विनिर्जिताः ।
तैरवश्यं विधातव्यं व्यलीकं किञ्चिदेव नः ॥ ८ ॥

मेरी आज्ञा से तथा मेरे साथ भी तुम लोगों ने उन देवताओं को जीता है। इसीसे वे लोग हम लोगों का अनिष्ट करना चाहते हैं। अवश्य ऐसा ही है ॥ ८ ॥

तदेव नात्र सन्देहः प्रसह्य परिगृह्यताम् ।
*नावमान्यश्च युष्माभिर्हरिर्धीरपराक्रमः ॥ ९ ॥

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, अतः बरजोरी तुम उसको पकड़ कर ले आओ। वह वानर धीर और वीर है। अतः तुम लोग कहीं उसको तुच्छ मत समझना ॥ ९ ॥

दृष्टा हि हरयः पूर्वं मया विपुलविक्रमाः ।
वाली च सहसुग्रीवो जाम्बवांश्च महाबलः ॥ १० ॥

पूर्वकाल में मैं बड़े बड़े पराक्रमी एवं बलवान् वाली, सुग्रीव, जाम्बवानादि वानरों को देख चुका हूँ ॥ १० ॥

नीलः सेनापतिश्चैव ये चान्ये द्विविदादयः ।
नैवं तेषां गतिर्भीमा न तेजो न पराक्रमः ॥ ११ ॥

सेनापति नील तथा द्विविदादि जो और दूसरे वानर हैं, उनमें न तो ऐसा भयङ्कर वेग है, न ऐसा तेज है और न ऐसा पराक्रम है ॥ ११ ॥

न मतिर्न बलोत्साहौ न रूपपरिकल्पनम् ।
महत्सत्त्वमिदं ज्ञेयं कपिरूपं व्यवस्थितम् ॥ १२ ॥

उनमें से किसी में न ऐसी बुद्धि है, न ऐसा बल है, न ऐसा उत्साह है और न उनमें रूपकल्पना की (शरीर के आकार को घटाने बढ़ाने अथवा रूप बदलने की) ऐसी शक्ति है। अतः हे राक्षसो! यह तो वानर-रूप-धारी कोई बड़ा बलिष्ठ प्राणी है ॥१२॥

---

* पाठान्तरे—"नावमान्यो भवाद्भिश्च।"

प्रयत्नं महदास्थाय क्रियतामस्य निग्रहः ।
कामं लोकास्त्रयः सेन्द्राः ससुरासुरमानवाः ॥ १३ ॥

तुम लोग बड़े प्रयत्न से उसको पकड़ना । मुझे मालूम है कि, इन्द्रप्रमुख देवता, दैत्य और मनुष्यों के सहित तीनों लोक ॥१३॥

भवतामग्रतः स्थातुं न पर्याप्ता रणाजिरे ।
तथापि तु नयज्ञेन जयमाकाङ्क्षता रणे ॥ १४ ॥

युद्धक्षेत्र में तुम्हारा सामना नहीं कर सकते । तो भी रणनीति का ज्ञाता जो जयाभिलाषी हो, उसको उचित है कि, ॥ १४ ॥

आत्मा रक्ष्यः प्रयत्नेन युद्धसिद्धिर्हि चञ्चला ।
ते स्वामिवचनं सर्वे प्रतिगृह्य महौजसः ॥ १५ ॥

प्रयत्नपूर्वक अपनी रक्षा करे । क्योंकि युद्ध में विजयश्री बड़ी चञ्चला होती है । अर्थात् यह कोई दावे के साथ नहीं कह सकता कि, अमुक की जीत होगी ; रावण की आज्ञा मान, वे सब महाबलवान् ॥ १५ ॥

समुत्पेतुर्महावेगा हुताशसमतेजसः ।
रथैर्मत्तैश्च मातङ्गैर्वाजिभिश्च महाजवैः ॥ १६ ॥

शस्त्रैश्च विविधैस्तीक्ष्णैः सर्वैश्चोपचिता बलैः ।
ततस्तं ददृशुर्वीरा दीप्यमानं महाकपिम् ॥ १७ ॥

तथा अग्नि के समान तेजस्वी राक्षस सेनापति रथ, मतवाले हाथी, शीघ्रगामी घोड़े और विविध प्रकार के पैने शस्त्रों से युक्त अपनी अपनी सेनाएँ सजा, प्रस्थानित हुए और युद्धक्षेत्र में जा, उन लोगों ने दीप्तियुक्त वीर हनुमान जी को देखा ॥ १६ ॥ १७ ॥

रश्मिमन्तमिवोद्यन्तं स्वतेजोरश्मिमालिनम् ।
तारणस्थं नरासत्वं महावेगं महाबलम् ॥ १८ ॥
महामतिं महोत्साहं महाकायं महाभुजम् ।
तं समीक्ष्यैव ते सर्वे दिक्षु सर्वास्ववस्थिताः ॥ १९ ॥

उस समय उस फाटक के ऊपर बैठे हुए, उदित सूर्य की तरह चमकीले महाबलवान्, महाविक्रमवान्, महावेगवान्, महाबुद्धिमान् महाउत्साही, महाकपि और महाभुज हनुमान जी को देख और उनसे डर कर, वे सब राक्षस दूर ही दूर खड़े हुए ॥ १८ ॥ १९ ॥

तैस्तैः प्रहरणैर्भीमैरभिपेतुस्ततस्ततः ।
तस्य पञ्चायसास्तीक्ष्णा शिताः पीतमुखाः शराः ॥ २० ॥

और चारों ओर से भयङ्कर अस्त्र शस्त्र चलाने लगे । लोहे के बने हुए पैने, पीले रंग के पाँच बाण ॥ २० ॥

शिरस्युत्पलपत्राभा दुर्धरेण निपातिताः ।
स तैः पञ्चभिराविद्धः शरैः शिरसि वानरः ॥ २१ ॥

जो कमलपुष्प के आकार के थे, दुर्धर नामक राक्षस ने हनुमान जी के मारे । वे पांच बाण हनुमान जी के मस्तक में जा कर लगे ॥ २१ ॥

उत्पपात नदन् व्योम्नि दिशो दश विनादयन् ।
ततस्तु दुर्धरो वीरः सरथः सज्यकार्मुकः ॥ २२ ॥

तब तो हनुमान जी सिंहनाद करते और उस सिंहनाद से दसों दिशाओं को प्रतिध्वनित करते, आकाश में छलांग मार कर पहुँच गए । यह देख रथ में बैठे हुए दुर्धर ने अपने धनुष पर रोदा चढ़ाया ॥ २२ ॥

किरन्शरशतैस्तीक्ष्णैरभिपेदे महाबलः ।
स कपिर्वारयामास तं व्योम्नि शरवर्षिणम् ॥ २३ ॥

और सैकड़ों बाण छोड़ता वह हनुमान जी का पीछा करने लगा। उस बाणवृष्टि करने वाले राक्षस के छोड़े बाणों को आकाश में रह कर हनुमान जी ने वैसे ही रोका ॥ २३ ॥

वृष्टिमन्तं पयोदान्ते पयोदमिव मारुतः ।
अर्द्यमानस्ततस्तेन दुर्धरेणानिलात्मजः ॥ २४ ॥

जैसे शरदऋतु में पवन, बादलों को जल बर्षाने से रोकता है। किन्तु जब दुर्धर राक्षस बाणवृष्टि से हनुमान जी को सताने लगा ॥ २४ ॥

चकार निनदं भूयो व्यवर्धत च वेगवान् ।
स दूरं सहसोत्पत्य दुर्धरस्य रथे हरिः ॥ २५ ॥

तब वेगवान् हनुमान जी पुनः गर्जे और उन्होंने अपने शरीर को बढ़ाया। तदनन्तर वे एक साथ बहुत दूर से उछल कर दुर्धर के रथ पर कूद पड़े ॥ २५ ॥

निपपात महावेगो विद्युद्राशिर्गिराविव ।
ततः स मथिताष्टाश्वं रथं भग्नाक्षकूबरम् ॥ २६ ॥

वे ज़ोर से वैसे ही रथ पर गिरे, जैसे बिजली पहाड़ पर गिरती है। उनके गिरते ही घोड़े सहित वह रथ, मय धुरे और कूबर के चकना चूर हो गया ॥ २६ ॥

विहाय न्यपतद्भूमौ दुर्धरस्त्यक्तजीवितः ।
तं विरूपाक्षयूपाक्षौ दृष्ट्वा निपतितं भुवि ॥ २७ ॥

और दुर्धर राक्षस रथ से पृथिवी पर गिर कर मर गया। तब दुर्धर को पृथिवी पर मरा हुआ पड़ा देख, विरूपाक्ष और यूपाक्ष ॥ २७ ॥

सञ्जातरोषौ दुर्धर्षावुत्पेततुररिन्दमौ ।
स ताभ्यां सहसोत्पत्य विष्ठितो विमलेऽम्बरे ॥ २८ ॥

नोट—"विमलेऽम्बरे" का भवार्थ यह है कि उस समय आकाश साफ था। बादल नहीं थे। जिनमें कोई अपने को छिपा सकता।

दोनों राक्षस महाक्रुद्ध हो उछले और हनुमान जी को विमल आकाश में जा घेर लिया ॥ २८ ॥

मुद्गराभ्यां महाबाहुर्वक्षस्यभिहतः कपिः ।
तयोर्वेगवतोर्वेगं विनिहत्य महाबलः ॥ २९ ॥

और उन दोनों ने मुद्गरों से हनुमान जी की छाती पर प्रहार किया। तब हनुमान जी ने उनके प्रहार को सह कर और उन वेगवालों के घात को बचा कर ॥ २९ ॥

निपपात पुनर्भूमौ सुपर्णसमविक्रमः ।
स सालवृक्षमासाद्य तमुत्पाट्य च वानरः ॥ ३० ॥

गरुड़ के समान वेग के साथ वे पृथिवी पर आए। तदनन्तर उन्होंने एक साखू के पेड़ के समीप जा उसको उखाड़ लिया ॥ ३० ॥

तावुभौ राक्षसौ वीरौ जघान पवनात्मजः ।
ततस्तांस्त्रीन्हताञ्ज्ञात्वा वानरेण तरस्विना ॥ ३१ ॥

फिर उसी पेड़ के आघात से उन्होंने उन राक्षसों को मार डाला। बलवान् हनुमान जी द्वारा उन तीनों को मरा हुआ जान, ॥ ३१ ॥

अभिपेदे महावेगः प्रहस्य प्रघसो हरिम् ।
भासकर्णश्च संक्रुद्धः शूलमादाय वीर्यवान् ॥ ३२ ॥

महावेगवान प्रघस नामक राक्षस सेनापति अट्टहास करता हुआ, हनुमान जी के निकट गया और बलशाली भासकर्ण भी शूल हाथ में ले और अत्यन्त क्रुद्ध हो ॥ ३२ ॥

एकतः कपिशार्दूलं यशस्विनमवस्थितम् ।
पट्टसेन शिताग्रेण प्रघसः प्रत्ययोधयत् ॥ ३३ ॥

यशस्वी हनुमान जी के एक ओर जाकर उपस्थित हुआ। तब प्रघस, पैनी नोंक के पटे से हनुमान जी से लड़ने लगा ॥३३॥

भासकर्णश्च शूलेन राक्षसः कपिसत्तमम् ।
स ताभ्यां विक्षतैर्गात्रैरसृग्दिग्धतनूरुहः ॥ ३४ ॥

राक्षस भासकर्ण ने हाथ में त्रिशूल ले हनुमान जी पर आक्रमण किया। उन दोनों के संयुक्त प्रहार से हनुमान जी के सब शरीर में घाव हो गए और उनके रुधिर बहने लगा ॥ ३४ ॥

अभवद्वानरः क्रुद्धो बालसूर्यसमप्रभः ।
समुत्पाट्य गिरेः शृङ्गं समृगव्यालपादपम् ॥ ३५ ॥

तब प्रातःकालीन सूर्य के समान कान्ति वाले हनुमान जी अत्यन्त क्रुद्ध हुए। मृग, सांप और पेड़ों सहित एक पहाड़ के शिखर को उखाड़ कर ॥ ३५ ॥

जघान हनुमान्वीरो राक्षसौ कपिकुञ्जरः ।
ततस्तेष्ववसन्नेषु सेनापतिषु पञ्चसु ॥ ३६ ॥

उससे वीर कपिश्रेष्ठ हनुमान जी ने उन दोनों को भी मार डाला। उन पाँचों राक्षस सेनापतियों को मार ॥ ३६ ॥

बलं तदवशे च नाशयामास वानरः।
अश्वैरश्वान्गजैर्नागान्ये धैर्योधान्रथै रथान् ॥ ३७ ॥

हनुमान जी ने बची हुई राक्षस-सेना का संहार किया। (उनके, मारने के लिए उन्हें किसी वस्तु की आवश्यकता न पड़ी।) उन्होंने घोड़े से घोड़े को, हाथी से हाथी को सैनिक से सैनिक को और रथ से रथ को (मार मार कर) नष्ट कर डाला ॥ ३७ ॥

स कपिर्नाशयामास सहस्राक्ष इवासुरान्।
हतैर्नागैस्तुरङ्गैश्च भग्नाक्षैश्च महारथैः।
हतैश्च राक्षसैर्भूमी रुद्धमार्गा समन्ततः ॥ ३८ ॥

उन्होंने उन राक्षसों का वैसे ही संहार किया; जैसे इन्द्र असुरों का करते हैं। उन मरे हुए हाथियों, घोड़ों, टूटे हुए बड़े बड़े रथों से तथा मरे हुए राक्षसों से वह रणक्षेत्र पट गया और हर ओर के मार्ग बंद हो गए ॥ ३८ ॥

ततः कपिस्तान्ध्वजिनीपतीन्रणे
निहत्य वीरान्सबलान्सवाहनान्।
तदेव वीरः परिगृह्य तोरणं
कृतक्षणः काल इव प्रजाक्षये ॥ ३९ ॥

इति षट्चत्वारिंशः सर्गः

पाँच वीर सेनापतियों को उनकी सेना तथा वाहनों सहित युद्ध में मार कर और अवसर पा, वीर हनुमान प्रलयकालीन प्रजाक्षयकारी काल की तरह, पुनः उसी फाटक के ऊपर जा बैठे ॥ ३९ ॥

सुंदरकाण्ड का छियालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

सप्तचत्वारिंशः सर्गः

---*---

सेनापतीन्पञ्च स तु प्रमापितान्
हनूमता सानुचरान्सवाहनान् ।
समीक्ष्य राजा समरोद्धतोन्मुखं
कुमारमक्षं प्रसमैक्षताग्रतः ॥ १ ॥

राक्षसराज रावण ने, जब जाना कि, हनुमान जी ने उन पाँच सेनापतियों को उनकी सेना तथा वाहनों सहित नष्ट कर डाला है, तब उसने लड़ने के लिए उद्यत और अपने सामने बैठे हुए अक्षयकुमार की ओर देखा ॥ १ ॥

स तस्य दृष्ट्यर्पणसंप्रचोदितः
प्रतापवान्काञ्चनचित्रकार्मुकः ।
समुत्पपाताथ सदस्युदीरितो
द्विजातिमुख्यैर्हविषेव पावकः ॥ २ ॥

रावण के ताकने भर की देर थी कि, प्रतापी और अद्भुत सुवर्णभूषित धनुषधारी अक्षयकुमार तुरन्त वैसे उठ खड़ा हुआ; जैसे ब्राह्मणों द्वारा आहुति पड़ने पर अग्नि की शिखा उठती है ॥२॥

ततो महद्बालदिवाकरप्रभं
प्रतप्तजाम्बूनदजालसन्ततम् ।
रथं समास्थाय ययौ स वीर्यवान्
महाहरिं तं प्रति नैर्ऋतर्षभः ॥ ३ ॥

वह राक्षसश्रेष्ठ महाबली, रावणकुमार, सूर्य के समान दीप्तिमान, सुवर्णभूषित रथ पर सवार हो, हनुमान जी से लड़ने को रवाना हुआ ॥ ३ ॥

ततस्तपःसंग्रहसञ्चयार्जितं
प्रतप्तजाम्बूनदजालशोभितम् ।
पताकिनं रत्नविभूषितध्वजं
मनोजवाष्टाश्ववरैः सुयोजितम् ॥ ४ ॥

वह रथ बड़ी तपस्या करके प्राप्त हुआ था और रत्नजड़ित ध्वजा पताकाओं से भली भांति सुसज्जित था। मन के समान तेज़ चलने वाले आठ घोड़े उसमें जुते हुए थे ॥ ४ ॥

सुरासुराधृष्यमसङ्गचारिणं
रविप्रभं व्योमचरं समाहितम् ।
सतूणमष्टासिनिबद्धबन्धुरं
यथाक्रमावेशितचारुतोमरम् ॥ ५ ॥

देवता और असुरों से अजेय, बिना किसी के सहारे चलने वाला, सूर्य की तरह चमकीला, आकाश में उड़ने की शक्ति रखने वाला, तीरों से भरे हुए तरकसों से पूरा, आठ खड्गों से युक्त, जिसमें यथोचित स्थानों पर पैनी पैनी शक्तियाँ और तोमर रखे हुए थे ॥ ५ ॥

विराजमानं प्रतिपूर्णवस्तुना
सहेमदाम्ना शशिसूर्यवर्चसा ।
दिवाकराभं रथमास्थितस्ततः
स निर्जगामामरतुल्यविक्रमः ॥ ६ ॥

जो समस्त संग्राम की सामग्री से युक्त, सोने की डोरियों से कसा हुआ एवं चन्द्रमा और सूर्य की तरह चमचमाता था। इस प्रकार के सूर्य के समान चमकीले, रथ पर सवार हो, देवताओं के समान पराक्रमी अक्षयकुमार बाहर निकला ॥ ६ ॥

स पूरयन्खं च महीं च साचलां
तुरङ्गमातङ्गमहारथस्वनैः ।
बलैः समेतैः स हि तोरणस्थितं
समर्थमासीनमुपागमत्कपिम् ॥ ७ ॥

सेना के घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की चिंघार और रथों के चलने की गड़गड़ाहट से आकाश, पृथिवी और पर्वतों को प्रतिध्वनित करता हुआ अक्षयकुमार सेना को साथ लिए हुए, फाटक पर बैठे हुए अति समर्थवान् हनुमान जी के निकट आ पहुँचा ॥ ७ ॥

स तं समासाद्य हरिं हरीक्षणो
युगान्तकालाग्निमिव प्रजाक्षये ।
अवस्थितं विस्मतजातसंभ्रमः
समैक्षताक्षो बहुमानचक्षुषा ॥ ८ ॥

सिंह समान क्रूर दृष्टि वाला अक्षयकुमार, विस्मित हो कर प्रलयकालीन प्रजाक्षयकारी अग्निदेव के तुल्य हनुमान जी को, आदर की दृष्टि से देखने लगा ॥ ८ ॥

स तस्य वेगं च कपेर्महात्मनः
पराक्रमं चारिषु पार्थिवात्मजः ।

विचारयन्स्वं च बलं महाबलो
हिमक्षये सूर्य इवाभिवर्धते ॥ ९ ॥

महाबलवान् अक्षय, धैर्यवान् हनुमान जी का बल और शत्रु के प्रति उनके पराक्रम तथा अपना बलाबल विचार कर, ग्रीष्म-कालीन सूर्य की तरह अपनी उग्रता बढ़ाने लगा ॥ ९ ॥

स जातमन्युः प्रसमीक्ष्य विक्रमं
स्थिरं स्थितः संयति दुर्निवारणम् ।
समाहितात्मा हनुमन्तमाहवे
प्रचोदयामास शरैस्त्रिभिः शितैः ॥ १० ॥

हनुमान द्वारा राक्षसों का विध्वंस सोच और संग्राम के लिए उद्यत और दुर्निवार्य हनुमान जी के ऊपर एकाग्रचित्त हो अक्षय कुमार ने तीन पैने बाण चला कर, उनको युद्ध के लिये ललकारा ॥ १० ॥

ततः कपिं तं प्रसमीक्ष्य गर्वितं
जितश्रमं शत्रुपराजयोर्जितम् ।
अवैक्षताक्षः समुदीर्णमानसः
स बाणपाणिः प्रगृहीतकार्मुकः ॥ ११ ॥

तदनन्तर हनुमान जी को उन बाणों से अविचलित देख, शत्रु को पराजित करने के योग्य, बल से गर्वित और युद्ध के लिए उत्साहित देख, फुर्तीले अक्षय ने बाण सहित धनुष को हाथ में लिया ॥ ११ ॥

स हेमनिष्काङ्गदचारुकुण्डलः
समाससादाशुपराक्रमः कपिम् ।

तयोर्बभूवाप्रतिमः समागमः
सुरासुराणामपि सम्भ्रमप्रदः ॥ १२ ॥

सुवर्ण के बने बाजू और सुन्दर कुण्डल धारण किए, फुर्तीले और पराक्रमी अक्षय ने हनुमान जी पर आक्रमण किया। उन दोनों का यह अनुपम युद्धसमागम, देवताओं और दैत्यों को भी भयप्रद था ॥ १२ ॥

ररास भूमिर्न तताप भानुमान्
ववौ न वायुः प्रचचाल चाचलः ।
कपेः कुमारस्य च वीक्ष्य संयुगं
ननाद च द्यौरुदधिश्च चुक्षुभे ॥१३॥

हनुमान जी और अक्षय की लड़ाई देख, भूमि से एक प्रकार का शब्द निकला, सूर्य की गर्मी मन्द पड़ गई, वायु का चलना बन्द हो गया, पहाड़ काँप उठे, आकाश गूँजने लगा और समुद्र खलबलाने लगा ॥ १३ ॥

ततः स वीरः सुमुखान्पतत्रिणः
सुवर्णपुङ्खान्सविषानिवोरगान् ।
समाधिसंयोगविमोक्षतत्त्ववित्
शरानथ त्रीन्कपिमूर्ध्न्यपातयत् ॥ १४ ॥

निशाना वेधने, बाण का सन्धान करने और बाणों के चलाने में कुशल वीर अक्षयकुमार ने सुवर्णमय, सुन्दर पुंखयुक्त एवं विषैले सर्पों के तुल्य तीन बाण हनुमान जी के सिर में मारे ॥ १४ ॥

स तैः शरैर्मूर्ध्नि समं निपातितैः
क्षरन्नसृग्दिग्धविवृत्तलोचनः ।
नवोदितादित्यनिभः शरांशुमान
व्यरोचतादित्य इवांशुमालिकः ॥ १५ ॥

एक साथ तीन बाणों के लगने से हनुमान जी के सिर से ख़ून की धारा बह निकली, उनके नेत्रों के सामने घुमरी आने लगी। किन्तु उस समय हनुमान जी ऐसे शोभायमान हुए, जैसे उदयकालीन सूर्य शोभायमान होते हैं। उनके मस्तक में बिधे हुए बाण किरणों की तरह शोभा देने लगे ॥ १५ ॥

ततः स पिङ्गाधिपमन्त्रिसत्तमः
समीक्ष्य राजवरात्मजं रणे ।
उदग्रचित्रायुधचित्रकार्मुकं
जहर्ष चापूर्यत चाहवोन्मुखः ॥ १६ ॥

तब सुग्रीव के मंत्रिप्रवर, श्रीहनुमान जी उस राक्षसराज के पुत्र अक्षयकुमार को, जो अत्युत्तम और अद्भुत आयुधों और धनुष को ले लड़ रहा था, देख कर, प्रसन्न हुए और अपना शरीर बढ़ाया तथा वे उससे युद्ध करने को उद्यत हुए ॥ १६ ॥

स मन्दराग्रस्थ इवांशुमालिको
विवृद्धकोपो बलवीर्यसंयुतः ।
कुमारमक्षं सबलं सवाहनं
ददाह नेत्राग्निमरीचिभिस्तदा ॥ १७ ॥

मन्द्राचल पर स्थित सूर्य की तरह कान्तिमान्, बल और विक्रम से युक्त हनुमान जी, अत्यन्त क्रुद्ध हुए और नेत्राग्नि से सेना सहित अक्षयकुमार को भस्म करने लगे ॥ १७ ॥

ततः स बाणासनचित्रकार्मुकः
शरप्रवर्षो युधि राक्षसाम्बुदः।
शरान्मुमोचाशु हरीश्वराचले
वलाहको वृष्टिमिवाचलोत्तमे ॥ १८ ॥

जिस प्रकार मेघ पर्वतों पर जल की वृष्टि किया करते हैं; उसी प्रकार उस युद्ध में अक्षयकुमार रूपी बादल, हनुमान रूपी पर्वत पर, अपने अद्भुत धनुष से बाणरूपी जल की वृष्टि करने लगा ॥ १८ ॥

ततः कपिस्तं रणचण्डविक्रमं
विवृद्धतेजोबलवीर्यसंयुतम्।
कुमारमक्षं प्रसमीक्ष्य संयुगे
ननाद हर्षाद्घनतुल्यनिःस्वनः ॥ १९ ॥

जब हनुमान जी ने देखा कि अक्षयकुमार बड़ा प्रचण्ड पराक्रमी है और बड़ी तेज़ी से तथा पराक्रम के साथ बाण चलाता हुआ युद्ध कर रहा है; तब वे प्रसन्न हो, मेघ की तरह गर्जे ॥ १९ ॥

स बालभावाद्युधि वीर्यदर्पितः
प्रवृद्धमन्युः क्षतजोपमेक्षणः।
समाससादाप्रतिमं कपिं रणे
गजो महाकूपमिवावृतं तृणैः ॥ २० ॥

कमउम्र होने के कारण अक्षयकुमार अपने बल पराक्रम का बड़ा गर्व रखता था और मारे क्रोध के उसके दोनों नेत्र सुर्ख हो गए थे। जिस प्रकार हाथी घास फूस से ढके हुए अंधे कुएँ में चला जाता है ; उसी प्रकार वह हनुमान जी के पास युद्ध करता हुआ चला जाता था ॥ २० ॥

स तेन बाणैः प्रसभं निपातितैः
चकार नादं घननादनिःस्वनः ।
समुत्पपाताशु नभः स मारुतिः
भुजोरुविक्षेपणघोरदर्शनः ॥ २१ ॥

बहुत बाणों के लगने से हनुमान जी गर्जते हुए आकाश की ओर उड़े। उस समय उनकी भुजाओं और जाँघों के हिलने से उनका रूप देख, बड़ा डर लगता था ॥ २१ ॥

समुत्पतन्तं समभिद्रवद्बली
स राक्षसानां प्रवरः प्रतापवान् ।
रथी रथिश्रेष्ठतमः किरञ्शरैः
पयोधरः शैलमिवाश्मवृष्टिभिः ॥ २२ ॥

जब हनुमान जी उड़ कर आकाश में पहुँचे तब राक्षस-श्रेष्ठ, शूरप्रवर, प्रतापी एवं बलवान् अक्षयकुमार उन पर बाणों की वर्षा वैसे ही करने लगा ; जैसे मेघ पर्वत पर ओलों की वर्षा करते हैं ॥ २२ ॥

स ताञ्शरांस्तस्य विमोक्षयन्कपिः
चचार वीरः पथि वायुसेविते ।

शरान्तरे मारुतवद्विनिष्पतन्
मनोजवः सयति चण्डविक्रमः ॥ २३ ॥

युद्ध में भयङ्कर विक्रम दिखाने वाले और मन से भी अधिक वेगगामी वीर पवननन्दन हनुमान जी, पवनदेव की तरह बाणों की घात को बचाते बाणों के बीच में घूम रहे थे ॥ २३ ॥

तमात्तबाणासनमाहवोन्मुखं
खमास्तृणन्तं विशिखैः शरोत्तमैः ।
अवैक्षताक्षं बहुमानचक्षुषा
जगाम चिन्तां च स मारुतात्मजः ॥ २४ ॥

जब हनुमान जी ने देखा कि, अक्षय ने तो विविध प्रकार के बाणों से आकाश ही को ढक दिया, तब तो हनुमान जी अक्षय को बहुत सम्मान की दृष्टि से देख कर, मन ही मन सोचने लगे॥२४॥

ततः शरैर्भिन्नभुजान्तरः कपिः
कुमारवीर्येण महात्मना नदन् ।
महाभुजः कर्मविशेषतत्त्ववित्
विचिन्तयामास रणे पराक्रमम् ॥ २५ ॥

इतने में जब वीर अक्षयकुमार ने हनुमान जी की छाती में अनेक बाण मारे, जिससे उनका वक्षःस्थल क्षत विक्षत हो गया; तब कार्यपटु, महाबाहु हनुमान जी गर्जे और अक्षय के युद्ध सम्बन्धी पराक्रम के विषय में विचारने लगे ॥ २५ ॥

अबालवद्बालदिवाकरप्रभः
करोत्ययं कर्म महन्महाबलः ।

न चास्य सर्वाहवकर्मशोभिनः
प्रमापणे मे मतिरत्र जायते ॥ २६ ॥

और मन ही मन कहने लगे कि, प्रात.कालीन सूर्य की तरह कान्तिमान, महाबली एवं धैर्यशाली अक्षय ने वीर पुरुष की तरह कार्य किया है। युद्ध के समस्त कर्मों में यह कुशल है। अतः ऐसे रणकुशल वीर का वध करने को इस समय मेरी इच्छा नहीं होती ॥ २६ ॥

अयं महात्मा च महांश्च वीर्यतः
समाहितश्चातिसहश्च संयुगे।
असंशयं कर्मगुणोदयादयं
सनागयक्षैर्मुनिभिश्च पूजितः ॥ २७ ॥

यह धैर्य सम्पन्न अक्षय, बड़ा बलवान है, युद्ध करने को तत्पर है और अतिशय क्लेशसहिष्णु है तथा कार्यकुशल है। कार्यकुशल और गुणवान होने के कारण, नाग, यक्ष और ऋषियों द्वारा यह सम्मान किए जाने योग्य है ॥ २७ ॥

पराक्रमोत्साहविवृद्धमानसः
समीक्षते मां प्रमुखाग्रतः स्थितः।
पराक्रमो ह्यस्य मनांसि कम्पयेत्
सुरासुराणामपि शीघ्रगामिनः ॥ २८ ॥

देखो, पराक्रम और उत्साह से इसके मन का उत्साह कैसा चढ़ा बढ़ा हुआ है। यह मेरे सामने खड़ा मेरी ओर देख रहा है, इस फुर्तीले और रणबाँकुरे का पराक्रम देवताओं और दैत्यों के भी मन को भयभीत करने वाला है ॥ २८ ॥

न खल्वयं नाभिभवेदुपेक्षितः
पराक्रमो ह्यस्य रणे विवर्धते ।
प्रमापणं त्वेव ममास्य रोचते
न वर्धमानोऽग्निरुपेक्षितुं क्षमः ॥ २९ ॥

युद्ध में इसका जैसा उत्तरोत्तर पराक्रम बढ़ता जा रहा है, उस पर ध्यान दे कर, यदि मैं अब इसकी उपेक्षा करूँ, तो यह निस्सन्देह मुझे पराजित करेगा। अतः इसका घात करना ही मुझे अच्छा जान पड़ता है; क्योंकि बढ़ती हुई आग की उपेक्षा करनी ठीक नहीं ॥ २९ ॥

इति प्रवेगं तु परस्य तर्कयन्
स्वकर्मयोगं च विधाय वीर्यवान् ।
चकार वेगं तु महाबलस्तदा
मतिं च चक्रेऽस्य वधे महाकपिः ॥ ३० ॥

इस प्रकार महाबली हनुमान जी शत्रु के पराक्रम को विचार कर और अपना कर्त्तव्य स्थिर कर, बड़ी शीघ्रता से उसके वध में तत्पर हुए ॥ ३० ॥

स तस्य तानष्टहयान्महाजवान्
समाहितान्भारसहान्विवर्तने ।
जघान वीरः पथि वायुसेविते
तलप्रहारैः पवनात्मजः कपिः ॥ ३१ ॥

ऐसा निश्चय कर, पवननन्दन महाबली हनुमान जी ने आकाशगामी और बड़े भार को ढोने वाले तथा अनेक प्रकार के

चक्कर काटने में कुशल, अक्षय के रथ के आठों घोड़ों को आकाश ही में थप्पड़ मार मार कर मार डाला ॥ ३१ ॥

ततस्तलेनाभिहतो महारथः
स तस्य पिङ्गाधिपमन्त्रिनिर्जितः ।
प्रभग्ननीडः[1] परिमुक्तकूबरः[2]
पपात भूमौ हतवाजिरम्बरात् ॥ ३२ ॥

सुग्रीव के अमात्य हनुमान जी के चपेटों से उस बड़े रथ के घोड़े मारे गए और उसके रथ की बैठक टूट गई और युगंधर (रथ का वह भाग जिसमें जुआं जुड़ा रहता है) खुल जाने के कारण, रथ आकाश से गिरा ॥ ३२ ॥

स तं परित्यज्य महारथो रथं
सकार्मुकः खड्गधरः खमुत्पतन् ।
तपोभियोगादृषिरुग्रवीर्यवान्
विहाय देहं मरुतामिवालयम् ॥ ३३ ॥

महाबलवान अक्षय उस रथ को छोड़, हाथ में तलवार और धनुष लेकर, फिर आकाश में वैसे ही जा पहुँचा, जैसे तपः-प्रभाव से उग्रतपस्वी ऋषि, देह त्याग कर, स्वर्ग में पहुँच जाते हैं ॥ ३३ ॥

ततः कपिस्तं विचरन्तमम्बरे
पतत्रिराजानिलसिद्धसेविते ।

---

१ नीडं—रथिस्थानम् (शि०) २ कूबरः— युगन्धरः । (गो०)

समेत्य तं मारुततुल्यविक्रमः

क्रमेण जग्राह स पादयोर्दृढम् ॥३४॥

तब पवनतुल्य पराक्रमी हनुमान जी ने, आकाश में घूमते फिरते और युद्ध करते हुए अक्षयकुमार के दोनों पैरों को बड़ी दृढ़ता से पकड़ा ॥ ३४ ॥

स तं समाविध्य सहस्रशः कपिः

महोरगं गृह्य इवाण्डजेश्वरः ।

मुमोच वेगात्पितृतुल्यविक्रमो

महीतले संयति वानरोत्तमः ॥३५॥

जैसे गरुड़ किसी बड़े साँप को पकड़ झकझोर डालते हैं, उसी प्रकार अक्षय को सहस्रों बार झकझोर और घुमा कर, अपने पिता पवन के समान पराक्रम-शाली हनुमान जी ने, संग्रामभूमि में दे पटका ॥ ३५ ॥

स भग्नबाहूरुकटीशिरोधरः

क्षरन्नसृङ् निर्मथितास्थिलोचनः ।

प्रभिन्नसन्धिः प्रविकीर्णबन्धनो

हतः क्षितौ वायुसुतेन राक्षसः ॥३६॥

उस पटकी से अक्षय की बाँहें, जाँघें, कमर, सिर और अधर चूर चूर हो गये। हड्डी और आँखें भी निकल पड़ीं। सब जोड़ खुल गए। शरीर के जोड़ों के बन्धन भी बिखर गए। इस प्रकार पवननन्दन हनुमान जी ने उस राक्षस को मार डाला ॥ ३६ ॥

महाकपिर्भूमितले निपीड्य तं

चकार रक्षोधिपतेर्महद्भयम् ।

महर्षिभिश्चक्रचरैर्महाव्रतैः
समेत्य भूतैश्च सयक्षपन्नगैः ॥३७॥

सुरैश्च सेन्द्रैर्भृशजातविस्मयैः
हते कुमारे स कपिर्निरीक्षितः ॥३८॥

हनुमान जी उसी पर कूद पड़े और इस प्रकार उन्होंने रावण के मन में महाभय उत्पन्न कर दिया। अक्षयकुमार के मारे जाने पर महर्षि, ग्रह, यक्ष और पन्नग तथा इन्द्र सहित समस्त देवगण वहाँ जा विस्मित हो, हनुमान जी को निहारने लगे ॥ ३७ ॥ ३८॥

निहत्य तं वज्रिसुतोपमं रणे
कुमारमक्षं क्षतजोपमेक्षणम्।

तदेव वीरोऽभिजगाम तोरणं
कृतक्षणः काल इव प्रजाक्षये ॥३९॥

इति सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥

युद्ध में वज्र के समान दृढ़ और लाल नेत्र वाले अक्षयकुमार का वध कर और युद्ध से अवकाश पा, वीर हनुमान, प्रलयकालीन काल की तरह, फाटक के ऊपर पुनः जा बैठे ॥३९॥

सुन्दरकाण्ड का सैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—:०:—

अष्टचत्वारिंशः सर्गः

—:०:—

ततस्तु रक्षोधिपतिर्महात्मा
हनूमताऽक्षे निहते कुमारे ।
मनः समाधाय तदेन्द्रकल्पं
समादिदेशेन्द्रजितं स रोषात् ॥१॥

तदनन्तर हनुमान जी द्वारा अक्षयकुमार के मारे जाने पर, राक्षसराज रावण ने धैर्य धारण कर तथा कुपित हो, इन्द्र के समान पराक्रमी इन्द्रजीत मेघनाद को युद्ध में जाने की आज्ञा दी ॥ १ ॥

त्वमस्त्र[1] विच्छस्त्रविदां वरिष्ठः
सुरासुराणामपि शोकदाता ।
सुरेषु सेन्द्रेषु च दृष्टकर्मा
पितामहाराधनसञ्चितास्त्रः ॥२॥

आज्ञा देते हुए उसने मेघनाद से कहा—तुम ब्रह्मास्त्र का चलाना जानने वाले, शस्त्र चलाने वालों में श्रेष्ठ और सुरों एवं असुरों को भी शोक के देने वाले हो। इन्द्रादि समस्त देवता तुम्हारे युद्धविक्रम को देख चुके हैं और ब्रह्मा जी का आराधन कर तुमने अस्त्रों को पाया है ॥२॥

तवास्त्रबलमासाद्य नासुरा न मरुद्गणाः ।
न शेकुः समरे स्थातु सुरेश्वरसमाश्रिताः ॥३॥

---

१ अस्त्रवित्—ब्रह्मास्त्रवित् । (गो०)

तुम्हारे अस्त्रों के सामने, उनचास पवनों सहित देवगण, इन्द्र का सहारा पाकर भी, युद्ध में खड़े नहीं रह सकते ॥ ३ ॥

न कश्चित्त्रिषु लोकेषु संयुगे न गतश्रमः ।
भुजवीर्याभिगुप्तश्च तपसा चाभिरक्षितः ।
देशकालविभागज्ञस्त्वमेव मतिसत्तमः ॥४॥

त्रिलोकी में मुझे ऐसा कोई नहीं देख पड़ता, जो युद्ध में तुमसे परास्त न हुआ हो। तुम अपने भुजबल और तपोबल से सब प्रकार से सुरक्षित हो। तुम देश और काल के जानने वाले और बुद्धिमानों में श्रेष्ठ हो ॥ ४ ॥

न तेऽस्त्यशक्यं समरेषु कर्मणा
न तेऽस्त्यकार्यं मतिपूर्वमन्त्रणे ।
न सोऽस्ति कश्चित्त्रिषु संग्रहेषु[1] वै
न वेद यस्तेऽस्त्रबलं बलं च ते ॥५॥

युद्धकला में कोई ऐसा कार्य नहीं, जिसे तुम न कर सकते हो। विवेक पूर्वक विचार करने पर, तुमसे कोई बात अविदित नहीं रह सकती। त्रिलोकी में ऐसा कोई नहीं है, जो तुम्हारे अस्त्रशस्त्र और शारीरिक बल को न जानता हो ॥ ५ ॥

ममानुरूपं तपसो बलं च ते
पराक्रमश्चास्त्रबलं च संयुगे ।

---

१ संग्रहाः—लोकाः । (गो०)

न त्वां समासाद्य[1] [2]रणावमर्दे
मनः[3] श्रमं गच्छति निश्चितार्थम् ॥६॥

तपोबल, शारीरिक बल, पराक्रम अस्त्रबल और युद्धकला में तुम मेरे समान हो। रणसङ्कट के समय मुझे जब तुम्हारा स्मरण हो आता है, तब मुझे अपने विजय का निश्चय हो जाता है और तब मेरे मन की समस्त चिन्ताएँ और विषाद दूर हो जाते हैं।॥६॥

निहताः किङ्कराः सर्वे जम्बुमाली च राक्षसः।
अमात्यपुत्रा वीराश्च पञ्च सेनाग्रयायिनः ॥७॥

देखो, अस्सी हज़ार किङ्कर, राक्षस जम्बुमाली, मन्त्रिपुत्र और वीर पाँच सेनापति, हाथी, घोड़े और रथों सहित बड़ी बलवान सेना—ये सब मारे जा चुके हैं ॥७॥

बलानि सुसमृद्धानि साश्वनागरथानि च।
सहोदरस्ते दयितः कुमारोऽक्षश्च सूदितः।
न हि तेष्वेव मे सारो यस्त्वय्यरिनिषूदन ॥८॥

तुम्हारा प्यारा सगा भाई अक्षयकुमार भी मारा जा चुका है। हे शत्रुनिसूदन! मैं उन सब में तुम्हारे समान बल का होना नहीं मानता, तुम उन सब से बढ़ कर बलवान हो ॥८॥

इदं हि दृष्ट्वा मतिमन्महद्बलं
कपेः प्रभावं च पराक्रमं च।

---

१ आसाद्य—विचिन्त्य। (गो०) २ रणावमर्दे—रणसङ्कटे। (गो०)
३ मे मनः श्रमं न गच्छति—विषादं न गच्छति। (गो०)

त्वमात्मनश्चापि समीक्ष्य सारं
कुरुष्व वेगं स्वबलानुरूपम् ॥९॥

अतः अब तुम उस बन्दर की अन्तःशक्ति और पुरुषार्थ तथा अपना बल विचार कर, सामर्थ्यानुसार अपना बल दिखाओ ॥९॥

बलावमर्दस्त्वयि सन्निकृष्टे
यथागते शाम्यति शान्तशत्रौ ।
तथा समीक्ष्यात्मबलं परं च
समारभस्वास्त्रविदां वरिष्ठ ॥१०॥

हे अस्त्रविदों में श्रेष्ठ! ऐसा करो जिससे तुम्हारे युद्धक्षेत्र में जाते ही मेरी सेना का नाश होना बंद हो जाय। अतः तुम अपना और वानर का बल विचार कर, कार्य आरम्भ करना ॥१०॥

न वीर सेना गणशश्च्यवन्ति
न वज्रमादाय विशालसारम् ।
न मारुतस्यास्य गतेः प्रमाणं
न चाग्निकल्पः करणेन हन्तुम् ॥११॥

हे वीर! अपने साथ सेना ले जाने की भी कुछ आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह बलवान शत्रु के सामने नहीं ठहरती। हनुमान के लिए बड़ा भारी वज्र भी निष्फल है। क्योंकि वह वायु का पुत्र है और वायु की गति का ठीक ही क्या है? अतः वज्र उसका कुछ नहीं कर सकता। फिर यदि कहो कि, जब वह समीप आवे तब उसे मुक्कों और थपेड़ों से मारें, तो यह भी ठीक नहीं—क्योंकि वह अग्नितुल्य है। उसके ऊपर घूँसों थपेड़ों का असर ही क्या हो सकता है? ॥ ११ ॥

तमेवमर्थं प्रसमीक्ष्य सम्यक्
स्वकर्मसाम्याद्धि समाहितात्मा ।
स्मरंश्च दिव्यं धनुषोऽस्त्रवीर्यं
व्रजाक्षतं कर्म समारभस्व ॥१२॥

अतएव पूर्वकथित बातों को ध्यान में रख, अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिए, अन्यूनातिरिक्त एकाग्रचित्त हो और धनुष सम्बन्धी अस्त्रबल का सहारा लेकर, तुम गमन करो और निर्विघ्न अपना कार्य आरम्भ करो अर्थात् बिना मन्त्राभिषिक्त अस्त्रप्रयोग के तुम हनुमान को नहीं पकड़ सकोगे। अतः अस्त्रों के मन्त्रों को याद कर, तुम जाओ ॥ १२ ॥

न खल्वियं मतिः श्रेष्ठा यत्त्वां संप्रेषयाम्यहम् ।
इयं च राजधर्माणां क्षत्रस्य च मतिर्मता ॥१३॥

तुमको युद्ध में भेजना निश्चय ही ठीक नहीं है, परन्तु किया क्या जाय। राजधर्म का विधान और क्षत्रियोचित कर्त्तव्यपालन इसके लिए मुझे विवश करता है ॥ १३ ॥

नानाशस्त्रैश्च संग्रामे वैशारद्यमरिन्दम ।
अवश्यमेव बोद्धव्यं काम्यश्च विजयो रणे ॥१४॥

जो हो, हे शत्रुहन्ता ! युद्ध में विविध अस्त्रों के प्रहार की विधि को अवश्य जान लेना चाहिए और विजयप्राप्ति के लिए प्रार्थी होना चाहिए अर्थात् जयप्राप्ति के लिए सब अस्त्रों के प्रयोग जान लेने चाहिए ॥ १४ ॥

---

१ काम्यः—प्रार्थनीयः। (गो०)

ततः पितुस्तद्वचनं निशम्य
प्रदक्षिणं[1] दक्षसुतप्रभावः ।
चकार भर्तारमतित्वरेण
रणाय वीरः प्रतिपन्नबुद्धिः ॥१५॥

अपने पिता के ऐसे वचन सुन, देवों के समान प्रभाव वाला मेघनाद, रावण की परिक्रमा कर और युद्ध करने का निश्चय कर, बिना क्षण भर की देर किए, वहाँ से चल दिया ॥१५॥

ततस्तैः स्वगणैरिष्टैरिन्द्रजित्प्रतिपूजितः ।
युद्धोद्धतः कृतोत्साहः संग्रामं प्रत्यपद्यत ॥१६॥

इन्द्रजीत अपने इष्टमित्रों द्वारा सम्मानित हुआ । तदनन्तर वह युद्ध के लिए उत्साहित हो, रणक्षेत्र में जा पहुँचा ॥ १६ ॥

श्रीमान्पद्मपलाशाक्षो राक्षसाधिपतेः सुतः ।
निर्जगाम महातेजाः समुद्र इव पर्वसु ॥१७॥

उस समय वह रावण का पुत्र, कमलदल के समान बड़े बड़े नेत्रों वाला, परमतेजस्वी इन्द्रजीत, युद्ध करने के उत्साह से पूर्ण हो, युद्ध करने को वैसे ही आगे बढ़ा जैसे पूर्णमासी के दिन, समुद्र बढ़ता है ॥ १७ ॥

स पक्षिराजानिलतुल्यवेगैः
[2]व्यालैश्चतुर्भिः सिततीक्ष्णदंष्ट्रैः ।

---

१ दक्षसुतप्रभावः—देवाः— । (गो०) २ व्यालैः हिं सपशुभिः—सिंहैरिति यावत् । (गो०)

रथं समायुक्तमसङ्गवेगं
समारुरोहेन्द्रजिदिन्द्रकल्पः ॥१८॥

इन्द्र के समान इन्द्रजीत, गरुड़ की तरह शीघ्रगामी और पैने दाँतों वाले चार सिंहों से जुते रथ पर सवार हुआ ॥ १८ ॥

स रथी धन्विनां श्रेष्ठः शस्त्रज्ञोऽस्त्रविदां वरः।
रथेनाभिययौ क्षिप्रं हनूमान्यत्र सोऽभवत् ॥१९॥

समस्त धनुषधारियों और समस्त शस्त्रों एवं अस्त्रों के चलाने की विधि जानने वालों में श्रेष्ठ, और युद्धविद्या में पटु इन्द्रजीत, तुरन्त रथ पर सवार हो, वहाँ जा पहुँचा, जहाँ हनुमान जी थे ॥ १६ ॥

स तस्य रथनिर्घोषं ज्यास्वनं कार्मुकस्य च।
निशम्य हरिवीरोऽसौ संप्रहृष्टतरोऽभवत् ॥२०॥

वानरश्रेष्ठ हनुमान जी उसके रथ के चलने की गड़गड़ाहट, और धनुष के रोदे की टङ्कार के शब्द को सुन, अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥२०॥

स महच्चापमादाय शितशल्यांश्च सायकान्।
हनुमन्तमभिप्रेत्य जगाम रणपण्डितः ॥२१॥

रणपण्डित मेघनाद धनुष और तेज फर लगे हुए शर ले, हनुमान जी के सामने जा पहुँचा ॥२१॥

तस्मिंस्ततः संप्रति जातहर्षे
रणाय निर्गच्छति बाणपाणौ।

दिशश्च सर्वाः कलुषा बभूवुः
मृगाश्च रौद्रा बहुधा विनेदुः ॥२२॥

जिस समय मेघनाद हर्षित हो, हाथ में तीर ले कर निकला, उस समय दशों दिशाएँ मलीन हो गईं, शृगाल आदि जन्तु बराबर भयंकर चीत्कार करने लगे ॥२२॥

समागतास्तत्र तु नागयक्षा
महर्षयश्चक्रचराश्च[1] सिद्धाः ।
नभः समावृत्य च पक्षिसंघा
विनेदुरुच्चैः परमप्रहृष्टाः ॥२३॥

उस संग्राम को देखने के लिए नाग, यक्ष, महर्षि, ग्रह तथा सिद्धों के दल के दल तथा विविध प्रकार के पक्षिगण भी अत्यन्त प्रसन्न हो, जोर से चिल्लाते हुए और आकाश को आच्छादित करते हुए, वहाँ जा उपस्थित हुए ॥२३॥

आयान्तं सरथं दृष्ट्वा तूर्णमिन्द्रजितं कपिः ।
विननाद महानादं व्यवर्धत च वेगवान् ॥२४॥

इन्द्रजीत को रथ में बैठ, बड़ी शीघ्रता से आते देख, अति वेग से गम्भीर गर्जन करते हुए, हनुमान जी ने अपना शरीर बढ़ाया ॥२४॥

इन्द्रजित्तु रथं दिव्यमास्थितश्चित्रकार्मुकः ।
धनुर्विस्फारयामास तडिदूर्जितनिःस्वनम् ॥२५॥

---

१ चक्रचराः—सङ्घचारिणः । (गो०)

दिव्य रथ पर चढ़ और विचित्र धनुष हाथ में ले, इन्द्रजीत ने अपने धनुष को, जिसकी चमक बिजली के समान थी और जिससे बड़ा शब्द होता था, रोदा चढ़ा कर, तैयार किया ॥२५॥

ततः समेतावतितीक्ष्णवेगौ
महाबलौ तौ रणनिर्विशङ्कौ ।
कपिश्च रक्षोधिपतेश्च पुत्रः
सुरासुरेन्द्राविव बद्धवैरौ ॥२६॥

अब वे दोनों अति वेगवान् महाबली हनुमान जी और रावण-कुमार इन्द्रजीत, जो निर्भय हो युद्ध करते थे और जिनका देवताओं और दैत्यों की तरह वैर बँध गया था, आमने सामने हुए ॥२६॥

स तस्य वीरस्य महारथस्य
धनुष्मतः संयति संमतस्य ।
शरप्रवेगं व्यहनत्प्रवृद्धः
चचार मार्गे पितुरप्रमेयः ॥२७॥

उस महारथी वीर इन्द्रजीत के धनुष से छूटे हुए तीरों की मार को पिता के समान अप्रमेय बलशाली हनुमान जी आकाश में घूमते हुए पैतरे बदल, बचाने लगे ॥२७॥

ततः शरानायततीक्ष्णशल्यान्
सुपत्रिणः काञ्चनचित्रपुङ्खान् ।
मुमोच वीरः परवीरहन्ता
सुसन्नतान्वज्रनिपातवेगान् ॥२८॥

यह देख शत्रुहन्ता इन्द्रजीत ने बहुत से ऐसे बड़े बड़े बाण छोड़े, जिनकी फालें बड़ी तेज़ थीं और जो पंखयुक्त, सुवर्ण से चित्रित और वज्र के समान वेगवान थे ॥२८॥

स तस्य तत्स्यन्दननिःस्वनं च

मृदङ्गभेरीपटहस्वनं च

विकृष्यमाणस्य च कार्मुकस्य

निशम्य घोषं पुनरुत्पपात ॥२९॥

हनुमान जो उसके रथ, मृदङ्ग, भेरी और नगाड़े के शब्द को तथा अति भयङ्कर उस धनुषके टंकार शब्द को सुन, फिर आकाश में उछल कर पहुँच गए ॥२६॥

शराणामन्तरेष्वाशु व्यवर्तत महाकपिः ।

हरिस्तस्याभिलक्ष्यस्य मोक्षयँल्लक्ष्यसंग्रहम् ॥३०॥

वे उसके बाणों की वर्षा में पैतरा बदलते और उसके निशाने को बचाते, घूम रहे थे ॥३०॥

शराणामग्रतस्तस्य पुनः समभिवर्तत ।

प्रसार्य हस्तौ हनुमानुत्पपातानिलात्मजः ॥३१॥

बीच बीच में वे बाणों के सामने आ जाते और फिर वहाँ से हट जाते थे। वे दोनों हाथों को पसारे आकाश में उड़ रहे थे ॥३१॥

तावुभौ वेगसंपन्नौ रणकर्मविशारदौ ।

सर्वभूतमनोग्राहि चक्रतुर्युद्धमुत्तमम् ॥३२॥

वे दोनों ही वेगवान और रणपण्डित थे। वे दोनों ही सब प्राणियों के मन को हरने वाला उत्तम युद्ध करते थे ॥३२॥

हनूमतो वेद न राक्षसोऽन्तरं
न मारुतिस्तस्य महात्मनोऽन्तरम् ।
परस्परं निर्विषहौ बभूवतुः
समेत्य तौ देवसमानविक्रमौ ॥३३॥

न तो हनुमान जी को मेघनाद में कहीं किसी प्रकार की कमी मालूम पड़ी और न मेघनाद को हनुमान जी की कमज़ोरी देख पड़ी। दोनों ही समान पराक्रमशाली थे। अतएव दोनों आपस में असह्य पराक्रमी हो गए ॥३३॥

ततस्तु लक्ष्ये स विहन्यमाने
शरेष्वमोघेषु च संपतत्सु ।
जगाम चिन्तां महतीं महात्मा
समाधिसंयोगसमाहितात्मा ॥३४॥

तदनन्तर धैर्यवान राक्षसराज का पुत्र मेघनाद अनेक अमोघ बाण चला कर भी जब हनुमान को विद्ध न कर पाया, तब समाधि योग करने वाले की तरह एकाग्रचित्त हो, मेघनाद विचारने लगा ॥३४॥

ततो मतिं राक्षसराजसूनुः
चकार तस्मिन्हरिवीरमुख्ये ।
अवध्यतां तस्य कपेः समीक्ष्य
कथं निगच्छेदिति निग्रहार्थम् ॥३५॥

हनुमान जी को अवध्य जान कर, इनको पकड़ने का क्या उपाय करना चाहिए, यही मेघनाद एकाग्रचित्त हो सोचने लगा ॥३५॥

ततः पैतामहं वीरः सोऽस्त्रमस्त्रविदां वरः ।
सन्दधे सुमहातेजास्तं हरिप्रवरं प्रति ॥३६॥

तब अस्त्र जानने वालों में श्रेष्ठ मेघनाद ने पितामह ब्रह्मा जी के दिए हुए ब्रह्मास्त्र का प्रयोग हनुमान जी के ऊपर किया ॥३६॥

अवध्योऽयमिति ज्ञात्वा तमस्त्रेणास्त्रतत्त्ववित् ।
निजग्राह महाबाहुर्मारुतात्मजमिन्द्रजित् ॥३७॥

उस अस्त्र के मर्म-वेत्ता मेघनाद ने ब्रह्मास्त्र से भी हनुमान जी को अवध्य जान, हनुमान जी को ब्रह्मास्त्र से बाँध लिया ॥३७॥

तेन बद्धस्ततोऽस्त्रेण राक्षसेन स वानरः ।
अभवन्निर्विचेष्टश्च पपात च महीतले ॥३८॥

तब ब्रह्मास्त्र से इन्द्रजीत द्वारा बाँधे जाने पर, हनुमान जी निश्चेष्ट हो, पृथिवी पर गिर पड़े ॥३८॥

ततोऽथ बुद्ध्वा स तदस्त्रबन्धं
प्रभोः प्रभावाद्विगतात्मवेगः ।
पितामहानुग्रहमात्मनश्च
विचिन्तयामास हरिप्रवीरः ॥३९॥

जब हनुमान जी को यह जान पड़ा कि, वह ब्रह्मास्त्र से बाँधे गए हैं और जब उन्होंने उस अस्त्र का प्रभाव आज़माया; तब उन्होंने समझा कि, यह स्वामी का प्रताप है इसीसे मेरा वेग कम

नष्ट हुआ है। यह देख हनुमान जी ने अपने ऊपर ब्रह्मा जी का अनुग्रह समझा ॥३९॥

ततः स्वायंभुवैर्मन्त्रैर्ब्रह्मास्त्रमभिमन्त्रितम् ।
हनूमांश्चिन्तयामास वरदानं पितामहात् ॥४०॥

वह अस्त्र स्वयंभू ब्रह्मा जी के मंत्र से अभिमंत्रित था, अतः हनुमान जी ने उस वरदान का स्मरण किया, जो उन्हें ब्रह्मा जी से मिला था ॥४०॥

न मेऽस्य बन्धस्य च शक्तिरस्ति
विमोक्षणे लोकगुरोः प्रभावात् ।
इत्येव मत्वा विहितोऽस्त्रबन्धो
मयाऽऽत्मयोनेरनुवर्तितव्यः ॥४१॥

वे मन ही मन कहने लगे कि, लोकगुरु ब्रह्मा जी के प्रभाव से इस अस्त्र से छुटकारा पाने की शक्ति मुझमें नहीं है, अतः मुहूर्त्त भर तक मुझे इसमें बँधा रहना चाहिए। यह विचार हनुमान जी उस अस्त्र के बंधन में बँध गए ॥४१॥

स वीर्यमस्त्रस्य कपिर्विचार्य
पितामहानुग्रहमात्मनश्च ।
विमोक्षशक्तिं परिचिन्तयित्वा
पितामहाज्ञामनुवर्तते स्म ॥४२॥

हनुमान जी उस ब्रह्मास्त्र के बल को तथा ब्रह्मा जी के वरदान को, अपने ऊपर उनके अनुग्रह को तथा उस अस्त्र के बन्धन से छूटने की अपनी शक्ति को भली भाँति सोच विचार कर, ब्रह्मा जी की आज्ञा का पालन करते रहे ॥४२॥

अस्त्रेणापि हि बद्धस्य भयं मम न जायते ।
पितामहमहेन्द्राभ्यां रक्षितस्यानिलेन च ॥४३॥

उन्होंने यह भी विचारा कि, यद्यपि मैं इस ब्रह्मास्त्र से बँध गया हूँ; तथापि मुझको इससे भय नहीं लगता। क्योंकि, ब्रह्मा, इन्द्र, और पवन मेरी रक्षा कर रहे हैं ॥४३॥

ग्रहणे वापि रक्षोभिर्महान्मे गुणदर्शनः ।
राक्षसेन्द्रेण संवादस्तस्माद्गृह्णन्तु मां परे ॥४४॥

इन राक्षसों द्वारा अपने पकड़े जाने से, मुझे तो बड़ा लाभ जान पड़ता है। क्योंकि जब ये लोग मुझे पकड़ कर राक्षसराज के पास ले जायँगे; तब मेरी और रावण को बातचीत हो सकेगी। अतः भले ही ये मुझे पकड़ लें ॥४४॥

स निश्चितार्थः परवीरहन्ता
समीक्ष्यकारी विनिवृत्तचेष्टः ।
परैः प्रसह्याभिगतैर्निगृह्य
ननाद तैस्तैः परिभर्त्स्यमानः ॥४५॥

इस प्रकार अपने लाभ की बात सोच, समझ बूझ कर काम करने वाले एवं शत्रुहन्ता हनुमान जी निश्चेष्ट हो; जहाँ के तहाँ पड़े रहे और जब राक्षस पास आ बरजोरी पकड़ कर डपटने और कटुवचन कहने लगे, तब उनको सहते हुए, वे उच्चस्वर से सिंहनाद करने लगे ॥४५॥

ततस्तं राक्षसा दृष्ट्वा निर्विचेष्टमरिन्दमम् ।
बबन्धुः शणवल्कैश्च द्रुमचीरैश्च संहतै ॥४६॥

शत्रुहन्ता हनुमान जी को निश्चेष्ट पड़ा देख, राक्षस लोग उनको सन के और पेड़ों की छालों के बने रस्सों से कस कर बाँधने लगे ॥ ४६ ॥

स रोचयामास परैश्च बन्धनं
प्रसह्य वीरैरभिनिग्रहं च ।
कौतूहलान्मां यदि राक्षसेन्द्रो
द्रष्टुं व्यवस्येदिति निश्चितार्थः ॥ ४७ ॥

इस प्रकार अपना बाँधा जाना और शत्रुओं की गालियाँ खाना अथवा उनके वश में होना, हनुमान जी ने इस लिए पसंद किया कि, कदाचित् रावण कौतूहलवश मुझे बुलवावे तो उसके साथ बातचीत भी हो ही जायगी ॥ ४७ ॥

स बद्धस्तेन वल्केन विमुक्तोऽस्त्रेण वीर्यवान् ।
अस्त्रबन्धः स चान्यं हि न बन्धमनुवर्तते ॥ ४८ ॥

जब बलवान हनुमान जी को राक्षसों ने रस्सों से बाँधा, तब वे अस्त्रबन्धन से छूट गए। क्योंकि अस्त्रबन्धन, अन्य रस्सी आदि के बन्धन को नहीं मानता ॥ ४८ ॥

अथेन्द्रजित्तु द्रुमचीरबद्धं
विचार्य वीरः कपिसत्तमं तम् ।
विमुक्तमस्त्रेण जगाम चिन्तां
नान्येन बद्धो ह्यनुवर्ततेऽस्त्रम् ॥ ४९ ॥

जब इन्द्रजीत ने देखा कि, कपिश्रेष्ठ को राक्षस रस्सों से बाँध रहे हैं और यह अस्त्रबन्धन से निर्मुक्त हो गए हैं तब उसे बड़ी

चिन्ता हुई और वह सोचने लगा कि, अन्य बन्धन से ब्रह्मास्त्र का बन्धन तो विफल हो गया ॥ ४६ ॥

अहो महत्कर्म कृतं निरर्थकं
न राक्षसैर्मन्त्रगतिर्विमृष्टा ।
पुनश्च नास्त्रे विहतेऽस्त्रमन्यत्
प्रवर्तते संशयिताः स्म सर्वे ॥ ५० ॥

वह पश्चात्ताप करता हुआ कहने लगा—हा ! राक्षसों ने शस्त्र की शक्ति को जाने बिना ही, मेरा बना बनाया यह बड़ा भारी काम मिट्टी में मिला दिया। क्योंकि एक बार ब्रह्मास्त्र के विफल होने से अब पुनः इसका प्रयोग भी तो नहीं किया जा सकता। अतः हम लोग फिर इस वानर के सङ्कट में फँस गए ॥ ५० ॥

अस्त्रेण हनुमान्मुक्तो नात्मानमवबुध्यत ।
कृष्यमाणस्तु रक्षोभिस्तैश्च बन्धैर्निपीडितः ॥ ५१ ॥

हनुमान जी ने ब्रह्मास्त्र के बन्धन से मुक्त हो कर भी कुछ नहीं किया। राक्षस लोग उनको खींच रहे थे और पीड़ा पहुँचा रहे थे ॥ ५१ ॥

हन्यमानस्ततः क्रूरै राक्षसैः काष्ठमुष्टिभिः ।
समीपं राक्षसेन्द्रस्य प्राकृष्यत स वानरः ॥ ५२ ॥

वे राक्षस हनुमान जी को लकड़ी और घूँसों से मार रहे थे और उनको खींच कर रावण के पास लिये जा रहे थे ॥ ५२ ॥

अथेन्द्रजित्तं प्रसमीक्ष्य मुक्तम्
अस्त्रेण बद्धं द्रुमचीरसूत्रैः ।

न्यदर्शयत्तत्र महाबलं तं

हरिप्रवीरं सगणाय राज्ञे ॥ ५३ ॥

मेघनाद ने महाबली कपिश्रेष्ठ हनुमान जी को ब्रह्मास्त्र के बँधन से मुक्त और रस्सों से बँधा देख, उनको ले जा कर मन्त्रियों सहित बैठे हुए रावण के सामने उपस्थित कर दिया ॥ ५३ ॥

तं मत्तमिव मातङ्गं बद्धं कपिवरोत्तमम् ।

राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेदयन् ॥ ५४ ॥

राक्षस लोगों ने मत्त हाथी की तरह बँधे हुए हनुमान जी को राक्षसराज रावण के सामने उपस्थित कर दिया ॥ ५४ ॥

कोऽयं कस्य कुतो वात्र किं कार्यं को व्यपाश्रयः ।

इति राक्षसवीराणां तत्र संजज्ञिरे कथाः ॥ ५५ ॥

यह कौन है? किसका भेजा हुआ है? कहाँ से आया है? क्यों आया है? इसके सहायक कौन कौन हैं? बस इन्हीं सब प्रश्नों के ऊपर वे राक्षस आपस में बातचीत करते थे ॥ ५५ ॥

हन्यतां दह्यतां वापि भक्ष्यतामिति चापरे ।

राक्षसास्तत्र संक्रुद्धाः परस्परमथाब्रुवन् ॥ ५६ ॥

अन्य राक्षस जो वहाँ थे, वे कुपित हो आपस में कह रहे थे कि, इसको अभी मार डालो, इसको जला दो। अथवा आओ हम मार कर इसे खा डालें ॥ ५६ ॥

अतीत्य मार्गं सहसा महात्मा

स तत्र रक्षोधिपपादमूले ।

दर्दर्श राज्ञः १परिचारवृद्धान्
गृहं महारत्नविभूषितं च ॥ ५७ ॥

धैर्यवान् हनुमान जी ने कुछ दूर चल कर सहसा, महामूल्यवान् रत्नों से शोभित राजमन्दिर में, राक्षसराज रावण के चरणों के समीप बूढ़े बूढ़े मन्त्रियों को बैठा हुआ देखा ॥ ५७ ॥

स ददर्श महातेजा रावणः कपिसत्तमम् ।
रक्षोभिर्विकृताकारैः कृष्यमाणमितस्ततः ॥ ५८ ॥

प्रबल प्रतापी रावण ने देखा कि, विकटाकार राक्षस लोग हनुमान जी को पकड़ कर खैंचते हुए चले आ रहे हैं ॥ ५८ ॥

राक्षसाधिपतिं चापि ददर्श कपिसत्तमः ।
तेजोबलसमायुक्तं तपन्तमिव भास्करम् ॥ ५९ ॥

हनुमान जी ने भी देखा कि, राक्षसराज रावण तेज और बल से सम्पन्न सूर्य की तरह तप रहा है ॥ ५९ ॥

स रोषसंवर्तितताम्रदृष्टि-
र्दशाननस्तं कपिमन्ववेक्ष्य ।
अथोपविष्टान्कुलशीलवृद्धान्
समादिशत्तं प्रति मन्त्रिमुख्यान् ॥ ६० ॥

हनुमान को देखते ही रावण की त्योरी चढ़ गई । उसने क्रोध के मारे लाल लाल नेत्र कर, कुलवान एवं शीलसम्पन्न तथा वृद्ध अपने मुख्य मन्त्रियों को वानर का हाल पूँछने के लिए आज्ञा दी ॥ ६० ॥

---

१ परिचारवृद्धान्—अमात्यवृद्धान् । (गो०)

यथाक्रमं तैः स कपिर्विपृष्टः
कार्यार्थमर्थस्य च मूलमादौ ।
निवेदयामास हरीश्वरस्य
दूतः सकाशादहमागतोऽस्मि ॥ ६१ ॥

इति अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥

जब उन मन्त्रियों ने हनुमान जी से पूँछा कि, तुम यहाँ क्यों और किस लिए आए हो ? तब उत्तर में हनुमान जी ने कहा कि, मैं कपिराज सुग्रीव के पास से आया हूँ और मैं उनका दूत हूँ ॥ ६१ ॥

सुन्दरकाण्ड का अड़तालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।



एकोनपञ्चाशः सर्गः



ततः स कर्मणा तस्य विस्मितो भीमविक्रमः ।
हनुमान्रोषताम्राक्षो रक्षोधिपमवैक्षत ॥ १ ॥

भयङ्कर विक्रम सम्पन्न हनुमान जी, मेघनाद के उस बन्धन रूप कर्म से विस्मित हो, क्रोध से लाल नेत्र कर, रावण को देखने लगे ॥ १ ॥

भ्राजमानं महार्हेण काञ्चनेन विराजता ।
मुक्ताजालवृतेनाथ मुकुटेन महाद्युतिम् ॥ २ ॥

उस समय महातेजस्वी रावण बड़ा मूल्यवान् और मोतियों से जड़ा हुआ चमचमाता मुकुट धारण किए हुए था ॥ २ ॥

वज्रसंयोगसंयुक्तैर्महार्हमणिविग्रहैः ।
हैमैराभरणैश्चित्रैर्मनसेव प्रकल्पितैः ॥ ३ ॥

उस समय रावण शरीर को जिन अद्भुत भूषणों से भूषित किए हुए था : वे सब सुवर्ण के थे और उनमें हीरे तथा बड़ी मूल्यवान मणियाँ जड़ी हुई थीं। वे ऐसे सुन्दर थे, मानों मन लगा कर बनाए गए थे ॥ ३ ॥

महार्हक्षौमसंवीतं रक्तचन्दनरूषितम् ।
स्वनुलिप्तं विचित्राभिर्विविधाभिश्च [1]भक्तिभिः ॥ ४ ॥

रावण मूल्यवान् रेशमी वस्त्र पहिने हुए था तथा उसके शरीर में लाल चन्दन लगा हुआ था। वह विविध प्रकार के सुगन्धि युक्त कस्तूरी केसरादि शरीर में लगाए हुए था ॥ ४ ॥

विपुलैर्दर्शनीयैश्च रक्ताक्षैर्भीमदर्शनैः ।
दीप्ततीक्ष्णमहादंष्ट्रैः प्रलम्बदशनच्छदैः ॥ ५ ॥

उस समय वह अत्यन्त दर्शनीय हो रहा था। उसके भय उपजाने वाले लाल लाल नेत्र थे। उसके पैने और बड़े बड़े दाँत साफ होने के कारण चमचमा रहे थे। उसके ओठ लंबे थे ॥५॥

शिरोभिर्दशभिर्वीरं भ्राजमानं महौजसम् ।
नानाव्यालसमाकीर्णैः शिखरैरिव मन्दरम् ॥ ६ ॥

---

१ भक्तिभिः—सेवनीयकस्तूर्यादिभिः। (शि०)

परम तेजस्वी वीर रावण, अनेक सर्पों से युक्त मन्दराचल के शिखर की तरह, अपने दस सिरों से शोभायमान हो रहा था ॥ ६ ॥

नीलाञ्जनचयप्रख्यं हारेणोरसि राजता ।
पूर्णचन्द्राभवक्त्रेण सबलाकमिवाम्बुदम् ॥ ७ ॥

उसके शरीर का रङ्ग नीले अंजन की तरह था और छाती के ऊपर हार झूल रहा था । उसका मुखमण्डल पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान था । उस समय वह, प्रातःकालीन सूर्य को ढके हुए मेघ की तरह जान पड़ता था ॥ ७ ॥

बाहुभिर्बद्धकेयूरैश्चन्दनोत्तमरूषितैः ।
भ्राजमानाङ्गदैः पीनैः पञ्चशीर्षैरिवोरगैः ॥ ८ ॥

उसकी मोटी मोटी भुजाएं, जिन पर चन्दन लगा हुआ था और जो केयूरों तथा बाजूबंदों से भूषित थीं, पाँच मुखवाले भयङ्कर सर्पों की तरह जान पड़ती थीं ॥ ८ ॥

महति स्फाटिके चित्रे रत्नसंयोगसंस्कृते ।
उत्तमास्तरणास्तीर्णे सूपविष्टं वरासने ॥ ९ ॥

रावण स्फटिक पत्थर की बनी एक ऐसी बड़ी और उत्तम बैठकी पर बैठा हुआ था, जिसमें जगह जगह रत्न जड़े हुए थे और जिसके ऊपर उत्तम बिछौना बिछा हुआ था ॥ ९ ॥

अलंकृताभिरत्यर्थं प्रमदाभिः समन्ततः ।
वालव्यजनहस्ताभिरारात्समुपसेवितम् ॥ १० ॥

अनेक आभूषणों से सुसज्जित स्त्रियाँ चमर और बिजन हाथों में लिए उसके चारों ओर खड़ी हुई; उसकी सेवा कर रही थीं ॥ १० ॥

दुर्धरेण प्रहस्तेन महापार्श्वेन रक्षसा।

मन्त्रिभिर्मन्त्रतत्त्वज्ञैर्निकुम्भेन च मन्त्रिणा ॥ ११ ॥

वहाँ पर परामर्श देने में निपुण चार मन्त्री थे, जिनके नाम दुर्धर, प्रहस्त, महापार्श्व और निकुंभ थे ॥ ११ ॥

उपोपविष्टं रक्षोभिश्चतुर्भिर्बलदर्पितैः।

कृत्स्नः परिवृतो लोकश्चतुर्भिरिव सागरैः ॥ १२ ॥

अन्य बड़े बलवान राक्षस भी उसके समीप बैठे थे। मंत्रियों के बीच बैठा हुआ रावण, चार समुद्रों से घिरी समूची पृथिवी की तरह जान पड़ता था ॥ १२ ॥

मन्त्रिभिर्मन्त्रतत्त्वज्ञैरन्यैश्च शुभबुद्धिभिः।

अन्वास्यमानं सचिवैः सुरैरिव सुरेश्वरम् ॥ १३ ॥

इस प्रकार मन्त्रकुशल मन्त्रियों तथा अन्य हितैषियों से सेवित रावण देवताओं से सेवित इन्द्र की तरह जान पड़ता था ॥ १३ ॥

अपश्यद्राक्षसपतिं हनुमानतितेजसम्।

विष्ठितं मेरुशिखरे सतोयमिव तोयदम् ॥ १४ ॥

हनुमान जी ने देखा कि, महातेजस्वी रावण की उस समय ऐसी शोभा हो रही है, जैसी मेरुशिखर पर, जल से पूर्ण मेघ की शोभा होती है ॥ १४ ॥

स तैः संपीड्यमानोऽपि रक्षोभिर्भीमविक्रमैः।

विस्मयं परमं गत्वा रक्षोधिपमवैक्षत ॥ १५ ॥

यद्यपि भयङ्कर विक्रम सम्पन्न राक्षस हनुमान जी को उत्पीड़ित कर रहे थे, तथापि हनुमान जी राक्षसराज रावण को देख बड़े विस्मित हुए ॥ १५ ॥

भ्राजमानं ततो दृष्ट्वा हनुमान्राक्षसेश्वरम् ।
मनसा चिन्तयामास तेजसा तस्य मोहितः ॥ १६ ॥

राक्षसराज रावण को इस प्रकार सुशोभित देख, हनुमान जी उसके प्रताप और प्रभाव से मोहित हो, मन ही मन विचार कर कहने लगे —॥ १६ ॥

अहो रूपमहो धैर्यमहो सत्त्वमहो द्युतिः ।
अहो राक्षसराजस्य सर्वलक्षणयुक्तता ॥ १७ ॥

वाह इस राक्षसराज का कैसा सुन्दर रूप है, कैसा धैर्य है ? कैसा पराक्रम है और कैसी कान्ति है ? वाह ! यह समस्त शुभ लक्षणों से भी सम्पन्न है ॥ १७ ॥

यद्यधर्मो न बलवान्स्यादयं राक्षसेश्वरः ।
स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता ॥ १८ ॥

हा ! यदि यह कहीं ऐसा पापाचारी न होता, तो यह राक्षसराज इन्द्र सहित देवताओं का भी रक्षक हो सकता था ॥ १८ ॥

अस्य क्रूरैर्नृशंसैश्च कर्मभिर्लोककुत्सितैः ।
तेन बिभ्यति खल्वस्माल्लोकाः सामरदानवाः ॥ १९ ॥

किन्तु इसके दुष्ट, नृशंस और लोकगर्हित कर्मों से निश्चय ही दैत्य, दानव और देवगण सब भयभीत रहा करते हैं ॥ १९ ॥

अयं ह्युत्सहते क्रुद्धः कर्तुमेकार्णवं जगत् ।
इति चिन्तां बहुविधामकरोन्मतिमान्कपिः ।
दृष्ट्वा राक्षसराजस्य प्रभावममितौजसः ॥ २० ॥

इति एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥

क्रुद्ध होने पर यह समस्त संसार को एक समुद्रमय कर सकता है, अर्थात् सारी पृथिवी को जल के भीतर डुबो कर नष्ट कर सकता है। बुद्धिमान हनुमान जी अत्यन्त पराक्रमी रावण का प्रताप देख, इस प्रकार की विविध चिन्ताएँ करने लगे ॥२०॥

सुन्दरकाण्ड का उनचासवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

पञ्चाशः सर्गः

—❀—

तमुद्वीक्ष्य महाबाहुः पिङ्गाक्षं पुरतः स्थितम्।
रोषेण महताविष्टो रावणो लोकरावणः ॥ १ ॥

लंबी भुजाओं वाला तथा लोकों को रुलाने वाला रावण पीले नेत्रों वाले हनुमान जी को अपने सामने खड़ा देख, अत्यन्त कुपित हुआ ॥ १ ॥

[1]शङ्काहतात्मा दध्यौ स कपीन्द्रं तेजसा वृतम्।
किमेष भगवान्नन्दी भवेत्साक्षादिहागतः ॥ २ ॥

वह हनुमान जी का तेजःपुञ्ज शरीर देख मन ही मन शङ्कित हो सोचने लगा कि, कहीं ये साक्षात् भगवान् नन्दी तो यहाँ नहीं आ गए ॥ २ ॥

येन शप्तोऽस्मि कैलासे मया सञ्चालिते पुरा।
सोऽयं वानरमूर्तिः स्यात्किं स्विद्बाणोऽपि वासुरः ॥३॥

---

१ शङ्काहतात्मा—शङ्काव्याप्तचित्तः। (शि०)

जिन्होंने पहिले मुझे कैलास पर, उसे हिलाने के लिए शाप दिया था ; जान पड़ता है वे ही वानर का रूप धर कर यहाँ आए हैं ; अथवा यह बाणासुर इस रूप में आया है ॥ ३ ॥

स राजा रोषताम्राक्षः प्रहस्तं मन्त्रिसत्तमम् ।

कालयुक्तमुवाचेदं वचो विपुलमर्थवत् ॥ ४ ॥

इस प्रकार सोचता विचारता राक्षसराज रावण क्रोध के मारे लाल आँखें कर समयोपयुक्त और विपुल अर्थयुक्त वचन अपने प्रधान मन्त्री प्रहस्त से बोला ॥ ४ ॥

दुरात्मा पृच्छ्यतामेष कुतः किं वास्य कारणम् ।

वनभङ्गे च कोऽस्यार्थो राक्षसानां च तर्जने ॥ ५ ॥

इस दुष्ट से पूँछो कि, यह कहाँ से आया है? क्यों आया है? अशोक वन उजाड़ने से इसका क्या प्रयोजन है? और राक्षसों के तर्जन से इसे क्या लाभ हुआ? ॥ ५ ॥

मत्पुरीमप्रधृष्यां वाऽऽगमने किं प्रयोजनम् ।

आयोधने वा किं कार्यं पृच्छ्यतामेष दुर्मतिः ॥ ६ ॥

इस दुष्ट से पूँछो कि, मेरी इस अगम्यपुरी में किस लिए आया है और यह हमारे नौकरों से क्यों लड़ा? ॥ ६ ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्तो वाक्यमब्रवीत् ।

समाश्वसिहि भद्रं ते न भीः कार्या त्वया कपे ॥ ७ ॥

रावण के वचन सुन, प्रहस्त ने हनुमान जी से कहा—हे कपे! तुम सावधान हो जाओ और डरो मत ॥ ७ ॥

यदि तावत्त्वमिन्द्रेण प्रेषितो रावणालयम् ।

तत्त्वमाख्याहि मा भूत्ते भयं वानर मोक्ष्यसे ॥ ८ ॥

अगर इन्द्र ने तुमको लङ्कापुरी में भेजा हो, तो ठीक ठीक बतला दो, तुम्हें डरने की आवश्यकता नहीं—क्योंकि हे वानर ! तुम छुड़वा दिए जाओगे ॥ ८ ॥

यदि वैश्रवणस्य त्वं यमस्य वरुणस्य वा

चारुरूपमिदं कृत्वा प्रविष्टो नः पुरीमिमाम् ॥ ९ ॥

अथवा यदि तुम कुबेर के, यम के या वरुण के दूत हो और यह सुन्दर रूप धर कर, तुम हमारी इस पुरी में आए हो, तो भी ठीक ठीक बतला दो ॥ ९ ॥

विष्णुना प्रेषितो वापि दूतो विजयकाङ्क्षिणा ।

न हि ते वानरं तेजो रूपमात्रं तु वानरम् ॥ १० ॥

अथवा यदि विजयाकांक्षी विष्णु के दूत बन कर तुम यहाँ आए हो, तो वैसा कह दो । क्योंकि, तुम केवल रूप से तो वानर हो ; किन्तु तुम्हारा विक्रम वानरों जैसा नहीं है ॥ १० ॥

तत्त्वतः कथयस्वाद्य ततो वानर मोक्ष्यसे ।

अनृतं वदतश्चापि दुर्लभं तव जीवितम् ॥ ११ ॥

हे वानर ! यदि तुम सब हाल ठीक ठीक बतला दोगे, तो तुम अभी छुड़वा दिए जाओगे और यदि झूठ बोले तो जान से मरवा दिए जाओगे ॥ ११ ॥

अथवा यन्निमित्तस्ते प्रवेशो रावणालये ।
एवमुक्तो हरिवरस्तदा रक्षोगणेश्वरम् ॥ १२ ॥

तुम ठीक ठीक रावण की इस पुरी में आने का कारण बतला दो। जब प्रहस्त ने इस प्रकार कपिश्रेष्ठ से कहा ॥ १२ ॥

अब्रवीन्नास्मि शक्रस्य यमस्य वरुणस्य वा ।
धनदेन न मे सख्यं विष्णुना नास्मि चोदितः ॥ १३ ॥

तब हनुमान जी ने कहा—मैं न तो इन्द्र का और न यम का दूत हूँ। न कुबेर के साथ मेरा मेल है और न मैं विष्णु की प्रेरणा से यहाँ आया हूँ ॥ १३ ॥

जातिरेव मम त्वेषा वानरोऽहमिहागतः ।
दर्शने राक्षसेन्द्रस्य दुर्लभे तदिदं मया ॥ १४ ॥
वनं राक्षसराजस्य दर्शनार्थे विनाशितम् ।
ततस्ते राक्षसाः प्राप्ता बलिनो युद्धकाङ्क्षिणः ॥ १५ ॥

मैं सचमुच वानर हूँ। साधारणतः राक्षसराज से भेंट करना कठिन था। सो मैंने यह अशोकवन, राक्षसराज से भेंट करने के लिए ही उजाड़ा है। बड़े बड़े बली राक्षस जो लड़ने के लिए मेरे सामने आए ॥ १४ ॥ १५ ॥

रक्षणार्थं तु देहस्य प्रतियुद्धा मया रणे ।
अस्त्रपाशैर्न शक्योऽहं बद्धुं देवासुरैरपि ॥ १६ ॥

मैं उनसे अपने शरीरकी रक्षाके लिए लड़ा। मुझे क्या देवता और क्या असुर, कोई भी अस्त्रपाश से नहीं बांध सकता ॥ १६ ॥

पितामहादेव वरो ममाप्येषोऽभ्युपागतः ।
राजानं द्रष्टुकामेन मयास्त्रमनुवर्तितम् ॥ १७ ॥

स्वयं पितामह ब्रह्मा जी से ही मुझको यह वर मिला है। सो मैं अपनी इच्छा ही से, राक्षसराज से भेंटने के लिए, ब्रह्मास्त्र से बँध गया हूँ ॥ १७ ॥

विमुक्तो ह्यहमस्त्रेण राक्षसैस्त्वभिपीडितः ।
केनचिद्राजकार्येण संप्राप्तोऽस्मि तवान्तिकम् ॥ १८ ॥

फिर अस्त्रबन्धन से छूट कर भी मैंने राक्षसों की मार इसलिए सही कि, श्रीरामचन्द्र जी के किसी कार्य के लिए मुझे तुम्हारे पास आना था ॥ १८ ॥

दूतोऽहमिति विज्ञेयो राघवस्यामितौजसः ।
श्रूयतां चापि वचनं मम पथ्यमिदं प्रभो ॥ १९ ॥

इति पञ्चाशः सर्गः ॥

हे प्रभो ! तुम मुझे अमित पराक्रमी श्रीरामचन्द्र जी का दूत जानो और मैं जो कुछ तुम्हारी भलाई के लिए कहता हूँ। उसे सुनो ॥ १९ ॥

सुन्दरकाण्ड का पचासवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—:o:—

एकपञ्चाशः सर्गः

—:o:—

तं समीक्ष्य महासत्त्वं सत्त्ववान्हरिसत्तमः ।
वाक्यमर्थवदव्यग्रस्तमुवाच दशाननम् ॥ १ ॥

बलवान् हनुमान जी, महाबली दशानन को देख, विना घबड़ाए उससे अपने मतलब की बातें कहने लगे ॥ १ ॥

अहं सुग्रीवसंदेशादिह प्राप्तस्तवालयम् ।

राक्षसेन्द्र हरीशस्त्वां भ्राता कुशलमब्रवीत् ॥ २ ॥

मैं सुग्रीव की आज्ञा से यहाँ तुम्हारी पुरी में आया हूँ। हे राक्षसराज! वानरराज सुग्रीव ने भाईचारे के विचार से तुमको खुशीराज़ी कहा है ॥ २ ॥

भ्रातुः शृणु समादेशं सुग्रीवस्य महात्मनः ।

धर्मार्थोपहितं वाक्यमिह चामुत्र च क्षमम् ॥ ३ ॥

भाई महात्मा सुग्रीव का सन्देसा सुनो। उनका सन्देसा धर्म और अर्थ से युक्त होने के कारण इसलोक और परलोक दोनों के लिए हितकारी है ॥ ३ ॥

राजा दशरथो नाम रथकुञ्जरवाजिमान् ।

पितेव बन्धुर्लोकस्य सुरेश्वरसमद्युतिः ॥ ४ ॥

अनेक रथों, हाथियों और घोड़ों के अधिपति और इन्द्र की तरह द्युतिमान् महाराज दशरथ अपनी प्रजा के वैसे ही हितैषी थे जैसे पिता अपने पुत्रों का हितैषी होता है ॥ ४ ॥

ज्येष्ठस्तस्य महाबाहुः पुत्रः प्रियकरः प्रभुः ।

पितुर्निदेशान्निष्क्रान्तः प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥ ५ ॥

उनके प्यारे ज्येष्ठ पुत्र महाबाहु श्रीरामचन्द्र, पिता की आज्ञा से घर से निकल, दण्डक बन में आए ॥ ५ ॥

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया चापि भार्यया ।

रामो नाम महातेजा धर्म्यं पन्थानमाश्रितः ॥ ६ ॥

उनके साथ उनके भाई लक्ष्मण और उनकी स्त्री सीता भी बन में आई। राजा श्रीरामचन्द्र जी महातेजस्वी और धर्मपथारूढ़ हैं ॥ ६ ॥

तस्य भार्या वने नष्टा सीता पतिमनुव्रता ।

वैदेहस्य सुता राज्ञो जनकस्य महात्मनः ॥ ७ ॥

उनकी पतिव्रता भार्या सीता को, जो महात्मा राजा विदेह जनक की बेटी है, वन में किसी ने हर लिया ॥ ७ ॥

स मार्गमाणस्तां देवीं राजपुत्रः सहानुजः ।

ऋष्यमूकमनुप्राप्तः सुग्रीवेण च सङ्गतः ॥ ८ ॥

अपने छोटे भाई लक्ष्मण सहित वे राजकुमार सीता देवी को ढूँढ़ते हुए, ऋष्यमूक के समीप पहुँचे और वहाँ सुग्रीव से उनका समागम हुआ ॥ ८ ॥

तस्य तेन प्रतिज्ञातं सीतायाः परिमार्गणम् ।

सुग्रीवस्यापि रामेण हरिराज्यं निवेदितम् ॥ ९ ॥

सुग्रीव ने सीता का पता लगाने की श्रीरामचन्द्र जी से प्रतिज्ञा की और श्रीरामचन्द्र जी ने भी सुग्रीव को राज्य दिलाने का वचन दिया ॥ ९ ॥

ततस्तेन मृधे हत्वा राजपुत्रेण वालिनम् ।

सुग्रीवः स्थापितो राज्ये हर्यृक्षाणां गणेश्वरः ॥ १० ॥

तदनन्तर राजकुमार ने युद्ध में वालि का वध कर, सुग्रीव को राजसिंहासन पर बिठा, उन्हें वानरों का राजा बना दिया ॥ १० ॥

त्वया विज्ञातपूर्वश्च वाली वानरपुङ्गवः ।
रामेण निहतः संख्ये शरेणैकेन वानरः ॥ ११ ॥

तुम तो वानरश्रेष्ठ वालि के बलपराक्रम को भली भाँति पहिले से जानते ही हो। उस वालि को श्रीराम ने युद्ध में एक ही बाण से मार डाला ॥ ११ ॥

स सीतामार्गणे व्यग्रः सुग्रीवः सत्यसङ्गरः ।
हरीन्संप्रेषयामास दिशः सर्वा हरीश्वरः ॥ १२ ॥

तां हरीणां सहस्राणि शतानि नियुतानि च ।
दिक्षु सर्वासु मार्गन्ते ह्यधश्चोपरि चाम्बरे ॥ १३ ॥

सत्यप्रतिज्ञ कपिराज सुग्रीव ने सीता का पता लगाने के लिए व्यग्र हो, समस्त दिशाओं में वानरों को भेजा। लाखों करोड़ों वानर सब दिशाओं ही में नहीं बल्कि आकाश पाताल में भी सीता का पता लगाने को घूम रहे हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

वैनतेयसमाः केचित्केचित्तत्रानिलोपमाः ।
असङ्गगतयः शीघ्रा हरिवीरा महाबलाः ॥ १४ ॥

जो वानर सीता का पता लगाने को भेजे गए हैं, उनमें बहुत से गरुड़ के समान और बहुत से पवन के समान हैं। वे महाबली वानर बेरोकटोक शीघ्रगामी हैं ॥ १४ ॥

अहं तु हनुमान्नाम मारुतस्यौरसः सुतः ।
सीतायास्तु कृते तूर्णं शतयोजनमायतम् ॥ १५ ॥

समुद्रं लङ्घयित्वैव तां दिदृक्षुरिहागतः ।
भ्रमता च मया दृष्टा गृहे ते जनकात्मजा ॥ १६ ॥

मैं पवनदेव का औरस पुत्र हूँ और मेरा नाम हनुमान है। मैं सीता की खोज में तुरन्त सौ योजन समुद्र को लाँघ उसको (सीता को) देखने के लिये यहाँ आया हूँ। लङ्का में घूमते फिरते, मुझे तुम्हारे घर में सीता देख पड़ी है ॥ १५ ॥ १६ ॥

तद्भवान्दृष्टधर्मार्थस्तपःकृतपरिग्रहः ।
परदारान्महाप्राज्ञ नोपरोद्धुं त्वमर्हसि ॥ १७ ॥

हे महाप्राज्ञ ! तुम धर्म और अर्थ को भली भाँति जानते हो, और तपःप्रभाव से तुमने यह ऐश्वर्य सम्पादन किया है। अतः तुमको पराई स्त्री को अपने घर में बंद कर रखना उचित नहीं ॥ १७ ॥

न हि धर्मविरुद्धेषु बह्वपायेषु कर्मसु ।
मूलघातिषु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः ॥ १८ ॥

आप जैसे बुद्धिमान को ऐसे धर्मविरुद्ध अनर्थकारी तथा जड़ से नाश करने वाले कामों के करने में, आसक्त होना उचित नहीं ॥ १८ ॥

कश्च लक्ष्मणमुक्तानां रामकोपानुवर्तिनाम् ।
शराणामग्रतः स्थातुं शक्तो देवासुरेष्वपि ॥ १९ ॥

देखिए, देवताओं अथवा असुरों में ऐसा कौन है जो लक्ष्मण के छोड़े हुए और क्रुद्ध हुए श्रीरामचन्द्र जी के फेंके हुए, बाणों के सामने टिक सके ॥ १९ ॥

न चापि त्रिषु लोकेषु राजन्विद्येत कश्चन ।
राघवस्य व्यलीकं यः कृत्वा सुखमवाप्नुयात् ॥ २० ॥

हे राजन् ! तीनों लोकों में ऐसा कोई पुरुष नहीं है, जो श्रीरामचन्द्र के साथ बिगाड़ कर, सुखो रह सके ॥ २० ॥

तत्त्रिकालहितं वाक्यं धर्म्यमर्थानुबन्धि च ।
मन्यस्व नरदेवाय जानकी प्रतिदीयताम् ॥ २१ ॥

अतः हे रावण ! मैंने जो कुछ कहा है वह भूत, भविष्यद् और वर्तमान तीनों कालों के लिए हितकर, धर्मयुक्त और शास्त्रसम्मत है, अतः मेरा कहना मान कर, नरेन्द्र श्रीराम जी को जानकी लौटा दो ॥ २१ ॥

दृष्टा हीयं मया देवी लब्धं यदिह दुर्लभम् ।
उत्तरं कर्म यच्छेषं निमित्तं तत्र राघवः ॥ २२ ॥

और मैंने तो सीता को देख ही लिया । मुझे तो दुर्लभ वस्तु का लाभ हो चुका । अब रहा इसके आगे का कर्त्तव्य अर्थात् जानकी जी का ले जाना सो श्रीरामचन्द्र जी जानें ॥ २२ ॥

लक्षितेयं मया सीता तथा शोकपरायणा ।
गृह्य यां नाभिजानासि पञ्चास्यामिव पन्नगीम् ॥ २३ ॥

जिस सीता को तुमने अपने घर में बंद कर रखा है, उसे मैंने यहाँ बहुत दुःखी पाया है । सो यह मत समझना कि यह तुम्हारे वश में हो गई ! किन्तु इसे तुम पांच फनों वाली साँपिन की तरह अपना काल जानना ॥ २३ ॥

नेयं जरयितुं शक्या सासुरैरमरैरपि ।
विषसंसृष्टमत्यर्थं भुक्तमन्नमिवौजसा । ॥ २४

क्या दैत्य और क्या देवता, कोई भी ऐसा नहीं जो इसे पचा जाय, जैसे विष मिले अन्न को पचाने की शक्ति किसी में नहीं होती ॥ २४ ॥

तपः [1]सन्तापलब्धस्ते योऽयं धर्मपरिग्रहः ।
न स नाशयितुं न्याय्य आत्मप्राणपरिग्रहः ॥ २५ ॥

तुमने कठोर तप कर जिस धर्मफल स्वरूप ऐश्वर्य और दीर्घ कालीन जीवन को पाया है, उसे धर्मविरुद्ध कार्य कर नष्ट करना उचित नहीं ॥ २५ ॥

अवाध्यतां तपोभिर्यां भवान्समनुपश्यति ।
आत्मनः सासुरैर्देवैर्हेतुस्तत्राप्ययं महान् ॥ २६ ॥

आप समझ रहे हैं कि, मैं तपःप्रभाव से प्राप्त वरदान द्वारा देवताओं और दैत्यों से अवध्य हूँ—सो इसमें भी एक बड़ी बात ध्यान देने की है ॥ २६ ॥

सुग्रीवो न हि देवोऽयं नासुरो न च राक्षसः ।
न दानवो न गन्धर्वो न यक्षो न च पन्नगः ॥ २७ ॥

वह यह कि, सुग्रीव न तो देवता हैं, न राक्षस हैं, न दानव हैं, न गन्धर्व हैं, न यक्ष हैं और न पन्नग ही हैं ॥ २७ ॥

तस्मात्प्राणपरित्राणं कथं राजन्करिष्यसि ।
न तु धर्मोपसंहारमधर्मफलसंहितम् ॥ २८ ॥
तदेव फलमन्वेति धर्मश्चाधर्मनाशनः ।
प्राप्तं धर्मफलं तावद्भवता नात्र संशयः ॥ २९ ॥

---

१ सन्तापः—तपश्चर्या ।

सो हे राजन्! सुग्रीव से आप अपने प्राणों की रक्षा क्योंकर कर सकेंगे? यह ठीक है कि, धर्म द्वारा अधर्म का नाश होता है, किन्तु जिसके अधर्म के विपाक का समय उपस्थित होने वाला है, उसे धर्म का फल कभी प्राप्त नहीं होता अर्थात् तुम्हारे धर्म से तुम्हारा अधर्म बलवान है। हे राजन्! धर्म का फल तो आप निस्सन्देह पा ही चुके हैं॥ २८॥ २९॥

फलमस्याप्यधर्मस्य क्षिप्रमेव प्रपत्स्यसे।
जनस्थानवधं बुद्ध्वा बुद्ध्वा बालिवधं तथा॥ ३०॥

रामसुग्रीवसख्यं च बुध्यस्व हितमात्मनः।
कामं खल्वहमप्येकः सवाजिरथकुञ्जराम्॥ ३१॥

सीताहरणरूपी इस अधर्म का फल भी तुमको शीघ्र मिलेगा। अब तुम जनस्थानवासी चौदह हज़ार राक्षसों के तथा वालि के वध पर विचार करो, तथा श्रीराम और सुग्रीव की मैत्री का स्मरण कर, अपना हित जिसमें होता हो सो, विचारो। यदि चाहूँ तो निश्चय मैं अकेला ही, घोड़ों और हाथियों सहित॥ ३०॥ ३१॥

लङ्कां नाशयितुं शक्तस्तस्यैष तु न निश्चयः।
रामेण हि प्रतिज्ञातं हर्यृक्षगणसन्निधौ॥ ३२॥

तुम्हारी लङ्का को नष्ट कर सकता हूँ; पर श्रीरामचन्द्र जी ने मुझे ऐसी आज्ञा नहीं दी—क्योंकि उन्होंने वानरों और रीछों के सामने प्रतिज्ञा की है कि,॥ ३२॥

उत्सादनममित्राणां सीता यैस्तु प्रधर्षिता।
अपकुर्वन्हि रामस्य साक्षादपि पुरन्दरः॥ ३३॥

जिसने सीता को हरा है उसको मैं उच्छिन्न करूँगा अर्थात् नाश करूँगा। फिर यदि इन्द्र ही क्यों न हों और श्रीरामचन्द्र जी का अपकार करें तो॥ ३३॥

न सुखं प्राप्नुयादन्यः किं पुनस्त्वद्विधो जनः।

यां सीतेत्यभिजानासि येयं तिष्ठति ते वशे॥ ३४॥

वे भी कभी सुखी नहीं रह सकते। फिर तुम जैसे लोगों की तो बात ही क्या है। हे रावण! जिसे तुम सीता समझ रहे हो और जो इस समय तुम्हारे पंजे में फँसी हुई है॥ ३४॥

कालरात्रीति तां विद्धि सर्वलङ्काविनाशिनीम्।

तदलं कालपाशेन सीताविग्रहरूपिणा॥ ३५॥

उसे तुम सारी लङ्का का नाश करने वाली कालरात्रि समझो। बस, अब तुम सीता रूपी काल की फाँसी को॥ ३५॥

स्वयं स्कन्धावसक्तेन क्षेममात्मनि चिन्त्यताम्।

सीतायास्तेजसा दग्धां रामकोपप्रपीडिताम्॥ ३६॥

अपने हाथ से अपने गले में डालने के समय, तुम अपना क्षेम कुशल तो विचार लो। सीता के तेज से दग्ध और श्रीरामचन्द्र जी के कोप से॥ ३६॥

दह्यमानामिमां पश्य पुरीं साट्टप्रतोलिकाम्।

स्वानि मित्राणि मन्त्रींश्च ज्ञातीन्भ्रातन्सुतान्हितान॥ ३७॥

पीड़ित हो, तुम इस लंका को अटारियों सहित भस्म हुई समझो। अतः तुम अपने मित्रों, मंत्रियों, जातिबिरादरी, भाइयों, पुत्रों और हितैषियों का॥ ३७॥

भोगान्दारांश्च लङ्कां च मा विनाशमुपानय ।
सत्यं राक्षसराजेन्द्र शृणुष्व वचनं मम ॥ ३८ ॥
रामदासस्य दूतस्य वानरस्य विशेषतः ।
सर्वांल्लोकान्सुसंहृत्य सभूतान्सचराचरान् ॥ ३९ ॥

तथा ऐश्वर्य के भोगों का, अपनी स्त्रियों का तथा लङ्का का नाश मत करवाओ। हे राक्षसेन्द्र ! मैं तो श्रीरामचन्द्र जी का दूत और विशेष कर वानर ही हूँ; किन्तु मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह सत्य है, अतः तुम उस पर कान दो। चर अचर समस्त प्राणियों सहित समस्त लोकों का संहार कर ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः ।
देवासुरनरेन्द्रेषु यक्षरक्षोगणेषु च ॥ ४० ॥
विद्याधरेषु सर्वेषु गन्धर्वेषूरगेषु च ।
सिद्धेषु किन्नरेन्द्रेषु पतत्रिषु च सर्वतः ॥ ४१ ॥
सर्वभूतेषु सर्वत्र सर्वकालेषु नास्ति सः
यो रामं प्रतियुध्येत विष्णुतुल्यपराक्रमम् ॥ ४२ ॥

महायशस्वी श्रीरामचन्द्र पुनः उनकी सृष्टि करने की शक्ति रखते हैं। फिर देव, असुर, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, विद्याधर, गन्धर्व उरग, सिद्ध, किन्नर, पक्षी—इन सब प्राणियों में सर्वत्र और सदैव ऐसा कोई नहीं है, जो विष्णु के समान पराक्रमी श्रीरामचन्द्र जी का युद्ध में सामना कर सके ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

सर्वलोकेश्वरस्यैवं कृत्वा विप्रियमीदृशम् ।
रामस्य राजसिंहस्य दुर्लभं तव जीवितम् ॥ ४३ ॥

अतः सर्वलोकेश्वर एवं राजसिंह श्रीरामचन्द्र जी से इस प्रकार बिगाड़ कर, तुम जीवित नहीं रह सकते ॥ ४३ ॥

देवाश्च दैत्याश्च निशाचरेन्द्र
गन्धर्वविद्याधरनागयक्षाः ।
रामस्य लोकत्रयनायकस्य
स्थातुं न शक्ताः समरेषु सर्वे ॥ ४४ ॥

हे निशाचरेन्द्र ! देव, दैत्य, गन्धर्व, विद्याधर, नाग और यक्ष --इनमें से कोई भी युद्ध में त्रिलोकीनाथ श्रीरामचन्द्र जी के सामने खड़े रहने को समर्थ नहीं ॥ ४४ ॥

ब्रह्मा स्वयंभूश्चतुराननो वा
रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा ।
इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा
त्रातुं न शक्ता युधि रामवध्यम् ॥ ४५ ॥

स्वयंभू चतुरानन ब्रह्मा, अथवा त्रिपुरासुर को मारने वाले त्रिलोचन रुद्र, अथवा देवताओं के राजा महेन्द्र इन्द्र ही क्यों न हो; श्रीरामचन्द्र जी के सामने वे युद्ध में नहीं ठहर सकते ॥४५॥

स सौष्ठवोपेतमदीनवादिनः
कपेर्निशम्याप्रतिमोऽप्रियं वचः ।
दशाननः कोपविवृत्तलोचनः
समादिशत्तस्य वधं महाकपेः ॥ ४६ ॥

इति एकपञ्चाशः सर्गः ॥

जब हनुमान जी ने, ऐसे सुन्दर, चापलूसी से रहित एवं अनुपम वचन कहे तब रावण को वे बहुत बुरे लगे। मारे क्रोध के उसके नेत्र लाल हो गए और उसने हनुमान के वध की आज्ञा दी ॥ ४६ ॥

सुन्दरकाण्ड का एक्यावनवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—:o:—

द्विपञ्चाशः सर्गः

—:o:—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वानरस्य महात्मनः ।
आज्ञापयत्तस्य वधं रावणः क्रोधमूर्छितः ॥ १ ॥

महावीर हनुमान जी के, उन वचनों को सुन, रावण ने क्रुद्ध हो, उनके मारे जाने की आज्ञा दी ॥ १ ॥

वधे तस्य समाज्ञप्ते रावणेन दुरात्मना ।
[1]निवेदितवतो दौत्यं [2]नानुमेने विभीषणः ॥ २ ॥

जब दुष्ट रावण ने हनुमान जी को मार डालने की आज्ञा सुना दी तब दूतधर्मानुसार वचन कहने वाले हनुमान के मारे जाने के सम्बन्ध में, रावण की दी हुई आज्ञा, विभीषण को मान्य नहीं हुई ॥ २ ॥

तं च रक्षोधिपं क्रुद्धं [3]तच्च कार्यमुपस्थितम् ।
विदित्वा चिन्तयामास कार्यं [4]कार्यविधौ स्थितः ॥३॥

---

१ निवेदितवतो दौत्यं—स्वानष्ठदूतधर्म निवेदितवतो हनूमतः। (शि०) २ नानुमेने—वधमित्यनुवर्तनीयं। (गो०) ३ तच्च कार्यं—दूतवधरूपकार्यं। (गो०) ४ कार्यविधौस्थितः—यथोचितकृत्य सम्पादनेस्थितः रावणेन संस्थापितः। (गो०)

रावण को क्रुद्ध हुआ जान और उसकी हनुमान के वध की आज्ञा को, कार्यरूप में परिणत होने की तैयारियाँ देख, रावण द्वारा यथोचित कृत्य पूरा कराने के लिए नियुक्त विभीषण, अपने कर्त्तव्य के विषय में विचार करने लगे ॥ ३ ॥

निश्चितार्थस्ततः साम्ना पूज्य शत्रुजिदग्रजम् ।
उवाच हितमत्यर्थं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ ४ ॥

शत्रु को जीतने वाले तथा वचन बोलने वालों में चतुर विभीषण ने अपना कर्त्तव्य स्थिर कर और अपने बड़े भाई का सम्मान कर, अत्यन्त हितकर वचन, साम नीति का अवलंबन कर रावण से कहना आरम्भ किया ॥ ४ ॥

क्षमस्व रोषं त्यज राक्षसेन्द्र
प्रसीद मद्वाक्यमिदं शृणुष्व ।
वधं न कुर्वन्ति परावरज्ञा
दूतस्य सन्तो वसुधाधिपेन्द्राः ॥ ५ ॥

हे राक्षसेन्द्र ! क्रोध को शान्त कर और क्षमा को ग्रहण कर, प्रसन्न चित्त से आप मेरी इन बातों को सुनिए। हे राजन् ! पूर्वापर का विवेक रखने वाले राजा लोग दूत को कदापि नहीं मारते॥५॥

राजधर्मविरुद्धं च लोकवृत्तेश्च गर्हितम् ।
तव चासदृशं वीर कपेरस्य प्रमापणम्[1] ॥ ६ ॥

हे वीर ! इस दूत वानर का वध करना, केवल राजधर्म विरुद्ध ही नहीं है, किन्तु लोकाचार से निन्द्य भी है। यह कार्य तुम्हारे स्वरूप के विरुद्ध भी है ॥ ६ ॥

१—प्रमापणम्—मारणं । (गो०)

धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च राजधर्मविशारदः ।
परावरज्ञो भूतानां त्वमेव परमार्थवित् ॥ ७ ॥

तुम धर्मज्ञ, कृतज्ञ, राजनीतिविशारद पूर्वापर के जानने वाले और प्राणियों में सब से अधिक परमार्थतत्व के ज्ञाता हो ॥ ७ ॥

गृह्यन्ते यदि रोषेण त्वादृशोऽपि विपश्चितः ।
ततः शास्त्रविपश्चित्त्व श्रम एव हि केवलम् ॥ ८ ॥

यदि तुम जैसा पण्डित भी क्रोध के वशवर्ती हो जायँ और ऐसे अनुचित कार्य कर बैठें तब तो शास्त्र पढ़ना केवल श्रम उठाना ही ठहरा ॥ ८ ॥

तस्मात्प्रसीद शत्रुघ्न राक्षसेन्द्र दुरासद ।
युक्तायुक्तं विनिश्चित्य दूते दण्डो विधीयताम् ॥ ९ ॥

अतएव हे शत्रुघ्न एवं दुरासद राक्षसेन्द्र ! प्रसन्न होकर, पहले तुम योग्यायोग्य का विचार कर लो, तब दूत को दण्ड देना ॥९॥

विभीषणवचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
रोषेण महताविष्टो वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ १० ॥

राक्षसेश्वर रावण, विभीषण के वचन सुन कर और भी अधिक क्रुद्ध हुआ और उनकी बातों के उत्तर देता हुआ कहने लगा ॥ १० ॥

न पापानां वधे पापं विद्यते शत्रुसूदन ।
तस्मादेनं वधिष्यामि वानरं पापकारिणम् ॥ ११ ॥

हे शत्रुसूदन ! पापी को मारने से पाप नहीं लगता । अतएव मैं इस पापकर्म करने वाले वानर का वध करवाऊँगा ॥ ११ ॥

अधर्ममूलं बहुदोषयुक्तम्
अनार्यजुष्टं वचनं निशम्य ।
उवाच वाक्यं परमार्थतत्त्वम्
विभीषणो बुद्धिमतां वरिष्ठः ॥ १२ ॥

बुद्धिमानों में श्रेष्ठ विभीषण, रावण के अधर्म मूलक, अनेक दोषों से युक्त और अभद्रोचित वचनों को सुन, परमार्थतत्वयुक्त वचन बोले ॥ १२ ॥

प्रसीद लङ्केश्वर राक्षसेन्द्र
धर्मार्थयुक्तं वचनं शृणुष्व ।
दूतानवध्यान्समयेषु राजन्
[1]सर्वेषु सर्वत्र वदन्ति सन्तः ॥ १३ ॥

हे लङ्केश्वर ! हे राक्षसेन्द्र ! तुम प्रसन्न हो और मेरे धर्म एवं अर्थ युक्त वचनों को सुनो । हे राजन् ! सब जातियों के समस्त सन्त जनों का सर्वत्र यही कथन पाया जाता है कि, दूत को किसी भी समय न मारना चाहिए ॥ १३ ॥

असंशयं शत्रुरयं प्रवृद्धः
कृतं ह्यनेनाप्रियमप्रमेयम् ।
न दूतवध्यां प्रवदन्ति सन्तो
दूतस्य दृष्टा बहवो हि दण्डाः ॥ १४ ॥

यद्यपि यह बड़ा शत्रु है और इसने अपराध भी बड़ा भारी किया है ; तथापि साधुमतानुसार दूत होने के कारण इसका वध

---

१ सर्वेषु—सर्वजातिषु । (गो०)

करवाना अनुचित है। हाँ इसका वध न करा कर इसे, दूत को देने योग्य अनेक अन्य दण्डों में से कोई दण्ड दिया जा सकता है॥ १४॥

वैरूप्यमङ्गेषु कशाभिघातो
मौण्ड्यं तथा [1]लक्षणसन्निपातः।
एतान्हि दूते प्रवदन्ति दण्डान्
वधस्तु दूतस्य न नः श्रुतोऽपि॥ १५॥

दूत के लिए ये दण्ड भी बतलाए हैं, दूत को अङ्ग भङ्ग कर देना, दूत के चाबुक लगवाना, दूत का सिर मुड़वा देना, दूत के शरीर में कोई चिह्न दगवा देना। किन्तु दूत का वध करवाना, तो मैंने कभी नहीं सुना॥ १५॥

कथं च धर्मार्थविनीतबुद्धिः[2]
[3]परावरप्रत्ययनिश्चितार्थः।
भवद्विधः कोपवशे हि तिष्ठेत्
कोपं नियच्छन्ति हि सत्त्ववन्तः[4]॥ १६॥

फिर आप जैसे धर्मार्थ-शिक्षित बुद्धि वाले तथा अच्छे बुरे को जान कर निर्णय करने वाले लोग भला किस प्रकार क्रोध के वश होते हैं। व्यवसायवन्तों को तो क्रोध अवश्य अपने वश में रखना ही चाहिए॥ १६॥

---

१ लक्षणसन्निपातः—दूतयोग्याङ्कनसम्बन्धः। (गो०) २ धर्मार्थविनीतबुद्धिः—धर्मार्थयोश्शिक्षितबुद्धिः। (गो०) ३ परावरप्रत्ययनिश्चितार्थः—उत्कृष्टापकृष्टपरिज्ञाननिश्चितार्थः। (गो०) ४ सत्त्ववन्तः—व्यवसायवन्तः। (गो०)

न धर्मवादे न च लोकवृत्ते
न शास्त्रबुद्धिग्रहणेषु चापि ।
विद्येत कश्चित्तव वीर तुल्यः
त्वं ह्युत्तमः सर्वसुरासुराणाम् ॥ १७ ॥

हे वीर ! धर्मशास्त्र के ज्ञान में, लोकाचार में, और शास्त्र के विचार में तुम्हारी टक्कर का कोई भी तो नहीं देख पड़ता। इस समय तो इन विषयों के ज्ञान में तुम सुर और असुर सब ही में सर्वोत्तम माने जाते हो ॥ १७ ॥

पराक्रमोत्साहमनस्विनां च
सुरासुराणामपि दुर्जयेन ।
त्वयाऽप्रमेयेन सुरेन्द्रसङ्घा
जिताश्च युद्धेष्वसकृन्नरेन्द्राः ॥ १८ ॥

अधिक कहाँ तक कहूँ—पराक्रम, उत्साह और शौर्यवान जो देवता और असुर हैं, उन सब से तुम दुर्जेय हो। अनेक बार तुम इनको तथा अनेक राजाओं को जीत चुके हो ॥ १८ ॥

इत्थंविधस्यामरदैत्यशत्रोः
शूरस्य वीरस्य तवाजितस्य ।
कुर्वन्ति मूढा मनसो व्यलीकं
प्राणैर्वियुक्ता ननु ये पुरा ते ॥ १९ ॥

जो मूढ़ पुरुष मन से भी तुम जैसे शूर वीर अजेय और देवों दानवों के शत्रु का अनिष्ट अथवा कोई अपराध करते हैं, तो उनका नाश वैसे ही करवा डाला जाता है; मानों वे पहिले कभी थे ही नहीं ॥ १९ ॥

न चाप्यस्य कपेर्घाते कञ्चित्पश्याम्यहं गुणम् ।
तेष्वयं पात्यतां दण्डो यैरयं प्रेषितः कपिः ॥ २० ॥

मुझे तो इस वानर के मरवा डालने में कुछ भी अच्छाई नहीं देख पड़ती । बल्कि यह दण्ड तो उसे देना चाहिए जिसका भेजा यह यहाँ आया है ॥ २० ॥

साधुर्वा यदि वाऽसाधुः परैरेष समर्पितः ।
ब्रुवन्परार्थं परवान्न दूतो वधमर्हति ॥ २१ ॥

यह स्वयं अच्छा है या बुरा, यह प्रश्न ही नहीं, परन्तु भेजा तो यह दूसरे का है और दूसरे ही का संदेश कहता है । अतएव इस परवश दूत का मारना ठीक नहीं है ॥ २१ ॥

अपि चास्मिन्हते राजन्नान्यं पश्यामि खेचरम् ।
इह यः पुनरागच्छेत्परं पारं महोदधेः ॥ २२ ॥

(इसके अतिरिक्त एक और विचारणीय बात है ।) हे राजन् ! इसके मारे जाने पर, मुझे दूसरा ऐसा आकाशचारी देख भी तो नहीं पड़ता, जो समुद्र पार कर फिर यहाँ आ सके ॥ २२ ॥

तस्मान्नास्य वधे यत्नः कार्यः परपुरञ्जय ।
भवान्सेन्द्रेषु देवेषु यत्नमास्थातुमर्हति ॥ २३ ॥

हे शत्रुपुरजयी ! अतएव इसके वध के लिए यत्न न करना चाहिए । बल्कि यदि वध करने ही की इच्छा है, तो आप देवताओं पर चढ़ाई करने की तैयारियाँ कीजिए ॥ २३ ॥

अस्मिन्विनष्टे न हि दूतमन्यं
पश्यामि यस्तौ नरराजपुत्रौ ।

युद्धाय युद्धप्रिय दुर्विनीता-

वुद्योतयेद्दीर्घपथावरुद्धौ ॥ २४ ॥

हे युद्धप्रिय ! यदि यह दूत मार डाला गया तो फिर ऐसा दूसरा दूत न मिलेगा, जो इतनी दूर और ऐसे अवरुद्ध मार्ग से जाकर, उन दोनों दुर्विनीत और तुम्हारे वैरी राजकुमारों को लड़ने के लिए उत्साहित करे ॥ २४ ॥

अस्मिन्हते वानरयूथमुख्ये

सर्वापवादं प्रवदन्ति सर्वे ।

न हि प्रपश्यामि गुणान्यशो वा

लोकापवादो भवति प्रसिद्धः ॥ २५ ॥

इस वानरयूथपति के मार डालने से सब लोग तुम्हारी सर्वत्र निन्दा करेंगे। ऐसा करने से मुझे तो इसमें न तो तुम्हारे लिए यश की और न कोई भलाई की बात ही देख पड़ती है। प्रत्युत इससे तो संसार भर में तुम्हारी निन्दा फैल जायगी ॥ २५ ॥

पराक्रमोत्साहमनस्विनां च

सुरासुराणामपि दुर्जयेन ।

त्वया मनोनन्दन नैर्ऋतानां

युद्धायतिर्नाशयितुं न युक्ता ॥ २६ ॥

हे राक्षस-मनोनन्दन ! बड़े बड़े पराक्रमी और उत्साही देवता और दैत्य भी तुमको नहीं जीत सकते। अतः राक्षसों के मन की युद्ध सम्बन्धी उल्लोल को भङ्ग करना तुमको उचित नहीं ॥ २६ ॥

हिताश्च शूराश्च समाहिताश्च
कुलेषु जाताश्च महागुणेषु ।
मनस्विनः शस्त्रभृतां वरिष्ठाः
कोट्यग्रतस्ते सुभृताश्च योधाः ॥२७॥

क्योंकि ये सब योद्धा लोग तुम्हारे हितैषी हैं, बड़े शूर वीर हैं; सावधान रहने वाले हैं, कुलीन हैं, मनस्वी हैं और शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ हैं। इनकी संख्या भी करोड़ों पर ही है ॥२७॥

तदेकदेशेन बलस्य तावत्
केचित्तवादेशकृतोऽभियान्तु ।
तौ राजपुत्रौ विनिगृह्य मूढौ
परेषु ते भावयितुं प्रभावम् ॥२८॥

मेरी सम्मति से तो इस समय तुम्हारी कुछ सेना वहाँ जाय और उन दोनों मूढ़ राजकुमारों को पकड़ लावे, जिससे शत्रुओं को तुम्हारा प्रभाव उनको मालूम हो जाय ॥२८॥

[तस्यानुजस्याधिकमर्थतत्त्वं
विभीषणस्योत्तमवाक्यमिष्टं ।
जग्राह बुद्ध्या सुरलोकशत्रुः
महाबलो राक्षसराजमुख्यः ॥

देवताओं के शत्रु राक्षसेन्द्र महाबली रावण ने, समझ बूझ कर, विभीषण के कहे हुए उत्तम वचन को काम का जान, मान लिया ॥२९॥

स, हनुमान जी
॥७॥
ति
ाता
: ॥१६॥

क्रोधं च जातं हृदये निरुध्य
विभीषणोक्तं वचनं सुपूज्य ।
उवाच रक्षोधिपतिर्महात्मा
विभीषणं शस्त्रभृतां वरिष्ठम् ॥३०॥]

इति द्विपञ्चाशः सर्गः

उत्पन्न हुए क्रोध को अपने हृदय में रोक और विभीषण के
हे हुए वचनों का भली भाँति आदर कर, धैर्यवान राक्षस राज
वण, शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ विभीषण से बोला ॥३०॥

सुन्दरकाण्ड का बावनवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—❀—

त्रिपञ्चाशः सर्गः

—❀—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दशग्रीवो *महात्मनः ।
देशकालहितं वाक्यं भ्रातुरुत्तरमब्रवीत् ॥१॥

इसस्तरी रावण, महात्मा विभीषण के देशकालोचित वचनों
पराक्रम ने भाई से कहने लगा ॥१॥

हि भवता दूतवध्या विगर्हिता ।
वधादन्यः क्रियतामस्य निग्रहः ॥२॥

त्वम
कहना ठीक है, सचमुच दूत का वध करना निन्द्य कर्म
यु के अतिरिक्त इसे कोई अन्य दण्ड तो अवश्य ही दिया

हे रा
और दैत्य
युद्ध सम्बन

*पाठान्तरे—"महाबलः ।"

कपीनां किल लाङ्गूलमिष्टं भवति भूषणम् ।
तदस्य दीप्यतां शीघ्रं तेन दग्धेन गच्छतु ॥३॥

वानरों की पूँछ उनका अति प्यारा भूषण है, सो इसकी पूँछ जला दी जाय और यह जली पूँछ लेकर यहां से जाय ॥३॥

ततः पश्यन्त्विमं दीनमङ्गवैरूप्यकर्शितम् ।
समित्रज्ञातयः सर्वे बान्धवाः ससुहृज्जनाः ॥४॥

जिससे इसके सब इष्टमित्र, भाई-बन्धु और हितैषी, इसको अङ्ग-भङ्ग होने के कारण दीन दुःखी देखें ॥४॥

आज्ञापयद्राक्षसेन्द्रः पुरं सर्वं सचत्वरम् ।
लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन रक्षोभिः परिणीयताम् ॥५॥

रावण ने आज्ञा दी कि, राक्षस लोग इसकी पूँछ में आग लगा, इसको चौराहों पर घुमाते हुए सारे नगर में घुमावें ॥५॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसाः *कोपकर्कशाः ।
वेष्टयन्ति स्म लाङ्गूलं जीर्णैः कार्पासकैः पटैः ॥६॥

रावण की यह आज्ञा सुन वे महाक्रोधी राक्षस, हनुमान जी की पूँछ में गूदड़ लपेटने लगे ॥६॥

संवेष्ट्यमाने लाङ्गूले व्यवर्धत महाकपिः ।
शुष्कमिन्धनमासाद्य वनेष्विव हुताशनः ॥७॥

ज्यों ज्यों हनुमान जी की पूँछ में गूदड़ लपेटा जाता त्यों त्यों हनुमान जी वैसे ही बढ़ते जाते थे, जैसे सूखे ईंधन वन में आग बढ़ती है ॥७॥

---

*पाठान्तरे—"कोपकर्शिताः ।"

क्रोधं

ऽन परिषिच्याथ तेऽग्निं तत्रावपातयन् ।

लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन राक्षसांस्तानपातयत् ॥८॥

कपड़े लपेटने के बाद उसे तेल से तर कर, पूँछ में आग लगा दी गई। तब हनुमान जी जलती हुई पूँछ से, उन राक्षसों को मार मार कर गिराने लगे ॥८॥

*स तु रोषपरीतात्मा बालसूर्यसमाननः ।

लाङ्गूलं संप्रदीप्तं तु दृष्ट्वा तस्य हनूमतः ॥९॥

जब पूँछ की आग धकधक कर जलने लगी, तब क्रोध में भरे हनुमान जी का मुख, प्रातःकालीन सूर्य की तरह लाल देख पड़ने लगा ॥९॥

सहस्त्रीबालवृद्धाश्च जग्मुः प्रीतिं निशाचराः ।

स भूयः सङ्गतैः क्रूरै राक्षसैर्हरिसत्तमः ॥१०॥

हनुमान जी की पूँछ को जलते देख स्त्रियाँ, बालक और बूढ़े राक्षस बहुत प्रसन्न हुए और बहुत से क्रूर स्वभाव राक्षस (उनको खिजाने के लिए) उनके साथ हो लिए ॥१०॥

निबद्धः कृतवान्वीरस्तत्कालसदृशीं मतिम् ॥

कामं खलु न मे शक्ता निबद्धस्यापि राक्षसाः ॥११॥

बंधे हुए हनुमान जी ने उस समय के अनुरूप यह विचार स्थिर किया कि, निश्चय ही मुझ बंधे हुए का भी, ये राक्षस कुछ ड़ना चाहें, तो नहीं बिगाड़ सकते ॥११॥

छित्त्वा पाशान्समुत्पत्य हन्यामहमिमान्पुनः ।

भर्तृहितार्थाय चरन्तं भर्तृशासनात् ॥१२॥

हे

और दैत

युद्ध सम

—"रोषामर्षपरीतात्मा ।" †पाठान्तरे—"प्रीता ।"

बध्नन्त्येते दुरात्मानो न तु मे निष्कृतिः।
सर्वेषामेव पर्याप्तो राक्षसानामहं युधि ॥१३॥

मैं इन बंधनों को तोड़ कर और उछल कूद कर इन राक्षस गुप्तचरों का नाश कर सकता हूँ। इस समय मैं श्रीरामचन्द्र जी के हितसाधन के लिए यहाँ आया हूँ। ऐसी दशा में यदि इन दुष्टों ने, रावण की आज्ञा से मुझको बाँध लिया तो इनकी जितनी हानि मैं पहिले कर चुका हूँ, उसका यथार्थ बदला मुझसे ये अभी तक नहीं ले पाए। मैं तो अकेला ही इन सब राक्षसों से लड़ने के लिए पर्याप्त हूँ ॥१२॥१३॥

किंतु रामस्य प्रीत्यर्थं विषहिष्येऽहमीदृशम् ।
लङ्का चारयितव्या वै पुनरेव भवेदिति ॥१४॥

तथापि श्रीरामचन्द्र जी की प्रसन्नता के लिए मैं इस प्रकार के अनादर को भी सहलूँगा। ये लोग मुझे लङ्का में घुमावें तो इससे अच्छा ही होगा ॥१४॥

रात्रौ न हि सुदृष्टा मे दुर्गकर्मविधानतः ।
अवश्यमेव द्रष्टव्या मया लङ्का निशाक्षये ॥१५॥

क्योंकि, रात में मैं अच्छी तरह से लङ्का के गुप्त स्थानों को नहीं देख सका। सो दिन में मुझे इस लङ्कापुरी को भली भाँति देख लेना चाहिए ॥१५॥

कामं बद्धश्च मे भूयः पुच्छस्योद्दीपनेन च ।
पीडां कुर्वन्तु रक्षांसि न मेऽस्ति मनसः श्रमः ॥१६॥

क्रोधं

...न परिषिच्याथ

...कर बांध लें। इसकी मुझे कुछ चिन्ता नहीं।

लाङ्गूलेन प्र...

मुझे ये लोग जो पीडा पहुँचा रहे हैं इससे भी

कपड़े लपेट...

...भी नहीं होता ॥१६॥

लगा दी ग...

को मा... ततस्ते [1]संवृताकारं सत्त्ववन्तं महाकपिम्।

परिगृह्य ययुर्हृष्टा राक्षसाः कपिकुञ्जरम् ॥१७॥

शङ्खभेरीनिनादैस्तं घोषयन्तः स्वकर्मभिः।

राक्षसाः क्रूरकर्माणश्चारयन्ति स्म तां पुरीम् ॥१८॥

क्रूरस्वभाव राक्षस लोगों ने गूढ़स्वभाव, महाबली और वानरश्रेष्ठ हनुमान जी को पकड़ और शङ्ख और भेरी बजाते तथा हनुमान जी का अपराध लोगों को सुनाते हुए, उनको नगर में घुमाया ॥१७॥१८॥

अन्वीयमानो रक्षोभिर्ययौ सुखमरिन्दमः।

हनुमांश्चारयामास[2] राक्षसानां महापुरीम् ॥१९॥

राक्षसों के साथ शत्रुओं का दमन करने वाले हनुमान जी सुख से चले जाते थे। इस प्रकार हनुमान जी ने राक्षसों की उस महापुरी को भली भाँति देखा ॥१९॥

अथापश्यद्विमानानि विचित्राणि महाकपिः।

संवृतान्भूमिभागांश्च सुविभक्तांश्च[3] चत्वरान् २०॥

वीथीश्च गृहसंबाधा अपि[4] शृङ्गाटकानि च।

तथा रथ्योपरथ्याश्च तथैव [5]गृहकान्तरान् ॥२१॥

---

[1] संवृताकारं—गूढस्वभावं। (गो०) [2] चारयामास—शोधयामास। (गो०) [3] चत्वरान्—गृहबहिरङ्गणानि। (गो०) [4] शृङ्गाटकानि—चतुष्पथानि। (गो०) [5] गृहकान्तरान्—प्रच्छन्नद्वाराणि।

गृहांश्च मेघसङ्काशान्ददर्श पवनात्मजः ।
चत्वरेषु चतुष्केषु राजमार्गे तथैव च ॥२२॥

हनुमान जी ने वहाँ घूम फिर कर रंग बिरंगी अटारियाँ, गुप्त-स्थान, अनेक प्रकार के बने चबूतरे, बड़ी बड़ी गलियाँ, सघन घरों के मोहल्ले, चौराहे, छोटी बड़ी गलियाँ, घरों के छिपे हुए द्वार और बादलों के समान बड़ी ऊँची ऊँची हवेलियाँ देखीं। चौराहे, चौबारे और सड़कों पर ॥२०॥२१॥२२॥

घोषयन्ति कपिं सर्वे चारीक इति राक्षसाः ।
स्त्रीबालवृद्धा निर्जग्मुस्तत्र तत्र कुतूहलात् ॥२३॥
तं प्रदीपितलाङ्गूलं हनुमन्तं दिदृक्षवः ।
दीप्यमाने ततस्तस्य लाङ्गूलाग्रे हनूमतः ॥२४॥

हनुमान जी को जासूस (भेदिया) बतला कर, राक्षस लोग घोषणा करते जाते थे। घोषणा सुन और कुतूहलवश हो स्त्रियाँ, बालक और बूढ़े, जलती हुई पूँछ सहित हनुमान जी को देखने के लिए, घरों के बाहर निकल आते थे। हनुमान जी की पूँछ के जलाए जाने पर ॥२३॥२४॥

राक्षस्यस्ता विरूपाक्ष्यः शंसुर्देव्यास्तदप्रियम् ।
यस्त्वया कृतसंवादः सीते ताम्रमुखः कपिः ॥२५॥
लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन स एष परिणीयते ।
श्रुत्वा तद्वचनं क्रूरमात्मापहरणोपमम् ॥२६॥

तब भयङ्कर नेत्रों वाली राक्षसियों ने सीता जी को यह अप्रिय संवाद सुनाया—हे सीते! जिस ललमुहे वानर ने तुमसे बात-

चीत की थी, उसकी पूँछ जला कर, वह नगरी में घुमाया जा रहा है। उनके ऐसे क्रूर और प्राणों का नाश करने वाले (जान निकाल लेने वाले) वचन सुन ॥२५॥२६॥

वैदेही शोकसन्तप्ता हुताशनमुपागमत् ।
मङ्गलाभिमुखी तस्य सा तदाऽऽसीन्महाकपेः ॥२७॥

सीता जी शोक से सन्तप्त हो, हनुमान जी के मङ्गल की कामना से अग्नि की स्तुति करके कहने लगीं ॥२७॥

उपतस्थे विशालाक्षी प्रयता हव्यवाहनम् ।
यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः ॥२८॥
यदि चास्त्येकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः ।
यदि *कश्चिदनुक्रोशस्तस्य मय्यस्ति धीमतः ॥२९॥
यदि वा भाग्यशेषो मे शीतो भव हनूमतः ।
यदि मां वृत्तसंपन्नां तत्समागमलालसाम् ॥३०॥
स विजानाति धर्मात्मा शीतो भव हनूमतः ।
यदि मां तारयेदार्यः सुग्रीवः सत्यसङ्गरः ॥३१॥

विशालाक्षी सीता पवित्र हो अग्नि की उपासना करती हुई बोलीं। हे अग्निदेव ! यदि मैंने पति की शुश्रूषा सच्चे मन से की हो, यदि मैंने कुछ भी तपस्या की हो, यदि मैं पतिव्रता होऊँ; तो तुम हनुमान जी के लिए शीतल हो जाओ। यदि उन श्रीमान् श्रीरामचन्द्र जी की मेरे ऊपर कुछ भी कृपा हो, अथवा मेरा सौभाग्य अभी कुछ भी शेष हो, यदि मुझ चरित्रवती की, श्रीरामचन्द्र जी के समागम की लालसा को, वे धर्मात्मा जानते

पाठान्तरे—"किञ्चिदनुक्रोशः।"

हो, तो तुम हनुमान जी के लिए शीतल हो जाओ। यदि सत्य-प्रतिज्ञ श्रेष्ठ सुग्रीव मुझे ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अस्माद्दुःखाम्बुसंरोधाच्छीतो भव हनूमतः ।
ततस्तीक्ष्णार्चिरव्यग्रः प्रदक्षिणशिखोऽनलः ॥३२॥
जज्वाल मृगशावाक्ष्याः शंसन्निव शिवं कपेः ।
हनूमज्जनकश्चापि पुच्छानलयुतोऽनिलः ॥३३॥

इस दुःखसागर से पार कर, इस क़ैद से छुड़ाने वाले हों, तो हे अग्निदेव ! तुम हनुमान जी के लिए शीतल बन जाओ। सीता जी की इस स्तुति से, वह अग्नि जो धपधप कर बड़ी तेज़ी से जल रहा था, दक्षिणावर्त शिखा को घुमा, जानकी के सम्मुख हो मानों हनुमान जी का शुभ संवाद देने के लिए प्रज्वलित हो उठा। इसी बीच में जलती हुई पूँछ वाले हनुमान जी के पिता पवन देव भी ॥३२॥३३॥

ववौ [1]स्वास्थ्यकरो देव्याः प्रालेयानिलशीतलः ।
दह्यमाने च लाङ्गूले चिन्तयामास वानरः ॥३४॥

बर्फ़ की तरह शीतल हो सीता जी के लिए सुखप्रद हो गए। उधर पूँछ को जलती हुई देख कर हनुमान जी सोचने लगे कि ॥३४॥

प्रदीप्तोऽग्निरयं कस्मान्न मां दहति सर्वतः ।
दृश्यते च महाज्वालः न करोति च मे रुजम् ॥३५॥

क्या कारण है जो चारों ओर से जलने पर भी यह अग्नि मुझे नहीं जलाता। मैं देख रहा हूँ कि, आग धपधप कर बड़ी ज्वाला से जल रही है। किन्तु मुझे तो भी कुछ कष्ट नहीं हो रहा है ॥३५॥

---

१ स्वास्थकरः—सुखकरः। (गो०)

शिशिरस्येव सम्पाते लाङ्गूलाग्रे प्रतिष्ठितः ।
अथवा तदिदं व्यक्तं यद्दृष्टं प्लवता मया ॥३६॥
रामप्रभावादाश्चर्यं पर्वतः सरितां पतौ ।
यदि तावत्समुद्रस्य मैनाकस्य च धीमतः ॥३७॥
रामार्थं संभ्रमस्तादृक्किमग्निर्न करिष्यति ।
सीतायाश्चानृशंस्येन तेजसा राघवस्य च ॥३८॥

मुझे तो ऐसा ज्ञान पड़ता है, मानों मेरी पूँछ पर बर्फ़ रखी हो! अथवा श्रीरामचन्द्र जी के प्रभाव से समुद्र पार करते समय समुद्र में जैसा मैंने पर्वतरूप आश्चर्य देखा था; वैसा ही उन्हींके प्रताप से यह भी हो रहा है। जब बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्र जी के विषय में मैनाक का ऐसा आदर है, तब क्या अग्नि श्रीरामचन्द्र जी का कुछ भी विचार न करेगा। मुझे तो निश्चय है कि, सीता जी की कृपा से और श्रीरामचन्द्र जी के प्रताप से ॥३६॥३७॥३८॥

पितुश्च मम सख्येन न मां दहति पावकः ।
भूयः स चिन्तयामास मुहूर्तं कपिकुञ्जरः ॥३९॥

और मेरे पिता के साथ मैत्री होने के कारण, अग्निदेव मुझे नहीं जलाते। फिर हनुमान जी ने मुहूर्त्त भर कुछ विचारा ॥३९॥

उत्पपाताथ वेगेन ननाद च महाकपिः ।
पुरद्वारं ततः श्रीमाञ्शैलशृङ्गमिवोन्नतम् ॥४०॥

तदनन्तर वे उछले और बड़ी ज़ोर से गर्जे। फिर वे पर्वत शिखर के समान ऊँचे नगर के फाटक पर ॥४०॥

विभक्तरक्षःसंबाधमाससादानिलात्मजः ।
स भूत्वा शैलसङ्काशः क्षणेन पुनरात्मवान् ॥४१॥

जहाँ राक्षसों की भीड़ भाड़ न थी, पर्वताकार हो जा चढ़े। क्षण ही भर बाद उन्होंने पुनः अपने ॥४१॥

ह्रस्वतां परमां प्राप्तो बन्धनान्यवशातयत्।
विमुक्तश्चाभवच्छ्रीमान्पुनः पर्वतसन्निभः।
वीक्षमाणश्च ददृशे परिघं तोरणाश्रितम् ॥४२॥

शरीर को बहुत छोटा कर लिया और अपने सब बंधन काट गिराए। बंधन से छूट उन्होंने पुनः पर्वताकार रूप धारण कर लिया। फिर इधर उधर देखने पर उनको उस फाटक का बेंड़ा दिखलाई पड़ा ॥४२॥

स तं गृह्य महाबाहुः कालायसपरिष्कृतम्।
रक्षिणस्तान्पुनः सर्वान्सूदयामास मारुतिः ॥४३॥

महाबाहु हनुमान जी ने उस लोहे के चमचमाते बेंड़े को ले, पुनः वहाँ के रखवाले राक्षसों को मार गिराया ॥४३॥

स तान्निहत्वा रणचण्डविक्रमः
समीक्षमाणः पुनरेव लङ्काम्।
प्रदीप्तलाङ्गूलकृतार्चिमाली
प्रकाशतादित्य इवार्चिमाली ॥४४॥

इति त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥

युद्ध में प्रचंड विक्रम प्रदर्शन करने वाले हनुमान जी रखवालों को मार लङ्का को देखने लगे। उस समय उनकी पूँछ से जो अग्नि की लपटें निकल रही थीं, उनसे उस समय उनकी वैसी ही शोभा हो रही थी; जैसी कि, किरणों द्वारा प्रकाशित मध्यान्हकालीन सूर्य की होती है ॥४४॥

सुन्दरकाण्ड का तिरपनवाँ सर्ग पूरा हुआ।

चतुःपञ्चाशः सर्गः

—❀—

वीक्षमाणस्ततो लङ्कां कपिः कृतमनोरथः ।
वर्धमानसमुत्साहः कार्यशेषमचिन्तयत् ॥१॥

मनोरथ सिद्ध हो जाने से हनुमान जी उत्साहित हुए। वह लङ्का की ओर देख, मन ही मन शेष कर्त्तव्य को विचारने लगे ॥१॥

प्रताप में

किं नु खल्ववशिष्टं मे कर्तव्यमिह साम्प्रतम् ।
यदेषां रक्षसां भूयः सन्तापजननं भवेत् ॥२॥

कपि ने विचारा कि, मैं अब क्या करूँ जिससे राक्षसों के मन में और अधिक संताप उत्पन्न हो ॥२॥

वनं तावत्प्रमथितं प्रकृष्टा राक्षसा हताः ।
बलैकदेशः क्षपितः शेषं दुर्गविनाशनम् ॥३॥

इस बीच में, मैंने रावण का प्रमदावन उजाड़ डाला, बड़े बड़े नामी वीर राक्षसों को मार डाला, सेना का एक बड़ा भाग भी नष्ट कर डाला; अब तो मुझे रावण के दुर्ग का नाश करना और बाक़ी रह गया है ॥३॥

दुर्गे विनाशिते कर्म [1]भवेत्सुखपरिश्रमम् ।
अल्पयत्नेन कार्येऽस्मिन्मम स्यात्सफलः श्रमः ॥४॥

---

१ सुखपरिश्रम—सफलायसं । (गो०)

(अतः) दुर्ग के नाश करने से मेरा परिश्रम सफल हो जायगा और इसे उजाड़ने में मुझे बहुत सा श्रम भी न उठाना पड़ेगा। थोड़े ही परिश्रम से यह काम भी पूरा हो जायगा ॥४॥

यो ह्ययं मम लाङ्गूले दीप्यते हव्यवाहनः ।
अस्य सन्तर्पणं न्याय्यं कर्तुमेभिर्गृहोत्तमैः ॥५॥

मेरी पूँछ में अग्निदेव जल रहे हैं और मुझे शीतल जान पड़ते हैं, सो इनको भली भाँति तृप्त करना भी तो उचित है। अतः इन बढ़िया भवनों को भस्म कर, मैं इनको तृप्त करता हूँ ॥५॥

ततः प्रदीप्तलाङ्गूलः सविद्युदिव तोयदः ।
भवनाग्रेषु लङ्कायां विचचार महाकपिः ॥६॥

इस प्रकार निश्चय कर दामिनीयुक्त मेघ की तरह, जलती हुई पूँछ को लिए हुए, हनुमान जी भवनों की अटारियों पर (या छज्जों पर) घूमने लगे ॥६॥

गृहाद्गृहं राक्षसानामुद्यानानि च वानरः ।
वीक्षमाणो ह्यसन्त्रस्तः प्रासादांश्च चचार सः ॥७॥

हनुमान जी राक्षसों के एक घर से दूसरे घर पर और दूसरे से तीसरे घर पर चढ़ जाते और निर्भय हो, वहाँ के उद्यानों को देखते थे ॥७॥

अवप्लुत्य महावेगः प्रहस्तस्य निवेशनम् ।
अग्निं तत्र स निक्षिप्य श्वसनेन समो बली ॥८॥

पवन के समान वेगवान् हनुमान् जी घूमते फिरते प्रहस्त के घर पर जा चढ़े। प्रहस्त के घर में आग लगा ॥८॥

ततोऽन्यत्पुप्लुवे वेश्म महापार्श्वस्य वीर्यवान् ।
मुमोच हनुमानग्निं कालानलशिखोपमम् ॥९॥

फिर वे बलवान् महापार्श्व के मकान पर कूद पड़े और कालाग्नि के तुल्य अग्नि उस भवन में लगा ॥९॥

वज्रदंष्ट्रस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः ।
शुकस्य च महातेजाः सारणस्य च धीमतः ॥१०॥

वे वज्रदंष्ट्र के भवन पर कूद पड़े और उसमें भी आग लगा, उन्होंने महातेजस्वी शुक और बुद्धिमान सारण के घर जलाए ॥१०॥

तथा चेन्द्रजितो वेश्म ददाह हरियूथपः ।
जम्बुमालेः सुमालेश्च ददाह भवनं ततः ॥११॥

वहां से मेघनाद के भवन पर कूद, उन्होंने उसको फूँका । फिर जम्बुमाली और सुमाली के घरों को जलाया ॥११॥

रश्मिकेतोश्च भवनं सूर्यशत्रोस्तथैव च ।
ह्रस्वकर्णस्य दंष्ट्रस्य रोमशस्य च रक्षसः ॥१२॥

युद्धोन्मत्तस्य मत्तस्य ध्वजग्रीवस्य रक्षसः ।
विद्युज्जिह्वस्य घोरस्य तथा हस्तिमुखस्य च ॥१३॥

करालस्य पिशाचस्य शोणिताक्षस्य चैव हि ।
कुम्भकर्णस्य भवनं मकराक्षस्य चैव हि ॥१४॥

यज्ञशत्रोश्च भवनं ब्रह्मशत्रोस्तथैव च ।
नरान्तकस्य कुम्भस्य निकुम्भस्य दुरात्मनः ॥१५॥

तदनंतर उन्होंने रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु, ह्रस्वकर्ण, युद्धोन्मत्त, ध्वजग्रीव, भयङ्कर, विद्युज्जिह्व, हस्तिमुख, कराल, पिशाच, शोणिताक्ष, कुम्भकर्ण, मकराक्ष, यज्ञ शत्रु ब्रह्मशत्रु, नरान्तक, कुम्भ और दुरात्मा निकुम्भ नामक राक्षसों के घर फूँके ॥१२॥१३॥१४॥१५॥

वर्जयित्वा महातेजा विभीषणगृहं प्रति ।
क्रममाणः क्रमेणैव ददाह हरिपुङ्गवः ॥१६॥

हनुमान जी ने और राक्षसों के घर तो क्रम से जलाए, किन्तु अकेले विभीषण का घर छोड़ दिया ॥१६॥

तेषु तेषु महार्हेषु भवनेषु महायशाः ।
गृहेष्वृद्धिमतामृद्धिं ददाह स महाकपिः ॥१७॥

लङ्कापुरी निवासी धनी राक्षसों के घरों में जो जो मूल्यवान अन्न, वस्त्र, द्रव्य आदि सामग्री थी, हनुमान जी ने उसे गिर भस्म कर डाला ॥१७॥

सर्वेषां समतिक्रम्य राक्षसेन्द्रस्य वीर्यवान् ।
आससादाथ लक्ष्मीवान्रावणस्य निवेशनम् ॥ २७ ॥

इन सब भवनों को जला कर, हनुमान जी बलवान सिर के रावण के घर पर कूद गए ॥१८॥ मेघ से

ततस्तस्मिन्गृहे मुख्ये नानारत्नविभूषिते ।
मेरुमन्दरसङ्काशे [1]सर्वमङ्गलशोभिते ॥१९॥ २८ ॥

रावण के मेरुपर्वत के समान विशाल मुख्य विविध प्रकार के रत्नों से भूषित था और समस्त से पू

[1] सर्वमङ्गल

प्रदीप्तमग्निमुत्सृज्य लाङ्गूलाग्रे प्रतिष्ठितम् ।
ननाद हनुमान्वीरो *युगान्तजलदो यथा ॥२०॥

अपनी पूँछ से आग लगा, हनुमान जी ऐसे ज़ोर से गर्जे जैसे प्रलयकालीन मेघ गरजते हैं ॥२०॥

श्वसनेन च संयोगादतिवेगो महाबलः ।
कालाग्निरिव संदीप्तः प्रावर्धत हुताशनः ॥२१॥

हवा की सहायता पा, अति वेगवान् अग्नि, कालाग्नि की तरह धधक कर बढ़ने लगा ॥२१॥

†प्रवृद्धमग्निं पवनस्तेषु वेश्मस्वचारयत् ।
अभूच्छ्वसनसंयोगादतिवेगो हुताशनः ॥२२॥

वह प्रज्वलित आग को, पवनदेव अत्यन्त प्रचण्ड कर, एक फिर दूसरे घर में पहुँचा देते थे ॥२२॥

[illegible]नि काञ्चनजालानि मुक्तामणिमयानि च ।
[illegible]न्यवशीर्यन्त रत्नवन्ति महान्ति च ॥२३॥

[illegible]युक्त झरोखों से युक्त, रत्न-राशि-विभूषित, बड़े बड़े मुक्ता-विभूषित जो भवन थे ॥२३॥

[illegible]ग्नविमानानि निपेतुर्धरणीतले§ ।
कुम्भकीव सिद्धानामम्बरात्पुण्यसंक्षये ॥२४॥

यज्ञशत्रोश्च युगान्ते जलदो ।" † पाठान्तरे—"ज्वाला ।"
नरान्तकस्य कु[illegible] § पाठान्तरे—"वसुधातले ।"

उनकी अटारियाँ टूट टूट कर नीचे ज़मीन पर गिर पड़ीं। वे भवन टूट टूट कर इस प्रकार भहराए, जिस प्रकार सिद्धों के भवन पुण्यक्षीण होने पर, आकाश से टूट कर नीचे गिरते हैं ॥२४॥

संजज्ञे तुमुलः शब्दो राक्षसानां प्रधावताम् ।
स्वगृहस्य परित्राणे भग्नोत्साहोर्जितश्रियाम् ॥ २५ ॥

दौड़ते हुए उन राक्षसों का, जो अपने घरों की रक्षा करने के लिए, उद्योग कर, हतोत्साह और नष्टश्री हो रहे थे, बड़ा कोलाहल मचा ॥ २५ ॥

नूनमेषोऽग्निरायातः कपिरूपेण हा इति ।
क्रन्दन्त्यः सहसा पेतुः[1] स्तनन्धयधराः स्त्रियः ॥ २६ ॥

वे लोग चिल्ला चिल्ला कर कह रहे थे कि, हाय निश्चय ही कपि का रूप धर यह अग्निदेव ही आए हैं। छोटे छोटे दुधमुहे बच्चों को गोद में लिये हुए रोती हुई स्त्रियाँ, आग में सहसा गिर पड़ती थीं ॥ २६ ॥

काश्चिदग्निपरीतेभ्यो हर्म्येभ्यो मुक्तमूर्धजाः ।
पतन्त्यो रेजिरेऽभ्रेभ्यः सौदामिन्य इवाम्बरात् ॥ २७ ॥

बहुत सी स्त्रियाँ चारों ओर से अग्नि से घिर कर, सिर के बाल खोले अटारियों पर से नीचे कूद पड़ती थीं, मानों मेघ से दामिनी निकल कर पृथिवी पर आ गिरी हो ॥ २७ ॥

वज्रविद्रुमवैडूर्यमुक्तारजतसंहितान् ।
विचित्रान्भवनान्धातून्स्यन्दमानान्ददर्श सः ॥ २८ ॥

---

१ पेतुरग्नाविति शेषः। (रा०)

हीरा, मूँगा, पन्ना, मोती, और चाँदी आदि अनेक धातुएँ अग्नि के ताप से पिघल कर, बहती हुई हनुमानजी ने देखी ॥२८॥

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां तृणानां *च यथा तथा ।
हनूमान्राक्षसेन्द्राणां वधे किञ्चिन्न तृप्यति ॥ २९ ॥

जिस प्रकार अग्निदेव, काठ और घास फूस को जलाते जलाते नहीं अघाते, उसी प्रकार हनुमान जी प्रधान प्रधान राक्षसों को मारते मारते नहीं अघाते ॥ २९ ॥

न हनूमद्विशस्तानां राक्षसानां वसुन्धरा ।
क्वचित्किंशुकसङ्काशाः क्वचिच्छाल्मलिसन्निभाः ।
क्वचित्कुङ्कुमसङ्काशाः शिखा वह्नेश्चकाशिरे ॥ ३० ॥

और न हनुमान जी के मारे हुए राक्षसों के वध से वसुन्धरा ही अघाती थी। कहीं पर तो आग को लौ को रंगत किंशुक के फूल जैसी, कहीं शाल्मली के फूल जैसी और कहीं कुङ्कुम के रंग जैसी देख पड़ती थी ॥ ३० ॥

हनूमता वेगवता वानरेण महात्मना ।
लङ्कापुरं प्रदग्धं तद्रुद्रेण त्रिपुरं यथा ॥ ३१ ॥

जिस प्रकार महादेव जी ने त्रिपुरासुर को भस्म किया था, उसी प्रकार महाबली वानरश्रेष्ठ हनुमान जी ने लङ्कापुरी को जला कर भस्म कर डाला ॥ ३१ ॥

ततस्तु लङ्कापुरपर्वताग्रे
समुत्थितो भीमपराक्रमोऽग्निः ।

---

* पाठान्तरे—" हरियूथपः " ।

प्रसार्य चूडावलयं प्रदीप्तो
हनूमता वेगवता विसृष्टः ॥ ३२ ॥

भयङ्कर पराक्रमी हनुमान जी की लगाई हुई आग, अपने ज्वालामण्डल को फैला कर, लङ्कापुरी के पर्वत तक प्रज्वलित हो गई यानी पर्वत तक पहुँच गई ॥ ३२ ॥

युगान्तकालानलतुल्यवेगः
समारुतोऽग्निर्ववृधे दिविस्पृक् ।
विधूमरश्मिर्भवनेषु सक्तो
रक्षःशरीराज्यसमर्पितार्चिः ॥ ३३ ॥

फिर वह अग्नि पवन की सहायता पा कर, प्रलयकालीन अग्नि की तरह, आकाश को स्पर्श करता हुआ, बढ़ने लगा। लङ्का के घरों में राक्षसों के शरीररूपी घी को पा कर, धूमरहित अग्नि चारों ओर प्रकाश फैलाने लगा ॥ ३३ ॥

आदित्यकोटीसदृशः सुतेजा
लङ्कां समस्तां परिवार्य तिष्ठन् ।
शब्दैरनेकैरशनिप्ररूढैः
भिन्दन्निवाण्डं प्रबभौ महाग्निः ॥ ३४ ॥

उस समय करोड़ों सूर्यों की तरह चमचमाता अग्नि, समस्त लङ्कापुरी को घेर कर, वज्रपात के समान घोर नाद से ब्रह्माण्ड को फोड़ता हुआ, शोभायमान हुआ ॥ ३४ ॥

तत्राम्बरादग्निरतिप्रवृद्धो
रूक्षप्रभः किंशुकपुष्पचूडः ।

निर्वाणधूमाकुलराजयश्च

नीलोत्पलाभाः प्रचकाशिरेऽभ्राः ॥ ३५ ॥

बढ़ते बढ़ते वह अग्नि आकाश तक व्याप्त हो गया और अपनी रूखी प्रभा से ऐसा जान पड़ता, मानों पलाश-वन में पलाश-पुष्प फूले हुए हों। जब अग्नि नीचे से भभक कर धुआँ निकालता, तब वह आकाश में जा नील कमल के तुल्य मेघमण्डल जैसा जान पड़ता था ॥ ३५ ॥

वज्री महेन्द्रस्त्रिदशेश्वरो वा

साक्षाद्यमो वा वरुणोऽनिलो वा ।

रुद्रोऽग्निरर्को धनदश्च सोमो

न वानरोऽयं स्वयमेव कालः ॥ ३६ ॥

उस समय लङ्कापुरीनिवासी अनेक राक्षस एकत्र हो, कह रहे थे—या तो यह वानर वज्रधारी स्वर्ग का राजा इन्द्र है अथवा साक्षात् यम है अथवा वरुण है अथवा पवन है अथवा रुद्र है अथवा अग्नि है अथवा सूर्य अथवा कुबेर है अथवा सोम है यह वानर नहीं है प्रत्युत साक्षात् काल है ॥ ३६ ॥

किं ब्रह्मणः सर्वपितामहस्य

सर्वस्य धातुश्चतुराननस्य ।

इहागतो वानररूपधारी

रक्षोपसंहारकरः प्रकोपः ॥ ३७ ॥

हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि, लोकसृष्टिकर्त्ता, सब के बाबा, लोकों के धारण करने वाले और चार मुख वाले ब्रह्मा जी

का क्रोध, वानर का रूप धर कर, राक्षसों का नाश करने के लिए यहाँ आया है ॥ ३७ ॥

किं वैष्णवं वा कपिरूपमेत्य
रक्षोविनाशाय परं सुतेजः ।
अनन्तमव्यक्तमचिन्त्यमेकं
स्वमायया सांप्रतमागतं वा ॥ ३८ ॥

अथवा अचिन्त्य, अव्यक्त, अनन्त और अद्वितीय विष्णु भगवान का यह महातेज है जो राक्षसकुल का संहार करने के लिए इस समय अपनी माया के बल से कपि का रूप धारण कर, यहाँ आया है ॥ ३८ ॥

इत्येवमूचुर्बहवो विशिष्टा
रक्षोगणास्तत्र समेत्य सर्वे ।
सप्राणिसंघां सगृहां सवृक्षां
दग्धां पुरीं तां सहसा समीक्ष्य ॥ ३९ ॥

प्राणियों, घरों और वृक्षों सहित लङ्कापुरी को सहसा भस्म हुई देख, वहाँ के समझदार राक्षसनेता एकत्र हो, इस प्रकार कल्पनाएँ कर रहे थे ॥ ३९ ॥

ततस्तु लङ्का सहसा प्रदग्धा
सराक्षसा साश्वरथा सनागा ।
सपक्षिसंघा समृगा सवृक्षा
रुरोद दीना तुमुलं सशब्दम् ॥ ४० ॥

---

१ विशिष्टाः—ज्ञानाधिकाः (गो०)

राक्षसों, घोड़ों, रथों, हाथियों, पक्षियों, मृगों, वृक्षों सहित जब लङ्का सहसा भस्म हो गई ; तब वहाँ के बचे हुए निवासी राक्षस विकल हो रोने और चिल्लाने लगे ॥ ४० ॥

हा तात हा पुत्रक कान्त मित्र

हा जीवितं भोगयुतं सुपुण्यम् ।

रक्षोभिरेवं बहुधा ब्रुवद्भिः

शब्दः कृतो घोरतरः सुभीमः ॥ ४१ ॥

हा तात ! हा पुत्र ! हा कान्त ! हा मित्र ! हा प्राणनाथ ! हमारे अतिकष्ट से उपार्जित समस्त पुण्य फल क्षीण हो गए । इस प्रकार बहुधा वार्तालाप करते अनेक राक्षसों ने वहाँ बड़ा भयङ्कर कोलाहल मचाया ॥ ४१ ॥

हुताशनज्वालसमावृता सा

हतप्रवीरा परिवृत्तयोधा ।

हनूमतः क्रोधबलाभिभूता

बभूव शापोपहतेव लङ्का ॥ ४२ ॥

उस समय अग्नि की ज्वाला से घिरी हुई, बड़े बड़े शूरवीरों के युद्ध में मारे जाने के कारण उनसे हीन, तथा उद्विग्न चित्त योद्धाओं से युक्त और हनुमान जी के क्रोध और बल से पराजित वह लङ्का शापहत (शापित) की तरह जान पड़ने लगी ॥ ४२ ॥

स संभ्रमत्रस्तविषण्णराक्षसां

समुज्ज्वलज्ज्वालहुताशनाङ्किताम् ।

दद‌र्श लङ्कां हनुमान्महामनाः

स्वयंभुकोपोपहतामिवावनिम् ॥ ४३ ॥

उस समय बचे हुए लङ्कावासी राक्षस घबड़ाए हुए और विषाद युक्त थे। अत्यन्त प्रज्वलित आग से धप धप कर जलती हुई लङ्का महामनस्वी हनुमान जी को वैसी ही जान पड़ी, जैसी कि, शिवजी के कोप से दग्ध पृथिवी जान पड़ती है॥ ४३ ॥

भङ्क्त्वा वनं पादपरत्नसङ्कुलं

हत्वा तु रक्षांसि महान्ति संयुगे।

दग्ध्वा पुरीं तां गृहरत्नमालिनीं

तस्थौ हनूमान्पवनात्मजः कपिः ॥ ४४ ॥

श्रेष्ठ वृक्षों से परिपूर्ण अशोकवन को उजाड़, युद्ध में बड़े बड़े राक्षस वीरों को मार, गृहों और रत्नों से परिपूर्ण लङ्का को जला कर, पवननन्दन कपि हनुमान जी शान्त हुए॥ ४४ ॥

त्रिकूटशृङ्गाग्रतले विचित्रे

प्रतिष्ठितो वानरराजसिंहः।

प्रदीप्तलाङ्गूलकृतार्चिमाली

व्यराजतादित्य इवांशुमाली ॥ ४५ ॥

वानर राजसिंह हनुमान जी त्रिकूटपर्वत के शिखर पर जा बैठे। उस समय उनकी जलती हुई पूँछ से जो लपटें निकल रही थीं, उनकी ऐसी शोभा हुई, जैसी किरणों द्वारा प्रकाशित मध्याह्नकालीन सूर्य की होती है॥ ४५ ॥

स राक्षसांस्तान्सुबहूंश्च हत्वा

वनं च भङ्क्त्वा बहुपादपं तत्।

विसृज्य रक्षोभवनेषु चाग्निं
जगाम रामं मनसा महात्मा ॥ ४६ ॥

वे महाबली हनुमान जी बहुत से राक्षसों का संहार कर, बहुत से वृक्षों से युक्त अशोकवन को उजाड़ और राक्षसों के घर फूँक, मन द्वारा श्रीरामचन्द्र जी के पास पहुँच गए ॥ ४६ ॥

ततस्तु तं वानरवीरमुख्यं
महाबलं मारुततुल्यवेगम् ।
महामतिं वायुसुतं वरिष्ठं
प्रतुष्टुवुर्देवगणाश्च सर्वे ॥ ४७ ॥

तब तो उन वानराग्रगण्य, महाबली पवन तुल्य पराक्रमी, महाबुद्धिमान्, पवननन्दन और श्रेष्ठ हनुमान जी की सब देवता स्तुति करने लगे ॥ ४७ ॥

भङ्क्त्वा वनं महातेजा हत्वा रक्षांसि संयुगे ।
दग्ध्वा लङ्कापुरीं रम्यां रराज स महाकपिः ॥ ४८ ॥

अशोक वन को उजाड़, युद्ध में राक्षसों को मार और रमणीक लङ्कापुरी को फूँक, महातेजस्वी महाकपि हनुमान जी शोभा को प्राप्त हुए ॥ ४८ ॥

तत्र देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
दृष्ट्वा लङ्कां प्रदग्धां तां विस्मयं परमं गताः ॥ ४९ ॥

वहाँ पर उपस्थित देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि, उस लङ्कापुरी को भस्म हुई देख, अत्यन्त विस्मित हुए ॥ ४९ ॥

तं दृष्ट्वा वानरश्रेष्ठं हनुमन्तं महाकपिम् ।
कालाग्निरिति संचिन्त्य सर्वभूतानि तत्रसुः ॥ ५० ॥

वहाँ पर जितने लोग थे, वे सब उन महाकपि वानरश्रेष्ठ हनुमान जी को देख, यही समझते थे कि, यह साक्षात् कालाग्नि हैं ॥ ५० ॥

देवाश्च सर्वे मुनिपुङ्गवाश्च
गन्धर्वविद्याधरकिन्नराश्च ।
भूतानि सर्वाणि महान्ति तत्र
जग्मुः परां प्रीतिमतुल्यरूपाम् ॥ ५१ ॥

इति चतुःपञ्चाशः सर्गः ॥

समस्त देवता, मुनिश्रेष्ठ, गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर आदि जितने बड़े बड़े लोग वहाँ उपस्थित थे, वे सब के सब अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ५१ ॥

सुन्दरकाण्ड का चौवनवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—*—

पञ्चपञ्चाशः सर्गः

—*—

लङ्कां समस्तां सन्दीप्य लाङ्गूलाग्निं महाबलः ।
निर्वापयामास तदा समुद्रे हरिसत्तमः ॥ १ ॥

जब अपनी पूँछ की आँच से महाबली कपिश्रेष्ठ हनुमान जी समस्त लङ्का में आग लगा चुके, तब उन्होंने समुद्र के जल से अपनी पूँछ की आग बुझाई ॥ १ ॥

सन्दीप्यमानां विध्वस्तां त्रस्तरक्षोगणां पुरीम् ।

अवेक्ष्य हनुमाँल्लङ्कां चिन्तयामास वानरः ॥ २ ॥

जलती हुई और विध्वस्त लङ्का को तथा भयभीत राक्षसों को देख, हनुमान जी सोचने लगे ॥ २ ॥

तस्याभूत्सुमहांस्त्रासः कुत्सा चात्मन्यजायत ।

लङ्कां प्रदहता कर्म किं स्वित्कृतमिदं मया ॥ ३ ॥

सोचते सोचते उनके मन में बड़ा भय उत्पन्न हो गया और वे अपनी निन्दा कर कहने लगे कि, यह मैंने क्या किया जो लङ्का को फूँक दिया ॥ ३ ॥

धन्यास्ते पुरुषश्रेष्ठा ये बुद्ध्या कोपमुत्थितम् ।

निरुन्धन्ति महात्मानो दीप्तमग्निमिवाम्भसा ॥ ४ ॥

वे पुरुषश्रेष्ठ धन्य हैं, जो समझ बूझ कर उपजे हुए क्रोध को उसी प्रकार ठंडा कर डालते हैं ; जिस प्रकार जल दहकती हुई आग को ॥ ४ ॥

क्रुद्धः पापं न कुर्यात्कः क्रुद्धो हन्याद्गुरूनपि ।

क्रुद्धः परुषया वाचा नरः साधूनधिक्षिपेत् ॥ ५ ॥

क्रोध के वशवर्ती लोग क्या नहीं कर डालते। क्रोध के आवेश में लोग अपने पूज्यों को भी मार डालते हैं और क्रोध में भर लोग, सज्जनों का भी कुवाच्य कह बैठत हैं ॥ ५ ॥

वाच्यावाच्यं प्रकुपितो न विजानाति कर्हिचित् ।

नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते क्वचित् ॥ ६ ॥

क्रुद्ध होने पर मनुष्य को कहनी अनकहनी बात का विवेक नहीं रहता। क्रोधी के लिए न तो कोई अनकरना काम ही है और न अनकहनी कोई बात ही है ॥ ६ ॥

य: समुत्पतितं क्रोधं क्षमयैव निरस्यति ।
यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते ॥ ७ ॥

किन्तु जो आदमी क्रोध आने पर उसको क्षमा द्वारा वैसे ही निकाल बाहर करता है जैसे सर्प पुरानी केंचुल को, वही आदमी, आदमी कहलाने योग्य है ॥ ७ ॥

धिगस्तु मां सुदुर्बुद्धिं निर्लज्जं पापकृत्तमम् ।
अचिन्तयित्वा तां सीतामग्निदं स्वामिघातकम् ॥ ८ ॥

धिक्कार है मुझ बड़े भारी दुर्बुद्धि, निर्लज्ज और पापी को, जिसने, सीता का ध्यान न रख लङ्का जला डाली और उसके साथ ही अपने स्वामी को भी नष्ट कर डाला अथवा स्वामी का बना बनाया काम बिगाड़ डाला ॥ ८ ॥

यदि दग्धा त्वियं लङ्का नूनमार्यापि जानकी ।
दग्धा तेन मया भर्तुर्हतं कार्यमजानता ॥ ९ ॥

क्योंकि, यदि यह सारी की सारी लङ्का जल गई तो सती सीता जी भी अवश्य ही भस्म हो गई होंगी। मैंने अज्ञानवश स्वामी का काम ही बिगाड़ डाला ॥ ९ ॥

यदर्थमयमारम्भस्तत्कार्यमवसादितम् ।
मया हि दहता लङ्कां न सीता परिरक्षिता ॥ १० ॥

जिस काम के लिए इतना श्रम उठाया वही नष्ट हो गया। हा! लङ्का जलाते समय मैंने सीता की रक्षा न की ॥ १० ॥

ईषत्कार्यमिदं कार्यं कृतमासीन्न संशयः ।
तस्य क्रोधाभिभूतेन मया मूलक्षयः कृतः ॥ ११ ॥

इसमें सन्देह नहीं कि, लङ्का का जलाना एक मामूली काम था, किन्तु मैंने तो क्रोधान्ध हो कर मूल ही का नाश कर डाला ॥ ११ ॥

विनष्टा जानकी नूनं न ह्यदग्धः प्रदृश्यते ।
लङ्कायां कश्चिदुद्देशः सर्वा भस्मीकृता पुरी ॥ १२ ॥

जब लङ्का का कोई भी स्थान अनजला नहीं देख पड़ता और समस्त लङ्कापुरी भस्म हो गई है ; तब निश्चय ही जानकी जी भी भस्म हो गई हैं ॥ १२ ॥

यदि तद्विहतं कार्यं मम प्रज्ञाविपर्ययात् ।
इहैव प्राणसंन्यासो ममापि ह्यद्य रोचते ॥ १३ ॥

यदि मैंने अपनी नासमझी से कार्य नष्ट कर डाला है, तो मुझे यहीं पर अपना प्राण त्याग करना ठीक जान पड़ता है ॥१३॥

किमग्नौ निपताम्यद्य आहोस्विद्वडवामुखे ।
शरीरमाहो सत्त्वानां दद्मि सागरवासिनाम् ॥ १४ ॥

क्या मैं अग्नि में गिर कर भस्म हो जाऊँ अथवा समुद्र के बड़वानल में कूद पड़ूँ, अथवा समुद्रवासी जलचरों को अपना शरीर दे डालूँ ॥ १४ ॥

कथं हि जीवता शक्यो मया द्रष्टुं हरीश्वरः ।
तौ वा पुरुषशार्दूलौ कार्यसर्वस्वघातिना ॥ १५ ॥

समस्त कार्यों का नाश कर, मैं क्यों कर जीता जागता कपिराज सुग्रीव और उन दोनों पुरुषसिंहों के सामने जा सकता हूँ ॥ १५ ॥

मया खलु तदेवेदं रोषदोषात्प्रदर्शितम् ।
प्रथितं त्रिषु लोकेषु कपित्वमनवस्थितम् ॥ १६ ॥

तीनों लोकों में यह बात प्रसिद्ध है कि, वानर के स्वभाव का क्या ठीक—से मैंने क्रोध के आवेश में आ, इस लोकोक्ति को चरितार्थ कर के दिखला दिया ॥ १६ ॥

धिगस्तु राजसम्भावमनीशमनवस्थितम् ।
[1]ईश्वरेणापि यद्रागान्मया सीता न रक्षिता ॥ १७ ॥

राजसिकभाव अर्थात् रजोगुण को धिक्कार है, जो लोगों को मनमुखी और अव्यवस्थित बना देता है। मैंने सामर्थ्य रहते भी रजोगुण से प्रेरित हो, सीता की रक्षा न की ॥ १७ ॥

विनष्टायां तु सीतायां तावुभौ विनशिष्यतः ।
तयोर्विनाशे सुग्रीवः सबन्धुर्विनशिष्यति ॥ १८ ॥

सीता के नष्ट होने से वे दोनों राजकुमार भी मर जाँयगे। उनके मरने से बन्धुबान्धव सहित सुग्रीव भी मर जाँयगे ॥ १८ ॥

एतदेव वचः श्रुत्वा भरतो भ्रातृवत्सलः ।
धर्मात्मा सहशत्रुघ्नः कथं शक्ष्यति जीवितुम् ॥ १९ ॥

फिर इस बात को सुन भ्रातृवत्सल भरत जी, धर्मात्मा शत्रुघ्न सहित क्यों कर जीवित रह सकेंगे ॥ १९ ॥

इक्ष्वाकुवंशे धर्मिष्ठे गते नाशमसंशयम् ।
भविष्यन्ति प्रजाः सर्वाः शोकसन्तापपीडिताः ॥ २० ॥

---

१ ईश्वरेणापि—रक्षणसमर्थेनापि । (गो०)

धर्मिष्ठ इक्ष्वाकुवंश का नाश हो जाने पर निस्सन्देह सारी प्रजा शोकसन्ताप से पीड़ित हो जायगी ॥ २० ॥

तदहं भाग्यरहितो लुप्तधर्मार्थसंग्रहः ।
रोषदोषपरीतात्मा व्यक्तं लोकविनाशनः ॥ २१ ॥

अतः निश्चय ही मैं हतभागी हूँ और रोष दोष से भरा हुआ हूँ जो इस लोक का नाशक है। मेरा जो कुछ उपार्जित धर्मार्थ था वह भी लुप्त हो गया। अथवा मैं बड़ा अभागा हूँ। मैंने क्रोध के वशवर्त्ती हो उस धर्मार्थ को भी नष्ट कर डाला, जिसके नष्ट होने से परलोक भी विनष्ट हो जाता है ॥ २१ ॥

इति चिन्तयतस्तस्य निमित्तान्युपपेदिरे ।
पूर्वमप्युपलब्धानि साक्षात्पुनरचिन्तयत् ॥ २२ ॥

इस प्रकार हनुमान जी चिन्ता में मग्न थे कि, इतने में उनको विविध प्रकार के शुभ शकुन जो पहिले भी देख पड़े थे, देख पड़े; तब तो वे पुनः सोचने लगे ॥ २२ ॥

अथवा चारुसर्वाङ्गी रक्षिता स्वेन तेजसा ।
न नशिष्यति कल्याणी नाग्निरग्नौ प्रवर्तते ॥ २३ ॥

सर्वाङ्गशोभना, और सौभाग्यवती जानकी अपने पातिव्रत-धर्म-पालन के प्रभाव से सदैव सुरक्षित है, वह कभी नष्ट नहीं हो सकती। क्योंकि अग्नि भला अग्नि को क्या जलावेगा ॥ २३ ॥

न हि धर्मात्मनस्तस्य भार्याममिततेजसः ।
स्वचरित्राभिगुप्तां तां स्प्रष्टुमर्हति पावकः ॥ २४ ॥

फिर अतुल तेजस्वी धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी की पत्नी को जो अपने पातिव्रतधर्म से सुरक्षित है, अग्नि स्पर्श नहीं कर सकता ॥ २४ ॥

नूनं रामप्रभावेन वैदेह्याः सुकृतेन च ।
यन्मां दहनकर्माऽयं नादहद्धव्यवाहनः ॥ २५ ॥

तभी तो श्रीरामचन्द्र जी के प्रताप और सीता जी के पुण्य-प्रभाव से जलाने वाले अग्नि ने मुझे नहीं जलाया—यह निश्चय बात है ॥ २५ ॥

त्रयाणां भरतादीनां भ्रातॄणां देवता च या ।
रामस्य च मनःकान्ता सा कथं विनशिष्यति ॥ २६ ॥

जो भरतादि तीनों भाइयों की देवता है और श्रीरामचन्द्र जी की प्राणवल्लभा है, भला वह कैसे नष्ट होगी ॥ २६ ॥

यद्वा दहनकर्माऽयं सर्वत्र प्रभुरव्ययः ।
न मे दहति लाङ्गूलं कथमार्यां प्रधक्ष्यति ॥ २७ ॥

अथवा सब वस्तुओं को जलाने की सामर्थ्य रखने वाले और नाशरहित अग्नि ने, जब मेरी पूँछ ही को नहीं जलाया, तब वे सती सीता को किस प्रकार भस्म करेंगे ॥ २७ ॥

पुनश्चाचिन्तयत्तत्र हनुमान्विस्मितस्तदा ।
हिरण्यनाभस्य गिरेर्जलमध्ये प्रदर्शनम् ॥ २८ ॥

तदुपरान्त सोच विचार कर, फिर हनुमान जी श्रीसीता जी के प्रभाव से, समुद्र के बीच हिरण्यनाभ मैनाकपर्वत के निकल आने की सुधि कर, विस्मित हो गए और मन ही मन कहने लगे ॥ २८ ॥

तपसा सत्यवाक्येन अनन्यत्वाच्च भर्तरि ।
अपि सा निर्दहेदग्निं न तामग्निः प्रधक्ष्यति ॥ २९ ॥

सीता जी अपने तपःप्रभाव, सत्यभाषण तथा अपने पति में अनन्य भक्ति रखने के प्रभाव से अग्नि को स्वयं भले ही भस्म कर दें, किन्तु अग्नि उनको नहीं जला सकता ॥ २९ ॥

स तथा चिन्तयंस्तत्र देव्या धर्मपरिग्रहम् ।

शुश्राव हनुमान्वाक्यं चारणानां महात्मनाम् ॥ ३० ॥

हनुमान जी इस प्रकार सीता जी की धर्मनिष्ठा को सोच ही रहे थे कि, इतने में हनुमान जी को महात्मा चारणों के ये वचन सुन पड़े ॥ ३० ॥

अहो खलु कृतं कर्म दुष्करं हि हनूमता ।

अग्निं विसृजताऽभीक्ष्णं भीमं राक्षससद्मनि ॥ ३१ ॥

आहा निश्चय ही हनुमान जी ने बड़ा ही दुष्कर काम कर डाला कि राक्षसों के घरों में भयङ्कर आग लगा दी ॥ ३१ ॥

प्रपलायितरक्षःस्त्रीबालवृद्धसमाकुला ।

जनकोलाहलाध्माता क्रन्दन्तीवाद्रिकन्दरे ॥ ३२ ॥

जिससे राक्षसों की स्त्रियाँ, बालक, बूढ़े, सब घबड़ा कर भाग खड़े हुए और बड़ा कोलाहल मचा और लङ्कापुरी पर्वत की कन्दरा की तरह कोलाहल से प्रतिध्वनित हो गई ॥ ३२ ॥

दग्धेयं नगरी सर्वा साट्टप्राकारतोरणा ।

जानकी न च दग्धेति विस्मयोऽद्भुत एव नः ॥ ३३ ॥

अटारियों, प्राकारों और तोरणद्वारों सहित, सारी की सारी लङ्का भस्म कर दी, किन्तु हमको यह बड़ा आश्चर्य जान पड़ता है कि, जानकी न जली ॥ ३३ ॥

स निमित्तैश्च दृष्टार्थैः कारणैश्च महागुणैः ।
ऋषिवाक्यैश्च हनुमानभवत्प्रीतमानसः ॥ ३४ ॥

हनुमान जी पूर्व में अनुभूत शुभफलप्रद शुभशकुनों को देख और ऋषियों (चारणों) के उपर्युक्त वाक्यों को सुन, मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३४ ॥

ततः कपिः प्राप्तमनोरथार्थः
तामक्षतां राजसुतां विदित्वा ।
प्रत्यक्षतस्तां पुनरेव दृष्ट्वा
प्रतिप्रयाणाय मतिं चकार ॥ ३५ ॥

इति पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥

चारण लोगों के वचनों से सीताजी के शरीर का कुशल जान, हनुमान जी का मनोरथ पूरा हुआ । फिर सीता जी को अपनी आँखों से प्रत्यक्ष (सकुशल) देख, हनुमान जी ने लङ्का से लौटने का निश्चय किया ॥ ३५ ॥

सुन्दरकाण्ड का पचपनवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—:o:—

षट्पञ्चाशः सर्गः

—:o:—

*ततस्तां शिंशुपामूले जानकीं पर्यवस्थिताम् ।
अभिवाद्याब्रवीद्दिष्ट्या पश्यामि त्वामिहाक्षताम् ॥ १ ॥

* पाठान्तरे—" ततस्तु । "

तदनन्तर वे शिंशपा वृक्ष के नीचे बैठी हुई जानकी जी को प्रणाम कर बोले कि, हे देवी ! मैं तुमको सौभाग्यवश ही अक्षत देख रहा हूँ ॥ १ ॥

ततस्तं प्रस्थितं सीता वीक्षमाणा पुनः पुनः ।
भर्तृस्नेहान्वितं वाक्यं हनूमन्तमभाषत ॥ २ ॥

तदनन्तर सीताजी ने जाने के लिए तैयार हनुमान जी को बार बार देख, पति के स्नेह से युक्त हो, ये वचन कहे ॥ २ ॥

काममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने ।
पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते बलोदयः ॥ ३ ॥

हे शत्रुघातिन् ! इस कार्य के साधन में अकेले तुम्हीं काफी (पर्याप्त) हो, क्योंकि, तुम्हारे बल का उदय मुझे बड़ा यशोयुक्त देख पड़ता है ॥ ३ ॥

शरैः सुसङ्कुलां कृत्वा लङ्कां परबलार्दनः ।
मां नयेद्यदि काकुत्स्थस्तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥ ४ ॥

किन्तु यदि श्रीरामचन्द्र जी अपने बाणों से लङ्कापुरी को परिपूर्ण कर, मुझे यहाँ से ले जाँय, तो यह कार्य उनके योग्य होगा ॥ ४ ॥

तद्यथा तस्य विक्रान्तमनुरूपं महात्मनः ।
*भवेदाहवशूरस्य तथा त्वमुपपादय ॥ ५ ॥

अतएव उन धैर्यवान श्रीरामचन्द्र जी का विक्रमयुक्त और उनके योग्य यह कार्य सिद्ध हो, अतः तुमको वैसा ही उपाय करना चाहिए ॥ ५ ॥

* पाठान्तरे—" भवत्याहवशूरस्य । "

तदर्थोपहितं वाक्यं प्रश्रितं हेतुसंहितम् ।
निशम्य हनुमांस्तस्या वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ ६ ॥

सीता जी के अर्थयुक्त तथा युक्तियुक्त स्नेहसने वचन सुन वीर हनुमान जी उत्तर देते हुए कहने लगे ॥ ६ ॥

क्षिप्रमेष्यति काकुत्स्थो हर्यृक्षप्रवरैर्वृतः ।
यस्ते युधि विजित्यारीञ्शोकं व्यपनयिष्यति ॥ ७ ॥

हे देवि ! श्रीरामचन्द्र जी वानर और वानरों की सेना ले कर शीघ्र ही यहाँ आवेंगे और युद्धशत्रु को परास्त कर तुम्हारे शोक को दूर करेंगे ॥ ७ ॥

एवमाश्वास्य वैदेहीं हनुमान्मारुतात्मजः ।
गमनाय मतिं कृत्वा वैदेहीमभ्यवादयत् ॥ ८ ॥

इस प्रकार पवननन्दन हनुमान जी ने, सीता को धीरज बँधा और वहाँ से प्रस्थानित होने का विचार कर, जनकनन्दिनी को प्रणाम किया ॥ ८ ॥

ततः स कपिशार्दूलः स्वामिसन्दर्शनोत्सुकः ।
आरुरोह गिरिश्रेष्ठमरिष्टमरिमर्दनः ॥ ९ ॥

तदनन्तर स्वामी को देखने के लिए उत्सुक हो, कपिशार्दूल और शत्रु को मर्दन करने वाले हनुमान जी, अरिष्टनामक ऊँचे पर्वत पर चढ़ गए ॥ ९ ॥

तुङ्गपद्मकजुष्टाभिर्नीलाभिर्वनराजिभिः ।
सोत्तरीयमिवाम्भोदैः शृङ्गान्तरविलम्बिभिः ॥ १० ॥

बोध्यमानमिव प्रीत्या दिवाकरकरैः शुभैः ।
उन्मिषन्तमिवोद्धूतैर्लोचनैरिव धातुभिः ॥ ११ ॥

उस पर्वत पर बड़े बड़े भोजपत्र के वृक्ष शोभित थे । वन में हरियाली छाई हुई थी । उसके शिखरों के ऊपर लटकते हुए मेघ डुपट्टे की तरह जान पड़ते थे । उस पर सूर्य की किरणें गिर कर, मानों प्रेमपूर्वक उसको नींद से जगा रही थीं । विविध भाँति की धातुओं से मण्डित मानों वह पर्वत, अपने नेत्र खोले हुए देख रहा था ॥ १० ॥ ११ ॥

तोयौघनिःस्वनैर्मन्द्रैः प्राधीतमिव *सर्वतः ।
प्रगीतमिव विस्पष्टैर्नानाप्रस्रवणस्वनैः ॥ १२ ॥

झरनों की जलधार के गिरने से ऐसा शब्द हो रहा था, मानों पर्वत अध्ययन कर रहा हो और जो नदियाँ बह रही थीं उनका स्पष्ट कलकल शब्द ऐसा जान पड़ता था मानों पर्वत गान कर रहा हो ॥ १२ ॥

देवदारुभिरत्युच्चैरूर्ध्वबाहुमिव स्थितम् ।
प्रपातजलनिर्घोषैः प्राक्रुष्टमिव सर्वतः ॥ १३ ॥

उसके ऊपर जो बड़े बड़े देवदारु के पेड़ थे, वे ऐसे जान पड़ते थे मानों पर्वत ऊपर को भुजा उठाए हुए खड़ा हो । सर्वत्र जल-प्रपात का शब्द होने से ऐसा जान पड़ता था, मानों पर्वत पुकार रहा हो ॥ १३ ॥

वेपमानमिव श्यामैः कम्पमानैः शरद्घनैः ।
वेणुभिर्मारुतोद्धूतैः कूजन्तमिव कीचकैः ॥ १४ ॥

* पाठान्तरे—" पर्वतः । "

वायु से डोलते हुए शरत्कालीन हरे हरे वृक्षों द्वारा वह पर्वत काँपता हुआ सा जान पड़ता था। पोले बाँसों में जब वायु भरता था, तब उनसे ऐसा शब्द निकलता, मानों पर्वत बाँसुरी बजा रहा हो ॥ १४ ॥

निःश्वसन्तमिवामर्षाद्घोरैराशीविषोत्तमैः ।
नीहारकृतगम्भीरैर्ध्यायन्तमिव गह्वरैः ॥ १५ ॥

वहाँ बड़े बड़े ज़हरीले साँपों का क्रोध में भर फुँफकारें छोड़ना ऐसा जान पड़ता था, मानों पर्वत साँस ले रहा हो। छाए हुए अत्यन्त अन्धकारमय कुहर से तथा अपनी गहरी गुफाओं से, वह ऐसा जान पड़ता था मानों, पर्वत ध्यानावस्थित हो ॥१५॥

मेघपादनिभैः पादैः प्रक्रान्तमिव सर्वतः ।
जृम्भमाणमिवाकाशे शिखरैरभ्रशालिभिः ॥ १६ ॥

मेघ के टुकड़ों की तरह अपने खण्डपर्वतरूप पैरों से ऐसा जान पड़ता था, मानों पर्वत चलना ही चाहता है। अपने आकाशस्पर्शी टेढ़ेमेढ़े शिखरों से, मानों वह पर्वत अपने शरीर को टेढ़ामेढ़ा कर, जँभा (या जँभाई ले) रहा हो ॥ १६ ॥

कूटैश्च बहुधाकीर्णैः शोभितं बहुकन्दरैः ।
सालतालाश्वकर्णैश्च वंशैश्च बहुभिर्वृतम् ॥ १७ ॥
लतावितानैर्विततैः पुष्पवद्भिरलंकृतम् ।
नानामृगगणाकीर्णं धातुनिष्यन्दभूषितम् ॥ १८ ॥

बड़े बड़े शिखरों, बड़ी बड़ी कन्दराओं से तथा साखू, ताड़, अश्वकर्ण, बसवारी एवं विविध प्रकार की फूली हुई लताओं से

वह पर्वत परिपूर्ण और भूषित था। उस पर बहुत से मृग थे और धातुओं के झरने से वह शोभित था ॥ १७ ॥ १८ ॥

बहुप्रस्रवणोपेतं शिलासञ्चयसङ्कटम् ।
महर्षियक्षगन्धर्वकिन्नरोरगसेवितम् ॥ १९ ॥

उस पर्वत पर अनेक जल के झरने झर रहे थे। शिलाओं की चट्टानें पड़ी थीं। महर्षि, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर और उरग उस पहाड़ पर रहते थे ॥ १६ ॥

लतापादपसम्बाधं सिंहाध्युषितकन्दरम् ।
व्याघ्रसङ्घसमाकीर्णं स्वादुमूलफलोदकम् ॥ २० ॥

वह पर्वत, लतावृक्षों से परिपूर्ण था और उसकी कन्दराओं में सिंह रहते थे। व्याघ्रों के झुंड के झुंड वहाँ थे तथा उस पर लगे फल फूल और वहाँ का जल बड़े स्वादिष्ट थे ॥ २० ॥

तमारुरोह हनुमान्पर्वतं *प्लवगोत्तमः ।
रामदर्शनशीघ्रेण प्रहर्षेणाभिचोदितः ॥ २१ ॥

वानरश्रेष्ठ हनुमान जी इस प्रकार के उस अरिष्ट नामक पर्वत के ऊपर चढ़ गए। क्योंकि, श्रीरामचन्द्र जी से मिलने की उनको जल्दी थी और कार्यसिद्ध होने के कारण वे बहुत प्रसन्न थे ॥२१॥

तेन पादतलाक्रान्ता रम्येषु गिरिसानुषु ।
सघोषः समशीर्यन्त शिलाश्चूर्णीकृतास्ततः ॥ २२ ॥

उस रमणीक पर्वत के शिखर की शिलाएँ हनुमान जी के पैरों के आघात से टूट कर चूर चूर हो गईं और शब्द करती हुई नीचे गिर पड़ीं ॥ २२ ॥

---

* पाठान्तरे—"पवनात्मजः।"

स तमारुह्य शैलेन्द्रं व्यवर्धत महाकपिः ।
दक्षिणादुत्तरं पारं प्रार्थयँल्लवणाम्भसः ॥ २३ ॥

उस पर्वतराज पर चढ़ कर हनुमान जी ने अपना शरीर बढ़ाया और वे समुद्र के दक्षिणतट से उत्तरतट की ओर जाने को तैयार हुए ॥ २३ ॥

अधिरुह्य ततो वीरः पर्वतं पवनात्मजः ।
ददर्श सागरं भीमं मीनोरगनिषेवितम् ॥ २४ ॥

उस पर्वत पर चढ़ वीर पवननन्दन ने मछलियों और सांपों से भरा भयङ्कर समुद्र देखा ॥ २४ ॥

स मारुत इवाकाशं मारुतस्यात्मसम्भवः ।
प्रपेदे हरिशार्दूलो दक्षिणादुत्तरां दिशम् ॥ २५ ॥

पवननन्दन हनुमान जी, आकाशचारी पवन की तरह, अति शीघ्र दक्षिणतट से उत्तरतट की ओर उड़ चले ॥ २५ ॥

स तदा पीडितस्तेन कपिना पर्वतोत्तमः ।
ररास सह तैर्भूतैः प्रविशन्वसुधातलम् ॥ २६ ॥

हनुमान जी के पैर के बोझ से दब जाने के कारण अनेक प्राणियों के चीत्कार के साथ गम्भीर शब्द करता हुआ वह पर्वत पृथिवी में समा गया ॥ २६ ॥

कम्पमानैश्च शिखरैः पतद्भिरपि च द्रुमैः ।
तस्योरुवेगोन्मथिताः पादपाः पुष्पशालिनः ॥ २७ ॥

उसके समस्त शिखर और वृक्ष कांपते हुए नीचे गिर पड़े; हनुमान जी की जंघाओं के वेग से उखड़ उखड़ कर, विविध प्रकार के फूले हुए पेड़ ॥ २७ ॥

निपेतुर्भूतले रुग्णाः शक्रायुधहता इव ।
कन्दरोदरसंस्थानां पीडितानां महौजसाम् ॥ २८ ॥

टूट टूट कर पृथिवी पर गिर पड़े, मानों इन्द्र के वज्र आघात से टूटे हों। उसकी कन्दराओं के भीतर रहने वाले, महाबलवान् किन्तु पीड़ित ॥ २८ ॥

सिंहानां निनदो भीमो नभो भिन्दन्स शुश्रुवे ।
स्रस्तव्याविद्धवसना व्याकुलीकृतभूषणाः ॥ २९ ॥
विद्याधर्यः समुत्पेतुः सहसा धरणीधरात् ।
अतिप्रमाणा बलिनो दीप्तजिह्वा महाविषाः ॥ ३० ॥

सिंह भयङ्कर रूप से दहाड़े जिससे जान पड़ा, मानों आकाश फट जायगा। उस पर्वत पर विहार करने वाली विद्याधरियों के शरीर के वस्त्र मारे डर के खसक पड़े। आभूषण उलटे सीधे हो गए। वे सहसा पर्वत को छोड़, उड़ कर आकाश में जा पहुँचीं। बड़े बड़े लंबे, बलवान, प्रज्वलित जिह्वा वाले और महा विषैले ॥ २९ ॥ ३० ॥

निपीडितशिरोग्रीवा व्यवेष्टन्त[1] महाहयः[2] ।
किन्नरोरगगन्धर्वयक्षविद्याधरास्तदा ॥ ३१ ॥

बड़े बड़े सर्प, फनों और गरदनों के दब जाने से कुण्डलियां मारे हुए थे। वहाँ के किन्नर, उरग, गन्धर्व, यक्ष, तथा विद्याधर ॥ ३१ ॥

---

१ व्यवेष्टन्त—कुण्डलीकृतदेहा अभवन्। (शि०) २ महाहयः—महोरगाः। (शि०)

पीडितं तं नगवरं त्यक्त्वा गगनमास्थिताः ।
स च भूमिधरः श्रीमान्वलिना तेन पीडितः ॥ ३२ ॥
सवृक्षशिखरोदग्रः प्रविवेश रसातलम् ।
दशयोजनविस्तारस्त्रिंशद्योजनमुच्छ्रितः ॥ ३३ ॥

उस पर्वतश्रेष्ठ को पीड़ित देख और उसे छोड़ कर, आकाश में चले गए। हनुमान जी द्वारा पीड़ित हो, वह शोभायमान पर्वत अपने शिखरों और पेड़ों सहित रसातल में चला गया। वह पर्वत दस योजन लंबा और तीस योजन ऊँचा था। सो वह पर्वत पृथिवी में समा गया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

धरण्यां समतां यातः स बभूव धराधरः ।
स लिलङ्घयिषुर्भीमं सलीलं लवणार्णवम् ।
कल्लोलास्फालवेलान्तमुत्पपात नभो हरिः ॥ ३४ ॥

इति षट्पञ्चाशः सर्गः ॥

और जहाँ वह पहिले था वहाँ की भूमि बराबर हो गई। बड़ी बड़ी लहरों से लहराते हुए, तटों से युक्त, खारी और भयङ्कर महासागर को खिलवाड़ की तरह, लाँघने के लिए, हनुमान जी कूद कर आकाश में चले गए ॥ ३४ ॥

सुन्दरकाण्ड का छप्पनवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

सप्तपञ्चाशः सर्गः

—*—

[आप्लुत्य च महावेगः पक्षवानिव पर्वतः ।]

सचन्द्रकुमुदं रम्यं सार्ककारण्डवं शुभम् ।
तिष्यश्रवणकादम्बमभ्रशैवलशाद्वलम् ॥ १ ॥

बड़े बलवान हनुमान जी पक्षधारी पर्वत की तरह आकाश रूपी समुद्र में उड़ कर चले। चन्द्रमा मानों आकाश रूपी समुद्र का कुमुद है। सूर्य मानों जलमुर्ग है, पुष्य और श्रवण नक्षत्र मानों हंस की तरह शोभायमान हैं और मेघसमूह मानों सिवार हैं ॥ १ ॥

पुनर्वसुमहामीनं लोहिताङ्गमहाग्रहम् ।
ऐरावतमहाद्वीपं स्वातीहंसविलोलितम् ॥ २ ॥

पुनर्वसु नक्षत्र मानों बड़ा भारी मत्स्य है और मंगल मानों बड़ा मगर (नक्र) है। ऐरावत मानों उस समुद्र का महाद्वीप है, स्वाती नक्षत्र मानों हंस है जो उसमें तैर रहा है ॥ २ ॥

वातसङ्घातजातोर्मि चन्द्रांशुशिशिराम्बुमत् ।
भुजङ्गयक्षगन्धर्वप्रबुद्धकमलोत्पलम् ॥ ३ ॥

वायु मानों तरंगे हैं और चन्द्रमा की किरणरूपी शीतल जल से वह पूर्ण है; भुजङ्ग, यक्ष, और गन्धर्व मानों फूले हुए कमल के फूल हैं ॥ ३ ॥

हनुमान्मारुतगतिर्महानौरिव सागरम् ।
अपारमपरिश्रान्तः पुप्लुवे गगनार्णवम् ॥ ४ ॥

हनुमान जी बड़े वेग से इसी प्रकार चले, जैसे सागर में नाव चलती है और बिना थके वे उस अपार आकाशरूपी सागर में चले जाते थे ॥ ४ ॥

ग्रसमान इवाकाशं ताराधिपमिवोल्लिखन्[२] ।
हरन्निव[१] सनक्षत्रं गगनं सार्कमण्डलम् ॥ ५ ॥

जाते हुए हनुमान जी ऐसे जान पड़ते थे, मानों आकाश को ग्रसे ही लेते हों और अपने नखों से मानों आकाश में चन्द्रमा बनाते जाते हों और नक्षत्रों तथा सूर्य सहित आकाशमण्डल को वे मानों पकड़े लेते हों ॥ ५ ॥

मारुतस्यात्मजः श्रीमान्कपिर्व्योमचरो महान् ।
हनुमान्मेघजालानि विकर्षन्निव गच्छति ॥ ६ ॥

महावपुधारी पवननन्दन श्रीमान हनुमान जी मेघसमूहों को चीरते हुए, अपार आकाश में चले जाते थे ॥ ६ ॥

पाण्डुरारुणवर्णानि नीलमाञ्जिष्ठकानि च ।
हरितारुणवर्णानि महाभ्राणि चकाशिरे ॥ ७ ॥

उस समय सफेद, लाल, नीले, मजीठ रंग के और हरे रंग के बड़े बड़े बादल आकाश में शोभायमान हो रहे थे ॥ ७ ॥

प्रविशन्नभ्रजालानि निष्क्रमंश्च पुनः पुनः ।
प्रच्छन्नश्च प्रकाशश्च चन्द्रमा इव लक्ष्यते ॥ ८ ॥

---

१ ताराधिपमिवोल्लिखन्इवनखैरितिशेषः (रा०) २ हरन्निव—गृह्णन्निव । (रा०)

हनुमान जी उसी प्रकार बार बार मेघों में घुसते और निकलते दिखलाई पड़ते थे, जिस प्रकार चन्द्रमा कभी बादल में छिपता और कभी निकल आता देख पड़ता है ॥ ८ ॥

विविधाभ्रघनापन्नगोचरो धवलाम्बरः ।
दृश्यादृश्यतनुर्वीरस्तदा चन्द्रायतेऽम्बरे ॥ ९ ॥

सफेद कपड़े पहिने हुए वीर हनुमान जी विविध प्रकार के बादलों के भीतर कभी प्रकट कभी अप्रकट हो, आकाश में चन्द्रमा की तरह जान पड़ते थे ॥ ९ ॥

तार्क्ष्यायमाणो गगने बभासे वायुनन्दनः ।
दारयन्मेघवृन्दानि निष्पतंश्च पुनः पुनः ॥ १० ॥

आकाश में गरुड़ की तरह बादलों को चीरते फाड़ते और बार बार उनके भीतर बाहर पैठते एवं निकलते हनुमान जी शोभायमान हो रहे थे ॥ १० ॥

नदन्नादेन महता मेघस्वनमहास्वनः ।
प्रवरान्राक्षसान्हत्वा नाम विश्राव्य चात्मनः ॥ ११ ॥
आकुलां नगरीं कृत्वा व्यथयित्वा च रावणम् ।
अर्दयित्वा बलं घोरं वैदेहीमभिवाद्य च ॥ १२ ॥

हनुमान जी इस प्रकार मुख्य मुख्य राक्षसों को मार, अपना नाम सब को सुना, मेघ की तरह महानाद कर के गर्जते, लङ्का को विकल कर, रावण को पीड़ा दे, राक्षसों की भयङ्कर सेना को मर्द और सीता जी को प्रणाम कर ॥ ११ ॥ १२ ॥

आजगाम महातेजाः पुनर्मध्येन सागरम् ।
पर्वतेन्द्रं सुनाभं च समुपस्पृश्य वीर्यवान् ॥ १३ ॥

ज्यामुक्त इव नाराचो महावेगोऽभ्युपागतः ।

स किञ्चिदनुसम्प्राप्तः समालोक्य महागिरिम् ॥ १४ ॥

महेन्द्रं मेघसङ्काशं ननाद हरिपुङ्गवः ।

स पूरयामास कपिर्दिशो दश समन्ततः ॥ १५ ॥

समुद्र के बीचो बीच पहुँचे। महातेजस्वी और बली हनुमान जी, पवनराज मैनाक का स्पर्श द्वारा सम्मान कर, धनुष के रोदे से छूटे हुए तीर की तरह बड़े वेग से गमन करने लगे। जब उत्तर-तटवर्ती मेघ की तरह विशाल महेन्द्रपर्वत कुछ ही दूर रह गया तब उसे देख हनुमान जी बड़े ज़ोर से गर्जे। उनका वह सिंहनाद समस्त दिशाओं में प्रतिध्वनित हुआ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

नदन्नादेन महता मेघस्वनमहास्वनः ।

स तं देशमनुप्राप्तः सुहृद्दर्शनलालसः ॥ १६ ॥

वे मेघ की तरह बड़े ज़ोर से गर्जते हुए, उत्तरतट पर, अपने हितैषियों से मिलने के लिए लालायित हो, जा पहुँचे ॥ १६ ॥

ननाद हरिशार्दूलो लाङ्गूलं चाप्यकम्पयत् ।

तस्य नानद्यमानस्य सुपर्णाचरिते पथि ॥ १७ ॥

हनुमान जी गर्जते थे अपनी पूँछ भी हिला रहे थे। आकाश में गरुड़ जी के मार्ग का अवलम्बन किए हुए हनुमान जी के घोर गर्जन से ॥ १७ ॥

फलतीवास्य घोषेण गगनं सार्कमण्डलम् ।

ये तु तत्रोत्तरे तीरे समुद्रस्य महाबलाः ॥ १८ ॥

सूर्यमण्डल सहित आकाशमण्डल मानों फटा पड़ता था। महासागर के उत्तरतीर पर जो महाबली ॥ १८ ॥

पूर्वं संविष्टिताः शूरा वायुपुत्रदिदृक्षवः ।
महतो वायुनुन्नस्य तोयदस्येव गर्जितम् ॥ १९ ॥

रीछ तथा वानर पहिले से वीर हनुमान जी के लौटने की प्रतीक्षा में बैठे थे। वायु द्वारा टक्कर दिए हुए बड़े बड़े मेघों की गर्जन की तरह ॥ १९ ॥

शुश्रुवुस्ते तदा घोषमूरुवेगं हनूमतः ।
ते दीनवदनाः सर्वे शुश्रुवुः काननौकसः ॥ २० ॥
वानरेन्द्रस्य निर्घोषं पर्जन्यनिनदोपमम् ।
निशम्य नदतो नादं वानरास्ते समन्ततः ॥ २१ ॥
बभूवुरुत्सुकाः सर्वे सुहृद्दर्शनकाङ्क्षिणः ।
जाम्बवांस्तु हरिश्रेष्ठः प्रीतिसंहृष्टमानसः ॥ २२ ॥

उन वानरों ने हनुमान जी का गर्जन और उनकी जंघों के वेग से निकला शब्द सुना। उन सब दुखियारे वानरों ने बादल की गर्जन की तरह, हनुमान जी की गर्जन का घोष सुना। नाद करते हुए हनुमान जी का शब्द सुन कर, वे सब वानर अपने बन्धु का दर्शन करने को उत्सुक हो उठे। भालुओं में सर्वश्रेष्ठ जाम्बवान ने अत्यन्त प्रसन्न हो ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

उपामन्त्र्य हरीन्सर्वानिदं वचनमब्रवीत् ।
सर्वथा कृतकार्योऽसौ हनुमान्नात्र संशयः ॥ २३ ॥

सब वानरों को अपने पास बुला यह कहा—इसमें सन्देह नहीं कि, हनुमान जी सब प्रकार से अपना काम पूरा कर आए ॥ २३ ॥

न ह्यस्याकृतकार्यस्य नाद एवंविधो भवेत् ।
तस्य बाहूरुवेगं च निनादं च महात्मनः ॥ २४ ॥

यदि वे अपने कार्य में सफल न हुए होते तो इस प्रकार की गर्जना न करते । हनुमान जी की भुजाओं और जांघों से निकले हुए सनसनाहट तथा गर्जन का शब्द ॥ २४ ॥

निशम्य हरयो हृष्टाः समुत्पेतुस्ततस्ततः ।
ते नगाग्रान्नगाग्राणि शिखराच्छिखराणि च ॥ २५ ॥

सुन कर, सब वानर प्रसन्न हुए और पर्वत के एक शिखर से दूसरे शिखर पर कूद कूद कर चढ़ने लगे ॥ २५ ॥

प्रहृष्टाः समपद्यन्त हनूमन्तं दिदृक्षवः ।
ते प्रीताः पादपाग्रेषु गृह्य शाखाः *सुपुष्पिताः ॥ २६ ॥

वे हनुमान जी को देखने के लिए अत्यन्त प्रसन्न हो और अच्छी फूली हुई वृक्षों की डालों को हाथ में ले, वृक्षों की फुनगियों पर चढ़ गए ॥ २६ ॥

वासांसीव प्रशाखाश्च समाविध्यन्त वानराः ।
गिरिगह्वरसंलीनो यथा गर्जति मारुतः ॥ २७ ॥

वानर लोग कपड़े की तरह उन शाखाओं को हिला रहे थे । जिस प्रकार पहाड़ी गुफाओं में रुकी हुई हवा शब्द करती है ॥ २७ ॥

एवं जगर्ज बलवान्हनूमान्मारुतात्मजः ।
तमभ्रघनसङ्काशमापतन्तं महाकपिम् ॥ २८ ॥

---

* पाठान्तरे—" सुविष्ठिताः " ।

उसी प्रकार बलवान पवननन्दन हनुमान जी गर्जे और उन वानरों ने देखा कि, एक बड़े बादल की तरह हनुमान जी आकाश मार्ग से चले आ रहे हैं ॥ २८ ॥

दृष्ट्वा ते वानराः सर्वे तस्थुः प्राञ्जलयस्तदा ।
ततस्तु वेगवांस्तस्य गिरेर्गिरिनिभः कपिः ॥ २९ ॥

हनुमान जी को देखते ही सब वानर हाथ जोड़े हुए खड़े हो गए। तब पर्वताकार और वेगवान हनुमान जी ॥ २९ ॥

निपपात महेन्द्रस्य शिखरे पादपाकुले ।
हर्षेणापूर्यमाणोऽसौ रम्ये पर्वतनिर्झरे ॥ ३० ॥

छिन्नपक्ष इवाकाशात्पपात धरणीधरः ।
ततस्ते प्रीतमनसः सर्वे वानरपुङ्गवाः ॥ ३१ ॥

उसी महेन्द्राचल के शिखर पर, जिस पर बहुत से पेड़ लगे हुए थे, आकर कूद पड़े। हनुमान जी हर्षित हो, आकाश से पंख कटे पर्वत की तरह रमणीक पर्वत के उस स्थान पर कूदे, जहां पानी का झरना झर रहा था। तब प्रीतिपूर्णहृदय से समस्त वानरपुङ्गव ॥ ३० ॥ ३१ ॥

हनूमन्तं महात्मानं परिवार्योपतस्थिरे ।
परिवार्य च ते सर्वे परां प्रीतिमुपागताः ॥ ३२ ॥

महात्मा हनुमान जी को चारों ओर से घेर कर खड़े हो गये। हनुमान जी को घेर कर वे सब बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३२ ॥

प्रहृष्टवदनाः सर्वे तमरोगमुपागतम् ।
उपायनानि चादाय मूलानि च फलानि च ॥ ३३ ॥

हनुमान जी को कुशलपूर्वक आया हुआ देख, वे सब के सब बहुत प्रसन्न हुए और फूलों की भेंटे ला कर, ॥ ३३ ॥

प्रत्यर्चयन्हरिश्रेष्ठं हरयो मारुतात्मजम् ।
हनुमांस्तु गुरून्वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखांस्तदा ॥ ३४ ॥

कपिश्रेष्ठ पवननन्दन हनुमान जी का पूजन करने लगे। तब हनुमान जी ने पूज्य और वृद्ध जाम्बवान प्रमुख वानरों और भालुओं को ॥ ३४ ॥

कुमारमङ्गदं चैव सोऽवन्दत महाकपिः ।
स ताभ्यां पूजितः पूज्यः कपिभिश्च प्रसादितः ॥ ३५ ॥

तथा युवराज अङ्गद को प्रणाम किया । उन दोनों ने हनुमान जी की प्रशंसा की तथा अन्य वानरों ने भी उनको प्रसन्न किया ॥ ३५ ॥

दृष्टा सीतेति विक्रान्तः संक्षेपेण न्यवेदयत् ।
निषसाद च हस्तेन गृहीत्वा वालिनः सुतम् ॥ ३६ ॥

तदनन्तर हनुमान जी ने उन सब से सीता जी के देखने का वृत्तान्त संक्षेप से कहा। तदनन्तर हनुमान जी वालिपुत्र अङ्गद का हाथ पकड़ ॥ ३६ ॥

रमणीये वनोद्देशे महेन्द्रस्य गिरेस्तदा ।
हनुमानब्रवीत्पृष्टस्तदा तान्वानरर्षभान् ॥ ३७ ॥

महेन्द्राचल की रमणीक वनभूमि में जा बैठे और जब वानरों ने उनसे पूँछा तब वे उन वानरश्रेष्ठों से कहने लगे ॥ ३७ ॥

अशोकवनिकासंस्था दृष्टा सा जनकात्मजा ।
रक्ष्यमाणा सुघोराभी राक्षसीभिरनिन्दिता ॥ ३८ ॥

मैंने अशोकवाटिका में बैठी हुई सुन्दरी सीता को देखा। उसकी रखवाली करने को बड़ी भयङ्कर शक्लसूरत की राक्षसियाँ नियुक्त थीं ॥ ३८ ॥

एकवेणीधरा *दीना रामदर्शनलालसा ।
उपवासपरिश्रान्ता जटिला मलिना कृशा ॥ ३९ ॥

वे एक वेणी धारण किए हुए हैं। बड़ी दुःखी हैं और श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन के लिए उत्कण्ठित हैं। उपवास करते करते वे थक गई हैं और उनका शरीर बिलकुल दुबला हो गया है। वे मैली कुचैली बनी रहती हैं। उनके केशों की लटें बन गई हैं ॥ ३९ ॥

ततो दृष्टेति वचनं महार्थममृतोपमम् ।
निशम्य मारुतेः सर्वे मुदिता वानरा भवन् ॥ ४० ॥

"मैंने सीता को देखा"—इस अमृत के तुल्य और महाअर्थयुक्त (अर्थात् कार्यसाधक) वचन हनुमान जी के मुख से निकलते ही समस्त वानरमण्डली आनन्दित हो गई ॥४०॥

क्ष्वेलन्त्यन्ये[1] नदन्त्यन्ये गर्जन्त्यन्ये महाबलाः ।
चक्रुः किलिकिलामन्ये प्रतिगर्जन्ति चापरे ॥ ४१ ॥

उनमें से कोई वानर सिंहनाद करने लगे, कोई बलवान वानर गर्जने लगे, कोई किलकिलाने लगे और कोई दूसरे को गर्जते देख कर स्वयं गर्जने लगे ॥ ४१ ॥

---

१ क्ष्वेलन्ति—सिंहनादं कुर्वन्ति । (गो०) * पाठान्तरे—"बाला" ।

केचिदुच्छ्रितलाङ्गूलाः प्रहृष्टाः कपिकुञ्जराः ।
अञ्चितायतदीर्घाणि लाङ्गूलानि प्रविव्यधुः ॥ ४२ ॥

कोई कोई कपिकुञ्जर पूँछों को खड़ी कर प्रसन्नता प्रकट करने लगे। कोई कोई अपनी लंबी पूँछों को बार बार फटकारने लगे ॥ ४२ ॥

अपरे च हनूमन्तं वानरा वारणोपमम् ।
आप्लुत्य गिरिशृङ्गेभ्यः संस्पृशन्ति स्म हर्षिताः ॥४३॥

हाथी के समान डीलडौल के अन्य वानर, हर्षित हो और पर्वतशिखर से कूद कूद कर हनुमान जी को छूने लगे ॥ ४३ ॥

उक्तवाक्यं हनूमन्तमङ्गदस्तमथाब्रवीत् ।
सर्वेषां हरिवीराणां मध्ये *वाचमनुत्तमाम् ॥ ४४ ॥

हनुमान जी के बोल चुकने पर, अङ्गद ने कहा। अर्थात् सब वीर वानरों के बीच बैठे हुए अङ्गद ने हनुमान जी से ये उत्तम वचन कहे ॥ ४४ ॥

सत्त्वे वीर्ये न ते कश्चित्समो वानर विद्यते ।
यदवप्लुत्य विस्तीर्णं सागरं पुनरागतः ॥ ४५ ॥

हे हनुमान! बल और पराक्रम में तुम्हारे समान और कोई अन्य वानर नहीं है; तुम इतने चौड़े समुद्र को लाँघ गए फिर लाँघ कर लौट भी आए ॥ ४५ ॥

अहो स्वामिनि ते भक्तिरहो वीर्यमहो धृतिः ।
दिष्ट्या दृष्टा त्वया देवी रामपत्नी यशस्विनी ॥ ४६ ॥

---

* पाठान्तरे—"वचनमुत्तमम् ।"

वाह ! तुम्हारी स्वामि सम्बन्धिनी भक्ति का क्या कहना है। वाह ! तुम्हारा बल और वाह तुम्हारा धैर्य ! भाग्य ही से तुम यशस्विनी श्रीरामपत्नी सीता को देख आये हो ॥ ४६ ॥

दिष्ट्या त्यक्ष्यति काकुत्स्थः शोकं सीतावियोगजम् ।
ततोऽङ्गदं हनूमन्तं जाम्बवन्तं च वानराः ॥ ४७ ॥

यह बड़े सौभाग्य की बात है कि, सीता के वियोग से उत्पन्न श्रीरामचन्द्र जी का शोक अब दूर हो जायगा। तदनन्तर वानर, अङ्गद, हनुमान, और जाम्बवान को ॥ ४७ ॥

परिवार्य प्रमुदिता भेजिरे विपुलाः शिलाः ।
श्रोतुकामाः समुद्रस्य लङ्घनं वानरोत्तमाः ॥ ४८ ॥
दर्शनं चापि लङ्कायाः सीताया रावणस्य च ।
तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे हनुमद्वदनोन्मुखाः ॥ ४९ ॥

चारों ओर से घेर और हर्ष में भर, उनके बैठने के लिए बड़ी बड़ी शिलाएँ उठा लाए। वे सब वानर हनुमान जी के मुख से उनके समुद्र लाँघने का तथा लङ्का, सीता और रावण के देखने का वृत्तान्त सुनना चाहते थे। अतः वे सब हाथ जोड़े हनुमान जी की ओर मुख कर बैठ गए ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

तस्थौ तत्राङ्गदः श्रीमान्वानरैर्बहुभिर्वृतः ।
उपास्यमानो विबुधैर्दिवि देवपतिर्यथा ॥ ५० ॥

सुरराज इन्द्र जिस प्रकार देवताओं के बीच बैठते हैं, वैसे ही श्रीमान् अङ्गद जी बहुत से वानरों के बीच बैठे हुए थे ॥ ५० ॥

हनूमता कीर्त्तिमता यशस्विना
तथाङ्गदेनाङ्गदबद्धबाहुना ।
मुदा तदाध्यासितमुन्नतं महन्
महीधराग्रं ज्वलितं श्रियाऽभवत् ॥ ५१ ॥

इति सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥

कीर्तिशाली हनुमान जी और यशस्वी अङ्गद जी, जिनकी दोनों भुजाएँ बाजूबंदों से सुशोभित थीं, हर्ष में भरे बैठे हुए थे, उनके वहाँ बैठने से उस बहुत ऊँचे पर्वत का शिखर, अत्यन्त शोभायमान जान पड़ रहा था ॥ ५१ ॥

सुन्दरकाण्ड का सत्तावनवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—:०:—

अष्टपञ्चाशः सर्गः

—:०:—

ततस्तस्य गिरेः शृङ्गे महेन्द्रस्य महाबलाः ।
हनुमत्प्रमुखाः प्रीतिं हरयो जग्मुरुत्तमाम् ॥ १ ॥

उस समय हनुमान आदि महाबली वानरगण, महेन्द्राचल पर्वत के शिखर पर बैठे हुए अत्यन्त हर्षित हो रहे थे ॥ १ ॥

तं ततः प्रीतिसंहृष्टः प्रीतिमन्तं महाकपिम् ।
जाम्बवान्कार्यवृत्तान्तमपृच्छदनिलात्मजम् ॥ २ ॥

तब हनुमान जी को प्रसन्न देख, जाम्बवान ने पवननन्दन हनुमान जी से उनकी यात्रा का वृत्तान्त पूँछा ॥ २ ॥

कथं दृष्टा त्वया देवी कथं वा तत्र वर्तते ।
तस्यां वा स कथं वृत्तः क्रूरकर्मा दशाननः ॥ ३ ॥

उन्होंने पूँछा कि, हे हनुमान ! यह तो बतलाओ कि, तुमने सीता जी को कैसे देखा और वे वहाँ किस तरह रहती हैं, क्रूरकर्मा रावण उनके साथ कैसा बर्ताव करता है ॥ ३ ॥

तत्त्वतः सर्वमेतन्नः प्रब्रूहि त्वं महाकपे ।
श्रुतार्थाश्चिन्तयिष्यामो भूयः कार्यविनिश्चयम् ॥ ४ ॥

हे हनुमान् ! तुम यह समस्त वृत्तान्त भली भाँति यथावत् कहो जिससे उसे सुनने के बाद, हम आगे का कर्त्तव्य निश्चय कर सकें ॥ ४ ॥

यश्चार्थस्तत्र वक्तव्यो गतैरस्माभिरात्मवान् ।
रक्षितव्यं[1] च यत्तत्र तद्भवान्व्याकरोतु नः ॥ ५ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के पास चलने पर जो बात उनसे ही कहने की हो उसे छोड़ आप और सब हम से कहें ॥ ५ ॥

स नियुक्तस्ततस्तेन सम्प्रहृष्टतनूरुहः ।
प्रणम्य शिरसा देव्यै सीतायै प्रत्यभाषत ॥ ६ ॥

जाम्बवान जी के ऐसे वचन सुन, हनुमान जी के रोंगटे खड़े हो गए। वे सीता देवी को सीस नवा प्रणाम कर, कहने लगे ॥ ६ ॥

प्रत्यक्षमेव भवतां महेन्द्राग्रात्खमाप्लुतः ।
उदधेर्दक्षिणं पारं काङ्क्षमाणः समाहितः ॥ ७ ॥

---

१ रक्षितव्यं—गोप्तव्यं । (गो०)

यह तो आप लोगों के सामने ही की बात है कि, मैं इस महेन्द्राचल के शिखर से, समुद्र के दक्षिण तट पर जाने की इच्छा से, बड़ी सावधानी से उड़ा था ॥ ७ ॥

गच्छतश्च हि मे घोरं विघ्नरूपमिवाभवत् ।
काञ्चनं शिखरं दिव्यं पश्यामि सुमनोहरम् ॥ ८ ॥

जाते जाते रास्ते में एक बड़ा विघ्न सा उपस्थित हुआ। मुझे एक अत्यन्त सुन्दर और काञ्चनमय शिखरयुक्त एक पर्वत देख पड़ा ॥ ८ ॥

स्थितं पन्थानमावृत्य मेने विघ्नं च तं नगम्
उपसंगम्य तं दिव्यं काञ्चनं नगसत्तमम् ॥ ९ ॥

उस पहाड़ को रास्ता रोक कर खड़े देख, मैंने उसे विघ्नरूप समझा। फिर उस सुवर्णमय पर्वतश्रेष्ठ के समीप जा ॥ ९ ॥

कृता मे मनसा बुद्धिर्भेत्तव्योऽयं मयेति च ।
प्रहतं च मया तस्य लाङ्गूलेन महागिरेः ॥ १० ॥
शिखरं सूर्यसङ्काशं व्यशीर्यत सहस्रधा ।
व्यवसायं च तं बुद्ध्वा सहोवाच महागिरिः ॥ ११ ॥
पुत्रेति मधुरां वाणीं मनः प्रह्लादयन्निव ।
पितृव्यं चापि मां विद्धि सखायं मातरिश्वनः ॥ १२ ॥

मैंने अपने मन में विचारा कि, मैं उस पर्वत को तोड़ डालूँ और मैंने ऐसा ही किया। मैंने अपनी पूँछ उस पर ऐसे ज़ोर से मारी कि, उसका सूर्य के समान प्रकाशमान शिखर, हज़ार टुकड़े

हो कर गिर पड़ा। अपने शिखर के टुकड़े टुकड़े हुए देख, वह महागिरि मधुरवाणी से मुझको प्रसन्न करता हुआ बोला—हे पुत्र ! मैं तुम्हारा चाचा हूँ, क्योंकि तुम्हारे पिता पवनदेव मेरे मित्र हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

मैनाक इति विख्यातं निवसन्तं महोदधौ ।
पक्षवन्तः पुरा पुत्र बभूवुः पर्वतोत्तमाः ॥ १३ ॥

मैं मैनाक पर्वत के नाम से प्रसिद्ध हूँ और इस महासागर के भीतर रहता हूँ। हे पुत्र ! पूर्वकाल में पर्वतों के पङ्ख हुआ करते थे ॥ १३ ॥

छन्दतः पृथिवीं चेरुर्बाधमानाः समन्ततः ।
श्रुत्वा नगानां चरितं महेन्द्रः पाकशासनः ॥ १४ ॥

वे इच्छानुसार समस्त पृथिवी पर घूम फिर कर प्रजाओं को कष्ट दिया करते थे। जब यह बात इन्द्र को मालूम पड़ी ॥ १४ ॥

चिच्छेद भगवान्पक्षान्वज्रेणैषां सहस्रशः ।
अहं तु मोक्षितस्तस्मात्तव पित्रा महात्मना ॥ १५ ॥

तब उन्होंने वज्र से हज़ारों पर्वतों के पक्ष काट डाले, किन्तु इस विपत्ति से तुम्हारे महात्मा पिता पवनदेव ने मुझे बचा लिया ॥ १५ ॥

मारुतेन तदा वत्स प्रक्षिप्तोऽस्मि महार्णवे ।
रामस्य च मया साह्यं वर्तितव्यमरिन्दम ॥ १६ ॥

हे वत्स ! उस समय पवनदेव ने मुझे इस महासागर में ढकेल दिया। हे अरिन्दम ! सो मैं श्रीरामचन्द्र जी का साहाय्य करने को तैयार हूँ ॥ १६ ॥

रामो धर्मभृतां श्रेष्ठो महेन्द्रसमविक्रमः ।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य मैनाकस्य महात्मनः ॥ १७ ॥

क्योंकि, श्रीरामचन्द्र जी धर्मात्माओं में श्रेष्ठ हैं और इन्द्र के समान पराक्रमी हैं। उस महात्मा मैनाक के ये वचन सुन ॥१७॥

कार्यमावेद्य तु गिरेरुद्यतं च मनो मम ।
तेन चाहमनुज्ञातो मैनाकेन महात्मना ॥ १८ ॥

मैंने अपने मन का अभिप्राय उसको बतलाया। तब महात्मा मैनाक ने मुझे जाने की अनुमति दी ॥ १८ ॥

स चाप्यन्तर्हितः शैलो मानुषेण वपुष्मता ।
शरीरेण महाशैलः शैलेन च महोदधौ ॥ १९ ॥

और वह पर्वत जिस मनुष्य शरीर को धारण कर मुझ से बातचीत करता था, उसे उसने छिपा लिया और वह विशाल पर्वत समुद्र के जल के भीतर डूब गया ॥ १९ ॥

उत्तमं जवमास्थाय शेषं पन्थानमास्थितः ।
ततोऽहं सुचिरं कालं वेगेनाभ्यगमं पथि ॥ २० ॥

तब मैं बड़ी तेज़ी से शेष मार्ग पूरा करने के लिए आगे बढ़ा और बहुत देर तक उसी चाल से रास्ता तै करता रहा ॥ २० ॥

ततः पश्याम्यहं देवीं सुरसां नाममातरम् ।
समुद्रमध्ये सा देवी वचनं मामभाषत ॥ २१ ॥

तदनन्तर मैंने नागमाता सुरसा को देखा। समुद्र में खड़ी हुई सुरसा, मुझसे वे वचन बोली ॥ २१ ॥

मम भक्षः प्रदिष्टस्त्वममरैर्हरिसत्तम ।
अतस्त्वां भक्षयिष्यामि विहितस्त्वं *हि मे सुरैः ॥२२॥

हे कपिश्रेष्ठ ! तुम तो मेरे भक्ष्य बन कर यहाँ आ गए हो। तुम्हारा पता मुझे देवताओं ने दिया है। अतः मैं तुमको खा जाऊँगी ॥ २२ ॥

एवमुक्तः सुरसया प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः ।
विवर्णवदनो भूत्वा वाक्यं चेदमुदीरयन् ॥ २३ ॥

सुरसा के ऐसे वचन सुन, मैं अत्यन्त विनीत हो और हाथ जोड़ कर तथा मुख फीका कर, उसके सामने खड़ा हो गया और उससे बोला ॥ २३ ॥

रामो दाशरथिः श्रीमान्प्रविष्टो दण्डकावनम् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया च परन्तपः ॥ २४ ॥

कि, महाराज दशरथ के पुत्र परन्तप श्रीरामचन्द्र जी, लक्ष्मण और सीता को साथ ले, दण्डक वन में आए थे ॥ २४ ॥

तस्य सीता हृता भार्या रावणेन दुरात्मना ।
तस्याः सकाशं दूतोऽहं गमिष्ये रामशासनात् ॥ २५ ॥

उनकी भार्या सीता को दुष्ट रावण हर ले गया है। सो मैं श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा से सीता के पास उनका दूत बन कर जाऊँगा ॥ २५ ॥

कर्तुमर्हसि रामस्य साहाय्य विषये सति ।
अथवा मैथिलीं दृष्ट्वा राम चाक्लिष्टकारिणम् ॥ २६ ॥

---

* पाठान्तरे—"चिरस्य मे ।"

तू भी तो उन्हीं के राज्य में रहती है, अतः तू भी इसमें कुछ सहायता दे। अथवा सीता को देख और उनका हाल जब अक्लिष्टकर्मा श्रीरामचन्द्र जी को सुना आऊँ ॥ २६ ॥

आगमिष्यामि ते वक्त्रं सत्यं प्रतिशृणोमि ते ।
एवमुक्ता मया सा तु सुरसा कामरूपिणी ॥ २७ ॥
अब्रवीन्नातिवर्तेत कश्चिदेष वरो मम ।
एवमुक्तः सुरसया दशयोजनमायतः ॥ २८ ॥

तब मैं तेरे मुख में चला आऊँगा (अर्थात् तू मुझको खा डालना) मैं तुझसे यह सत्य सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ। जब मैंने इस प्रकार उससे कहा तब वह कामरूपिणी सुरसा कहने लगी, मुझे उल्लंघन कर कोई नहीं निकल सकता। क्योंकि, मुझे ऐसा ही वर मिला हुआ है। उसके यह कहने पर मैं दस योजन का हो गया ॥ २७ ॥ २८ ॥

ततोऽर्धगुणविस्तारो बभूवाहं क्षणेन तु ।
मत्प्रमाणाधिकं चैव व्यादितं तु मुखं तया ॥ २९ ॥

फिर क्षणभर ही में मैं पन्द्रह योजन का हो गया। परन्तु सुरसा ने मेरे शरीर की लंबाई से अपना मुख और भी अधिक फैलाया ॥ २९ ॥

तद्दृष्ट्वा व्यादितं चास्यं ह्रस्वं ह्यकरवं वपुः ।
तस्मिन्मुहूर्ते च पुनर्बभूवाङ्गुष्ठमात्रकः ॥ ३० ॥

तब मैंने उसको बड़ा भारी मुख खोले हुए देख, अपना शरीर बहुत छोटा कर लिया। यहाँ तक कि, उस समय मैंने अपना शरीर अंगूठे के बराबर कर लिया ॥ ३० ॥

अभिपत्याशु तद्वक्त्रं निर्गतोऽहं ततः क्षणात् ।
अब्रवीत्सुरसा देवी स्वेन रूपेण मां पुनः ॥ ३१ ॥

और उसके मुख में प्रवेश कर मैं उसी क्षण बाहिर निकल आया ! तब सुरसा ने अपना पूर्ववत् रूप धारण कर मुझसे कहा ॥ ३१ ॥

अर्थसिद्ध्यै हरिश्रेष्ठ गच्छ सौम्य यथासुखम् ।
समानय च वैदेहीं राघवेण महात्मना ॥ ३२ ॥

हे सौम्य ! तुम सुखपूर्वक जाओ और अपना काम पूरा करो तथा महात्मा श्रीरामचन्द्र जी से सीता जी को मिलाओ ॥ ३२ ॥

सुखी भव महाबाहो प्रीताऽस्मि तव वानर ।
ततोऽहं साधु साध्वीति सर्वभूतैः प्रशंसितः ॥ ३३ ॥

हे महाबाहो ! तुम सुखी हो। मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। उस समय सब प्राणियों ने वाह ! वाह ! कह कर मेरी प्रशंसा की ॥ ३३ ॥

ततोऽन्तरिक्षं विपुलं प्लुतोऽहं गरुडो यथा ।
छाया मे निगृहीता च न च पश्यामि किञ्चन ॥ ३४ ॥

तदनन्तर मैं गरुड़ जी की तरह बड़ी तेज़ी से रास्ता तै करने लगा। इसी बीच में मेरी छाया को किसी ने पकड़ लिया, किन्तु जब मुझे छाया पकड़ने वाला कोई न देख पड़ा ॥ ३४ ॥

सोऽहं विगतवेगस्तु दिशो दश विलोकयन् ।
न किञ्चित्तत्र पश्यामि येन मेऽपहृता गतिः ॥ ३५ ॥

तब गति रुक जाने से मैं चारों ओर देखने लगा। किन्तु मेरी चाल को रोकने वाला मुझे कोई न देख पड़ा ॥ ३५ ॥

ततो मे बुद्धिरुत्पन्ना किं नाम *गमने मम ।
ईदृशो विघ्न उत्पन्नो रूपं यत्र न दृश्यते ॥ ३६ ॥

तब मैं यह सोचने लगा कि, जिसने मेरे गमन में इस प्रकार का विघ्न डाला है और जिसका रूप भी नहीं दिखलाई देता, उसका क्या नाम है या वह कौन है ॥ ३६ ॥

अधोभागेन मे दृष्टिः शोचता पातिता मया ।
ततोऽद्राक्षमहं भीमां राक्षसीं सलिलेशयाम् ॥ ३७ ॥

यह मैं सोच ही रहा था कि इतने में मेरी दृष्टि नीचे की ओर गयी और मैंने देखा कि, एक भयङ्कर राक्षसी समुद्र के जल में खड़ी है ॥ ३७ ॥

प्रहस्य च महानादमुक्तोऽहं भीमया तया ।
अवस्थितमसंभ्रान्तमिदं वाक्यमशोभनम् ॥ ३८ ॥

उस भयङ्कर राक्षसी ने अट्टहास कर तथा गर्ज कर और निर्भीक हो यह अनुचित वचन मुझसे कहा ॥ ३८ ॥

क्वासि गन्ता महाकाय क्षुधिताया ममेप्सितः ।
भक्षः प्रीणय मे देहं चिरमाहारवर्जितम् ॥ ३९ ॥

हे महाकाय ! तुम मेरे ईप्सित भक्ष्य हो कर अब कहाँ जा सकते हो। मैं बहुत दिनों से भूखी हूँ, सो तुम मेरा भक्ष्य बन कर मेरे शरीर को तृप्त अर्थात् पुष्ट करो ॥ ३९ ॥

---

* पाठान्तरे—"गगने ।"

बाढमित्येव तां वाणीं प्रत्यगृह्णामहं ततः ।
आस्यप्रमाणादधिकं तस्याः कायमपूरयम् ॥ ४० ॥

तब मैंने " बहुत अच्छा " कह कर उसकी बात मान ली और उसके मुख की लंबाई चौड़ाई से कहीं अधिक मैंने अपना शरीर लंबा चौड़ा कर लिया ; जिससे मेरा शरीर उसके मुख ही में न धँसे ॥ ४० ॥

तस्याश्चास्यं महद्भीमं वर्धते मम भक्षणे ।
न च मां *सा तु बुबुधे मम वा निकृतं कृतम् ॥ ४१ ॥

उसने अपना भयङ्कर मुख मुझे खा जाने के लिये बढ़ाया किन्तु न तो वह मेरे सामर्थ्य को जान पाई और न मेरी चतुराई ही को ॥ ४१ ॥

ततोऽहं विपुलं रूपं संक्षिप्य निमिषान्तरात् ।
तस्या हृदयमादाय प्रपतामि नभःस्थलम् ॥ ४२ ॥

मैंने पलक मारते अपने विशाल शरीर को छोटा बना लिया और झपट कर उसका कलेजा निकाल मैं पुनः आकाश में चला आया ॥ ४२ ॥

सा विसृष्टभुजा भीमा पपात लवणाम्भसि ।
मया पर्वतसङ्काशा निकृत्तहृदया सती ॥ ४३ ॥

वह पर्वताकार दुष्टा राक्षसी हृदय के फट जाने से दोनों हाथ फैला खारी समुद्र में डूब गई ॥ ४३ ॥

शृणोमि खगतानां च सिद्धानां चारणैः सह ।
राक्षसी सिंहिका भीमा क्षिप्रं हनुमता हता ॥ ४४ ॥

---

* पाठान्तरे—" साधु । "

तब मैंने आकाशचारी सिद्धों और चारणों को यह कहते सुना कि, हनुमान जी ने भयङ्कर सिंहिका राक्षसी को बात की बात में मार डाला ॥ ४४ ॥

तां हत्वा पुनरेवाहं कृत्यमात्ययिकं स्मरन् ।
गत्वा चाहं महाध्वानं पश्यामि नगमण्डितम् ॥ ४५ ॥

दक्षिणं तीरमुदधेर्लङ्का यत्र च सा पुरी ।
अस्तं दिनकरे याते रक्षसां निलयं पुरम् ॥ ४६ ॥

उसको मार मुझे विलंब हो जाने का स्मरण हो आया । तब बहुत दूर चलने के बाद मुझे पर्वतयुक्त समुद्र का वह दक्षिणतट जिस पर वह लङ्कापुरी बसी हुई थी, देख पड़ा । जब सूर्य छिप गए तब मैं राक्षसों के रहने की पुरी लङ्का में ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

प्रविष्टोऽहमविज्ञातो रक्षोभिर्भीमविक्रमैः ।
तत्र प्रविशतश्चापि कल्पान्तघनसन्निभा ॥ ४७ ॥

उन भयङ्कर पराक्रमी राक्षसों को बिना जनाए, घुसा । किन्तु उस पुरी में घुसने के समय प्रलयकालीन मेघ जैसा ॥ ४७ ॥

अट्टहासं विमुञ्चन्ती नारी काऽप्युत्थिता पुरः ।
जिघांसन्तीं ततस्तां तु ज्वलदग्निशिरोरुहाम् ४८॥

शरीर वाली कोई एक स्त्री अट्टहास करती हुई मेरे सामने आ खड़ी हुई । वह मुझे मार डालना चाहती थी । उसके सिर के केश प्रज्ज्वलित अग्नि की तरह चमचमा रहे थे ॥ ४८ ॥

सव्यमुष्टिप्रहारेण पराजित्य सुभैरवाम् ।
प्रदोषकाले प्रविशन् भीतयाऽहं तयोदितः ॥ ४९ ॥

उस महाभयङ्कर राक्षसी को वाम हाथ के घूँसे से परास्त कर, मैं सन्ध्या समय पुरी में आगे बढ़ा। उस समय उसने भयभीत हो मुझसे कहा ॥ ४९ ॥

अहं लङ्कापुरी वीर निर्जिता विक्रमेण ते।
यस्मात्तस्माद्विजेतासि सर्वरक्षांस्यशेषतः ॥ ५० ॥

हे वीर! मैं इस लङ्कापुरी की अधिष्ठात्री देवी हूँ। तुमने अपने पराक्रम से मुझ को हराया है, सो मानों तुमने समस्त राक्षसों को जीत लिया। अर्थात् तुम अब समस्त लङ्कापुरीवासी राक्षसों को जीत लोगे ॥ ५० ॥

तत्राहं सर्वरात्रं तु विचिन्वञ्जनकात्मजाम्।
रावणान्तःपुरगतो न चापश्यं सुमध्यमाम् ॥ ५१ ॥

मैं वहाँ जानकी जी की खोज में सारी रात घूमता फिरता ही रहा। मैं रावण के रनवास में भी गया; किन्तु वहाँ भी उस सुन्दरी सीता को न पाया ॥ ५१ ॥

ततः सीतामपश्यंस्तु रावणस्य निवेशने।
शोकसागरमासाद्य न पारमुपलक्षये ॥ ५२ ॥

तब तो रावण के अन्तःपुर में सीता जी को न पाकर मैं शोकसागर में ऐसा डूबा कि, मुझे उसका आर पार न देख पड़ा ॥ ५२ ॥

शोचता च मया दृष्टं प्राकारेण समावृतम्।
काञ्चनेन विकृष्टेन गृहोपवनमुत्तमम् ॥ ५३ ॥

सोचते सोचते मुझे सोने के परकोटे से घिरा एक सुन्दर गृहोद्यान देख पड़ा ॥ ५३ ॥

तं प्राकारमवप्लुत्य पश्यामि बहुपादपम् ।
अशोकवनिकामध्ये शिंशुपापादपो महान् ॥५४ ॥

उस परकोटे को नाँघने पर मुझे बहुत से वृत्त देख पड़े। उस अशोक-उपवन में एक बड़ा शीशम का वृत्त था ॥ ५४ ॥

तमारुह्य च पश्यामि काञ्चनं कदलीवनम् ।
अदूरे शिंशुपावृक्षात्पश्यामि वरवर्णिनीम् ॥ ५५ ॥

उस पर चढ़ कर मैंने उसके निकट ही काञ्चनवर्ण कदली वन तथा सुन्दरी सीता को देखा ॥ ५५ ॥

श्यामां कमलपत्राक्षीमुपवासकृशाननाम् ।
तदेकवासःसंवीतां रजोध्वस्तशिरोरुहाम् ॥ ५६ ॥

उपवास करते करते कमलदल जैसे नेत्रों वाली उस श्यामा सीता का मुख उतर गया है। वह केवल एक वस्त्र पहिने हुए है और उसके सिर के बालों में धूल भरी हुई है ॥ ५६ ॥

शोकसन्तापदीनाङ्गीं सीतां भर्तृहिते स्थिताम् ।
राक्षसीभिर्विरूपाभिः क्रूराभिरभिसंवृताम् ॥ ५७ ॥

वह शोकसन्ताप से दीन, पति की हितकामना में तत्पर है। बड़ी बड़ी विकृत रूपवाली और क्रूरस्वभाव की राक्षसियाँ उसे वैसे ही घेरे रहती हैं ॥ ५७ ॥

मांसशोणितभक्षाभिर्व्याघ्रीभिर्हरिणीमिव ।
सा मया राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ ५८ ॥

जैसे मांस खाने वालीं और रक्त पीने वालीं बाघिनें हिरनी को घेर लेती हैं। राक्षसियों के बीच बैठी हुई और बार बार उनके द्वारा डाटी डपटी जाती हुई सीता को मैंने देखा ॥ ५८ ॥

एकवेणीधरा दीना भर्तृचिन्तापरायणा ।
भूमिशय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे ॥ ५९ ॥

शीतकाल में जिस प्रकार कमलिनी का रूप रंग फीका पड़ जाता है, वैसे ही जानकी जी का शरीर भी श्रीरामचन्द्र जी की चिन्ता में फीका पड़ गया है। वह एक वेणी धारण किए हुए है। अत्यन्त दीनभावयुक्त है और ज़मीन में सोया करती है ॥ ५६ ॥

रावणाद्विनिवृत्तार्था मर्तव्यकृतनिश्चया ।
कथंचिन्मृगशावाक्षी तूर्णमासादिता मया ॥ ६० ॥

वह रावण से किसी प्रकार का भी सम्बन्ध न रखती हुई, प्राण दे देने का निश्चय किए हुए है। ऐसी मृगनयनी सीता को मैंने किसी तरह शीघ्र पाया ॥ ६० ॥

तां दृष्ट्वा तादृशीं नारीं रामपत्नीं यशस्विनीम् ।
तत्रैव शिंशुपावृक्षे पश्यन्नहमवस्थितः ॥ ६१ ॥

उन श्रीरामचन्द्र जी की यशस्विनी सीता जी की ऐसी दशा देखता हुआ मैं उसी शीशम के पेड़ पर बैठा हुआ था ॥ ६१ ॥

ततो हलहलाशब्दं काञ्चीनूपुरमिश्रितम् ।
शृणोम्यधिकगम्भीरं रावणस्य निवेशने ॥ ६२ ॥

कि, इतने में पायजेब और बिछुओं की झंकार से मिश्रित गम्भीर शब्द रावण के आवास-स्थान के निकट मुझे सुनाई पड़ा ॥ ६२ ॥

ततोऽहं परमोद्विग्नः स्वं रूपं प्रतिसंहरन् ।
अहं तु शिंशुपावृक्षे पक्षीव गहने स्थितः ॥ ६३ ॥

तब तो मैं घबड़ाया और अपना शरीर छोटा कर पत्ती की तरह सघन पत्तों में छिप कर बैठ गया ॥ ६३ ॥

ततो रावणदाराश्च रावणश्च महाबलः ।
तं देशं समनुप्राप्ता यत्र सीताऽभवत्स्थिता ॥ ६४ ॥

इतने में महाबली रावण और रावण की स्त्रियाँ वहाँ आ पहुँचीं जहाँ सीता जी बैठी हुई थीं ॥ ६४ ॥

तद्दृष्ट्वाऽथ वरारोहा सीता रक्षोमहाबलम् ।
सङ्कुच्योरू स्तनौ पीनौ बाहुभ्यां परिरभ्य च ॥ ६५ ॥

उस महाबली राक्षस रावण को देख सीता जी ने अपने दोनों गोड़ समेट लिए और दोनों बड़े बड़े स्तनों को बाँहों से ढक लिया ॥ ६५ ॥

वित्रस्तां परमोद्विग्नां वीक्षमाणां ततस्ततः ।
त्राणं किञ्चिदपश्यन्तीं वेपमानां तपस्विनीम् ॥ ६६ ॥

अत्यन्त डर के मारे उसका मन बहुत उद्विग्न हो गया और वह इधर उधर ताकने लगी; किन्तु जब उसे अपनी रक्षा के लिए कुछ भी सहारा न देख पड़ा तब वह दुःखियारी डर के मारे काँपने लगी ॥ ६६ ॥

तामुवाच दशग्रीवः सीतां परमदुःखिताम् ।
अवाक्शिराः प्रपतितो बहु मन्यस्व मामिति ॥ ६७ ॥

उस अत्यन्त दुखियारी सीता जी से दशानन ने कहा—मैं सिर झुका कर तुझे प्रणाम करता हूँ, तू मुझे भली भाँति मान ॥ ६७ ॥

यदि चेत्त्वं तु दर्पान्मां नाभिनन्दसि गर्विते ।
द्वौ मासावन्तरं सीते पास्यामि रुधिरं तव ॥ ६८ ॥

हे गर्वीली ! यदि तू अभिमानवश मेरा अभिनन्दन न करेगी; तो दो महीने बाद मैं तेरा लोहू पीऊँगा ॥ ६८ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य रावणस्य दुरात्मनः ।
उवाच परमक्रुद्धा सीता वचनमुत्तमम् ॥ ६९ ॥

दुरात्मा रावण के ये वचन सुन, सीता ने अत्यन्त कुपित हो, उस समय के लिए उपयुक्त ये वचन कहे ॥ ६९ ॥

राक्षसाधम रामस्य भार्याममिततेजसः ।
इक्ष्वाकुकुलनाथस्य स्नुषां दशरथस्य च ॥७० ॥

हे राक्षसाधम ! अमित तेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी की पत्नी और इक्ष्वाकु कुल नाथ महाराज दशरथ की बहू से ॥ ७० ॥

अवाच्यं वदतो जिह्वा कथं न पतिता तव ।
किञ्चिद्वीर्यं तवानार्य यो मां भर्तुरसन्निधौ ॥ ७१ ॥

तू ऐसे दुर्वचन कहता है, सो तेरी जिह्वा क्यों गिर नहीं पड़ती, अरे बर्बर ! क्या यही तेरा बल पराक्रम है कि, तू मुझे मेरे पति के पास से ॥ ७१ ॥

अपहृत्यागतः पाप तेनादृष्टो महात्मना ।
न त्वं रामस्य सदृशो दास्येऽप्यस्य न युज्यसे ॥ ७२ ॥

उनकी अनुपस्थिति में हर लाया । अरे पापी ! तू श्रीराम की बराबरी तो कर ही क्या सकता है, तू उनका टहलुआ बनने योग्य भी तो नहीं है ॥ ७२ ॥

*अजेयः सत्यवाक्छूरो रणश्लाघी च राघवः।
जानक्या परुषं वाक्यमेवमुक्तो दशाननः॥ ७३॥

क्योंकि, श्रीरामचन्द्र जी अजेय, सत्यवादी, शूर और रण-विद्या में बड़े कुशल हैं। सीता जी के ऐसे कठोर वचन सुन कर, दशानन रावण॥ ७३॥

जज्वाल सहसा कोपाच्चितास्थ इव पावकः।
विवृत्य नयने क्रूरे मुष्टिमुद्यम्य दक्षिणम्॥ ७४॥

क्रोध के मारे जल उठा, जैसे चिता की आग धधक उठती है। वह आँखे तरेर और दहिना घूँसा तान॥ ७४॥

मैथिलीं हन्तुमारब्धः स्त्रीभिर्हाहाकृतं तदा।
स्त्रीणां मध्यात्समुत्पत्य तस्य भार्या दुरात्मनः॥ ७५॥

जब सीता को मारने के लिए तैयार हुआ, तब उसके साथ जो स्त्रियाँ थीं, वे हैं! हैं कह कह कर चिल्ला उठीं। उस समय उन्हीं स्त्रियों में उस दुरात्मा की पत्नी ने॥ ७५॥

वरा मन्दोदरी नाम तया स प्रतिषेधितः।
उक्तश्च मधुरां वाणीं तया स मदनार्दितः॥ ७६॥

जिसका नाम मन्दोदरी था और जो बड़ी सुन्दरी थी, उसे मना किया और मीठे वचन कह कह कर, उस कामातुर को समझाया॥ ७६॥

नोट—अशोकवन में मन्दोदरी का नाम नहीं धान्य मालिनी का नाम आया है। देखो सर्ग २२ श्लो० ३६]

सीतया तव किं कार्यं महेन्द्रसमविक्रम।
देवगन्धर्वकन्याभिर्यक्षकन्याभिरेव च॥ ७७॥

---

* पाठान्तरे—"यज्ञीयः सत्यवादी च।"

वह कहने लगी—हे इन्द्र के समान पराक्रमी ! सीता से तुम्हें क्या करना है। तुम्हारे यहाँ तो देवकन्याएँ और गन्धर्व-कन्याएँ मौजूद हैं ॥ ७७ ॥

सार्धं प्रभो रमस्वेह सीतया किं करिष्यसि ।
ततस्ताभिः समेताभिर्नारीभिः स महाबलः ॥ ७८ ॥

सो हे स्वामी ! तुम मेरे साथ और इनके साथ विहार करो, सीता को लेकर क्या करोगे ? तदनन्तर वे सब स्त्रियां मिल कर महाबली रावण को ॥ ७८ ॥

प्रसाद्य सहसा नीतो भवनं स्वं निशाचरः ।
याते तस्मिन्दशग्रीवे राक्षस्यो विकृताननाः ॥ ७९ ॥

इस प्रकार प्रसन्न कर, सहसा उसको घर ले गईं। जब दशानन रावण वहाँ से चला गया, तब विकट रूप वाली राक्षसियाँ ॥ ७९ ॥

सीतां निर्भर्त्सयामासुर्वाक्यैः क्रूरैः सुदारुणैः ।
तृणवद्भाषितं तासां गणयामास जानकी ॥ ८० ॥

बड़े कठोर और क्रूर वचन कह कर, सीता जी को डराने धमकाने लगीं। किन्तु जानकी जी ने उनके धमकाने को तिनके के बराबर भी परवाह न की ॥ ८० ॥

तर्जितं च तदा तासां सीतां प्राप्य निरर्थकम् ।
वृथागर्जितनिश्चेष्टा राक्षस्यः पिशिताशनाः ॥ ८१ ॥

अतः उनका सीता जी को डराना धमकाना सब व्यर्थ हुआ। मांस खाने वाली राक्षसियों का डराना धमकाना तथा अन्य सब प्रयत्न (लोभ आदि दिखाना) विफल गए ॥ ८१ ॥

रावणाय शशंसुस्ताः सीताव्यवसितं महत्[1] ।
ततस्ताः सहिताः सर्वा विहताशा निरुद्यमाः ॥ ८२ ॥
परिक्षिप्य समन्तात्तां निद्रावशमुपागताः ।
तासु चैव प्रसुप्तासु सीता भर्तृहिते रता ॥ ८३ ॥

तब रावण के निकट जा उन्होंने कहा कि, सीता को मरना कबूल है, किन्तु आपका कहना कबूल नहीं। तदनन्तर वे सब की सब हतोत्साह और हतोद्योग हो एवं बहुत थक कर सीता जी के चारों ओर पड़ कर सो गईं। जब वे सो गयीं, तब श्रीरामचन्द्र जी के हित में रत सीता जी ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

विलप्य करुणं दीना प्रशुशोच सुदुःखिता ।
तासां मध्यात्समुत्थाय त्रिजटा वाक्यमब्रवीत् ॥ ८४ ॥

दीनतापूर्वक अत्यन्त दुःखी हो और करुणापूर्ण विलाप कर, अत्यन्त चिन्तित हुईं। एक राक्षसी जिसका नाम त्रिजटा था, उठ बैठी और बोली ॥ ८४ ॥

आत्मानं खादत क्षिप्रं न सीता विनशिष्यति ।
जनकस्यात्मजा साध्वी स्नुषा दशरथस्य च ॥ ८५ ॥

तुम सब अपने आपको भले ही खा डालो; किन्तु सती सीता जी को, जो राजा जनक की बेटी और महाराज दशरथ की पुत्रवधू है, न खा सकेगी ॥ ८५ ॥

स्वप्नो ह्यद्य मया दृष्टो दारुणो रोमहर्षणः ।
रक्षसां च विनाशाय भर्तुरस्या जयाय च ॥ ८६ ॥

---

१ सीताव्यवसितंमहत्—मर्तव्यनतुत्वमङ्गीकर्तव्य इत्येतद्रूपं । (रा०)

क्योंकि आज मैंने एक बड़ा भयङ्कर स्वप्न देखा है। उसके देखने से मेरे रोंगटे खड़े हो गए। उस स्वप्न का फल यह है कि, राक्षसों का नाश और इसके (सीता के) पति की जीत॥ ८६॥

अलमस्मात्परित्रातुं राघवाद्राक्षसीगणम्।
अभियाचाम वैदेहीमेतद्धि मम रोचते॥ ८७॥

सो मुझे तो अब यह अच्छा जान पड़ता है कि, श्रीरामचन्द्र जी के हाथ से बचने के लिए, हम सीता से प्रार्थना करें। अतः अब उसे डरवाओ धमकाओ मत॥ ८७॥

यस्या ह्येवंविधः स्वप्नो दुःखितायाः प्रदृश्यते।
सा दुःखैर्विविधैर्मुक्ता सुखमाप्नोत्यनुत्तमम्॥ ८८॥

क्योंकि, इस प्रकार का स्वप्न जिस दुखियारी स्त्री के विषय में देख पड़ता है, वह विविध प्रकार के दुःखों से छूट कर, उत्तम सुख पाती है॥ ८८॥

प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा।
ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुर्विजयहर्षिता॥ ८९॥

हम लोगों को साष्टाङ्ग प्रणाम से सीता जी निश्चय ही हम पर प्रसन्न हो जायगी। यह सुन वह लजीली बाला सीता अपने पति के विजय की बात सुन हर्षित हुई॥ ८९॥

अवोचद्यदि तत्तथ्यं भवेयं शरणं हि वः।
तां चाहं तादृशीं दृष्ट्वा सीताया दारुणां दशाम्॥ ९०॥

और बोली कि, यदि त्रिजटा का कहना सत्य निकला तो मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी। हनुमान जी कहने लगे हे वानरो! सीता जी की ऐसी दारुण दशा देख॥ ९०॥

चिन्तयामास विश्रान्तो न च मे निर्वृतंमनः ।
संभाषणार्थं च मया जानक्याश्चिन्तितो विधिः ॥ ९१ ॥

कुछ देर तक मैं सोचता रहा, किन्तु मेरे मन का दुःख किसी प्रकार दूर न हुआ। मैं सोच रहा था कि, सीता जी से किस प्रकार वार्तालाप करूँ ॥ ६१ ॥

इक्ष्वाकूणां हि वंशस्तु ततो मम पुरस्कृतः ।
श्रुत्वा तु गदितां वाचं राजर्षिगणपूजिताम् ॥ ९२ ॥

अन्त में मैंने इक्ष्वाकुवंशियों की प्रशंसा की। उन राजर्षियों की विरुदावली को सुन, ॥ ६२ ॥

प्रत्यभाषत मां देवी बाष्पैः पिहितलोचना ।
कस्त्वं केन कथं चेह प्राप्तो वानरपुङ्गव ॥ ९३ ॥

आंखों में आंसू भर सीता देवी ने मुझसे कहा—हे वानर-श्रेष्ठ! तुम कौन हो? किसके भेजे आए हो और कैसे यहाँ आए हो ॥ ६३ ॥

का च रामेण ते प्रीतिस्तन्मे शंसितुमर्हसि ।
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा ह्यहमप्यब्रवं वचः ॥ ९४ ॥

श्रीरामचन्द्र जी से तुम्हारी कैसी प्रीति है? सो सब मुझसे कहो। सीता जी के ये वचन सुन, मैंने भी कहा ॥ ६४ ॥

देवि रामस्य भर्तुस्ते सहायो भीमविक्रमः ।
सुग्रीवो नाम विक्रान्तो वानरेन्द्रो महाबलः ॥ ९५ ॥

देवि! तुम्हारे भर्ता श्रीरामचन्द्र जी के सहायक, महाबली, भीम पराक्रमी सुग्रीव नामक वानरों के राजा हैं ॥ ६५ ॥

तस्य मां विद्धि भृत्यं त्वं हनुमन्तमिहागतम् ।
भर्त्राहं प्रेषितस्तुभ्यं रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥९६ ॥

तुम मुझे उन्हींका सेवक समझो। मेरा नाम हनुमान है और मैं तुम्हारे पति अक्लिष्टकर्मा श्रीरामचन्द्र जी का भेजा हुआ तुम्हारे पास यहाँ आया हूँ ॥ ९६ ॥

इदं च पुरुषव्याघ्रः श्रीमान्दाशरथिः स्वयम् ।
अङ्गुलीयमभिज्ञानमदात्तुभ्यं यशस्विनि ॥ ९७ ॥

हे यशस्विनि ! पुरुषसिंह श्रीमान दशरथनन्दन ने स्वयं तुमको यह अपनी अंगूठी चिन्हानी के लिए भेजी है ॥ ९७ ॥

तदिच्छामि त्वयाऽऽज्ञप्तं देवि किं करवाण्यहम् ।
रामलक्ष्मणयोः पार्श्वं नयामि त्वां किमुत्तरम् ॥ ९८॥

सो हे देवि ! अब मुझे आज्ञा दो कि मैं क्या करूँ ? क्या मैं तुमको श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण के पास ले चलूँ ? सो तुम मेरी इन बातों का क्या उत्तर देती हो ? ॥ ९८ ॥

एतच्छ्रुत्वा विदित्वा च सीता जनकनन्दिनी ।
आह रावणमुत्साद्य राघवो मां नयत्विति ॥ ९९ ॥

यह सुन कर और सब हाल जान कर, जनकनन्दिनी सीता जी कहने लगीं श्रीरामचन्द्र जी रावण को मार मुझे यहाँ से ले जायँ ॥ ९९ ॥

प्रणम्य शिरसा देवीमहमार्यामनिन्दिताम् ।
राघवस्य मनोह्लादमभिज्ञानमयाचिषम् ॥ १०० ॥

हनुमान जी बोले—हे वानरो! तब मैंने अनिन्दिता सती सीता जी को सिर झुका कर प्रणाम किया और श्रीरामचन्द्र जी को आनन्दित करने वाली कोई चिन्हानी माँगी ॥ १०१ ॥

अथ मामब्रवीत्सीता गृह्यतामयमुत्तमः ।
मणिर्येन महाबाहू रामस्त्वां बहु मन्यते ॥ १०१ ॥

तब सीता जी ने मुझसे कहा—तुम इस उत्तम चूड़ामणि को लो। इससे महा बाहु श्रीरामचन्द्र जी तुमको बहुत मानेंगे ॥ १०१ ॥

इत्युक्त्वा तु वरारोहा मणिप्रवरमद्भुतम् ।
प्रायच्छत्परमोद्विग्ना वाचा मां सन्दिदेश ह ॥ १०२ ॥

यह कह कर सुन्दरी सीता जी ने वह अद्भुत उत्तम मणि मुझे दी और अत्यन्त उद्विग्न हो मुझसे श्रीरामचन्द्र जी के लिए यह सँदेशा कहा ॥ १०२ ॥

ततस्तस्यै प्रणम्याहं राजपुत्र्यै समाहितः ।
प्रदक्षिणं परिक्राममिहाभ्युद्गतमानसः ॥ १०३ ॥

तब मैंने सावधानतापूर्वक राज पुत्री सीता जी को प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा कर, यहाँ आने को मैं तैयार हुआ ॥ १०३ ॥

उक्तोऽहं पुनरेवेदं निश्चित्य मनसा तया ।
हनुमन्मम वृत्तान्तं वक्तुमर्हसि राघवे ॥ १०४ ॥

तब सीता जी ने अपने मन में कोई बात स्थिर कर, पुनः मुझसे कहा—हे हनुमान! तुम मेरा हाल श्रीरामचन्द्र जी से कहना ॥ १०४ ॥

यथा श्रुत्वैव न चिरात्तावुभौ रामलक्ष्मणौ ।
सुग्रीवसहितौ वीरावुपेयातां तथा कुरु ॥ १०५ ॥

और ऐसा करना जिससे वे दोनों वीर राजकुमार श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण अपने साथ सुग्रीव को ले, शीघ्र ही यहां आ पहुँचे ॥ १०५ ॥

यद्यन्यथा भवेदेतद्द्वौ मासौ जीवितं मम ।
न मां द्रक्ष्यति काकुत्स्थो म्रिये साऽहमनाथवत् ॥१०६॥

यदि वे शीघ्र न आए तो जान लो मेरे जीवन की अवधि केवल दो मास की है । दो मास बाद मैं अनाथिनी की तरह मर जाऊँगी और फिर श्रीरामचन्द्र जी मुझे देख न पावेंगे ॥ १०६ ॥

तच्छ्रुत्वा करुणं वाक्यं क्रोधो मामभ्यवर्तत ।
उत्तरं च मया दृष्टं कार्यशेषमनन्तरम् ॥ १०७ ॥

सीता के ऐसे करुणवचन सुन मुझको बड़ा क्रोध उपजा और इस काम के आगे का अपना कर्त्तव्य मैंने सोचा ॥ १०७ ॥

ततोऽवर्धत मे कायस्तदा पर्वतसन्निभः ।
युद्धाकाङ्क्षी वनं तच्च विनाशयितुमारभे ॥ १०८ ॥

मेरा शरीर पर्वताकार हो गया । युद्ध की अभिलाषा से मैंने रावण के उस वन को नष्ट करना आरम्भ किया ॥ १०८ ॥

तद्भग्नं वनषण्डं तु भ्रान्तत्रस्तमृगद्विजम् ।
प्रतिबुद्धा निरीक्षन्ते राक्षस्यो विकृताननाः ॥ १०९ ॥

उस वनप्रदेश को नष्ट करने से वहाँ जो मृग और पक्षी थे वे डर के मारे व्याकुल हो गए और जरमुँही राक्षसियाँ जाग गईं तथा वे उस भग्न वन की दुर्दशा निहारने लगीं ॥ १०९ ॥

मां च दृष्ट्वा वने तस्मिन्समागम्य ततस्ततः ।
ताः समभ्यागताः क्षिप्रं रावणायाचचक्षिरे ॥ ११० ॥

मुझे वहाँ देख, वे सब इधर उधर मिल कर भाग गईं और रावण के पास गईं और उससे तुरन्त सारा हाल कहा ॥ ११० ॥

राजन्वनमिदं दुर्गं तव भग्नं दुरात्मना ।
वानरेण ह्यविज्ञाय तव वीर्यं महाबलः ॥ १११ ॥

रावण से उन्होंने कहा—"हे रावण! तुम्हारे बलवीर्य को न जानकर, एक दुरात्मा वानर ने तुम्हारा दुर्गम वन नष्ट कर डाला है ॥ १११ ॥

दुर्बुद्धेस्तस्य राजेन्द्र तव विप्रियकारिणः ।
वधमाज्ञापय क्षिप्रं यथाऽसौ विलयं व्रजेत् ॥ ११२ ॥

हे राजेन्द्र! तुम्हारा अप्रियकार्य करने वाले वानर की यह बड़ी दुर्बुद्धि है। तुम उसके वध की शीघ्र आज्ञा दो, जिससे वह यहाँ से भाग न जाय ॥ ११२ ॥

तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रेण विसृष्टा भृशदुर्जयाः ।
राक्षसाः किङ्करा नाम रावणस्य मनोनुगाः ॥ ११३ ॥

यह सुन राक्षसराज रावण ने अत्यन्त दुर्जेय और उसकी इच्छानुसार कार्य करने वाले किङ्कर नाम धारी राक्षसों को आज्ञा दी ॥ ११३ ॥

तेषामशीतिसाहस्रं शूलमुद्गरपाणिनाम् ।
मया तस्मिन्वनोद्देशे परिघेण निषूदितम् ॥ ११४ ॥

उनकी संख्या अस्सी हज़ार थी और उनके हाथों में त्रिशूल तथा मुग्दर थे। मैंने उस अशोक वन ही में एक परिघ (बेंड़े) से उनको मार डाला ॥ ११४ ॥

तेषां तु हतशेषा ये ते गत्वा लघुविक्रमाः ।
निहतं च महत्सैन्यं रावणायाचचक्षिरे ॥ ११५ ॥

उनमें से जो मारे जाने से बच गए थे, उन्होंने भाग कर रावण को उस महती सेना के नष्ट किए जाने का संवाद सुनाया ॥ ११५ ॥

ततो मे बुद्धिरुत्पन्ना चैत्यप्रासादमाक्रमम् ।
तत्रस्थान्राक्षसान्हत्वा शतं स्तम्भेन वै पुनः ॥ ११६ ॥

इतने में मुझे मण्डपाकार भवन को नष्ट करने की सूझ पड़ी। सो मैंने उसे उजाड़ कर उसी के एक खंभे से उस भवन के सौ राक्षस रक्षकों को मार डाला ॥ ११६ ॥

ललामभूतो लङ्कायाः स च विध्वंसितो मया ।
ततः प्रहस्तस्य सुतं जम्बुमालिनमादिशत् ॥ ११७ ॥

वह मण्डपाकार भवन लङ्का का एक भूषण था, उसे मैंने उजाड़ दिया। तब रावण ने प्रहस्तपुत्र जम्बुमाली को भेजा ॥ ११७ ॥

राक्षसैर्बहुभिः सार्धं घोररूपैर्भयानकैः ।
तमहं बलसंपन्नं राक्षसं रणकोविदम् ॥ ११८ ॥

वह बड़े कड़े भयङ्कर रूपधारी बहुत से राक्षसों को साथ ले आया। मैंने बड़ी सेना लेकर आए हुए रणचतुर राक्षस को ॥ ११८ ॥

परिघेणातिघोरेण सूदयामि सहानुगम् ।
तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्तु मन्त्रिपुत्रान्महाबलान् ॥ ११९॥
पदातिबलसंपन्नान्प्रेषयामास रावणः ।
परिघेणैव तान्सर्वान्नयामि यमसादनम् ॥ १२० ॥

उसको सेनासहित अति घोर परिघ (बेंड़े) से मार गिराया। जम्बुमाली के मारे जाने का संवाद सुन, राक्षसराज रावण ने महाबली (सात) मंत्रिपुत्रों को पैदल राक्षसों की सेना के साथ भेजा। मैंने उसी बेंड़े से उन सब को भी यमालय भेज दिया ॥ ११९ ॥ १२० ॥

मन्त्रिपुत्रान्हताञ्श्रुत्वा समरे लघुविक्रमान् ।
पञ्च सेनाग्रगाञ्शूरान्प्रेषयामास रावणः ॥ १२१ ॥

मंत्रिपुत्रों के मारे जाने का वृत्तान्त सुन रावण ने पाँच शूरवीर सेनापतियों को, जो रणविद्या में बड़े चतुर और फुर्तीले थे, भेजा ॥ १२१ ॥

तानहं सहसैन्यान्वै सर्वानेवाभ्यसूदयम् ।
ततः पुनर्दशग्रीवः पुत्रमक्षं महाबलम् ॥ १२२ ॥
बहुभी राक्षसैः सार्धं प्रेषयामास रावणः ।
तं तु मन्दोदरीपुत्रं कुमारं रणपण्डितम् ॥ १२३ ॥

सहसा खं समुत्क्रान्तं पादयोश्च गृहीतवान् ।
चर्मासिनं शतगुणं भ्रामयित्वा व्यपेषयम् ॥ १२४ ॥

मैंने उन पाँचों को उनकी समस्त सेना सहित मार डाला । तब दशानन रावण ने अपने महाबली पुत्र अक्षयकुमार को, बहुत से राक्षसों के साथ भेजा । मैंने सहसा आकाश में जा, ढाल तलवार लिये हुए मन्दोरी के रणपण्डित कुमार को, पैर पकड़ कर सैकड़ों बार घुमाया और ज़मीन पर दे मारा ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

तमक्षमागतं भग्नं निशम्य स दशाननः ।
तत इन्द्रजितं नाम द्वितीयं रावणः सुतम् ॥ १२५ ॥

अक्षयकुमार के मारे जाने का वृत्तान्त सुन, रावण ने अपने दूसरे पुत्र इन्द्रजीत को ॥ १२५ ॥

व्यादिदेश सुसंक्रुद्धो बलिनं युद्धदुर्मदम् ।
तच्चाप्यहं बलं सर्वं तं च राक्षसपुङ्गवम् ॥ १२६ ॥
नष्टौजसं रणे कृत्वा परं हर्षमुपागमम् ।
महता हि महाबाहुः प्रत्ययेन महाबलः ॥ १२७ ॥
प्रेषितो रावणेनैव सह वीरैर्मदोत्कटैः ।
सोऽविषह्यं हि मां बुद्ध्वा स्वसैन्यं चावमर्दितम् ॥१२८॥

जो बड़ा बलवान और रणदुर्मद था अत्यन्त क्रुद्ध हो, आज्ञा दी । सेना सहित उस राक्षसश्रेष्ठ का भी पराक्रम नष्ट कर, मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई । महाबाहु महाबली मेघनाद पर पूर्ण विश्वास कर रावण ने, उसे लड़ने के लिए भेजा था और उसके

साथ बड़े बड़े वीर कर दिए थे। किन्तु इन्द्रजीत ने अपनी सेना को मर्दित देख और मुझे अपने मान का न जान ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

ब्राह्मेणास्त्रेण स तु मां प्राबध्नाच्चातिवेगितः ।
रज्जुभिश्चाभिबध्नन्ति ततो मां तत्र राक्षसाः ॥ १२९ ॥

बड़ी शीघ्रता से ब्रह्मास्त्र से मुझे बांध लिया। तदनन्तर राक्षस लोगों ने मुझे रस्सों से जकड़ कर बाँधा ॥ १२९ ॥

रावणस्य समीपं च गृहीत्वा मामुपानयन् ।
दृष्ट्वा सम्भाषितश्चाहं रावणेन दुरात्मना ॥ १३० ॥

और मुझे पकड़ कर रावण के पास ले गए। वहाँ मैंने दुरात्मा रावण को देखा और उससे बातचीत भी की ॥ १३० ॥

पृष्टश्च लङ्कागमनं राक्षसानां च तं वधम् ।
तत्सर्वं च मया तत्र सीतार्थमिति जल्पितम् ॥ १३१ ॥

रावण ने मुझसे लङ्का में आने का तथा राक्षसों के मारने का कारण पूँछा। तब मैंने यही कहा कि, ये सब मैंने सीता के लिए ही किया है ॥ १३१ ॥

अस्याहं दर्शनाकाङ्क्षी प्राप्तस्त्वद्भवनं विभो ।
मारुतस्यौरसः पुत्रो वानरो हनुमानहम् १३२ ॥

हे महाराज! मैं उसीको देखने तुम्हारे भवन में आया हूँ। मैं पवनदेव का औरस पुत्र हूँ और हनुमान मेरा नाम है ॥ १३२ ॥

रामदूतं च मां विद्धि सुग्रीवसचिवं कपिम् ।
सोऽहं दूत्येन रामस्य त्वत्सकाशमिहागतः १३३ ॥

मुझको तुम श्रीरामचन्द्र जी का दूत और सुग्रीव का मंत्री जानो। मैं श्रीरामचन्द्र जी का दूत बन कर तुम्हारे पास आया हूँ॥ १३३॥

सुग्रीवश्च महातेजाः स त्वां कुशलमब्रवीत्।
धर्मार्थकामसहितं हितं पथ्यमुवाच च॥ १३४॥

महातेजस्वी सुग्रीव ने तुमसे कुशल कहा है और धर्म, अर्थ और काम से युक्त तथा हितकर और उचित यह संदेस भी तुम्हारे लिए भेजा है॥ १३४॥

वसतो ऋष्यमूके मे पर्वते विपुलद्रुमे।
राघवो रणविक्रान्तो मित्रत्वं समुपागतः॥१३५॥

विपुल वृक्षों से युक्त ऋष्यमूक पर्वत पर रहते समय, मेरी मित्रता, रणपराक्रमी श्रीरामचन्द्र जी से हो गई है॥ १३५॥

तेन मे कथितं राज्ञा भार्या मे रक्षसा हृता।
तत्र साहाय्यमस्माकं कार्यं सर्वात्मना त्वया॥ १३६॥

उन्होंने मुझसे कहा मेरी स्त्री को राक्षस हर कर ले गया है। सो तुमको इस काम में सब प्रकार से हमारी सहायता करनी चाहिए॥ १३६॥

मया च कथितं तस्मै वालिनश्च वधं प्रति।
तत्र साहाय्यहेतोर्मे समयं कर्तुमर्हसि १३७॥

तब मैंने वालि के वध के लिए उनसे कहा और कहा कि, इस कार्य में मेरी सहायता करने का समय नियत कर दो॥ १३७॥

वलिना हृतराज्येन सुग्रीवेण सह प्रभुः।
चक्रेऽग्निसाक्षिकं सख्यं राघवः सहलक्ष्मणः॥ १३८॥

वालि द्वारा हरे हुए राज्य वाले सुग्रीव के साथ, अग्नि के सामने श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण के साथ मेरी मैत्री हो गई ॥ १३८ ॥

तेन वालिनमुत्पाट्य शरेणैकेन संयुगे ।
वानराणां महाराजः कृतः स प्लवतां प्रभुः ॥ १३९ ॥

तदनन्तर युद्ध में एक ही बाण चला कर, श्रीरामचन्द्र जी ने वालि को मार डाला और सुग्रीव को वानरों का राजा बनाया ॥ १३९ ॥

तस्य साहाय्यमस्माभिः कार्यं सर्वात्मना त्विह ।
तेन प्रस्थापितस्तुभ्यं समीपमिह धर्मतः ॥ १४० ॥

अब उनकी सब प्रकार से सहायता करना हमको उचित है अतः उन्होंने मित्रधर्म को निबाहते हुए, धर्मपूर्वक मुझे दूत बना कर, तुम्हारे पास भेजा है ॥ १४० ॥

क्षिप्रमानीयतां सीता दीयतां राघवाय च ।
यावन्न हरयो वीरा विधमन्ति बलं तव ॥ १४१ ॥

वीर वानरों द्वारा अपनी सेना का नाश होने के पूर्व ही तुम सीता को लाकर तुरन्त श्रीरामचन्द्र जी को देदो ॥ १४१ ॥

वानराणां प्रभावो हि न केन विदितः पुरा ।
देवतानां सकाशं च ये गच्छन्ति निमन्त्रिताः ॥ १४२ ॥

अब तक, वानरों का प्रभाव किसी से छिपा नहीं है। वे देवताओं से निमंत्रण पा कर उनके पास (उनके साहाय्य के लिए) जाते हैं ॥ १४२ ॥

इति वानरराजस्त्वामाहेत्यभिहितो मया ।
मामैक्षत ततः क्रुद्धश्चक्षुषा प्रदहन्निव ॥ १४३ ॥

हे रावण ! इस प्रकार वानरराज ने तुमसे संदेस कहलाया है ; सो मैंने तुमसे कह दिया। हनुमान जी ने वानरों से कहा कि, यह सुन रावण ने क्रोध में भर मेरी ओर ऐसे घूर कर देखा, मानों मुझे वह भस्म कर डालेगा ॥ १४३ ॥

तेन वध्योऽहमाज्ञप्तो रक्षसा रौद्रकर्मणा ।
मत्प्रभावमविज्ञाय रावणेन दुरात्मना ॥ १४४ ॥

भयङ्कर कर्म करने वाले उस राक्षस ने मेरे वध की आज्ञा दी। क्योंकि, वह दुरात्मा रावण मेरा प्रभाव तो जानता ही न था ॥ १४४ ॥

ततो विभीषणो नाम तस्य भ्राता महामतिः ।
तेन राक्षसराजोऽसौ याचितो मम कारणात् ॥ १४५ ॥

तदनन्तर उसके एक बड़े समझदार भाई ने, जिसका नाम विभीषण है, मुझे बचाने के लिए रावण से प्रार्थना की ॥ १४५ ॥

नैव राक्षसशार्दूल त्यज्यतामेष निश्चयः ।
राजशास्त्रव्यपेतो हि मार्गः संसेव्यते त्वया ॥ १४६ ॥

और कहा कि, हे राक्षसशार्दूल ! आप इस निश्चय को त्याग दीजिए। क्योंकि, यह तुम्हारा निश्चय राजनीति-शास्त्र के विरुद्ध है अथवा तुम राजनीति के विरुद्ध मार्ग पर चलते हो ॥ १४६ ॥

दूतवध्या न दृष्टा हि राजशास्त्रेषु राक्षस ।
दूतेन वेदितव्यं च यथार्थं हितवादिना ॥ १४७ ॥

हे राक्षस ! राजनीति के किसी भी शास्त्र में दूत का वध नहीं देख पड़ता। हितवादी दूत को अपने स्वामी का ज्यों का त्यों संदेश कहना ही पड़ता है ॥ १४७ ॥

सुमहत्यपराधेऽपि दूतस्यातुलविक्रम ।
विरूपकरणं दृष्टं न वधोऽस्तीह शास्त्रतः ॥१४८॥

हे अतुल पराक्रमी ! भले ही दूत बड़े से बड़ा अपराध ही क्यों न कर डाले, तो भी शास्त्रानुसार उसका वध उचित नहीं । हाँ, उसकी नाक या कान काट कर उसको विरूप करने की व्यवस्था तो शास्त्र में है ॥ १४८ ॥

विभीषणेनैवमुक्तो रावणः सन्दिदेश तान् ।
राक्षसानेतदेवास्य लाङ्गूलं दह्यतामिति ॥ १४९ ॥

जब विभीषण ने इस प्रकार समझाया, तब रावण ने राक्षसों को आज्ञा दी कि, उसकी पूँछ जला दो ॥ १४९ ॥

ततस्तस्य वचः श्रुत्वा मम पुच्छं समन्ततः ।
वेष्टितं शणवल्कैश्च जीर्णैः कार्पासजैः पटैः ॥ १५० ॥

रावण की आज्ञा सुन राक्षसों ने मेरी पूँछ में सन के कपड़े तथा पुराने सूती कपड़े (गूदड़) लपेट दिए ॥ १५० ॥

राक्षसाः सिद्धसन्नाहास्ततस्ते चण्डविक्रमाः ।
तदादहन्त मे पुच्छं निघ्नन्तः काष्ठमुष्टिभिः ॥ १५१ ॥

कवच शस्त्रादि धारण किए हुए प्रचण्ड विक्रमी राक्षसों ने मुझे लकड़ी के डंडों और मूकों से मारा और मेरी पूँछ में आग लगा दी ॥ १५१ ॥

बद्धस्य बहुभिः पाशैर्यन्त्रितस्य च राक्षसैः ।
ततस्ते राक्षसाः शूरा बद्धं मामग्निसंवृतम् ॥ १५२ ॥

राक्षसों ने मुझे खूब जकड़ कर बहुत सी रस्सियों से बाँधा और उन्होंने मुझे पीड़ा भी बहुत दी, तथा मुझ बँधे हुए की पूँछ में आग लगा दी ॥ १५२ ॥

[नोट—आधुनिक कोई कोई तर्कवादी लेखक हनुमान जी के पूँछ का होना नहीं बतलाते किन्तु इस तत्कालीन इतिहास में हनुमान जी अपनी पूँछ का उल्लेख स्वयं करते हैं। ठीक ही है जिनकी स्वयं पूँछ नहीं वे औरों की पूँछ क्यों मानने लगे !]

अघोषयन्राजमार्गे नगरद्वारमागताः ।
ततोऽहं सुमहद्रूपं संक्षिप्य पुनरात्मनः ॥ १५३ ॥

समस्त नगरी के राजमार्गों में मुझे घुमा कर मेरे अपराध की घोषणा की। जब मैं नगरी के द्वार पर पहुँचा; तब मैंने अपने उस बड़े विशाल शरीर को छोटा कर लिया ॥ १५३ ॥

विमोचयित्वा तं बन्धं प्रकृतिस्थः स्थितः पुनः ।
आयसं परिघं गृह्य तानि रक्षांस्यसूदयम् ॥ १५४ ॥

इससे मेरे बन्धन अपने आप ढीले पड़ कर गिर पड़े। तब मैंने अपने को ज्यों का त्यों बना लिया और लोहे का एक बेंडा उठा, उन राक्षसों को (जिन्होंने मुझे बाँध कर पुरी में घुमाया था) मार डाला ॥ १५४ ॥

ततस्तन्नगरद्वारं वेगेनाप्लुतवानहम् ।
पुच्छेन च प्रदीप्तेन तां पुरीं साट्टगोपुराम् ॥ १५५ ॥

नगरद्वार को वेग से लाँघ कर मैंने अपनी पूँछ की आग से, भवनों और फाटकों सहित उस पुरी को ॥ १५५ ॥

दहाम्यहमसम्भ्रान्तो युगान्ताग्निरिव प्रजाः ।
ततो मे ह्यभवत्त्रासो लङ्कां दग्ध्वा समीक्ष्य तु ॥१५६॥

उसी तरह जला दिया, जिस तरह प्रलयकालीन अग्नि प्रजाओं को जलाता है। लङ्का को जली हुई देख, मेरे मन में बड़ा भय उत्पन्न हुआ ॥ १५६ ॥

विनष्टा जानकी व्यक्तं न ह्यदग्धः प्रदृश्यते।
लङ्कायां कश्चिदुद्देशः सर्वा भस्मीकृता पुरी ॥ १५७ ॥

मैंने विचारा कि, लङ्का में ऐसा कोई स्थान नहीं जो भस्म न हुआ हो, सो स्पष्ट है कि, इसके साथ सीता भी भस्म हो गयी ॥ १५७ ॥

दहता च मया लङ्कां दग्धा सीता न संशयः।
रामस्य हि महत्कार्यं मयेदं वितथीकृतम् ॥ १५८ ॥

लङ्का को भस्म कर मैंने सीता को भी जला डाला इसमें सन्देह नहीं। ऐसा कर के मैंने श्रीरामचन्द्र जी का काम बिगाड़ डाला ॥ १५८ ॥

इति शोकसमाविष्टश्चिन्तामहमुपागतः।
अथाहं वाचमश्रौषं चारणानां शुभाक्षराम् ॥ १५९ ॥

इस प्रकार मैं चिन्तित हो रहा था कि, इतने में मैंने चारणों के शुभ वचन सुने ॥ १५९ ॥

जानकी न च दग्धेति विस्मयोदन्तभाषिणाम्।
ततो मे बुद्धिरुत्पन्ना श्रुत्वा तामद्भुतां गिरम् ॥१६०॥
अदग्धा जानकीत्येव निमित्तैश्चोपलक्षिता।
दीप्यमाने तु लाङ्गूले न मां दहति पावकः ॥ १६१॥

वे कह रहे थे कि, देखो, इस वानर ने कैसा अद्भुत कार्य किया कि, इस आग से जानकी जी नहीं जलीं। उस समय ऐसी अद्भुत बात सुन तथा अन्य शुभ शकुनों को देख, मैंने जाना कि, जानकी जी दग्ध नहीं हुई। पहिले भी एक अद्भुत

बात हुई थी कि, जब मेरी पूँछ जलाई गई तब मैं नहीं जला ॥ १६० ॥ १६१ ॥

हृदयं च प्रहृष्टं मे वाताः सुरभिगन्धिनः ।
तैर्निमित्तैश्च दृष्टार्थैः कारणैश्च महागुणैः ॥ १६२ ॥

मेरा मन प्रसन्न था, पवन भी सुगन्धयुक्त चल रहा था। इन शुभशकुनों और महाफलप्रद कारणों से ॥ १६२ ॥

ऋषिवाक्यैश्च सिद्धार्थैरभवं हृष्टमानसः ।
पुनर्दृष्ट्वा च वैदेहीं विसृष्टश्च तया पुनः ॥ १६३ ॥

और सफल ऋषिवाक्यों से मेरा मन प्रसन्न हो गया। मैंने पुनः जा कर जानकी जी को अपनी आँखों से देखा और उनसे विदा हुआ ॥ १६३ ॥

ततः पर्वतमासाद्य तत्रारिष्टमहं पुनः ।
प्रतिप्लवनमारेभे युष्मद्दर्शनकाङ्क्षया ॥ १६४ ॥

तदनन्तर मैं पुनः उसी अरिष्ट नामक पर्वत पर पहुँचा और तुम सब लोगों को देखने की आकांक्षा से मैंने वहाँ से उड़ान भरना आरम्भ किया ॥ १६४ ॥

ततः पवनचन्द्रार्कसिद्धगन्धर्वसेवितम् ।
पन्थानमहमाक्रम्य भवतो दृष्टवानिह ॥ १६५ ॥

तदुपरान्त मैं पवन, चन्द्र, सूर्य, सिद्ध और गन्धर्वों से सेवित आकाशमार्ग से चला और यहाँ आकर आप लोगों के दर्शन किए ॥ १६५ ॥

[नोट—जो लेखक हनुमान जी का लङ्का को समुद्र तैर कर और रास्ते के टापुओं पर दम लेते हुए जाना लिखते हैं वे क्या इस श्लोक के

अर्थ पर विचार करेंगे। पवन, चन्द्र, सूर्य और गन्धर्वों से सेवित मार्ग से (अर्थात् आकाश से) हनुमान जी का लङ्का से लौटना इस श्लोक से सिद्ध है। यदि हनुमान जी समुद्र को तैर कर लङ्का में पहुँचे थे, तो उन्हें तैर कर ही लौट कर आना भी था। किन्तु इस बात का स्पष्टीकरण स्वयं हनुमान जी की उक्ति से हो जाता है।]

राघवस्य प्रभावेण भवतां चैव तेजसा।
सुग्रीवस्य च कार्यार्थं मया सर्वमनुष्ठितम् ॥१६६॥

श्रीरामचन्द्र जी की कृपा और आप लोगों के प्रताप से, सुग्रीव के काम को पूरा करने के लिए मैंने यह सब किया ॥१६६॥

एतत्सर्वं मया तत्र यथावदुपपादितम्।
अत्र यन्न कृतं शेषं तत्सर्वं क्रियतामिति ॥१६७॥

इति अष्टपञ्चाशः सर्गः॥

लङ्का में जो कुछ मैंने किया था वह सब ज्यों का त्यों मैंने आप लोगों के सामने वर्णन किया, अब जो और कोई कमी यहाँ रह गई हो, उसे आप लोग पूरा कर लें ॥१६७॥

सुन्दरकाण्ड का अट्ठावनवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

एकोनषष्टितमः सर्गः

—*—

एतदाख्याय तत्सर्वं हनुमान्मारुतात्मजः।
भूयः समुपचक्राम वचनं वक्तुमुत्तरम् ॥१॥

इस प्रकार समस्त वृत्तान्त कह, पवननन्दन हनुमान जी फिर और आगे कहने लगे ॥१॥

सफलो राघवोद्योगः सुग्रीवस्य च सम्भ्रमः[1] ।
शीलमासाद्य सीताया मम च प्रीणितं मनः ॥२॥

श्रीरामचन्द्र जी का उद्योग और सुग्रीव का उत्साह सफल हुआ। श्रीरामचन्द्र जी में सीता की निष्ठा देख, मेरा मन प्रसन्न हो गया ॥२॥

तपसा धारयेल्लोकान्क्रुद्धो वा निर्दहेदपि ।
सर्वथातिप्रवृद्धोऽसौ रावणो राक्षसाधिपः ॥३॥

सीता अपने तपोबल से समस्त लोकों को धारण कर सकती हैं और यदि वे क्रुद्ध हो जायँ, तो वे समस्त लोकों को जला कर भस्म भी कर सकती हैं। राक्षसराज रावण भी तपोबल से सब प्रकार चढ़ा बढ़ा है ॥३॥

तस्य तां स्पृशतो गात्रं तपसा न विनाशितम् ।
न तदग्निशिखा कुर्यात्संस्पृष्टा पाणिना सती ॥४॥
जनकस्यात्मजा कुर्याद्यत्क्रोधकलुषीकृता ।
जाम्बवत्प्रमुखान्सर्वाननुज्ञाप्य महाहरीन् ॥५॥

इसीसे तो सीता का शरीर स्पर्श करते समय अपने तपोबल से वह नाश को प्राप्त नहीं हुआ। पतिव्रता जानकी क्रोध में भर जो कुछ कर सकती हैं वह हाथ से छूने पर भी अग्नि की ज्वाला नहीं कर सकती। जाम्बवान इत्यादि मुख्य मुख्य कपियों की आज्ञा से ॥४॥५॥

अस्मिन्नेवंगते कार्ये भवतां च निवेदिते ।
न्याय्यं स्म सह वैदेह्या द्रष्टुं तौ पार्थिवात्मजौ ॥६॥

---

१ सम्भ्रमः—उत्साह इत्यर्थः। (रा०)

इस प्रकार के कार्य में, जो मैं अभी आप लोगों के सामने निवेदन कर चुका हूँ, उचित तो यही जान पड़ता है कि, हम लोग सीता को लेकर उन दोनों राजकुमारों से मिलें ॥६॥

अहमेकोऽपि पर्याप्तः सराक्षसगणां पुरीम् ।
तां लङ्कां तरसा हन्तुं रावणं च महाबलम् ॥७॥

मैं अकेला ही राक्षसों सहित सारी लङ्कापुरी तथा रावण को नष्ट कर सकता हूँ ॥७॥

किं पुनः सहितो वीरैर्बलवद्भिः कृतात्मभिः ।
कृतास्त्रैः प्लवगैः शूरैर्भवद्भिर्विजयैषिभिः ॥८॥

तिस पर यदि आप जैसे अस्त्र-सञ्चालन-विद्या में कुशल और बलवान् विजय की अभिलाषा रखने वाले समर्थ वीर मेरे साथ लङ्का में चले चलें ॥८॥

अहं तु रावणं युद्धे ससैन्यं सपुरःसरम् ।
सहपुत्रं वधिष्यामि सहोदरयुतं युधि ॥९॥

तो मैं रावण को युद्ध में सेना, पुत्र, भाईबन्धु, नौकर चाकर और प्रजा सहित मार डालूँगा ॥९॥

ब्राह्ममैन्द्रं च रौद्रं च वायव्यं वारुणं तथा ।
यदि शक्रजितोऽस्त्राणि दुर्निरीक्षाणि संयुगे ॥१०॥
तान्यहं विधमिष्यामि निहनिष्यामि राक्षसान् ।
भवतामभ्यनुज्ञातो विक्रमो मे रुणद्धि तम् ॥११॥

ब्रह्मास्त्र, इन्द्रास्त्र, रौद्रास्त्र, वायव्यास्त्र तथा वारुणास्त्र एवं युद्ध में अन्य दुर्निरीक्ष्य अस्त्र शस्त्र भी यदि इन्द्रजीत मेघनाद चलावेगा;

तो मैं उन सबको नष्ट कर, समस्त राक्षसों को मार डालूँगा। किन्तु आप लोगों की स्वीकृति के बिना मैं रुक गया हूँ ॥१०॥११॥

मयातुक्ता विसृष्टा हि शैलवृष्टिर्निरन्तरा।
देवानपि रणे हन्यात्किं पुनस्तान्निशाचरान् ॥१२॥

मेरी फेंकी हुई लगातार पत्थरों की वर्षा देवताओं का भी नाश कर सकती है, फिर उन राक्षसों की बिसात ही क्या है ॥१२।

सागरोऽप्यतियाद्वेलां मन्दरः प्रचलेदपि।
न जाम्बवन्तं समरे कम्पयेदरिवाहिनी ॥१३॥

सागर भले ही अपनी सीमा को लाँघ जाय, मन्दराचल भले ही डिग जाय, किन्तु युद्ध में जाम्बवान को शत्रु की सेना चलायमान नहीं कर सकती ॥१३॥

सर्वराक्षससङ्घानां राक्षसा ये च पूर्वकाः।
अलमेको विनाशाय वीरो वालिसुतः कपिः ॥१४॥

फिर समस्त राक्षसदलों को तथा उनके नेताओं के मारने के लिए तो वालितनय वीर अङ्गद ही पर्याप्त हैं ॥१४॥

पनसस्योरुवेगेन नीलस्य च महात्मनः।
मन्दरोऽपि विशीर्येत किं पुनर्युधि राक्षसाः ॥१५॥

पनस और महात्मा नील की जाँघों के वेग से जब मन्दराचल भी फट सकता है; तब युद्ध में राक्षसों की बात ही क्या है ॥१५॥

सदेवासुरयक्षेषु गन्धर्वोरगपक्षिषु।
मैन्दस्य प्रतियोद्धारं शंसत द्विविदस्य वा ॥१६॥

देव, गन्धर्व, दैत्य, यक्ष, नाग और पक्षियों में भी मैन्द, द्विविद का युद्ध में सामना करने वाला कौन है, सो आप लोग बतलावें न ? ॥१६॥

अश्विपुत्रौ महाभागावेतौ प्लवगसत्तमौ ।
एतयोः प्रतियोद्धारं न पश्यामि रणाजिरे ॥ १७ ॥

अश्विनीकुमारों के इन दो वानरश्रेष्ठ वीर पुत्रों का युद्ध में सामना करने वाला मुझे कोई नहीं देख पड़ता ॥१७॥

पितामहवरोत्सेकात्परमं दर्पमास्थितौ ।
अमृतप्राशिनावेतौ सर्ववानरसत्तमौ ॥ १८ ॥

ये दोनों पितामह ब्रह्मा जी के वरदान से दर्पित तथा अमृत पान करने वाले एवं सब वानरों में श्रेष्ठ हैं ॥१८॥

अश्विनोर्माननार्थं हि सर्वलोकपितामहः ।
सर्वावध्यत्वमतुलमनयोर्दत्तवान्पुरा ॥ १९ ॥

अश्विनीकुमारों के सम्मानार्थ सर्वलोकपितामह ब्रह्मा जी ने, पूर्वकाल में इन दोनों को अतुल बल पराक्रमी और सब प्राणियों से अवध्य होने का वरदान दिया है ॥१९॥

वरोत्सेकेन मत्तौ च प्रमथ्य महतीं चमूम् ।
सुराणाममृतं वीरौ पीतवन्तौ प्लवङ्गमौ ॥ २०

ब्रह्मा जी के वर से मतवाले हो, इन दोनों वानरश्रेष्ठों ने देवताओं की सेना को व्याकुल कर, अमृत पिया था ॥२०॥

एतावेव हि संक्रुद्धौ सवाजिरथकुञ्जराम् ।
लङ्कां नाशयितुं शक्तौ सर्वे तिष्ठन्तु वानराः ॥ २१ ॥

यदि ये क्रुद्ध हो जायँ तो वानरों के देखते देखते, (अकेले) ये दोनों ही घोड़ों, रथों और हाथियों सहित लङ्का को नष्ट कर डालने की शक्ति रखते हैं ॥२१॥

मयैव निहता लङ्का दग्धा भस्मीकृता पुनः ।
राजमार्गेषु सर्वत्र नाम विश्रावितं मया ॥ २२ ॥

मैंने ही बहुत से राक्षस मार डाले और लङ्का फूँक दी तथा लङ्का की सड़कों पर सर्वत्र अपना नाम सबको सुना दिया ॥२२॥

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥ २३ ॥

श्रीरामचन्द्र जी की जै, महाबली लक्ष्मण जी की जै, श्रीरामचन्द्र रक्षित वानरराज सुग्रीव की जै ॥ २३ ॥

अहं कोसलराजस्य दासः पवनसम्भवः ।
हनुमानिति सर्वत्र नाम विश्रावितं मया ॥ २४ ॥

मैं कोशलाधीश श्रीरामचन्द्र जी का दास हूँ और पवन का पुत्र हूँ। मेरा नाम हनुमान है। ये बातें मैंने लङ्का में सर्वत्र सब को सुना दीं ॥ २४ ॥

अशोकवनिकामध्ये रावणस्य दुरात्मनः ।
अधस्ताच्छिंशुपावृक्षे साध्वी करुणमास्थिता ॥ २५ ॥

दुष्ट रावण के अशोकवन में शीशम के पेड़ के नीचे पतिव्रता सीता, अत्यन्त दुःखिनी हो बैठी हैं ॥ २५ ॥

राक्षसीभिः परिवृता शोकसन्तापकर्शिता ।
मेघलेखापरिवृता चन्द्रलेखेव निष्प्रभा ॥ २६ ॥

सीता को चारों ओर से राक्षसियाँ घेरे हुए हैं और वे शोक एवं सन्ताप से पीड़ित हैं। मेघपंक्ति से घिरी हुई चन्द्ररेखा जैसी निष्प्रभ देख पड़ती है, वैसे ही उन राक्षसियों से घिरी हुई सीता प्रभाहीन देख पड़ती हैं ॥ २६ ॥

अचिन्तयन्ती वैदेही रावणं बलदर्पितम् ।

पतिव्रता च सुश्रोणी अवष्टब्धा च जानकी ॥२७॥

तिस पर भी बल से दर्पित उस रावण को, सीता कुछ भी परवाह नहीं करतीं। ऐसी पतिव्रता और सुन्दरी सीता को रावण ने अपने यहाँ बंद कर रखा है ॥२७॥

अनुरक्ता हि वैदेही रामं सर्वात्मना शुभा ।

अनन्यचित्ता रामे च पौलोमीव पुरन्दरे ॥२८॥

साध्वी सीता, उसी प्रकार सदा सर्वदा अनन्यचित्त हो श्रीरामचन्द्र जी के ध्यान में मग्न रहती हैं, जिस प्रकार शची इन्द्र के ध्यान में रहती हैं ॥२८॥

तदेकवासःसंवीता रजोध्वस्ता तथैव च ।

शोकसन्तापदीनाङ्गी सीता भर्तृहिते रता ॥२९॥

उसके शरीर पर केवल एक वस्त्र है और उसके शरीर में धूल लपटी हुई है। शोक और सन्ताप से उसके समस्त अंग दीनभाव को धारण किए हुए हैं। सीता की ऐसी दुर्दशा तो है, किन्तु इस पर भी वह अपने पति की हितकामना में सदा लगी रहती है ॥२९॥

सा मया राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः ।

राक्षसीभिर्विरूपाभिर्दृष्टा हि प्रमदावने ॥३०॥

मैंने अपनी आँखों से देखा है कि, अशोकवन में बेचारी सीता, मुहजरी राक्षसियों के बीच में बैठी हुई थीं और राक्षसियाँ उन्हें बार बार डरा रही थीं ॥३०॥

एकवेणीधरा दीना भर्तृचिन्तापरायणा ।
अधःशय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे ॥३१॥

वे एक वेणी धारण किए दीनभाव को प्राप्त हो, पति की चिन्ता में मग्न रहती हैं। वे ज़मीन पर सोती हैं। उनके शरीर की कान्ति वैसी ही फीकी पड़ गई है जैसी कि, हेमन्तऋतु में कमलिनी की फीकी पड़ जाती है ॥३१॥

रावणाद्विनिवृत्तार्था मर्तव्यकृतनिश्चया ।
कथञ्चिन्मृगशावाक्षी विश्वासमुपपादिता ॥३२॥

रावण की ओर से वे विरक्त हैं और अपने मरने का निश्चय किए हुए हैं। मैंने तो बड़ी कठिनाई के साथ उसी मृगशावकनयनी जानकी का विश्वास अपने ऊपर जमा पाया था ॥३२॥

ततः सम्भाषिता चैव सर्वमर्थं च दर्शिता ।
रामसुग्रीवसख्यं च श्रुत्वा प्रीतिमुपागता ॥३३॥

तदनन्तर मैंने उनसे बातचीत की और सब बातें उनको दर्सा दीं। वे श्रीरामचन्द्र जी और सुग्रीव की मैत्री का वृत्तान्त सुन प्रसन्न हुई थीं ॥३३॥

नियतः समुदाचारो भक्तिर्भर्तरि चोत्तमा ।
यन्न हन्ति दशग्रीवं स महात्मा कृतागसम् ॥३४॥

वे बड़ी चरित्रवती हैं और श्रीरामचन्द्र जी में उनकी पूर्ण भक्ति है। रावण जो अभी तक नहीं मरा, सो इसका मुख्य कारण ब्रह्मा जी का दिया हुआ उसको वरदान है ॥३४॥

निमित्तमात्रं रामस्तु वधे तस्य भविष्यति ।
सा प्रकृत्यैव तन्वङ्गी तद्वियोगाच्च कर्शिता ॥ ३५ ॥

रावण के वध में श्रीरामचन्द्र जी तो केवल निमित्त मात्र होंगे। वह मारा जायगा सती साध्वी सीता हरण जन्य घोर पातक के फल से सीता वैसे ही लटी दुबली थी, तिस पर उन्हें श्रीरामचन्द्र जी के विरह से उत्पन्न शोक सहना पड़ा ॥ ३५ ॥

प्रतिपत्पाठशीलस्य विद्येव तनुतां गता ॥ ३६ ॥

सीता जी तो ऐसी क्षीण हो रही हैं, जैसी कि, प्रतिपदा के दिन पढ़ने वाले की विद्या क्षीण हुआ करती है ३६ ॥

एवमास्ते महाभागा सीता शोकपरायणा ।
यदत्र प्रतिकर्तव्यं तत्सर्वमुपपद्यताम् ॥ ३७ ॥

इति एकोनषष्टितमः सर्गः

जनककुमारी सीता शोक में मग्न, इस प्रकार वहाँ दिन काट रही हैं। अब आप लोगों से जो बन आवे सो आप लोग करें ॥ ३७ ॥

सुन्दरकाण्ड का उनसठवाँ सर्ग पूरा हुआ।



षष्टितमः सर्गः



तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वालिसूनुरभाषत ।
अयुक्तं तु विना देवीं दृष्टवद्भिश्च वानराः ॥ १ ॥
समीपं गन्तुमस्माभी राघवस्य महात्मनः ।
दृष्टा देवी न चानीता इति तत्र निवेदनम् ॥ २ ॥

हनुमान जी के वचन सुन, वालितनय अंगद बोले—सीता को देख लेने पर भी, बिना सीता को साथ लिये हम लोगों का महात्मा श्रीरामचन्द्र जी के पास जा कर, यह कहना कि, हम जानकी को देख तो आए किन्तु लाए नहीं ॥ १ ॥ २ ॥

अयुक्तमिव पश्यामि भवद्भिः ख्यातविक्रमैः ।

न हि नः प्लवने कश्चिन्नापि कश्चित्पराक्रमे ॥ ३ ॥

मेरी समझ में तो आप जैसे प्रसिद्ध पराक्रमी वानरों के स्वरूपानुरूप नहीं है। न तो कूदने उछलने में और न पराक्रम ही में ॥ ३ ॥

तुल्यः सामरदैत्येषु लोकेषु हरिसत्तमाः ।

तेष्वेवं हतवीरेषु राक्षसेषु हनूमता ।

किमन्यदत्र कर्तव्यं गृहीत्वा याम जानकीम् ॥ ४ ॥

इन वानरश्रेष्ठों का सामना करने वाला न तो मुझे कोई दैत्यों ही में देख पड़ता है और न अन्य लोकों ही में। फिर हनुमान जी बहुत से राक्षसों को मार ही चुके हैं, अब बचे बचाए राक्षसों को मार कर, जानकी को ले आने के सिवाय और कौन सा काम हमें करने को रह गया है ॥ ४ ॥

तमेवं कृतसङ्कल्पं जाम्बवान्हरिसत्तमः ।

उवाच परमप्रीतो *वाक्यमर्थवदङ्गदम् ॥ ५ ॥

अङ्गद जी को ऐसा निश्चय किए हुए जान, वानरश्रेष्ठ जाम्बवान् परम प्रसन्न हो, उनसे अर्थ भरे वचन बोले ॥ ५ ॥

---

* पाठान्तरे—"वाक्यमर्थवदर्थवित् ।"

नानेतुं कपिराजेन नैव रामेण धीमता ।
कथंचिन्निर्जितां सीतामस्माभिर्नाभि रोचयेत् ॥ ६ ॥

सीता जी को साथ लाने की न तो कपिराज सुग्रीव ने और न बुद्धिमान श्रीरामचन्द्र जी ने ही हम लोगों को आज्ञा दी है ॥ ६ ॥

राघवो नृपशार्दूलः कुलं व्यपदिशन्स्वकम् ।
प्रतिज्ञाय स्वयं राजा सीता विजयमग्रतः ॥ ७ ॥

क्योंकि, श्रीरामचन्द्र जी राजाओं में शार्दूल हैं और उन्हें अपने विशाल कुल का भी गर्व है। वे शत्रु को जीत कर सीता को स्वयं लाने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं ॥ ७ ॥

सर्वेषां कपिमुख्यानां कथं मिथ्या करिष्यति ॥ ८ ॥

सो मुख्य मुख्य वानरों के सामने की हुई उस अपनी प्रतिज्ञा को वे क्यों कर अन्यथा करेंगे ॥ ८ ॥

विफलं कर्म च कृतं भवेत्तुष्टिर्न तस्य च ।
वृथा च दर्शितं वीर्यं भवेद्वानरपुङ्गवाः ॥ ९ ॥

अतः हमारा किया कराया सब व्यर्थ जायगा और जिनके लिए हम इतना परिश्रम करेंगे वे भी सन्तुष्ट न होंगे। अतः हे वानरश्रेष्ठो ! हम लोगों के बल पराक्रम का व्यर्थ अपव्यय होगा ॥ ९ ॥

तस्माद्गच्छाम वै सर्वे यत्र रामः सलक्ष्मणः ।
सुग्रीवश्च महातेजाः कार्यस्यास्य निवेदने ॥ १० ॥

अतएव आओ भाइयो, हम सब लोग वहीं चलें, जहाँ लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्र जी तथा महातेजस्वी सुग्रीव हैं और उनसे समस्त वृत्तान्त निवेदन करें ॥ १० ॥

न तावदेषां मतिरक्षमा नो
यथा भवान्पश्यति राजपुत्र ।
यथा तु रामस्य मतिर्निविष्टा
तथा भवान्पश्यतु कार्यसिद्धिम् ॥ ११ ॥

इति षष्टितमः सर्गः ॥

हे राजपुत्र ! आपके विचार अयुक्त नहीं प्रत्युत ठीक ही हैं, किन्तु हम लोगों को तो श्रीरामचन्द्र जी की मनोगति के अनुसार ही उनके कार्य को पूर्ण हुआ देखना उचित है। अर्थात् वे जो कहें वही करना उचित है ॥ ११ ॥

सुन्दरकाण्ड का साठवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—:o:—

एकषष्टितमः सर्गः

—:o:—

ततो जाम्बवतो वाक्यमगृह्णन्त वनौकसः ।
अङ्गदप्रमुखा वीरा हनूमांश्च महाकपिः ॥ १ ॥

तदनन्तर अङ्गदादि वीर वानरों ने तथा महाकपि हनुमान जी ने जाम्बवान की बात मान ली ॥ १ ॥

प्रीतिमन्तस्ततः सर्वे वायुपुत्रपुरःसराः ।
*महेन्द्राद्रिं परित्यज्य पुप्लुवुः प्लवगर्षभाः ॥ २ ॥

---

* पाठान्तरे—"महेन्द्राग्रं ।"

और पवननन्दन हनुमान जी को आगे कर प्रसन्न होते हुए समस्त वानर महेन्द्राचल को छोड़, उछलते कूदते चल दिए ॥ २ ॥

मेरुमन्दरसङ्काशा मत्ता इव महागजाः ।
छादयन्त इवाकाशं महाकाया महाबलाः ॥ ३ ॥

मेरुपर्वत की तरह महाकाय, महाबली वानरों ने मतवाले हाथियों की तरह मानों आकाश को ढक लिया ॥ ३ ॥

[1]सभाज्यमानं [2]भूतैस्तमात्मवन्तं महाबलम् ।
हनुमन्तं महावेगं वहन्त इव दृष्टिभिः ॥ ४ ॥

ये सब, सिद्धपुरुषों से भली भाँति प्रशंसित, आत्मज्ञ, महावेगवान और महाबलवान् पवननन्दन ही की ओर टकटकी लगाए चले जाते थे । मानों वे हनुमान जी को दृष्टि के बल उड़ाए लिए जाते थे ॥ ४ ॥

राघवे [3]चार्थनिर्वृत्तिं कर्तुं च परमं यशः ।
समाधाय [4]समृद्धार्थाः [5]कर्मसिद्धिभिरुन्नताः[6] ॥ ५ ॥

उन्होंने अपने मन में निश्चय कर लिया था कि, वे श्रीरामचन्द्र जी का कार्य पूरा करके अब सफलमनोरथ हो चुके हैं और इससे उनको यश भी प्राप्त हो चुका है । अतः कार्य पूरा करने के कारण, वे कपि अपने को अन्य वानरों से उत्कृष्ट समझ रहे थे ॥ ५ ॥

---

१ सभाज्यमानं — सम्पूज्यमानं । (गो०) २ भूतैः — सिद्धैः ।(रा०) ३ अर्थनिर्वृत्तिं—अर्थसिद्धिं । (गो०) ४ समृद्धार्थाः—सिद्धकार्याः । (गो०) ५ कर्मसिद्धिभिः—कार्यसिद्धिभिः (गो०) ६ उन्नताः—इतरेभ्य उत्कृष्टाः । (गो०)

प्रियाख्यानोन्मुखाः सर्वे सर्वे युद्धाभिनन्दिनः।
सर्वे रामप्रतीकारे निश्चितार्था मनस्विनः॥ ६॥

सब ही वानर श्रीरामचन्द्र जी को यह सुख संवाद सुनाने को उत्सुक हो रहे थे, सब लोग युद्ध का अभिनन्दन करने को तत्पर थे। वे मनस्वी वानर (रावण से) श्रीरामचन्द्र जी का बदला लेने का दृढ़ सङ्कल्प किए हुए थे॥ ६॥

प्लवमानाः खमुत्पत्य ततस्ते काननौकसः।
नन्दनोपममासेदुर्वनं द्रुमलतायुतम्॥ ७॥

इस प्रकार वह मनस्वी वानरदल, आकाश में उछलता कूदता इन्द्र के नन्दनवन की तरह वृक्षों और लताओं से युक्त उपवन के समीप पहुँचा॥ ७॥

यत्तन्मधुवनं नाम सुग्रीवस्याभिरक्षितम्।
अधृष्यं सर्वभूतानां सर्वभूतमनोहरम्॥ ८॥

उस उपवन का नाम मधुवन था और सुग्रीव उसके मालिक थे। उसमें कोई भी वानर जाने नहीं पाता था, वह उपवन अपनी शोभा से सभी का मन हर लिया करता था॥ ८॥

यद्रक्षति महावीर्यः सदा दधिमुखः कपिः।
मातुलः कपिमुख्यस्य सुग्रीवस्य महात्मनः॥ ९॥

उस उपवन की रखवाली महाबली दधिमुख नामक वानर सदा किया करता था। वह दधिमुख, महात्मा वानरराज सुग्रीव का मामा था॥ ९॥

ते तद्वनमुपागम्य बभूवुः परमोत्कटाः[1] ।
वानरा वानरेन्द्रस्य मनःकान्ततमं महत् ॥ १० ॥

वे वानर वानरेन्द्र सुग्रीव के अत्यन्त प्यारे उस महावन के समीप पहुँच, उस वन के फल खाने के लिए बड़े लालायित थे ॥ १० ॥

ततस्ते वानरा हृष्टा दृष्ट्वा मधुवनं महत् ।
कुमारमभ्ययाचन्त मधूनि मधुपिङ्गलाः ॥ ११ ॥

उस बड़े लंबे चौड़े मधुवन को देख कर, मधु की तरह पीले रंग वाले वे वानर प्रसन्न हो गए और उन मधुफलों का मधु पीने के लिए उन्होंने अङ्गद से याचना की ॥ ११ ॥

ततः कुमारस्तान्वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखान्कपीन् ।
अनुमान्य ददौ तेषां निसर्गं[2] मधुभक्षणे ॥ १२ ॥

तब अङ्गद ने जाम्बवान आदि बूढ़े बड़े कपियों से सलाह कर वानरों को मधुवन में जाने की तथा वहाँ मधुफल खाने की आज्ञा दी ॥ १२ ॥

ततश्चानुमताः सर्वे सम्प्रहृष्टा वनौकसः ।
मुदिताः प्रेरिताश्चापि प्रनृत्यन्ति ततस्ततः ॥ १३ ॥

आज्ञा पाते ही सब वानर अत्यन्त हर्षित हो गए और मुदित हो मधुवन में जा कर, इधर उधर नाचने कूदने लगे ॥ १३ ॥

गायन्ति केचित्प्रणमन्ति केचित्
नृत्यन्ति केचित्प्रहसन्ति केचित् ।

---

१ परमोत्कटाः—परमोत्सुकाः । (गो०) २ निसर्गं—विसर्जनं । (गो०)

पतन्ति केचिद्विचरन्ति केचित्
प्लवन्ति केचित्प्रलपन्ति केचित् ॥ १४ ॥

उस समय उन वानरों में से कोई कोई तो गाना गा रहे थे, कोई कोई आपस में प्रणाम कर रहे थे। कोई कोई नाच रहे थे, कोई कोई बड़ी ज़ोर से हँस रहे थे, कोई कोई गिर गिर पड़ते थे, कोई कोई मधुवन में इधर उधर घूम फिर रहे थे, कोई कोई उछल कूद रहे थे, और कोई कोई व्यर्थ की बकवाद कर रहे थे ॥ १४ ॥

परस्परं केचिदुपाश्रयन्ते
परस्पर केचिदुपाक्रमन्ते ।
परस्पर केचिदुपब्रुवन्ते
परस्परं केचिदुपारमन्ते ॥ १५ ॥

कोई कोई आपस में लिपट रहे थे, कोई कोई आपस में भिड़ रहे थे, किसी किसी में आपस में कहासुनी हो रही थी और कोई कोई आराम कर रहे थे ॥ १५ ॥

द्रुमाद्द्रुमं केचिदभिद्रवन्ते
क्षितौ नगाग्रान्निपतन्ति केचित् ।
महीतलात्केचिदुदीर्णवेगा
महाद्रुमाग्राण्यभिसम्पतन्ति ॥ १६ ॥

कोई कोई वृक्षों ही वृक्षों पर दौड़ते फिरते थे, कोई कोई पेड़ पर चढ़ कर ज़मीन पर कूदते थे और कोई कोई पृथिवी से उछल कर, बड़ी तेज़ी से बड़े ऊँचे ऊँचे वृक्षों की फुनगी पर चढ़ जाते थे ॥ १६ ॥

गायन्तमन्यः प्रहसन्नुपैति
हसन्तमन्यः प्ररुदन्नुपैति ।
रुदन्तमन्यः प्रणदन्नुपैति
नदन्तमन्यः प्रणुदन्नुपैति ॥ १७ ॥

उनमें से कोई गाता था तो कोई हँसता हुआ उसके पास पहुँचता था । कोई हँसता था तो दूसरा रोता हुआ उसके पास जाता था । एक रोता था तो दूसरा उसके रोने की नकल करता हुआ उसके पास जाता था । जब एक चिल्लाता था, तब दूसरा उससे भी अधिक चिल्लाता हुआ उसके पास जाता था ॥ १७ ॥

समाकुलं तत्कपिसैन्यमासी-
न्मधुप्रपानोत्कटसत्त्वचेष्टम् ।
न चात्र कश्चिन्न बभूव मत्तो
न चात्र कश्चिन्न बभूव तृप्तः ॥ १८ ॥

उस कपिवाहिनी में उस समय इस प्रकार तुमुल शब्द हो रहा था । उस सेना में ऐसा कोई वानर न था, जिसने पेट भर उत्सुकता पूर्वक मधु न पिया हो और जो मधुपान कर मतवाला न हो गया और न कोई ऐसा ही था, जो मधुपान करके तृप्त न हुआ हो ॥ १८ ॥

ततो वनं तैः परिभक्ष्यमाणं
द्रुमांश्च विध्वंसितपत्रपुष्पान् ।
समीक्ष्य कोपाद्दधिवक्त्रनामा
निवारयामास कपिः कपींस्तान् ॥ १९ ॥

मधुवन के समस्त फलों को वानरों ने खा डाला था और पेड़ों के पत्तों और फूलों को नष्टकर डाला था। यह देख दधिमुख नामक वानर कुपित हुआ और उसने उन वानरों को बर्जा ॥१९॥

स तैः प्रवृद्धैः परिभर्त्स्यमानो
वनस्य गोप्ता हरिवीरवृद्धः।
चकार भूयो मतिमुग्रतेजा
वनस्य रक्षां प्रति वानरेभ्यः ॥ २० ॥

किन्तु वे वानर भला कब मानने वाले थे। उन्होंने उस बूढ़े दधिमुख ही को डांटा डपटा। तब तो वह तेजस्वी वानर भी उन वानरों से, वन को बचाने के लिए उपाय करने लगा ॥ २० ॥

उवाच कांश्चित्परुषाणि धृष्टम्
असक्तमन्यांश्च तलैर्जघान ।
समेत्य कैश्चित्कलहं चकार
तथैव साम्नोपजगाम कांश्चित् ॥ २१ ॥

किसी को उसने गालियाँ दीं, अपने से निर्बल किसी के थप्पड़ जमा दिए, किसी से कहासुनी करने लगा और किसी को समझाने बुझाने लगा ॥ २१ ॥

स तैर्मदात्संपरिवार्य वाक्यैः
बलाच्च तेन प्रतिवार्यमाणैः।
प्रधर्षितस्त्यक्तभयैः समेत्य
प्रकृष्यते चाप्यनवेक्ष्य दोषम् ॥ २२ ॥

किन्तु नशे में चूर होने के कारण भला वे क्या किसी के रोके, रुकने वाले थे। इन वानरों को सीता का संवाद लाने के कारण, भय तो किसी का था ही नहीं, सो वे अपने अपराध पर ध्यान न दे और इकट्ठे हो, दधिमुख को पकड़ खींचने लगे ॥ २२ ॥

नखैस्तुदन्तो दशनैर्दशन्त-
स्तलैश्च पादैश्च समापयन्तः ।
मदात्कपिं तं कपयः समग्रा
महावनं निर्विषयं च चक्रुः ॥ २३ ॥

इति एकषष्टितमः सर्गः ॥

साथ ही मतवालेपन से वे उसे नखों से खसोटते, दाँतों से काटते, थप्पड़ जमाते और लातें मारते थे। अन्त में मारते मारते दधिमुख को उन लोगों ने मृतप्राय कर मूर्छित कर दिया और उस विशाल मधुवन को तो बिल्कुल चौपट ही कर डाला ॥ २३ ॥

सुन्दरकाण्ड का इकसठवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

द्विषष्टितमः सर्गः

—❀—

तानुवाच हरिश्रेष्ठो हनुमान्वानरर्षभः ।
अव्यग्रमनसो यूयं मधु सेवत वानराः ॥ १ ॥

अहमावारयिष्यामि युष्माकं परिपन्थिनः ।
श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं हरीणां प्रवरोऽङ्गदः ॥ २ ॥

इस पर वानरोत्तम हनुमान जी ने उनकी पीठ ठोंक दी और कहा तुम खूब मन भर कर मधुफल खाओ। ज़रा भी मत घबड़ाओ। तुम्हारे मधुफलभक्षण में जो बाधा डालेंगे, उन्हें मैं स्वयं रोकूँगा। हनुमान जी के ये वचन सुन वानरों में श्रेष्ठ अङ्गद जी ॥ १ ॥ २ ॥

प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा पिबन्तु हरयो मधु।
अवश्य कृतकार्यस्य वाक्यं हनुमतो मया ॥ ३ ॥

ने प्रसन्न हो (हनुमान जी की बात का समर्थन करते हुए) कहा—वानर लोग अवश्य मधुपान करें। क्योंकि हनुमान जी काम पूरा कर आए हैं ॥ ३ ॥

अकार्यमपि कर्तव्यं किमङ्ग पुनरीदृशम्।
अङ्गदस्य मुखाच्छ्रुत्वा वचनं वानरर्षभाः ॥ ४ ॥

यदि यह कोई अनुचित काम भी करने को कहें, तो भी हम लोगों को उसे करना चाहिए और उनकी इस कही हुई उचित बात की तो कोई बात ही नहीं है। बड़े बड़े वानरों ने अङ्गद के मुख से ये वचन सुन ॥ ४ ॥

साधु साध्विति संहृष्टा वानराः प्रत्यपूजयन्।
पूजयित्वाऽङ्गदं सर्वे वानरा वानरर्षभम् ॥ ५ ॥

अत्यन्त प्रसन्न हो और "वाह वाह" कह कर, अङ्गद के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया। तदनन्तर वानरश्रेष्ठ अङ्गद के प्रति सम्मान प्रदर्शित कर, सब बड़े बड़े वानर ॥ ५ ॥

जग्मुर्मधुवनं यत्र नदीवेगा इव द्रुतम्।
ते प्रविष्टा मधुवनं पालानाक्रम्य वीर्यतः ॥ ६ ॥

नदी की वेगवान धार की तरह, उस मधुवन में बड़े वेग से घुस गए और बलपूर्वक वहाँ के रक्षकों पर आक्रमण किया। अथवा वनरक्षक वानरों को पकड़ा ॥ ६ ॥

अतिसर्गाच्च पटवो दृष्ट्वा श्रुत्वा च मैथिलीम्।
पपुः सर्वे मधु तदा रसवत्फलमाददुः ॥ ७ ॥

अङ्गद जी की आज्ञा पाने, जानकी जी को देखने और उनका संदेसा पाने से वे वानर अत्यन्त उद्दण्ड हो, मधु पीने लगे और रसीले फल खाने लगे ॥ ७ ॥

उत्पत्य च ततः सर्वे वनपालान्समागतान्।
ताडयन्ति स्म शतशः सक्तान्मधुवने तदा ॥ ८ ॥

जो सैकड़ों वनरक्षक उन्हें आकर बर्जते, उन्हें वे सब के सब उछल उछल कर मारते थे ॥ ८ ॥

मधूनि [1]द्रोणमात्राणि बाहुभिः परिगृह्य ते।
पिबन्ति सहिताः सर्वे निघ्नन्ति स्म तथापरे ॥ ९ ॥

वे लोग आढ़क (तौल विशेष) परिमाण मधु हाथों की अंजुलि बना पी जाते थे और सब इकट्ठे हो कर वनरक्षकों को मारते भी थे ॥ ९ ॥

केचित्पीत्वाऽपविध्यन्ति मधूनि मधुपिङ्गलाः।
[2]मधूच्छिष्टेन केचिच्च जघ्नुरन्योन्यमुत्कटाः[3] ॥ १० ॥

मधु के समान पीले रङ्ग के वे वानर मधु पीते भी थे और फैंकते भी थे। कोई तो मदमस्त हो, छत्ते के मोम से दूसरे वानरों को मारते थे ॥ १० ॥

---

१ द्रोणमात्राणि—आढकप्रमाणानि। (गो०) २ मधूच्छिष्टेन—सिक्थेन। (गो०) ३ उत्कटाः—मत्ताः। (गो०)

अपरे वृक्षमूले तु शाखां गृह्य व्यवस्थिताः ।
अत्यर्थं च मदग्लानाः पर्णान्यास्तीर्य शेरते ॥ ११ ॥

उनमें से कोई कोई पेड़ की जड़ों में वृक्षों की शाखाएँ पकड़ कर खड़े हुए थे और कोई कोई नशे से बेहोश हो पत्तों को बिछा कर सो रहे थे ॥ ११ ॥

उन्मत्तभूताः प्लवगा मधुमत्ताश्च हृष्टवत् ।
क्षिपन्ति[1] च तदान्योन्यं स्खलन्ति च तथापरे ॥ १२ ॥

मधुपान करने से, ये वानर उन्मत्त से हो रहे थे और प्रसन्न देख पड़ते थे । उनमें से कोई कोई तो दूसरे वानरों को उठा उठा कर पटक रहे थे और कोई कोई लड़खड़ा कर स्वयं ही गिर पड़ते थे ॥ १२ ॥

केचित्क्ष्वेलां[2] प्रकुर्वन्ति केचित्कूजन्ति हृष्टवत् ।
हरयो मधुना मत्ताः केचित्सुप्ता महीतले ॥ १३ ॥

कोई कोई तो प्रसन्न हो सिंहनाद कर रहे थे, कोई कोई पक्षियों की तरह कूज रहे थे । अनेक वानर मतवाले हो पृथिवी पर पड़े सो रहे थे ॥ १३ ॥

कृत्वा किञ्चिद्धसन्त्यन्ये केचित्कुर्वन्ति चेतरत् ।
कृत्वा किञ्चिद्वदन्त्यन्ये केचिद्बुध्यन्ति चेतरत् ॥ १४ ॥

कोई कोई गँवारपन कर हँस रहे थे, कोई कोई तरह तरह की चेष्टाएँ कर रहे थे, कोई कोई कुछ बकते और कोई कोई उसका अर्थ और का और ही लगा रहे थे ॥ १४ ॥

---

१ क्षिपन्ति—उत्क्षिप्य पातयन्ति । (गो०) २ " क्ष्वेला तु सिंहनादः स्यात् " इत्यमरः ।

येऽप्यत्र मधुपालाः स्युः प्रेष्या दधिमुखस्य तु ।
तेऽपि तैर्वानरैर्भीमैः प्रतिषिद्धा दिशो गताः ॥ १५ ॥

वहाँ पर दधिमुख के नीचे काम करने वाले जो मधुवनरक्षक थे, वे भी इन भयङ्कर वानरों की मार से भाग गए थे ॥ १५ ॥

जानुभिस्तु प्रकृष्टाश्च देवमार्गं च दर्शिताः
अब्रुवन्परमोद्विग्ना गत्वा दधिमुखं वचः ॥ १६ ॥

अनेक रक्षकों को तो घुटनों से रगड़ रगड़ कर इन वानरों ने यमालय भेज दिया था। जो भाग कर बच गए थे; उन्होने जा कर दधिमुख से कहा ॥ १६ ॥

हनूमता दत्तवरैर्हतं मधुवनं बलात् ।
वयं च जानुभिः कृष्टाः देवमार्गं च दर्शिताः ॥ १७ ॥

हनुमान जी द्वारा अभयदान पाकर वानरों ने मधुवन को उजाड़ डाला है। हम लोगों ने जब उनको रोका तब हममें से बहुतों को घुटनों से रगड़ रगड़ कर उन लोगों ने यमालय भेज दिया ॥ १७ ॥

ततो दधिमुखः क्रुद्धो वनपस्तत्र वानरः ।
हतं मधुवनं श्रुत्वा सान्त्वयामास तान्हरीन ॥ १८ ॥

दधिमुख ने उन वनरक्षक वानरों के वचन सुन और मधुवन को नष्ट हुआ देख, क्रुद्ध हो उन रखवालों को धीरज बँधाया ॥ १८ ॥

इहागच्छत गच्छामो वानरान्बलदर्पितान् ।
बलेन वारयिष्यामो मधु भक्षयतो वयम् ॥ १९ ॥

तदनन्तर कहा—यहाँ आओ, चलो उन बलदर्पित वानरों को हम बलपूर्वक रोकें और देखें कि, वे कैसे मधुपान करते हैं ॥ १९ ॥

श्रुत्वा दधिमुखस्येदं वचनं वानरर्षभाः ।

पुनर्वीरा मधुवनं तेनैव सहिता ययुः ॥ २० ॥

दधिमुख के ये वचन सुन, वे वानरश्रेष्ठ उस वीर के साथ पुनः मधुवन में गए ॥ २० ॥

मध्ये चैषां दधिमुखः प्रगृह्य तरसा तरुम् ।

समभ्यधावद्वेगेन ते च सर्वे प्लवङ्गमाः ॥ २१ ॥

उनके बीच में जाते हुए दधिमुख ने एक बड़ा वृक्ष उखाड़ और उसे ले उन वानरों पर आक्रमण किया। दधिमुख के साथ उसके साथी वानर भी दौड़े ॥ २१ ॥

ते शिलाः पादपांश्चापि पर्वतांश्चापि वानराः ।

गृहीत्वाभ्यगमन्क्रुद्धा यत्र ते कपिकुञ्जराः ॥ २२ ॥

उनमें से बहुतों ने शिलाओं, बहुतों ने वृक्षों और बहुतों ने बड़े बड़े पत्थरों को हाथ में ले लिया और क्रोध में भरे हुए वे उन हनुमानादि वानरों के समीप जा पहुँचे ॥ २२ ॥

ते स्वामिवचनं वीरा हृदयेष्ववसज्य तत् ।

त्वरया ह्यभ्यधावन्त सालतालशिलायुधाः ॥ २३ ॥

वे अपने स्वामी दधिमुख की आज्ञा से उत्साहित हो, बड़ी शीघ्रता से सालवृक्षों, तालवृक्षों तथा शिलारूपी आयुधों को ले बड़े वेग से दौड़े ॥ २३ ॥

वृक्षस्थांश्च तलस्थांश्च वानरान्बलदर्पितान् ।
अभ्यक्रामंस्ततो वीराः पालास्तत्र सहस्रशः ॥ २४ ॥

हज़ारों वनरक्षक वीर वानरों ने उन वृक्षों पर चढ़े हुए तथा वृक्षों के नीचे बैठे हुए वानरों पर आक्रमण किया ॥ २४ ॥

अथ दृष्ट्वा दधिमुखं क्रुद्धं वानरपुङ्गवाः ।
अभ्यधावन्त वेगेन हनुमत्प्रमुखास्तदा ॥ २५ ॥

वानरश्रेष्ठ दधिमुख को क्रुद्ध देख, हनुमानादि बड़े बड़े वानर उस पर दौड़ पड़े ॥ २५ ॥

तं सवृक्षं महाबाहुमापतन्तं महाबलम् ।
आर्यकं प्राहरत्तत्र बाहुभ्यां कुपितोऽङ्गदः ॥ २६ ॥

इतने में दधिमुख ने बड़े ज़ोर से वह वृक्ष फेंका । अपने चाचा के मामा के चलाए हुए उस वृक्ष को, क्रुद्ध अङ्गद ने उछल कर बीच ही में दोनों हाथों से पकड़ लिया ॥ २६ ॥

मदान्धश्च न वेदैनमार्यकोऽयं ममेति सः ।
अथैनं निष्पिपेषाशु वेगवद्वसुधातले ॥ २७ ॥

उस समय अङ्गद ऐसे मदान्ध हो रहे थे कि, उन्होंने अपने, चाचा सुग्रीव के मामा का भी कुछ विचार न किया । उन्होंने झट दधिमुख को पकड़ कर, बड़े ज़ोर से ज़मीन पर पटक दिया ॥ २७ ॥

स भग्नबाहूरुभुजो विह्वलः शोणितोक्षितः ।
मुमोह सहसा वीरो मुहूर्तं कपिकुञ्जरः ॥ २८ ॥

उस पटकी के लगने से दधिमुख की बाहें, जाघें और मुख में चोट लगी । तब वह लोहूलुहान तथा विकल हो, मुहूर्त्त भर मूर्च्छित पड़ा रहा ॥ २८ ॥

स कथञ्चिद्विमुक्तस्तैर्वानरैर्वानरर्षभः ।
उवाचैकान्तमाश्रित्य भृत्यान्स्वान्समुपागतान् ॥ २९ ॥

किसी प्रकार उन वानरों से छूट और एकान्त में जा, वह अपने साथ आए हुए अनुचरों से बोला कि ॥ २९ ॥

एते तिष्ठन्तु गच्छामो भर्ता नो यत्र वानरः ।
सुग्रीवो विपुलग्रीवः सह रामेण तिष्ठति ॥ ३० ॥

इनको यहाँ का यहीं छोड़ दो और आओ हम लोग वहाँ चलें जहाँ हमारे राजा विपुलग्रीव सुग्रीव श्रीरामचन्द्र जी सहित विराजमान हैं ॥ ३० ॥

सर्वं चैवाङ्गदे दोषं श्रावयिष्यामि पार्थिवे ।
अमर्षी वचनं श्रुत्वा घातयिष्यति वानरान् ॥ ३१ ॥

हम लोग चल कर अपने राजा से अङ्गद की शिकायत करेंगे राजा क्रोधी स्वभाव के हैं ही। सो शिकायत सुन अवश्य ही इन वानरोंको मार डालेंगे ॥ ३१ ॥

इष्टं मधुवनं ह्येतत्सुग्रीवस्य महात्मनः ।
पितृपैतामहं दिव्यं देवैरपि दुरासदम् ॥ ३२ ॥

क्योंकि यह मधुवन सुग्रीव को अत्यन्त प्यारा है। अधिकता यह है कि, यह उनके बाप दादे के समय का है और बड़ा सुन्दर है। देवता लोग भी इसके भीतर नहीं जा सकते ॥ ३२ ॥

स वानरानिमान्सर्वान्मधुलुब्धान्गतायुषः ।
*पातयिष्यति दण्डेन सुग्रीवः ससुहृज्जनान् ॥ ३३ ॥

* पाठान्तरे—" घातयिष्यति । "

सो वे कपिराज इन मधुलोलुपों और मरणासन्न वानरों को दण्ड देंगे और बन्धुबान्धवों सहित मार डालेंगे ॥ ३३ ॥

वध्या ह्येते दुरात्मानो नृपाज्ञापरिभाविनः ।
अमर्षप्रभवो रोषः सफलो नो भविष्यति ॥ ३४ ॥

ये सब दुष्ट, जो राजा की अवज्ञा करने वाले हैं, मार डालने ही योग्य हैं। जब ये मार डाले जायँगे ; तभी हम लोगों का यह असमाजन्य क्रोध सार्थक होगा ॥ ३४ ॥

एवमुक्त्वा दधिमुखो वनपालान्महाबलः ।
जगाम सहसोत्पत्य वनपालैः समन्वितः ॥ ३५ ॥

मधुवन के रखवालों से महाबली दधिमुख इस प्रकार कह उन अनुचरों को लिये हुए सहसा उड़ा ॥ ३५ ॥

निमेषान्तरमात्रेण स हि प्राप्तो वनालयः[१] ।
सहस्रांशुसुतो धीमान्सुग्रीवो यत्र वानरः ॥ ३६ ॥

और एक निमेष में, वहाँ जा पहुँचा जहाँ पर सूर्य के पुत्र, बुद्धिमान वानर सुग्रोव थे ॥ ३६ ॥

रामं च लक्ष्मणं चैव दृष्ट्वा सुग्रीवमेव च ।
[२]समप्रतिष्ठां जगतीमाकाशान्निपपात ह ॥ ३७ ॥

वहाँ उसने श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण और सुग्रीव को बैठे हुए देखा। फिर समतल भूमि देख वह आकाश से उस भूमि पर उतरा ॥ ३७ ॥

सन्निपत्य महावीर्यः सर्वैस्तैः परिवारितः ।
हरिर्दधिमुखः पालैः पालानां परमेश्वरः ॥ ३८ ॥

---

१ वनालयः—वानरः । (गो०) २ समप्रतिष्ठां—समतलां । (गो०)

उन वानरों के साथ भूमि पर उतर, वह मधुवन के रखवालों का स्वामी महाबली दधिमुख वानर ॥ ३८ ॥

स दीनवदनो भूत्वा कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम् ।
सुग्रीवस्य शुभौ मूर्ध्ना चरणे प्रत्यपीडयत् ॥ ३९ ॥

इति द्विषष्टितमः सर्गः ॥

दीन मुख हो और जोड़े हुए दोनों हाथों को सिर पर रख, वह सुग्रीव के चरणों में गिर पड़ा ॥३९॥

सुन्दरकाण्ड का बासठवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—:०:—

त्रिषष्टितमः सर्गः

—:०:—

ततो मूर्ध्ना निपतितं वानरं वानरर्षभः ।
दृष्ट्वैवोद्विग्नहृदयो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥

सिर के बल दधिमुख को चरणों पर पड़ा देख, सुग्रीव उद्विग्न हो बोले ॥ १ ॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ कस्मात्त्वं पादयोः पतितो मम
अभयं ते* भयं वीर सर्वमेवाभिधीयताम् ॥ २ ॥

उठो उठो, तुम क्यों मेरे पैरों पर पड़े हुए हो। मैं तुम्हें अभय करता हूँ, अब जो हाल हो सो सब मुझसे कह दो ॥ २ ॥

स तु विश्वासितस्तेन सुग्रीवेण महात्मना ।
उत्थाय सुमहाप्राज्ञो वाक्यं दधिमुखोऽब्रवीत् ॥ ३ ॥

* पाठान्तरे०—"भवेद्वीर ।"

जब महात्मा सुग्रीव ने इस प्रकार धीरज बँधाया, तब बड़ा बुद्धिमान दधिमुख पैरों से सिर उठा, कहने लगा ॥ ३ ॥

नैवर्क्ष रजसा राजन्न त्वया नापि वालिना ।

वनं [1]निसृष्टपूर्वं हि भक्षितं तत्तु वानरैः ॥ ४ ॥

हे राजन्! आपने या वालि ने या ऋक्षराज ने पहिले जिस मधुवन को कभी (किसी को) इच्छानुसार भोग करने नहीं दिया—उस वन के फलों को वानरों ने खा डाला ॥ ४ ॥

एभिः प्रधर्षिताश्चैव *वारिता वनरक्षिभिः ।

मधून्यचिन्तयित्वेमान्भक्षयन्ति पिबन्ति च ॥ ५ ॥

जब मैंने अपने अनुचरों के साथ उनको रोका, तब उन लोगों ने मेरा तिरस्कार कर इच्छानुसार मधुफल खाया और मधुपान किया ॥ ५ ॥

[2]शिष्टमत्रापविध्यन्ति[3] भक्षयन्ति तथा परे ।

निवार्यमाणास्ते सर्वे भ्रुवौ[4] वैदर्शयन्ति हि ॥ ६ ॥

यही नहीं, प्रत्युत जो फल खाने से बच रहे हैं, उन्हें वे नष्ट कर रहे हैं और जब मेरे अनुचर उन्हें मना करते हैं, तब वे भौंहें टेढ़ी कर आँखें दिखाते हैं ॥ ६ ॥

इमे हि [5]संरब्धतरास्तथा तैः सम्प्रधर्षिताः ।

वारयन्तो वनात्तस्मात्क्रुद्धैर्वानरपुङ्गवैः ॥ ७ ॥

---

१ निसृष्टपूर्वं—यथेच्छभोगाय न दत्तपूर्वं । (गो०) २ शिष्टं—अवशिष्टम् । (गो०) ३ अपविध्यन्ति—ध्वंसयन्ति । (गो०) ४ भ्रुवौ—वक्रं भ्रुवौ । (रा०) ५ संरब्धतराः—निवारणाययत्नवन्तः । (रा०)
*पाठान्तरे—'वानरा ।'

जब मेरे अनुचर उनको रोकने लगे, तब उन वानरपुङ्गवों ने इनको डराया धमकाया और उस वन से इनको निकाल दिया ॥ ७ ॥

ततस्तैर्बहुभिर्वीरैर्वानरैर्वानरर्षभ ।
संरक्तनयनैः क्रोधाद्धरयः प्रविचालिताः ॥ ८ ॥

तदनन्तर बहुत से बड़े बड़े वानरों ने क्रोध में भर और नेत्र लाल लाल कर, हमारे अनुचरों को मार कर भगा दिया ॥ ८ ॥

पाणिभिर्निहताः केचित्केचिज्जानुभिराहताः ।
प्रकृष्टाश्च यथाकामं देवमार्गं च दर्शिताः ॥ ९ ॥

किसी को थप्पड़ों से और किसी को लातों से मारा तथा किसी किसी को खींच कर आकाश में लुका दिया ॥ ९ ॥

एवमेते हताः शूरास्त्वयि तिष्ठति भर्तरि ।
कृत्स्नं मधुवनं चैव प्रकामं तैः प्रभक्ष्यते ॥ १० ॥

हे राजन्! तुम जैसे मालिक के रहते, ये सब मेरे वीर अनुचर इस प्रकार मारे पीटे गये और अब भी सब वानर मधुवन में मनमानी कर, खा पी रहे हैं ॥ १० ॥

एवं विज्ञाप्यमानं तु सुग्रीवं वानरर्षभम् ।
अपृच्छत्तं महाप्राज्ञो लक्ष्मणः परवीरहा ॥ ११ ॥

जिस समय दधिमुख वानर कपिश्रेष्ठ सुग्रीव जी से निवेदन कर रहा था, उस समय शत्रुहन्ता एवं महाप्राज्ञ लक्ष्मण ने पूँछा ॥ ११ ॥

किमयं *वनपो राजन्भवन्तं प्रत्युपस्थितः ।
कं चार्थमभिनिर्दिश्य दुःखितो वाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥

*पाठान्तरे—"वानरो०"

हे राजन्! यह वनपाल वानर किस लिए आपके पास आया है और दुखी हो आपसे क्या कह रहा है? ॥ १२ ॥

[नोट—जान पड़ता है दधिमुख ने सुग्रीव से वानरी भाषा में शिकायत की जिसे श्रीराम और लक्ष्मण न समझ सके ।]

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो लक्ष्मणेन महात्मना ।
लक्ष्मणं प्रत्युवाचेदं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ १३ ॥

जब महात्मा लक्ष्मण ने इस प्रकार पूँछा, तब वाक्यविशारद सुग्रीव ने लक्ष्मण के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा ॥ १३ ॥

आर्य लक्ष्मण संप्राह वीरो दधिमुखः कपिः ।
अङ्गदप्रमुखैर्वीरैर्भक्षितं मधु वानरैः ॥ १४ ॥

हे आर्य! यह वीर दधिमुख वानर कह रहा है कि, अङ्गद आदि वीर वानरों ने मधुवन के मधुफलों को खा डाला है ॥ १४ ॥

विचित्य दक्षिणामाशामागतैर्हरिपुङ्गवैः ।
नैषामकृतकृत्यानामीदृशः स्यादुपक्रमः ॥ १५ ॥

इससे जान पड़ता है कि दक्षिण दिशा में सीता जी का पता लगा वे वानरश्रेष्ठ आ गए हैं क्योंकि बिना कार्य पूरा किए, वे ऐसी ढिठाई नहीं कर सकते थे ॥ १५ ॥

आगतैश्च प्रमथितं यथा मधुवनं हि तैः ।
धर्षितं च वनं कृत्स्नमुपयुक्तं[2] च वानरैः ॥ १६ ॥

आ कर समस्त वन का नष्ट करना और मना करने पर मना करने वालों को मारना पीटना तथा मधुफलों को खाना—यह सब वे तभी कर सकते हैं, जब वे अपने कार्य को पूरा कर चुके हों ॥ १६ ॥

उपयुक्तं—भुक्तं । (रा०)

वनं यदाऽभिपन्नास्ते साधितं कर्म वानरैः ।
दृष्टा देवी न सन्देहो न चान्येन हनूमता ॥ १७ ॥

यदि उन वानरों ने वन में आकर उपद्रव किया है, तो निश्चय ही वे लोग और विशेष कर हनुमान सीता को देख आए हैं ॥ १७ ॥

न ह्यन्यः साधने हेतुः कर्मणोऽस्य हनूमतः ।
कार्यसिद्धिर्मतिश्चैव तस्मिन्वानरपुङ्गवे ॥ १८ ॥

क्योंकि हनुमान को छोड़, यह काम दूसरा नहीं कर सकता हनुमान जी में कार्य पूरा करने की बुद्धि है ॥ १८ ॥

व्यवसायश्च वीर्यं च श्रुतं चापि प्रतिष्ठितम् ।
जाम्बवान्यत्र नेता स्यादङ्गदश्च महाबलः ॥ १९ ॥

वे उद्योगी हैं, बलवान हैं और पण्डित हैं। फिर जहाँ जाम्बवान् और अङ्गद नेता हों ॥ १९ ॥

हनूमांश्चाप्यधिष्ठाता न तस्य गतिरन्यथा ।
अङ्गदप्रमुखैर्वीरैर्हतं मधुवनं किल ॥ २० ॥

और जिस काम के हनुमान जी अधिष्ठाता हों, वहाँ पर कोई कार्य अधूरा या अपूर्ण नहीं रह सकता। इससे अङ्गदप्रमुख वीर वानरों ने मधुवन को नष्ट कर डाला है ॥ २० ॥

वारयन्तश्च सहितास्तथा जानुभिराहताः ।
एतदर्थमयं प्राप्तो वक्तुं मधुरवागिह ॥ २१ ॥

और मना करने पर मना करने वालों को लातों से मारा है। ये ही बातें कहने के लिए यह मधुरभाषी वानर मेरे पास आया है ॥ २१ ॥

नाम्ना दधिमुखो नाम हरिः प्रख्यातविक्रमः ।
दृष्टा सीता महाबाहो सौमित्रे पश्य तत्त्वतः ॥ २२ ॥

इसका नाम दधिमुख वानर है और यह एक प्रसिद्ध पराक्रमी है। हे महाबाहु लक्ष्मण ! देखो वास्तव में बात यह है कि, उन लोगों ने सीता का पता लगा लिया है ॥ २२ ॥

अभिगम्य तथा सर्वे पिबन्ति मधु वानराः ।
न चाप्यदृष्ट्वा वैदेहीं विश्रुताः पुरुषर्षभ ॥ २३ ॥

तभी तो वे सब वानर आकर मधुपान कर रहे हैं । हे पुरुष-श्रेष्ठ ! बिना सीता को देखे वे विख्यात वानर लोग ॥ २३ ॥

वनं [1]दत्तवरं दिव्यं धर्षयेयुर्वनौकसः ।
ततः प्रहृष्टो धर्मात्मा लक्ष्मणः सहराघवः ॥ २४ ॥

देवताओं के द्वारा प्राप्त दिव्य मधुवन को कभी उजाड़ नहीं सकते थे । तब तो धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी बहुत प्रसन्न हुए ॥ २४ ॥

श्रुत्वा कर्णसुखां वाणीं सुग्रीववदनाच्च्युताम् ।
प्राहृष्यत भृशं रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ॥ २५ ॥

सुग्रीव के मुख से इस सुखसंवाद को सुन, महाबलवान श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी बहुत प्रसन्न हुए ॥ २५ ॥

श्रुत्वा दधिमुखस्येदं सुग्रीवस्तु प्रहृष्य च ।
वनपालं पुनर्वाक्यं सुग्रीवः प्रत्यभाषत ॥ २६ ॥

---

१ दत्तवरं—ऋक्षरजसे ब्रह्मणादत्तमित्यवगम्यते । (गो०)

दधिमुख के मुख से इस संवाद को सुन सुग्रीव प्रसन्न होकर उस वनरक्षक दधिमुख से बोले ॥ २६ ॥

प्रीतोऽस्मि सोऽहं यदुभुक्तं वनं तैः कृतकर्मभिः ।
मर्षितं मर्षणीयं च चेष्टितं कृतकर्मणाम् ॥ २७ ॥

मैं उन कृतकर्मा वानरों द्वारा मधुफलों के खाए जाने से प्रसन्न हूँ। क्योंकि उन्होंने बड़ा भारी काम किया है। अतः उन्होंने जो धृष्टता अथवा उत्पात किए हैं वे क्षन्तव्य हैं ॥ २७ ॥

इच्छामि शीघ्रं हनुमत्प्रधाना-
न्शाखामृगांस्तान्मृगराजदर्पान् ।
द्रष्टुं कृतार्थान्सह राघवाभ्यां
श्रोतुं च सीताधिगमे प्रयत्नम् ॥ २८ ॥

उन सिंह समान पराक्रमी तथा कृतकर्मा हनुमानादि वानरों को मैं शीघ्र देखना चाहता हूँ और श्रीरामचन्द्र तथा लक्ष्मण सहित मैं सीता जी के पास उनके पहुँचने का वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ ॥ २८ ॥

प्रीतिस्फीताक्षौ[1] सम्प्रहृष्टौ कुमारौ
दृष्ट्वा सिद्धार्थौ वानराणां च राजा ।
अङ्गैः संहृष्टैः कर्मसिद्धिं विदित्वा
[2]बाह्वोरासन्नां सोऽतिमात्रं ननन्द ॥ २९ ॥

इति त्रिषष्टितमः सर्गः ॥

---

१ स्फीताक्षौ—विकसितनेत्रौ । (रा०) २ बाह्वोरासन्नां—हस्तप्राप्ता-मिव । (रा०)

यह संवाद सुनने से श्रीरामचन्द्र जी व लक्ष्मण जी पुलकित हो गए और मारे प्रसन्नता के उनके दोनों नेत्र विकसित हो गए। इन शुभ लक्षणों को देख; सुग्रीव को ऐसा जान पड़ा, मानों कार्य की सफलता हाथ में आगई हो और यह जान, वे अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ २६ ॥

सुन्दरकाण्ड का तिरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

चतुःषष्टितमः सर्गः

—❀—

सुग्रीवेणैवमुक्तस्तु हृष्टो दधिमुखः कपिः।
राघवं लक्ष्मणं चैव सुग्रीवं चाभ्यवादयत् ॥ १ ॥

जब सुग्रीव ने इस प्रकार कहा; तब दधिमुख प्रसन्न हुआ और श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण तथा सुग्रीव को प्रणाम किया ॥ १ ॥

स प्रणम्य च सुग्रीवं राघवौ च महाबलौ।
वानरैः सह तैः शूरैर्दिवमेवोत्पपात ह ॥ २ ॥

सुग्रीव तथा महाबली श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण को प्रणाम कर और अपने अनुचरों को साथ ले वह आकाशमार्ग से चला गया ॥ २ ॥

स यथैवागतः पूर्वं तथैव त्वरितो गतः।
निपत्य गगनाद्भूमौ तद्वनं प्रविवेश ह ॥ ३ ॥

पूर्व में जैसी शीघ्रता से वह आया था वैसी ही शीघ्रता से वह लौट गया और आकाश से भूमि पर उतर; मधुवन में गया ॥३॥

स प्रविष्टो मधुवनं ददर्श हरियूथपान् ।
विमतानुत्थितान्सर्वान्मेहमानान्मधूदकम् ॥ ४ ॥

उसने वन में जाकर उन वानरयूथपतियों को देखा कि, वे मतवाले और उद्धत हो, मधु के समान मूत्र मूत रहे हैं ॥ ४ ॥

स तानुपागमद्वीरो बद्ध्वा करपुटाञ्जलिम् ।
उवाच वचनं श्लक्ष्णमिदं हृष्टवदङ्गदम् ॥ ५ ॥

वीर दधिमुख हाथ जोड़े हुए उन वानरों के पास गया और प्रसन्न हो अङ्गद से ये मधुर वचन बोला ॥ ५ ॥

सौम्य रोषो न कर्तव्यो यदेभिरभिवारितः ।
अज्ञानाद्रक्षिभिः क्रोधाद्भवन्तः प्रतिषेधिताः ॥ ६ ॥

हे सौम्य ! जो इन लोगों ने आपको रोका, इसके लिये आप क्रुद्ध न हों; क्योंकि इनको असली बात मालूम न थी। इसी से इन लोगों ने क्रोध में भर रोका था ॥ ६ ॥

युवराजस्त्वमीशश्च वनस्यास्य महाबल ।
मौर्ख्यात्पूर्वं कृतो दोषस्तं भवान्क्षन्तुमर्हति ॥ ७ ॥

हे महाबली ! आप युवराज होने के कारण स्वयं ही इस मधुवन के मालिक हैं। पूर्व में मूर्खतावश हम लोगों से जो अपराध बन पड़ा है—उसे आप क्षमा करें ॥ ७ ॥

आख्यातं हि मया गत्वा पितृव्यस्य तवानघ ।
इहोपयातं सर्वेषामेतेषां वनचारिणाम् ॥ ८ ॥

हे अनघ ! मैंने आपके चाचा के पास जाकर, इन सब वानरों के मधुवन में आने का वृत्तान्त कहा ॥ ८ ॥

स त्वदागमनं श्रुत्वा सहैभिर्हरियूथपैः ।
प्रहृष्टो न तु रुष्टोऽसौ वनं श्रुत्वा प्रधर्षितम् ॥ ९ ॥

वे सब वानरों सहित, आपका आगमन और इस मधुवन के उजाड़े जाने का संवाद सुन, बहुत प्रसन्न हुए, अप्रसन्न नहीं ॥९॥

प्रहृष्टो मां पितृव्यस्ते सुग्रीवो वानरेश्वरः ।
शीघ्रं प्रेषय सर्वांस्तानिति होवाच पार्थिवः ॥ १० ॥

आपके चाचा कपिराज सुग्रीव ने "अत्यन्त प्रसन्न हो मुझसे कहा है कि,—समस्त वानरों को शीघ्र मेरे पास भेज दो" ॥ १० ॥

श्रुत्वा दधिमुखस्यैतद्वचनं श्लक्ष्णमङ्गदः ।
अब्रवीत्तान्हरिश्रेष्ठो वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ ११ ॥

वचन बोलने में चतुर अङ्गद, दधिमुख के ये मधुर वचन सुन उन सब वानरों से बोले ॥ ११ ॥

शङ्के[1] श्रुतोऽयं वृत्तान्तो रामेण हरियूथपाः ।
*तत्क्षम नेह नः स्थातुं कृते कार्ये परन्तपाः ॥ १२ ॥

हे वानर यूथपतियो ! मुझे ऐसा जान पड़ता है कि, हमारे आने का वृत्तान्त श्रीरामचन्द्र जी को विदित हो चुका है। सो हे परन्तप ! यहाँ अब अधिक समय तक रहना उचित नहीं है; क्योंकि यहाँ जो काम करना था सो तो हो ही चुका ॥ १२ ॥

पीत्वा मधु यथाकामं विश्रान्ता वनचारिणः ।
किं शेषं गमनं तत्र सुग्रीवो यत्र मे गुरुः ॥ १३ ॥

---

१ शङ्के—अनुमिनोमि । (शि०) * पाठान्तरे—"तत्क्षणं ।"

आप सब लोग पेट भर कर मधु पी चुके और थकावट भी मिटा चुके, अब कौन काम बाकी रह गया है। अतः मेरी समझ में जहाँ मेरे पूज्य पितृव्य सुग्रीव हैं; वहाँ अब चलना चाहिए ॥ १३ ॥

सर्वे यथा मां वक्ष्यन्ति समेत्य हरियूथपाः ।
तथाऽस्मि कर्ता कर्तव्ये[1] भवद्भिः परवानहम् ॥ १४ ॥

अब आप सब वानरश्रेष्ठ मिल कर जैसा मुझसे कहें मैं वैसा ही करूँ। क्योंकि मैं आप ही लोगों के अधीन हूँ ॥ १४ ॥

नाज्ञापयितुमीशोऽहं[2] युवराजोऽस्मि यद्यपि ।
अयुक्तं[3] कृतकर्माणो यूयं धर्षयितुं मया ॥ १५ ॥

यद्यपि मैं युवराज हूँ और स्वतंत्र हूँ; तथापि मैं आप लोगों को कोई आज्ञा नहीं दे सकता। क्योंकि उपकार करने वालों को परतंत्र बनाना मेरे लिए ठीक नहीं ॥ १५ ॥

ब्रुवतश्चङ्गदस्यैवं श्रुत्वा वचनमुत्तमम् ।
प्रहृष्टमनसो वाक्यमिदमूचुर्वनौकसः ॥ १६ ॥

वनवासी वानर लोग अङ्गद के ऐसे विनम्र वचन सुन कर और हर्षित हो, यह बोले ॥ १६ ॥

एवं वक्ष्यति को राजन्प्रभुः सन्वानरर्षभ ।
ऐश्वर्यमदमत्तो हि [4]सर्वोऽहमिति मन्यते ॥ १७ ॥

---

१ भवद्भिः परवानहम्—भवदधीनं इत्यर्थ । (रा०) २ ईशः स्वतंत्रः । (गो०) ३ कृतकर्माणः—कृतोपकाराः । (गो०) ४ अहमितिमन्यत—गर्विष्ठो भवतीति । (गो०)

हे राजन्! स्वामी होकर ऐसे वचन कौन कहैगा? क्योंकि ऐश्वर्य का मद ऐसा है जो सब को गर्वीला अथवा अहङ्कारी बना देता है ॥ १७ ॥

तव चेदं सुसदृशं वाक्यं नान्यस्य कस्यचित्।
१सन्नतिर्हि तवाख्याति भविष्यच्छुभभाग्यताम् ॥ १८ ॥

ये वचन आप ही के स्वरूपानुरूप हैं, आप जैसा उच्च पदवी वाला अन्य कोई जन ऐसे वचन नहीं कहता। आपमें जैसी विनम्रता और विनय है, उससे जान पड़ता है कि, आगे आपका भाग्योदय होने वाला है ॥ १८ ॥

सर्वे वयमपि प्राप्तास्तत्र गन्तुं कृतक्षणाः२।
स यत्र हरिवीराणां सुग्रीवः पतिरव्ययः ॥ १९ ॥

इस समय वीर वानरों के राजा जहाँ विराजमान हैं, वहाँ चलने के लिए हम सब उत्कण्ठित हैं ॥ १९ ॥

त्वया ह्यनुक्तैर्हरिभिर्नैव शक्यं पदात्पदम्।
क्वचिद्गन्तुं हरिश्रेष्ठ ब्रूमः सत्यमिदं तु ते ॥ २० ॥

हम लोग आपसे सत्य ही सत्य कहते हैं कि, बिना आपकी आज्ञा के वानर लोग कहीं भी जाने के लिए एक पग भी आगे नहीं बढ़ा सकते ॥ २० ॥

एवं तु वदतां तेषामङ्गदः प्रत्यभाषत।
बाढं गच्छाम इत्युक्त्वा उत्पपात महीतलात् ॥ २१ ॥

---

१ सन्नतिः—विनयः। (गो०) २ कृतक्षणाः—कृतोत्साहाः (रा०)

जब उन वानरों ने इस प्रकार कहा, तब उनको उत्तर देते हुए अङ्गद कहने लगे बहुत अच्छा—आओ अब चलें—यह कह वे सब वानर पृथिवी से उछल कर आकाश में पहुँचे ॥ २१ ॥

उत्पतन्तमनूत्पेतुः सर्वे ते हरियूथपाः ।
कृत्वाऽऽकाशं निराकाशं यन्त्रोत्क्षिप्ता इवाचलाः ॥२२॥

अङ्गदादि वानरों को उछल कर आकाश में जाते देख अन्य, सब वानरों ने भी कल से फेंके हुए पत्थरों की तरह आकाश में जा आकाश को छा लिया ॥ २२ ॥

तेऽम्बरं सहसोत्पत्य वेगवन्तः प्लवङ्गमाः ।
विनदन्तो महानादं घना वातेरिता यथा ॥ २३ ॥

वे वेगवन्त वानर सहसा आकाश में जा, वायु की तरह महानाद करते हुए चले ॥ २३ ॥

अङ्गदे समनुप्राप्ते सुग्रीवो वानराधिपः ।
उवाच शोकोपहतं रामं कमललोचनम् ॥ २४ ॥

अङ्गद को आते देख, वानरराज सुग्रीव ने शोकसन्तप्त एवं कमललोचन श्रीरामचन्द्र जी से कहा ॥ २४ ॥

समाश्वसिहि भद्रं ते दृष्टा देवी न संशयः ।
नागन्तुमिह शक्यं तैरतीते समये हि नः ॥ २५ ॥

आपका मङ्गल हो! आप अब धीरज धरें। सीता का पता लग गया। क्योंकि यदि सीता का पता न लगा होता, तो अवधि बीत जाने पर वे यहाँ कभी नहीं आ सकते थे ॥ २५ ॥

न मत्सकाशमागच्छेत्कृत्ये हि विनिपातिते ।
युवराजो महाबाहुः प्लवतां प्रवरोऽङ्गदः ॥ २६ ॥

वानरों में श्रेष्ठ और महाबाहु युवराज अङ्गद यदि काम पूरा न होता तो मेरे समीप कभी न आते ॥२६॥

यद्यप्यकृतकृत्यानामीदृशः स्यादुपक्रमः ।
भवेत्स दीनवदनो भ्रान्तविप्लुतमानसः ॥ २७ ॥

यदि काम पूरा न कर सकते तो (ये लोग) इस तरह मधुवन विध्वंस न करते और यदि हमारे सामने आते, तो वे (अङ्गद) उदास होते और उनका मन मलिन और भ्रान्त होता ॥२७॥

पितृपैतामहं चैतत्पूर्वकैरभिरक्षितम् ।
न मे मधुवनं हन्यादहृष्टः प्लवगेश्वरः[1] ॥ २८ ॥

जानकी जी को देखे बिना, हमारे पिता पितामहादि पुरुषों का और उनके द्वारा रक्षित मधुवन को अँगद कभी न उजाड़ते ॥२८॥

कौसल्या सुप्रजा राम समाश्वसिहि सुव्रत ।
दृष्टा देवी न सन्देहो न चान्येन हनूमता ॥ २९

हे सुव्रत ! हे श्रीराम ! कौशल्या जी आपको उत्पन्न कर सत्पुत्रवती हुई हैं । अब आप सावधान हो जायँ । ये सीता को अवश्य देख कर आये हैं । सो भी उनमें से किसी अन्य ने नहीं, किन्तु हनुमान जी ने सीता को देखा है ॥ २९ ॥

न ह्यन्यः साधने हेतुः साधनेऽस्य हनूमतः ।
हनूमति हि सिद्धिश्च मतिश्च मतिसत्तम ॥ ३० ॥

---

१ प्लवगेश्वरः—अङ्गदः । (गो०)

क्योंकि यदि हनुमान ने सीता को न देखा होता, तो परमोत्तम बुद्धिसम्पन्न हनुमान, वाटिका विध्वंस रूप कार्य को कभी होने न देते। अतः मेरी समझ में तो श्रेष्ठ-बुद्धि-सम्पन्न हनुमान ने ही इस काम को सिद्ध किया है (शि०)॥ ३०॥

व्यवसायश्च वीर्यं च सूर्ये तेज इव ध्रुवम्।
जाम्बवान्यत्र नेता स्यादङ्गदश्च बलेश्वरः[1] ॥ ३१॥

क्योंकि निश्चय ही हनुमान जी में अध्यवसाय है, बल है और वे सूर्य की तरह तेजस्वी हैं। फिर जिसमें जाम्बवान नेता हों, अङ्गद सेनापति हों ॥३१॥

हनुमांश्चाप्यधिष्ठाता[2] न तस्य गतिरन्यथा।
मा भूश्चिन्तासमायुक्तः सम्प्रत्यमितविक्रम ॥ ३२॥

और हनुमान संरक्षक हों, उस काम में कभी विफलता हो ही नहीं सकती। हे अमितपराक्रमी! अब आप चिन्ता न करें॥ ३२॥

ततः किलकिलाशब्दं शुश्रावासन्नमम्बरे।
हनुमत्कर्मदृप्तानां नर्दतां काननौकसाम् ॥ ३३॥

इतने ही में आकाशमार्ग से आते हुए, वानरों की किलकारियाँ सुन पड़ीं। वे वानर, हनुमान जी द्वारा कार्य पूरा होने से, गर्वित हो गर्ज रहे थे ॥३३॥

किष्किन्धामुपयातानां सिद्धिं कथयतामिव।
ततः श्रुत्वा निनादं तं कपीनां कपिसत्तमः ॥ ३४॥

१ बलेश्वरः—सेनापतिः। गो०) २ अधिष्ठाता—संरक्षक इत्यर्थः। (गो०)।

किष्किन्धा की ओर आते हुए उन वानरों का उस समय का गर्जना, मानों कार्यसिद्धि को सूचित कर रहा था। तदनन्तर उन कपियों का गर्जना सुन, कपियों में श्रेष्ठ सुग्रीव ने ॥३४॥

आयताञ्चितलाङ्गूलः सोऽभवद्धृष्टमानसः ।
आजग्मुस्तेऽपि हरयो रामदर्शनकाङ्क्षिणः ॥ ३५ ॥

अपनी पूँछ लंबी फैला कर, फिर उसे चक्करदार कर समेट ली और वे बहुत ही प्रसन्नचित्त हो गए। इतने में वे कपि भी, श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन की आकांक्षा से, वहाँ आ पहुँचे ॥३५॥

अङ्गदं पुरतः कृत्वा हनूमन्तं च वानरम् ।
तेऽङ्गदप्रमुखा वीराः प्रहृष्टाश्च मुदान्विताः ॥ ३६ ॥

वे सब वानर अङ्गद और हनुमान जी को आगे कर आए। वे अङ्गदादि वीर वानरगण मारे हर्ष के पुलकित हो रहे थे ॥३६॥

निपेतुर्हरिराजस्य समीपे राघवस्य च ।
हनुमांश्च महाबाहुः प्रणम्य शिरसा ततः ॥ ३७ ॥

वे वानरगण, आकाश से उस जगह भूमि पर उतरे, जिस जगह कपिराज सुग्रीव और श्रीरामचन्द्र जी बैठे हुए थे। तदनन्तर सब से पहिले महाबाहु हनुमान जी ने सीस नवाकर प्रणाम किया ॥ ३७ ॥

[1]नियतामक्षतां देवीं राघवाय न्यवेदयत् ।
निश्चितार्थस्ततस्तस्मिन्सुग्रीवः पवनात्मजे ।
लक्ष्मणः प्रीतिमान्प्रीतं बहुमानादवैक्षत ॥ ३८ ॥

---

१ नियतां—पातिव्रत्यसम्पन्नां। (रा०) २ अक्षतां—शरीरेण कुशलनीम् (रा०)

और श्रीरामचन्द्र जी से निवेदन किया कि सीता जी शरीर से कुशल हैं और पातिव्रतधर्म पर दृढ़ हैं। हनुमान जी में सीता जी को देखने का निश्चय रखने वाले सुग्रीव को, प्रीतिमान लक्ष्मण जी ने बड़ी प्रीति और सम्मान के साथ देखा ॥३८॥

प्रीत्या च रममाणोऽथ राघवः परवीरहा ।
बहुमानेन महता हनुमन्तमवैक्षत ॥ ३९ ॥

इति चतुःषष्टितमः सर्गः ॥

परवीरहन्ता श्रीरामचन्द्र जी भी अत्यन्त प्रीति और आदर के साथ, कपिश्रेष्ठ हनुमान जी को देखने लगे ॥३९॥

सुन्दरकाण्ड का चौंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—:o:—

पञ्चषष्टितमः सर्गः

—:o:—

ततः प्रस्रवणं शैलं ते गत्वा चित्रकाननम् ।
प्रणम्य शिरसा रामं लक्ष्मणं च महाबलम् ॥ १ ॥

तदनन्तर हनुमानादि वानरों ने उस रंग बिरंगे पुष्पों से शोभित काननयुक्त प्रस्रवण पर्वत पर जा, महाबली श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण को सिर नवा कर प्रणाम किया ॥१॥

युवराजं पुरस्कृत्य सुग्रीवमभिवाद्य च ।
प्रवृत्तिमथ सीतायाः प्रवक्तुमुपचक्रमुः ॥ २ ॥

फिर युवराज अङ्गद को आगे कर और सुग्रीव को प्रणाम कर वे सीता का वृत्तान्त कहने लगे ॥२॥

रावणान्तःपुरे रोधं राक्षसीभिश्च तर्जनम् ।
रामे समनुरागं च यश्चायं समयः कृतः ॥ ३ ॥

सीता का रावण के रनवास में रोक रखा जाना, राक्षसियों द्वारा डराया धमकाया जाना, श्रीरामचन्द्र जी में सीता का अनुराग और रावण द्वारा सीता के मारे जाने की अवधि नियत किया जाना ॥३॥

एतदाख्यान्ति ते सर्वे हरयो रामसन्निधौ ।
वैदेहीमक्षतां श्रुत्वा रामस्तूत्तरमब्रवीत् ॥ ४ ॥

यह समस्त वृत्तान्त श्रीरामचन्द्र जी से उन वानरों ने कहा। सीता जी की राजीखुशी का संवाद सुन, श्रीरामचन्द्र जी ने कहा ॥४॥

क्व सीता वर्तते देवी कथं च मयि वर्तते ।
एतन्मे सर्वमाख्यात वैदेहीं प्रति वानराः ॥ ५ ॥

हे वानरो ! सीता देवी कहाँ हैं और मेरे विषय में उनका मन कैसा है? सो तुम यह सब सीता का वृत्तान्त मुझसे कहो ॥५॥

रामस्य गदितं श्रुत्वा हरयो रामसन्निधौ ।
चोदयन्ति हनूमन्तं सीतावृत्तान्तकोविदम् ॥ ६ ॥

वानरों ने श्रीरामचन्द्र जी का यह कथन सुन, सीता का समस्त वृत्तान्त जानने वाले हनुमान जी से, वृत्तान्त सुनाने को कहा ॥६॥

श्रुत्वा तु वचनं तेषां हनुमान्मारुतात्मजः ।
प्रणम्य शिरसा देव्यै सीतायै तां दिशं प्रति ॥ ७ ॥

उन वानरों के वचन सुन, पवननन्दन हनुमान जी ने दक्षिण दिशा की ओर मुख कर और सीस नवाकर जानकी माता को प्रणाम किया ॥७॥

उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः सीताया दर्शनं यथा ।
समुद्रं लङ्घयित्वाऽहं शतयोजनमायतम् ॥ ८ ॥

तदनन्तर बातचीत करने में चतुर हनुमान जी ने वह सारा वृत्तान्त कहा, जिस प्रकार उन्होंने सीता जी को देखा था। वे बोले हे राघव ! मैं शतयोजन समुद्र को लांघ कर ॥८॥

अगच्छं जानकीं सीतां मार्गमाणो दिदृक्षया ।
तत्र लङ्केति नगरी रावणस्य दुरात्मनः ॥ ९ ॥

सीता को देखने की इच्छा से समुद्र के पार गया। वहीं पर उस दुरात्मा रावण की लङ्का नाम की पुरी है ॥९॥

दक्षिणस्य समुद्रस्य तीरे वसति दक्षिणे ।
तत्र दृष्टा मया सीता रावणान्तःपुरे सती ॥ १० ॥

दक्षिण-समुद्र के दक्षिणी तट पर वह लङ्कानगरी बसी हुई है। उस नगरी में रावण के अन्तःपुर में मैंने पतिव्रता जानकी को देखा ॥१०॥

संन्यस्य त्वयि जीवन्ती रामा राम[1] मनोरथम् ।
दृष्टा मे राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ ११ ॥

---

१ रामा—सीता । (गो०)

हे श्रीरामचन्द्र ! सीता केवल तुम्हारे दर्शन की आशा से जीवित है। मैंने उसे राक्षसियों के बीच बैठा हुआ देखा। राक्षसियाँ बार बार उसे डरा धमका रही थीं ॥११॥

राक्षसीभिर्विरूपाभी रक्षिता प्रमदावने ।
दुःखमापद्यते देवी त्वया वीर सुखोचिता ॥ १२ ॥

प्रमदावन में मुँहजली राक्षसियाँ उसकी रखवाली किया करती हैं। सीता जो सदा तुम्हारे साथ सुख भोगती रही हैं; किन्तु इस समय वे दुःखी हो रही है ॥१२॥

रावणान्तःपुरे रुद्ध्वा राक्षसीभिः सुरक्षिता ।
एकवेणीधरा दीना त्वयि चिन्तापरायणा ॥ १३ ॥

एक तो वे रावण के रनवास में क़ैद हैं, दूसरे राक्षसियाँ उनकी बड़ी सावधानी से चौकसी करती रहती हैं। वे सिर के केशों को बाँध उन सब की एक चोटी बनाए हुए हैं (अर्थात् शृङ्गाररहित हैं)। वे सदा उदास रहती हैं और तुम्हारा ही ध्यान किया करती हैं ॥१३॥

अधःशय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे ।
रावणाद्विनिवृत्तार्था मर्तव्यकृतनिश्चया ॥ १४ ॥

वे पृथ्वी पर पड़ी रहती हैं, उनका रंग वैसा ही फीका पड़ गया है जैसा कि, हेमन्त ऋतु में कमलिनी का फीका पड़ जाता है। रावण से कुछ भी सरोकार न रख, वे जान देने का निश्चय किए हुए हैं ॥१४॥

देवी कथञ्चित्काकुत्स्थ त्वन्मना मार्गिता मया ।
इक्ष्वाकुवंशविख्यातिं शनैः कीर्तयताऽनघ ॥ १५ ॥

हे काकुत्स्थ ! बड़े परिश्रम से किसी न किसी तरह मैंने सीता को ढूँढ़ पाया और ।हे अनघ ! इक्ष्वाकुवंश की कीर्ति को बखान कर, ॥१५॥

सा मया नरशार्दूल विश्वासमुपपादिता ।
ततः सम्भाषिता देवी सर्वमर्थं च दर्शिता ॥ १६ ॥

हे नरशार्दूल ! मैंने उनका विश्वास अपने ऊपर जमा पाया । तदनन्तर उन देवी के साथ बातचीत कर, उनका सब हाल कह सुनाया ॥१६॥

रामसुग्रीवसख्यं च श्रुत्वा प्री तिमुपागता ।
नियतः समुदाचारो भक्तिश्चास्यास्तथा त्वयि ॥१७॥

वे तुम्हारी और सुग्रीव की मैत्री का वृत्तान्त सुन प्रसन्न हुई । तुममें उनकी अनन्य भक्ति है और उनका पातिव्रत भी अटल अचल बना हुआ है ॥१७॥

एवं मया महाभाग दृष्टा जनकनन्दिनी ।
उग्रेण तपसा युक्ता त्वद्भक्त्या पुरुषर्षभ ॥ १८ ॥

हे महाभाग ! ऐसी दशा में मैंने जानकी को देखा है । हे पुरुषोत्तम ! तुममें उनकी बड़ी प्रीति है और वे कठोर तपस्या कर रही हैं—अर्थात् बड़े कष्ट सह रही हैं ॥१८॥

अभिज्ञानं च मे दत्तं यथावृत्तं तवान्तिके ।
चित्रकूटे महाप्राज्ञ वायसं प्रति राघव ॥ १९ ॥

हे राघव ! हे महाप्राज्ञ ! चित्रकूट में तुमने कौए के प्रति जो लीला की थी, वह सब मुझे चिन्हानी स्वरूप, तुमसे निवेदन करने को बतलाई है ॥१९॥

विज्ञाप्यश्च नरव्याघ्रो रामो वायुसुत त्वया ।

अखिलेनेह यद्दृष्टमिति मामाह जानकी ॥ २० ॥

और हे नरव्याघ्र ! मुझसे यह भी कहा है कि, जैसा तुम यहाँ देखे जाते हो, वैसा ज्यों का त्यों तुम श्रीरामचन्द्र जी के आगे कह देना ॥२०॥

अयं चास्मै प्रदातव्यो यत्नात्सुपरिरक्षितः ।

ब्रुवता वचनान्येवं सुग्रीवस्योपशृण्वतः ॥ २१ ॥

एष चूडामणिः श्रीमान्मया सुपरिरक्षितः ।

मनःशिलायास्तिलको गण्डपार्श्वे निवेशितः ॥ २२ ॥

त्वया प्रनष्टे तिलके तं किल स्मर्तुमर्हसि ।

एष निर्यातितः श्रीमान्मया ते वारिसम्भवः ॥ २३ ॥

और इस चूड़ामणि को, जिसे मैंने बड़े यत्न से बचा पाया है; श्रीरामचन्द्र जी को सुग्रीव के सामने देना और यह कहना कि, मैंने इस चूड़ामणि को बड़े प्रयत्न से सुरक्षित रखा है और उनसे कहना कि, तिलक मिट जाने पर तुमने जो मेरे गण्डपार्श्व में मनसिल का तिलक लगाया था, उसका स्मरण तो तुमको अवश्य ही होगा। मैं अंगूठी के बदले तुमको जलोत्पन्न चूड़ामणि भेजती हूँ ॥२१॥२२॥२३॥

एतं दृष्ट्वा प्रमोदिष्ये व्यसने त्वामिवानघ ।

जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज ॥ २४ ॥

हे अनघ ! इसको देखने से तुमको हर्ष और विषाद दोनों ही होंगे। हे दशरथनन्दन ! मैं एक मास तक तुम्हारी प्रतीक्षा करती जीवित रहूँगी ॥२४॥

ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं रक्षसां वशमागता ।
इति मामब्रवीत्सीता कृशाङ्गी वरवर्णिनी ॥ २५ ॥

एक मास बीतने पर मैं जान दे दूँगी क्योंकि, मैं इन राक्षसों के पंजे में आ फँसी हूँ। हे राघव! उन कृशाङ्गी और वरवर्णिनी (श्रेष्ठ रंग वाली) सीता ने इस प्रकार के वचन मुझसे कहे हैं ॥२५॥

रावणान्तःपुरे रुद्धा मृगीवोत्फुल्ललोचना ।
एतदेव मयाख्यातं सर्वं राघव यद्यथा ।
सर्वथा सागरजले सन्तारः प्रविधीयताम् ॥ २६ ॥

हिरनी के समान प्रफुल्लित नेत्रवाली जानकी रावण के रनवास में कैद हैं। हे राघव! जो वृत्तान्त था वह सब मैंने तुमसे कहा। अब तुम जैसे हो वैसे समुद्र के पार होने का यत्न करो ॥२६॥

तौ जाताश्वासौ राजपुत्रौ विदित्वा
तच्चाभिज्ञानं राघवाय प्रदाय ।
देव्या चाख्यातं सर्वमेवानुपूर्व्या-
द्वाचा सम्पूर्णं वायुपुत्रः शशंस ॥ २७ ॥

इति पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥

यह कह चुकने पर जब हनुमान जी ने देखा कि, दोनों राजकुमारों को मेरी बातों पर विश्वास हो गया है, तब उन्होंने सीता जी की भेजी हुई चूड़ामणि श्रीरामचन्द्र जी को दे दी और सीता जी का कहा हुआ सारा संदेसा भी श्रीरामचन्द्र जी को कह सुनाया ॥२७॥

सुन्दरकाण्ड का पैंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः

—:o:—

एवमुक्तो हनुमता रामो दशरथात्मजः ।
तं मणिं हृदये कृत्वा प्ररुरोद सलक्ष्मणः ॥ १ ॥

जब हनुमान जी ने इस प्रकार कहा, तब दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र जी उस चूड़ामणि को छाती से लगा, लक्ष्मण सहित रोने लगे ॥ १ ॥

तं तु दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं राघवः शोककर्शितः ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥

उस मणि को देख श्रीरामचन्द्र जी दुःखी हुए और दोनों नेत्रों में आँसू भर सुग्रीव से बोले ॥२॥

यथैव धेनुः स्रवति स्नेहाद्वत्सस्य वत्सला ।
तथा ममापि हृदयं मणिरत्नस्य दर्शनात् ॥ ३ ॥

जैसे वत्सला गाय के स्तनों से बछड़े को देखने से अपने आप दूध टपकने लगता है, वैसे ही इस मणिश्रेष्ठ को देखने से मेरा मन भी द्रवीभूत हो गया है ॥ ३ ॥

मणिरत्नमिदं दत्तं वैदेह्याः श्वशुरेण मे ।
वधूकाले यथाबद्धमधिकं मूर्ध्नि शोभते ॥ ४ ॥

मेरे ससुर विदेहराज ने विवाह के समय यह चूड़ामणि सीता जी को दी थी और मस्तक पर धारण करने से यह बड़ी शोभा थी देता ॥ ४ ॥

अयं हि जलसम्भूतो मणिः [1]प्रवरपूजितः ।
यज्ञे परमतुष्टेन दत्तः शक्रेण धीमता ॥ ५ ॥

यह मणि जल से निकाली गई थी और यह देवपूजित है । बुद्धिमान इन्द्र ने यज्ञ में सन्तुष्ट हो यह जनक जी को दी थी ॥५॥

इमं दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं यथा तातस्य दर्शनम् ।
अद्यास्म्यवगतः सौम्य वैदेहस्य तथा विभोः ॥ ६ ॥

हे सौम्य ! इस मणि को देखने से मुझे अपने पिता का और महाराज जनक का स्मरण हो आया है ॥ ६ ॥

अयं हि शोभते तस्याः प्रियाया मूर्ध्नि मे मणिः ।
अद्यास्य दर्शनेनाहं प्राप्तां तामिव चिन्तये ॥ ७ ॥

यह मणि मेरी प्यारी सीता के मस्तक पर शोभा पाती थी । आज इस मणि को देखने से मुझे ऐसा जान पड़ रहा है; मानों मुझे सीता ही मिल गई हो ॥ ७ ॥

किमाह सीता वैदेही ब्रूहि सौम्य पुनः पुनः ।
पिपासुमिव तोयेन सिञ्चन्ती वाक्यवारिणा ॥ ८ ॥

हे सौम्य ! सीता ने क्या कहा ? उसकी कही बातें तुम मुझसे बार बार कहो, उसने तो मानों मुझ प्यासे को अपने वचन रूपी जल से तृप्त किया है ॥ ८ ॥

इतस्तु किं दुःखतरं यदिमं वारिसम्भवम् ।
मणिं पश्यामि सौमित्रे वैदेहीमागतां विना ॥ ९ ॥

---

[1] प्रवरैः—श्रेष्ठैः देवैः । (रा०)

हे लक्ष्मण ! इससे बढ़ कर मेरे लिए और कौनसी दुःख की बात होगी कि, विना सीता के मैं इस जलोत्पन्न चूड़ामणि को देख रहा हूँ ॥ ६ ॥

चिरं जीवति वैदेही यदि मासं धरिष्यति ।
न जीवेयं क्षणमपि विना तामसितेक्षणाम् ॥ १० ॥

हे लक्ष्मण ! यदि जानकी एक मास जीवित रही तो वह अवश्य बहुत काल जीती रहेगी । मैं तो उस कृष्णनयनी के विना क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकता ॥१०॥

नय मामपि तं देशं यत्र दृष्टा मम प्रिया ।
न तिष्ठेयं क्षणमपि प्रवृत्तिमुपलभ्य च ॥ ११ ॥

हे हनुमन् ! तुम मुझे भी वहीं ले चलो, जहाँ तुम मेरी प्यारी सीता को देख आए हो । उसका पता पा कर तो मैं अब एक क्षण भर भी (अन्यत्र) नहीं ठहर सकता ॥११॥

कथं सा मम सुश्रोणी भीरुभीरुः सती सदा ।
भयावहानां घोराणां मध्ये तिष्ठति रक्षसाम् ॥ १२ ॥

हे हनुमन् ! यह तो बतलाओ कि, मेरी वह सुन्दरी पतिव्रता और अत्यन्त भीरु (डरने वाली) सीता, किस प्रकार उन अत्यन्त भयङ्कर राक्षसों के बीच रहती है ॥ १२ ॥

शारदस्तिमिरोन्मुक्तो नूनं चन्द्र इवाम्बुदैः ।
आवृतं वदनं तस्या न विराजति राक्षसैः ॥ १३ ॥

अन्धकार से युक्त शरद ऋतु का चन्द्रमा मेघ से ढक कर जैसे प्रकाशित नहीं होता, वैसे ही राक्षसों द्वारा घिरी हुई होने के कारण सीता जी का मुखमण्डल भी शोभायमान न होता होगा ॥१३॥

किमाह सीता हनुमंस्तत्त्वतः कथयाद्य मे ।
एतेन खलु जीविष्ये भेषजेनातुरो यथा ॥ १४ ॥

हे हनुमन् ! अब तुम ठीक ठीक मुझे बतलाओ कि, जानकी ने तुमसे क्या कहा है ? जैसे रोगी दवा से जीता है, वैसे ही मैं, सीता जी के कथन को सुन निश्चय ही जीता रहूँगा ॥ १४ ॥

मधुरा मधुरालापा किमाह मम भामिनी ।
मद्विहीना वरारोहा हनुमन्कथयस्व मे ॥ १५ ॥

इति षट्षष्टितमः सर्गः ॥

हे हनुमन् ! सौम्यमूर्ति एवं मधुरभाषिणी जानकी ने मेरे वियोग में दुःखी हो मुझे क्या संदेसा भेजा है ? सो तुम कहो ॥१५॥

सुन्दरकाण्ड का छाछठवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—:o:—

सप्तषष्टितमः सर्गः

—:o:—

एवमुक्तस्तु हनुमान्राघवेण महात्मना ।
सीताया भाषितं सर्वं न्यवेदयत राघवे ॥ १ ॥

जब श्रीरामचन्द्र जी ने हनुमान जी से इस प्रकार कहा, तब हनुमान जी ने सीता जी का सारा कथन श्रीरामचन्द्र जी को कह सुनाया ॥१॥

इदमुक्तवती देवी जानकी पुरुषर्षभ ।
पूर्ववृत्तमभिज्ञानं चित्रकूटे यथातथम् ॥ २ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! पहिले चित्रकूट पर्वत पर जो घटना हुई थी, देवी जानकी ने उसका वृत्तान्त चिन्हानी के रूप में आद्यन्त वर्णन किया ॥ २ ॥

सुखसुप्ता त्वया सार्धं जानकी पूर्वमुत्थिता ।
वायसः सहसोत्पत्य विरराद स्तनान्तरे ॥ ३ ॥

हे राम ! तुम और जानकी सुख से पड़े सो रहे थे । किन्तु जानकी आप से पूर्व ही उठ बैठी कि, इसी बीच में अचानक एक कौए ने उड़ कर उनकी छाती में घाव कर दिया ॥ ३ ॥

पर्यायेण च सुप्तस्त्वं देव्यङ्के भरताग्रज ।
पुनश्च किल पक्षी स देव्या जनयति व्यथाम् ॥ ४ ॥

हे राम! आप फिर पारी से देवी की गोद में सो गए, सो उस काक ने पुनः आकर जानकी जी को पीड़ा दी ॥ ४ ॥

पुनः पुनरुपागम्य विरराद भृशं किल ।
ततस्त्वं बोधितस्तस्याः शोणितेन समुक्षितः ॥ ५ ॥

उसने बारंबार आ कर बड़ा घाव कर दिया । उस घाव से रक्त निकलने के कारण वह रक्त तुम्हारे शरीर पर गिरा और तुम जाग गए ॥ ५ ॥

वायसेन च तेनैव सततं बाध्यमानया ।
बोधितः किल देव्या त्वं सुखसुप्तः परन्तप ॥ ६ ॥

हे शत्रुहन्ता ! जब कौए ने जानकी को लगातार तंग किया तब सुख से सोए हुए तुमको जानकी जी ने जगाया ॥ ६ ॥

तां तु दृष्ट्वा महाबाहो दारितां च स्तनान्तरे ।
आशीविष इव क्रुद्धो निःश्वसन्नभ्यभाषथाः ॥ ७ ॥

हे महाबाहो ! जानकी जी की छाती में घाव देख कर तुम सांप की तरह क्रुद्ध हो फुनकारते हुए बोले ॥ ७ ॥

नखाग्रैः केन ते भीरु दारितं तु स्तनान्तरम् ।
कः क्रीडति सरोषेण पञ्चवक्त्रेण भोगिना ॥ ८ ॥

हे भीरु ! पंजों से तेरी छाती में किसने घाव कर दिया है ? क्रुद्ध पांच फन वाले सांप के साथ कौन खेल रहा है ? ॥ ८ ॥

निरीक्षमाणः सहसा वायसं समवैक्षथाः ।
नखैः सरुधिरैस्तीक्ष्णैस्तामेवाभिमुखं स्थितम् ॥ ९ ॥

ऐसा कह जब तुम देखने लगे; तब वह काक तुमको देख पड़ा, जिसके पैने नख रुधिर में भींगे थे और जो जानकी जी की ओर मुख किए खड़ा था ॥ ९ ॥

सुतः किल स शक्रस्य वायसः पततां वरः ।
धरान्तरचरः शीघ्रं पवनस्य गतौ समः ॥ १० ॥

पक्षियों में श्रेष्ठ वह काक निश्चय ही इन्द्र का पुत्र था । वह पवन की तरह बड़ी तेज़ी से पृथिवी के नीचे (पाताल में) जा छिपा ॥ १० ॥

ततस्तस्मिन्महाबाहो कोपसंवर्तितेक्षणः ।
वायसे त्वं कृथाः क्रूरां मतिं मतिमतां वर ॥ ११ ॥

हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ ! हे महाबाहो ! तब मारे क्रोध के तुम्हारी आंखें तिरछी हो गईं। आपको उस कौए पर बड़ा क्रोध आया ॥ ११ ॥

स दर्भं संस्तरादृगृह्य ब्रह्मास्त्रेण ह्ययोजयः।

स दीप्त इव कालाग्निर्जज्वालाभिमुखः खगम् ॥ १२ ॥

तुमने नीचे बिछी हुई कुश की चटाई से एक कुश निकाला और उसे ब्रह्मास्त्र के मंत्र से मंत्रित किया। वह कालाग्नि की तरह प्रदीप्त हो उस पक्षी की ओर चला ॥ १२ ॥

क्षिप्तवांस्त्वं प्रदीप्तं हि दर्भं तं वायसं प्रति।

ततस्तु वायसं दीप्तः स दर्भोऽनुजगाम ह ॥ १३ ॥

जब तुमने उस दहकते हुए कुश को उस कौए पर चलाया, तब वह कौए के पीछे दौड़ा ॥ १३ ॥

स पित्रा च परित्यक्तः सुरैश्च समहर्षिभिः।

त्रींल्लोकान्सम्परिक्रम्य त्रातारं नाधिगच्छति ॥ १४ ॥

उस समय न तो उसके पिता ने और न अन्य किसी देवता ने और न देवर्षियों ने ही उस ब्रह्मास्त्र से उसकी रक्षा की। वह तीनों लोकों में घूमा फिरा; किन्तु उसे कोई रक्षक न मिला ॥१४॥

पुनरेवागतस्त्रस्तस्त्वत्सकाशमरिन्दम।

स तं निपतितं भूमौ शरण्यः शरणागतम् ॥ १५ ॥

हे अरिन्दम ! वह भयभीत हो फिर तुम्हारे पास आया। हे शरणदाता ! वह पृथिवी पर गिर तुम्हारे शरण हुआ ॥ १५ ॥

वधार्हमपि काकुत्स्थ कृपया पर्यपालयः।

मोघमस्त्रं न शक्यं तु कर्तुमित्येव राघव ॥ १६ ॥

हे काकुस्थ ! वह मार डालने योग्य था, तथापि शरण में आने के कारण तुमने उसकी रक्षा की। हे राघव ! वह अस्त्र अमोघ था अतः आपने उसे व्यर्थ करना उचित न समझा ॥ १६ ॥

भवांस्तस्याक्षि काकस्य हिनस्ति स्म स दक्षिणम् ।
राम त्वां स नमस्कृत्य राज्ञे दशरथाय च ॥ १७ ॥

और आपने उसकी दहिनी आँख उससे फोड़ दी। हे राम ! तब वह काक तुम को और महाराज दशरथ को प्रणाम कर ॥ १७ ॥

विसृष्टस्तु तदा काकः प्रतिपेदे स्वमालयम् ।
एवमस्त्रविदां श्रेष्ठः सत्ववाञ्शीलवानपि ॥ १८ ॥

और बिदा हो, अपने घर को चला गया। तुम इस प्रकार के अस्त्रों के जानने वाले, पराक्रमी और शीलवान् होकर भी ॥ १८ ॥

किमर्थमस्त्रं रक्षःसु न योजयसि राघवः ।
न नागा नापि गन्धर्वा नासुरा न मरुद्गणाः ॥ १९ ॥

हे राघव ! आप राक्षसों पर उन अस्त्रों का प्रयोग क्यों नहीं करते ? न नागों, न गन्धर्वों, न दैत्यों और न मरुद्गण में से ॥१९॥

तव राम रणे शक्तस्तथा प्रतिसमासितुम् ।
तस्य वीर्यवतः कश्चिद्यद्यस्ति मयि सम्भ्रमः ॥२० ॥

किसी में भी तुम्हारे सामने युद्ध में खड़े रहने की शक्ति नहीं है। अतः आप बड़े बलवान हो। सो यदि मुझको तुम आदर की दृष्टि से देखते हो ॥ २० ॥

क्षिप्रं सुनिशितैर्बाणैर्हन्यतां युधि रावणः ।
भ्रातुरादेशमाज्ञाय लक्ष्मणो वा परन्तपः ॥ २१ ॥

तो शीघ्र अपने पैने बाणों से युद्ध में रावण को मारिए अथवा भ्राता की आज्ञा ले शत्रुओं को तपाने वाले लक्ष्मण जी ही ॥ २१ ॥

स किमर्थं नरवरो न मां रक्षति राघवः ।
शक्तौ तौ पुरुषव्याघ्रौ वाय्वग्निसमतेजसौ ॥ २२ ॥

जो नरों में श्रेष्ठ हैं, हे राघव ! वे मुझे क्यों नहीं बचाते। वे दोनों पुरुषसिंह वायु और अग्नि की तरह तेजस्वी और शक्तिमान् ॥ २२ ॥

सुराणामपि दुर्धर्षौ किमर्थं मामुपेक्षतः ।
ममैव दुष्कृतं किञ्चिन्महदस्ति न संशयः ॥ २३ ॥

तथा देवताओं द्वारा भी अजेय होकर, किस लिए मेरी उपेक्षा कर रहे हैं। इससे तो जान पड़ता है कि, निस्संशय मेरा ही कोई बड़ा अपराध अथवा पाप है ॥ २३ ॥

समर्थावपि तौ यन्मां नावेक्षेते परन्तपौ ।
वैदेह्या वचनं श्रुत्वा करुणं साश्रु भाषितम् ॥ २४ ॥

(इसी से तो) वे परन्तप दोनों भाई समर्थवान् होकर भी मेरी रक्षा नहीं करते। (हनुमान जी कहने लगे कि) हे प्रभो! सीता के रोकर कहे हुए करुणापूर्ण वचनों को सुन ॥ २४ ॥

पुनरप्यहमार्यां तामिदं वचनमब्रवम् ।
त्वच्छोकविमुखो रामो देवि सत्येन ते शपे ॥ २५ ॥

रामे दुःखाभिभूते तु लक्ष्मणः परितप्यते ।
कथञ्चिद्भवती दृष्टा न कालः परिशोचितुम् ॥ २६ ॥

मैंने उन सती साध्वी सीता से यह कहा—हे देवि ! मैं शपथ पूर्वक सत्य सत्य कहता हूँ कि, श्रीरामचन्द्र जी तुम्हारे विरहजन्य शोक से बड़े दुःखी हो रहे हैं और उनको दुःखी देख लक्ष्मण भी शोकसन्तप्त हैं । हे देवि ! मैंने किसी प्रकार आपको देख तो लिया । अब यह समय शोक करने का नहीं है ॥ २५ ॥ २६ ॥

अस्मिन्मुहूर्ते दुःखानामन्तं द्रक्ष्यसि भामिनि ।
तावुभौ नरशार्दूलौ राजपुत्रावनिन्दितौ ॥२७॥

हे सुन्दरि ! आप अब इसी समय से अपने दुःखों का अन्त हुआ जानिए । वे दोनों पुरुषसिंह एवं अनिन्दित राजकुमार ॥ २७ ॥

त्वद्दर्शनकृतोत्साहौ लङ्कां भस्मीकरिष्यतः ।
हत्वा च समरे रौद्रं रावणं सहबान्धवम् ॥ २८ ॥

तुम्हें देखने के लिए उत्कण्ठित हो, लङ्का को भस्म कर डालेंगे और युद्ध में भयङ्कर रावण को बन्धुबान्धव सहित मार ॥ २८ ॥

राघवस्त्वां वरारोहे स्वां पुरीं नयते ध्रुवम् ।
यत्तु रामो विजानीयादभिज्ञानमनिन्दिते ॥ २९ ॥
प्रीतिसञ्जननं तस्य प्रदातुं त्वमिहार्हसि ।
साऽभिवीक्ष्य दिशः सर्वा वेण्युद्ग्रथनमुत्तमम् ॥ ३० ॥

हे वरारोहे ! निश्चय ही तुम्हें अयोध्यापुरी को ले जायँगे । हे अनिन्दित ! मुझे कोई ऐसी चिन्हानी दो जिसको देख श्रीराम-

चन्द्र जी मेरे ऊपर विश्वास करें। तब उन्होंने इधर उधर देख सिर की चोटी में गूँथने की यह चूड़ामणि ॥ २१ ॥ ३० ॥

मुक्त्वा वस्त्राद्ददौ मह्यं मणिमेतं महाबल।
प्रतिगृह्य मणिं दिव्यं तव हेतो रघूद्वह ॥३१॥

हे महाबली ! अपने आँचल से खोल मुझे दी। हे रघुनन्दन ! मैंने आपके लिए दिव्यमणि ले ली ॥ ३१ ॥

शिरसा तां प्रणम्यार्यामहमागमने त्वरे।
गमने च कृतोत्साहमवेक्ष्य वरवर्णिनी ॥ ३२ ॥

सीता को प्रणाम कर मैं यहाँ आने के लिए जल्दी करने लगा। जब सुन्दरी सीता ने मुझे चलने को उद्यत ॥ ३२ ॥

विवर्धमानं च हि मामुवाच जनकात्मजा।
अश्रुपूर्णमुखी दीना बाष्पसन्दिग्धभाषिणी ॥ ३३ ॥

और अपना शरीर बढ़ाए हुए मुझे देखा, तब जानकी जी मुझसे कहने लगीं। वे आँखों में आँसू भर लाईं और उनका कण्ठ गद्गद हो गया ॥ ३३ ॥

ममोत्पतनसम्भ्रान्ता शोकवेगवशंगता।
हनुमन्सिंहसङ्काशौ तावुभौ रामलक्ष्मणौ।
सुग्रीवं च सहामात्यं सर्वान्ब्रूया ह्यनामयम् ॥ ३४ ॥

क्योंकि मेरे वहाँ से चले आने की बात जान वे घबड़ाई हुई थीं और दुखी हो रही थीं। वे कहने लगीं—हे हनुमान ! सिंह के समान दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण से तथा मंत्रियों सहित सुग्रीवादि समस्त वानरों से मेरा कुशल समाचार कहना ॥ ३४ ॥

यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघवः ।
अस्माद्दुःखाम्बुसंरोधात्त्वं समाधातुमर्हसि ॥ ३५ ॥

तुम ऐसा उद्योग करना जिससे वे महाबाहु श्रीरामचन्द्र मुझे इस शोकसागर से शीघ्र आकर उबारें ॥ ३५ ॥

इमं च तीव्रं मम शोकवेगं
रक्षोभिरेभिः परिभर्त्सनं च ।
ब्रूयास्तु रामस्य गतः समीपं
शिवश्च तेऽध्वास्तु हरिप्रवीर ॥ ३६ ॥

हे कपिश्रेष्ठ ! मार्ग तुम्हारे लिए मङ्गलदायी हो । तुम श्रीरामचन्द्र जी के पास जाकर मेरे इस तीव्र शोक तथा इन राक्षसियों द्वारा मेरे डराए धमकाए जाने का समस्त वृत्तान्त कह देना। ३६॥

एतत्तवार्या नृपराजसिंह
सीता वचः प्राह विषादपूर्वम् ।
एतच्च बुद्ध्वा गदितं मया त्वं
श्रद्धत्स्व सीतां कुशलां समग्राम् ॥ ३७ ॥

इति सप्तषष्टितमः सर्गः ॥

हे नृपराजसिंह ! तुम्हारी सती सीता ने दुःखी हो ये सब बातें कहीं हैं । मेरे कहे हुए उनके संदेसे पर विचार कर, समस्त पतिव्रताओं में अग्रणी सीता जी के कुशलपूर्वक होने का विश्वास करो ॥ ३७ ॥

सुन्दरकाण्ड का सड़सठवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—*—

अष्टषष्टितमः सर्गः

—*—

अथाहमुत्तरं देव्या पुनरुक्तः ससम्भ्रमः ।

तव स्नेहान्नरव्याघ्र सौहार्दादनुमान्य वै ॥ १ ॥

हनुमान जी कहने लगे—हे नरव्याघ्र ! सीता जी ने यह जान कर कि, मुझ पर तुम्हारा स्नेह है, शेष कार्य के सम्बन्ध में आदर पूर्वक मुझसे कहा ॥ १ ॥

एवं बहुविधं वाच्यो रामो दाशरथिस्त्वया ।

यथा मामाप्नुयाच्छीघ्रं हत्वा रावणमाहवे ॥ २ ॥

हे कपे ! तुम विविध प्रकार से दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र को समझाना जिससे वे शीघ्र युद्ध में रावण को मार मुझे मिलें ॥२॥

यदि वा मन्यसे वीर वसैकाहमरिन्दम ।

कस्मिंश्चित्संवृते देशे विश्रान्तः श्वो गमिष्यसि ॥ ३ ॥

हे वीर ! यदि तुम चाहो तो किसी गुप्त स्थान में एक दिन और टिके रहो और अपनी थकावट मिटालो । फिर कल चले जाना ॥ ३ ॥

मम चाप्यल्पभाग्यायाः सान्निध्यात्तव वानर ।

अस्य शोकविपाकस्य मुहूर्तं स्याद्विमोक्षणम् ॥ ४ ॥

हे वानर ! तुम्हारे मेरे समीप रहने से मैं अभागी कुछ देर के लिए तो इस शोक से छूट जाऊँगी ॥ ४ ॥

गते हि त्वयि विक्रान्ते पुनरागमनाय वै ।

प्राणानामपि सन्देहो मम स्यान्नात्र संशयः ॥ ५ ॥

तुम्हारे यहाँ से वहाँ जाने और वहाँ से यहाँ फिर आने तक, निश्चय ही मुझे अपने जीवित रहने में भी सन्देह है ॥ ५ ॥

तवादर्शनजः शोको भूयो मां परितापयेत् ।
दुःखाद्दुःखपराभूतां दुर्गतां दुःखभागिनीम् ॥ ६ ॥

मैं इस दुर्दशा में पड़ी हूँ और दुःख पर दुःख सह रही हूँ । अतः मैं बड़ी अभागिनी हूँ । तुम्हारे चले जानेपर अथवा तुम्हारी अनुपस्थिति में मुझे फिर बड़ा भारी दुःख होगा ॥ ६ ॥

अयं च वीर सन्देहस्तिष्ठतीव ममाग्रतः ।
सुमहांस्त्वत्सहायेषु हर्यृक्षेषु हरीश्वर ॥ ७ ॥

हे वीर ! मुझे एक बात का बड़ा सन्देह है कि, तुम्हारे बड़े सहायक रीछों और वानरों में ॥ ७ ॥

कथं नु खलु दुष्पारं तरिष्यन्ति महोदधिम् ।
तानि हर्यृक्षसैन्यानि तौ वा नरवरात्मजौ ॥ ८ ॥

कौन किस प्रकार इस दुष्पार महासागर को पार कर सकेंगे । वह रीछ वानरों की सेना अथवा वे दोनों राजकुमार किस प्रकार समुद्र को पार करेंगे ॥ ८ ॥

त्रयाणामेव भूतानां सागरस्यास्य लङ्घने ।
शक्तिः स्याद्वैनतेयस्य वायोर्वा तव वानघ ॥ ९ ॥

हे अनघ ! इस समुद्र को लाँघने की शक्ति तीन ही जनों में हैं । या तो गरुड़ जी में या पवन में, या तुममें ॥ ९ ॥

तदस्मिन्कार्यनिर्योगे वीरैवं दुरतिक्रमे ।
किं पश्यसि समाधानं त्वं हि कार्यविदां वरः ॥ १० ॥

अतः हे कार्य करने वालों में श्रेष्ठ ! हे वीर ! तुमने इस दुष्कर कार्य के करने का क्या उपाय स्थिर किया है ॥ १० ॥

काममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने ।
पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते बलोदयः ॥ ११ ॥

हे शत्रुनिहन्ता ! यद्यपि तुम अकेले ही सहज में इस काम को पूरा कर सकते हो, तथापि ऐसा करने से केवल तुम्हारे यश और बल का बखान होगा ॥ ११ ॥

बलैः समग्रैर्यदि मां हत्वा रावणमाहवे ।
विजयी स्वां पुरीं रामो नयेत्तत्स्याद्यशस्करम् ॥ १२ ॥

यदि श्रीरामचन्द्र जी रावण को उसकी सारी सेना के साथ मार एवं विजय प्राप्त कर मुझे अयोध्या ले चलें, तो उनकी नामवरी हो ॥ १२ ॥

यथाहं तस्य वीरस्य वनादुपधिना हृता ।
रक्षसा तद्भयादेव तथा नार्हति राघवः ॥ १३ ॥

जैसे रावण ने श्रीरामचन्द्र के आश्रम से, उनके भय से भीत हो मुझे छलबल से हरा ; उस प्रकार से मेरा यहाँ से उद्धार करना श्रीरामचन्द्र जी के योग्य नहीं है ॥ १३ ॥

बलैस्तु सङ्कुलां कृत्वा लङ्कां परबलार्दनः ।
मां नयेद्यदि काकुत्स्थस्तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥ १४ ॥

यदि शत्रु-सैन्य विध्वंसकारी श्रीरामचन्द्र जी अपनी सेना लाकर लङ्का को पाट दें और मुझे ले जायँ, तो यह कार्य उनके स्वरूपानुरूप हो ॥ १४ ॥

तद्यथा तस्य विक्रान्तमनुरूपं महात्मनः ।
भवत्याहवशूरस्य तथा त्वमुपपादय ॥ १५ ॥

जो कार्य उन युद्धशूर महात्मा के योग्य हो और उनके पराक्रम को प्रकाशित करे, तुम वैसा ही उपाय करना ॥ १५ ॥

तदर्थोपहितं वाक्यं प्रश्रितं हेतुसंहितम् ।
निशम्याहं ततः शेषं वाक्यमुत्तरमब्रवम् ॥ १६ ॥

हे श्रीरामचन्द्र ! इस प्रकार से नम्रता और युक्तियुक्त सीता देवी के वचन सुन, मैंने पीछे से उत्तर देते हुए कहा ॥ १६ ॥

देवि हर्यृक्षसैन्यानामीश्वरः प्लवतां वरः ।
सुग्रीवः सत्त्वसंपन्नस्तवार्थे कृतनिश्चयः ॥ १७ ॥

हे देवि ! रीछ और वानरों के अधिपति वानरश्रेष्ठ सुग्रीव बड़े पराक्रमी हैं। वे आपके उद्धार का सङ्कल्प कर चुके हैं ॥ १७ ॥

तस्य विक्रमसम्पन्नाः सत्त्ववन्तो महाबलाः ।
मनःसङ्कल्पसम्पाता निदेशे हरयः स्थिताः ॥ १८ ॥

उन सुग्रीव की आज्ञा के वश में महापराक्रमी, वीर्यवान, महाबली और इच्छागामी अनेक वानर हैं ॥ १८ ॥

तेषां नोपरि नाधस्तान्न तिर्यक्सज्जते गतिः ।
न च कर्मसु सीदन्ति महत्स्वमिततेजसः ॥ १९ ॥

क्या ऊपर, क्या अगल बगल, किसी भी ओर जाने में वे नहीं रुक सकते। वे किसी भी बड़े से बड़े काम के करने में नहीं घबड़ाते। वे अमित तेजस्वी हैं ॥ १९ ॥

असकृत्तैर्महाभागैर्वानरैर्बलसंयुतैः ।
प्रदक्षिणीकृता भूमिर्वायुमार्गानुसारिभिः ॥ २० ॥

उन महाबली महाभाग वानरों ने आकाशमार्ग से गमन कर कितनी ही बार पृथिवी की परिक्रमा की है ॥ २० ॥

मद्विशिष्टाश्च तुल्याश्च सन्ति तत्र वनौकसः ।
मत्तः प्रत्यवरः कश्चिन्नास्ति सुग्रीवसन्निधौ ॥ २१ ॥

मेरी बराबर और मुझसे भी अधिक बली और पराक्रमी वानर वहाँ हैं। मुझसे हीनपराक्रम वाला अर्थात् कम बलवाला एक भी वानर सुग्रीव के पास नहीं है ॥ २१ ॥

अहं तावदिह प्राप्तः किं पुनस्ते महाबलाः ।
न हि प्रकृष्टाः प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हीतरे जनाः ॥ २२ ॥

जब मैं ही यहाँ आ गया, तब उन महाबलियों का तो पूँछना ही क्या है ? देखो, दूत बना कर छोटे ही भेजे जाते हैं, बड़े नहीं ॥ २२ ॥

तदलं परितापेन देवि मन्युर्व्यपैतु ते ।
एकोत्पातेन वै लङ्कामेष्यन्ति हरियूथपाः ॥ २३ ॥

हे देवि ! अब तुम सन्तप्त न हो । दीनता त्याग दो । वानर एक ही छलांग में लङ्का में आ जायँगे ॥ २३ ॥

मम पृष्ठगतौ तौ च चन्द्रसूर्याविवोदितौ ।
त्वत्सकाशं महाभागे नृसिंहावागमिष्यतः ॥ २४ ॥

हे महाभागे (वे दोनों पुरुषसिंह मेरी पीठ पर सवार हो उदित हुए चन्द्र और सूर्य की तरह यहाँ आ जायँगे ॥ २४ ॥

अरिघ्नं सिंहसङ्काशं क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम् ।
लक्ष्मणं च धनुष्पाणिं लङ्काद्वारमुपस्थितम् ॥ २५ ॥

हे देवि ! शत्रुहन्ता और सिंह की तरह पराक्रमी श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण को तुम धनुष हाथ में लिये शीघ्र ही लङ्का के द्वार पर आया हुआ देखोगी ॥ २५ ॥

नखदंष्ट्रायुधान्वीरान्सिंहशार्दूलविक्रमान् ।
वानरान्वारणेन्द्राभान्क्षिप्रं द्रक्ष्यसि सङ्गतान् ॥ २६ ॥

तुम नख और दाँतों को आयुध बनाए सिंह और शार्दूल की तरह पराक्रमी और गजराज तुल्य वानरों को शीघ्र ही लङ्का में इकट्ठा हुआ देखोगी ॥ २६ ॥

शैलाम्बुदनिकाशानां लङ्कामलयसानुषु ।
नर्दतां कपिमुख्यानामचिराच्छ्रोष्यसि स्वनम् ॥ २७ ॥

पर्वताकार वानर वीरों का, लङ्का के मलयाचल के ऊँचे कँगूरों पर, सिंहनाद भी तुमको शीघ्र ही सुनाई पड़ेगा ॥ २७ ॥

निवृत्तवनवासं च त्वया सार्धमरिन्दमम् ।
अभिषिक्तमयोध्यायां क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम् ॥ २८ ॥

तुम शीघ्र ही देखोगी कि, वनवास की अवधि पूरी कर, शत्रुदमनकारी श्रीरामचन्द्र जी तुम्हारे साथ अयोध्या के राजसिंहासन पर आसीन हैं ॥ २८ ॥

ततो मया वाग्भिरदीनभाषिणा
शिवाभिरिष्टाभिरभिप्रसादिता ।
जगाम शान्तिं मम मैथिलात्मजा
तवापि शोकेन तदाभिपीडिता ॥ २९ ॥

इति अष्टषष्टितमः सर्गः ॥

हे रघुनन्दन ! उस समय तुम्हारे शोक से पीड़ित सीता जी इस प्रकार के शुभ और प्यारे वचनों से प्रसन्न हुईं । उनकी दीनता दूर हुई और वे शान्त हुईं ॥ २९ ॥

सुन्दरकाण्ड का अड़सठवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये
चतुर्विंशतिसाहस्रिकायां संहितायाम्

सुन्दरकाण्डः समाप्तः ॥



Printed by BAMZAN ALI SHAH at the National Press, Allahabad

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्रामायणपारायणसमापनक्रमः

श्रीवैष्णवसम्प्रदायः

—❀—

एवमेतत्पुरावृत्तमाख्यानं भद्रमस्तु वः ।
प्रव्याहरत विस्रब्धं बलं विष्णोः प्रवर्धताम् ॥ १ ॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदये सुप्रतिष्ठितः ॥ २ ॥
काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी ।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः ॥ ३ ॥
कावेरी वर्धतां काले काले वर्षतु वासवः ।
श्रीरङ्गनाथो जयतु श्रीरङ्गश्रीश्च वर्धताम् ॥ ४ ॥
स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः ।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥ ५ ॥
मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीयगुणाब्धये ।
चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ॥ ६ ॥
वेदवेदान्तवेद्याय मेघश्यामलमूर्तये ।
पुंसां मोहनरूपाय पुण्यश्लोकाय मङ्गलम् ॥ ७ ॥

विश्वामित्रान्तरङ्गाय मिथिलानगरीपतेः ।
भाग्यानां परिपाकाय भव्यरूपाय मङ्गलम् ॥ ८ ॥
पितृभक्ताय सततं भ्रातृभिः सह सीतया ।
नन्दिताखिललोकाय रामभद्राय मङ्गलम् ॥ ९ ॥
त्यक्तसाकेतवासाय चित्रकूटविहारिणे ।
सेव्याय सर्वयमिनां धीरोदाराय मङ्गलम् ॥ १० ॥
सौमित्रिणा च जानक्या चापबाणासिधारिणे ।
संसेव्याय सदा भक्त्या स्वामिने मम मङ्गलम् ॥ ११
दण्डकारण्यवासाय खण्डितामरशत्रवे ।
गृध्रराजाय भक्ताय मुक्तिदायास्तु मङ्गलम् ॥ १२ ॥
सादरं शबरीदत्तफलमूलाभिलाषिणे ।
सौलभ्यपरिपूर्णाय सत्वोद्रिक्ताय मङ्गलम् ॥ १३ ॥
हनुमत्समवेताय हरीशाभीष्टदायिने ।
वालिप्रमथनायास्तु महाधीराय मङ्गलम् ॥ १४ ॥
श्रीमते रघुवीराय सेतूल्लङ्घितसिन्धवे ।
जितराक्षसराजाय रणधीराय मङ्गलम् ॥ १५ ॥
आसाद्य नगरीं दिव्यामभिषिक्ताय सीतया ।
राजाधिराजराजाय रामभद्राय मङ्गलम् ॥ १६ ॥
मङ्गलाशासनपरैर्मदाचार्यपुरोगमैः ।
सर्वैश्च पूर्वैराचार्यैः सत्कृतायास्तु मङ्गलम् ॥ १७ ॥

—*—

माध्वसम्प्रदायः

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः ।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥ १ ॥
काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी ।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः ॥ २ ॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदये सुप्रतिष्ठितः ॥ ३ ॥
मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीयगुणाब्धये ।
चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ॥ ४ ॥
कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्यात्मना वा प्रकृतेः स्वभावात् ।
करोमि यद्यत्सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयामि ॥ ५ ॥

—*—

स्मार्तसम्प्रदायः

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः ।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥ १ ॥
काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी ।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः ॥ २ ॥
अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः ।
अधनाः सधनाः सन्तु जीवन्तु शरदां शतम् ॥ ३ ॥

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् ।
एकैकमक्षरं प्रोक्तं महापातकनाशनम् ॥ ४ ॥
शृण्वन्रामायणं भक्त्या यः पादं पदमेव वा ।
स याति ब्रह्मणः स्थानं ब्रह्मणा पूज्यते सदा ॥ ५ ॥
रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥ ६ ॥
यन्मङ्गलं सहस्राक्षे सर्वदेवनमस्कृते ।
वृत्रनाशे समभवत्तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ ७ ॥
मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीयगुणात्मने ।
चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ॥ ८ ॥
यन्मङ्गलं सुपर्णस्य विनताकल्पयत्पुरा ।
अमृतं प्रार्थयानस्य तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ ९ ॥
अमृतोत्पादने दैत्यान्घ्नतो वज्रधरस्य यत् ।
अदितिर्मङ्गलं प्रादात्तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ १० ॥
त्रीन्विक्रमान्प्रक्रमतो विष्णोरमिततेजसः ।
यदासीन्मङ्गलं राम तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ ११ ॥
ऋतवः सागरा द्वीपा वेदा लोका दिशश्च ते ।
मङ्गलानि महाबाहुर्दिशन्तु तव सर्वदा ॥ १२ ॥
कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्यात्मना वा प्रकृतेः स्वभावात् ।
करोमि यद्यत्सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयामि ॥ १३ ॥

—*—